ओ३म्

संशोधित तथा परिवर्धित तृतीय संस्करण

* ऋक्-सूक्त-संग्रहः *

सायणभाष्यानुसारी पीटर्सन की हिन्दी
व संस्कृत व्याख्या सहित

व्याख्याकार—
व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य

श्री डा० हरिदत्त शास्त्री,

एम. ए., पी-एच. डी. नवतीर्थ
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग
डी. ए. वी. कॉलेज,
कानपुर

प्रकाशक—

रतिराम शास्त्री

अध्यक्ष—

साहित्य-भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ

१९६३ [मूल्य ६·५०

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
साहित्य-भण्डार, सुभाष बाज़ार, मेरठ

मुद्रक :
श्री देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान प्रैस,
साधु आश्रम, होशिआरपुर।

पीटर्सन सूक्तानुक्रमणी

—:०:—

मैक्डानल टीका युक्त

सूक्तानुक्रमिणा

—:०:—

प्राक्कथन

पाठक महानुभाव !

ऋग्वेद के कतिपय संकलित सूक्तों की मुग्धानल कृत टीका आगरा यूनिवर्सिटी में अब तक निर्धारित थी अब पुराने सूक्तों में से केवल ५ सूक्त शेष रह गये—शेष बदल गये। मैकडानल की टीका के स्थान में पीटर्सन की टीका भी निर्धारित हो गई। अतः यह पीटर्सनानुसारी संकलित ऋक् सूक्तों की हिन्दी टीका आप के समक्ष प्रस्तुत है। मैकडानल (Arthur Authony Macdonell) की टीका भी साथ ही प्रकाशित की जा रही है। अतः इस पुस्तक का आधार कुछ विपुल हो गया है। पीटर्सन की विचार-शैली मैकडानल की अपेक्षा विस्तृत विचार पूर्ण है।

पीटर्सन (Peter Peterson M. A.) के सभी उपयोगी विचार हिन्दी टीका में सन्निविष्ट हैं, जहां कहीं वह सायण पर बरसा है वहां कहीं-कहीं पर तो वह ठीक सा लगता है किन्तु जहां पीटर्सन ने अनावश्यक समालोचना की है वहां हम ने भी उसको अछूता नहीं छोड़ा है। 'देवता परिचय' के लेखन में तथा 'पाण्डु लिपि' की प्रतिलिपि करने में मेरी अन्ते वासिनी, रिसर्च-स्कालर प्रिय कु. मालती अवस्थी एम. ए. "विद्यावाचस्पति" ने बहुत हाथ बंटाया है। तदर्थ मैं आभारी हूँ।

अपने लेखन की भूलों की क्षमा के लिए प्रियमाला द्वारा प्रेषित यह पद्य भी समयोचित ही है :—

दोषाः स्युरेव मम, तत्र कृताधिकारम्,
दोषज्ञवृन्दमपनेष्यति तान् समूलम् ।
स्युश्चेद् गुणा अभिमता भवतां, न ते तत्,
व्यर्थाः खला इह खलूभयथा स्थितिर्वः ॥

मन्त्रों व उनके पद पाठों की प्रतिलिपि में व्याकरणाचार्य, प्रिय महादेव शास्त्री एम. ए. (गुरुकुल चित्तौड़गढ़) ने स्तुत्य परिश्रम किया है जो चिरस्मरणीय रहेगा ।

आगरा यूनिवर्सिटी के प्रौस्पेक्टस में ८म मण्डल के 'विश्वेदेव' सूक्त को 'इन्द्रावरुणा' सूक्त से पूर्व रख दिया है किन्तु हमने मण्डल क्रमानुसार 'इन्द्रावरुणा' को प्रथम तथा 'विश्वेदेव' को बाद में रख दिया है। आशा है पाठक इस व्यतिक्रम का मर्षण करेंगे ।

भूमिका में अनेक विषय पहले से बढ़ा दिये हैं। 'स्वर विचार' को पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ाया जा सका है क्योंकि इस समय आगरे में ग्रीष्म की प्रखरता कविरत्न श्रद्धेय भाई श्री हरिशङ्कर जी शर्मा डी. लिट् की इस रचना को बार-बार याद दिलाती है :—

"आज कल आगरे में आग बरसत है" और कुछ करने नहीं देती । संस्कृत प्रकाशन में कमर कस कर, घर फूँक तमाशा करने वाले साहित्य भण्डार मेरठ के अध्यक्ष प्रिय श्री रतिराम शास्त्री ने इसके मुद्रण में बड़े आर्थिक कष्ट का सामना किया है, प्रभु उन्हें इस तपस्या का फल देगा ही ।

अन्त में यही कह कर विराम लेता हूँ कि—

अत्रानुक्तं दुरुक्तं किमपि यदि भवेत्तद्धि सूक्तं कृषीरन्,
संख्यावन्तो महान्तो यदुपकृति विधौ शीलमेषामतन्त्रम् ।

आलोकं लोकहेतोर्विदधति निविडध्वान्तमुद्वासयन्तः,
प्रालेयांशु-प्रदीप-द्युमणि-मणिगणास्तत्र को हेतुरास्ते ॥

किञ्चः—

'हरिणा' गुरुणा प्रयत्न भूम्ना,
विहितेयं 'सरला' ऋगर्थवृत्तिः ।
श्रम एष फलेग्रहिस्तदानीम्,
श्रमहानिर्यदिछात्रपण्डितानाम् ॥

गुरुपूर्णिमा (६–७–६३)
मुख्याधिष्ठाता
गुरुकुल-महाविद्यालय
ज्वालापुर जि. सहारनपुर

विद्वदाश्रवः—
हरिदत्त शास्त्री
(लुप्तोपघ्ननिघ्नः)

आमुखम्

इस टीका की विशेषताएँ

(१) इस पुस्तक के रहते हुए आपको सायण भाष्य या मुग्धानल कृत इंगलिश व्याख्या की आवश्यकता न रहेगी क्योंकि इन दोनों व्याख्याओं में जहाँ-जहाँ भेद है उसका भी टिप्पणी में निर्देश कर दिया गया है।

(२) प्रत्येक मंत्रान्तर्गत पद की हिन्दी में व्याख्या करदी गई है।

(३) आप मन्त्रों के पदों को छोड़कर केवल हिन्दी की व्याख्या ही एक बार पढ़ जायेंगे तो आपको "कथा" के पढ़ने जैसा आनन्द आयगा तथा मन्त्रार्थ एकदम समझ में आ जायगा।

(४) देवता परिचय पृथक् दिया गया है, जिससे किस देवता की क्या-क्या विशेषताएँ हैं, उसका क्या स्वरूप है, यह सरल रीति से समझ में आ सकता है।

(५) छन्दः परिचय भी स्पष्ट रीति से करा दिया है जिस से किस मन्त्र में कौनसा छन्द है, यह अनायास समझ में आ सके।

(६) मंत्रों में स्वर-संचार का क्या ढंग है इसका निरूपण भी आपको भूमिका में ही दृष्टिगोचर होगा। सारांश यह है कि वेद का विषय इतना कठिन अब नहीं रह गया है जितना छात्र समझते हैं, एक बार इसे ध्यान से पढ़ भर जाइये आपको वेदों के स्वाध्याय का आनन्द आने लगेगा, यह हमें पूर्ण विश्वास है। देवता परिचय कराते समय तथा मन्त्रार्थ करते समय हमने अपने मन्तव्य का प्रकाश, इच्छा होने पर भी,

नहीं किया है, क्योंकि यह परीक्षोत्तीर्णता की दृष्टि से सम्भवतः लाभकारी न होता। अतएव उसे छोड़ दिया है फिर भी यदि कहीं झलक आ गई हो तो विवशता है।

(७) प्रत्येक सूक्त के आरम्भ में बाईं ओर एक संख्या दिखाई देगी जोकि यह बतलाती है कि यह मंत्र संग्रह ऋग्वेद के किस मंडल व सूक्त का है?

—:०:—

वेद और उपवेद

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद नाम के चार वेद हैं, प्रत्येक वेद संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् इन चार रूपों में चर्चित पाया जाता है। ऋग्वेद की एकमात्र शाकल शाखा ही मिलती है, शुक्ल यजुर्वेद की काण्व और माध्यन्दिन यह दो शाखाए उपलब्ध होती हैं। सामवेद की कौथुम और राणायनीय यह दो शाखाएँ दृष्टि-गोचर हो रही हैं। अथर्ववेद की पिप्पलाद और शौनक शाखाएँ प्राप्य हैं। इन शाखाओं में मंत्रसंख्या-भेद, उच्चारण-भेद तथा पाठ-भेद मिलते हैं जो साम्प्रदायिक हैं। ऋग्वेद का उपदेश आयुर्वेद है। यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गन्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थवेद है। चारों वेदों में चौबीस हजार मन्त्र और सात लाख अड़सठ हजार शब्द हैं। ऋग्वेद सब वेदों में बड़ा है। उसमें १० मण्डल हैं। सब मण्डलों में १०२८ सूक्त और १०५८९ ऋचायें हैं। इन ऋचाओं में १५३८२६ पद हैं जिनमें ४३२००० अक्षर हैं। सामवेद में १५४३ साममन्त्र हैं। यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं जिनमें १९७५ कण्डिकाएँ हैं। अथर्ववेद में २० काण्ड हैं जिनमें ७६० सूक्त और लगभग ६००० मन्त्र हैं।

—:०:—

ऋग्वेद का प्रतिपाद्य विषय

ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं। यदि ११ बाल खिल्य और ३२ खिल सूक्त मिला दिये जायें तो सूक्त संख्या १०७२ बैठती है। ऋग्वेद का एक सूक्त ऐसा भी है जिसमें केवल एक ही ऋचा है और वह प्रथम मण्डल का ९९वां सूक्त है। कम से कम ३ या ७ मंत्र प्रत्येक सूक्त में होते ही हैं। कुछ ऐसे भी सूक्त हैं जिनमें मन्त्र संख्या अत्यधिक है, जैसे— अस्यवामीय सूक्त में ५२ मन्त्र हैं, देखिये (१-६४) अस्यप्रेषा सूक्त की (ऋग् ९-९७) मन्त्र संख्या ५८ है। विवाह सूक्त १०/८५ में ४७ मन्त्र हैं। दूसरे मंडल से लेकर ८वें मंडल तक के मंडल 'कुल मंडल' के नाम से प्रसिद्ध है। इन में प्रत्येक मंडल के क्रम से गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, वसिष्ठ और आंगिरस ऋषि हैं और इनके कुल के किसी भी व्यक्ति के द्वारा सूक्त एकत्रित करने का यत्न सा प्रतीत होता है, अतएव इन्हें Family सूक्त कहते हैं, ९वें मण्डल में सोम विषयक सूक्त ही मिलते हैं, इसके ४ सूक्त पवमान नाम से प्रसिद्ध हैं। १०वें मण्डल में सब ही बचे बचाए सूक्त डाल दिये गये हैं। संहिता, पद, क्रम, घन, जटा, नाम के जो वेदों के पठन-पाठन के आठ प्रकार हैं, इनमें पद-पाठ के बनाने वाले शाकल्य ऋषि हैं तथा क्रम पाठ के बाभ्रव्य हैं। इन सूक्तों में बहुत से सम्वाद हैं जैसे पूरुरवा-उर्वशी सम्वाद (ऋ० १०९६) यम-यमी सम्वाद (मंत्र सूक्त ३३)। ये सम्वाद बड़े प्रख्यात हैं। ये संवाद आदि के चार मण्डलों तथा १०वें मण्डल में विशेष रूप से मिलते हैं। इन कथाओं का संग्रह शास्यायन ब्राह्मण तथा बृहद् देवता में अधिकतया पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ मंत्र गर्भरक्षण (५७/७८,१०-१६२) श्लीपद निवृत्ति (१०/१६१) राजयक्ष्माऽपसारण (१०-१६३) अक्ष सूक्त (१०-३४) आदि विषयक भी पाये जाते हैं। दान सूक्त में दान की स्तुति है। दर्दुर सूक्त ७-१०३) में मेंढकों के रूपक से वर्षा परक मंत्रों का संग्रह (कारीरी–

इष्टि-उपयुक्त–संग्रह) मिलता है । आध्यात्मिक सूक्त व मंत्रों की संख्या कम होने पर भी महत्वपूर्ण है। सृष्टि का मूल तत्व नासदीय सूक्त में वर्णित किया गया है। जीवात्मा, परमात्मा का विचार 'द्वासुपर्णा०' (१–१६४–२०) में किया गया है। जो द्वैतवाद का समर्थन करता है। तथा अद्वैतवाद का प्रतिपादन 'हिरण्य गर्भः० (१०–१२१–१) में किया गया है। इसके अतिरिक्त कूट पदों के समान गूढ़ मंत्र भी ऋग्वेद के (१–१६४) सूक्त में मिलते हैं। कुछ मंत्र ऐसे भी हैं जिनका अर्थ आजतक दुर्ज्ञेय है जैसे "सृण्येव जर्भरी-तुर्फरीतु" (१०–१०६–६) ऋग्वेद की कौशीतकी तथा सांख्यायन शाखा के अनुयायी व उनके ब्राह्मण मथुरा आदि स्थानों पर मिलते हैं। शाकल शाखा तो मिलती ही है। ऐतरेय ब्राह्मण में ८ पञ्चिकाएँ हैं प्रत्येक में (५–५) पाँच-पाँच अध्याय हैं, इसमें सोमयाग (अग्निष्टोम) राजसूय (राज्याभिषेक) का वर्णन है। आचार्य महीदास ऐतरेय इसके निर्माता हैं।

सांख्यायन या (शांखायन) ब्राह्मण में ३० अध्याय हैं, जिनमें आदि के ६ अध्यायों में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमासेष्टि और ऋतु याग का वर्णन है। शेष अध्यायों में सोमयाग का वर्णन है, जो ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित सोमयाग से मिलता जुलता है। ऐतरेय आरण्यक और सांख्यायन आरण्यक नाम के दो आरण्यक हैं जिनमें ऐतरेयोपनिषत् व कोशी (षी) तक्युपनिषत् का विषय भी अन्तर्भूत हो जाता है। एक वाष्कल उपनिषद् ऋग्वेद की उपनिषद् कहलाती है। वाष्कल, शाकल दोनों ही गृह्यसूत्र व श्रौत-सूत्र भी मिलते हैं। शौनक का प्रातिशाख्य ऋग्वेद की पठन-पाठन पद्धति पर प्रकाश डालता है 'पाणिनीयशिक्षा' भी ऋग्वेद की शिक्षा समझी जाती है। ऋग्वेद में एक महत्वपूर्ण दाशराज्ञ युद्ध का वर्णन मिलता है। जिस सुदास नामक राजा के विरुद्ध भद्र, द्रुह्य, तुर्वसु, आदि दस-बारह राजा

लड़ते हैं। इस युद्ध में विश्वामित्र और वशिष्ठ जैसे महर्षि भी भाग लेते हैं। इस युद्ध में अर्ण और चित्ररथ नाम के राजाओं को यमुना में डुबाकर मार डाला गया है। जिसका तात्पर्य यह है कि शरीर रूपी भूमण्डल के १० इन्द्रियां विरोधी राजा हैं। सुदास आत्मा की ही संज्ञा है "क्योंकि सुष्ठु दास्यते उपक्षीयते इन्द्रियैरिति सुदाः आत्मा, अथवा शोभना दासा यस्य स सुदासः, आत्मा", इस से (यह सुदास शब्द सकारान्त व अकारान्त दोनों प्रकार का है) वशिष्ठ और विश्वामित्र ये दोनों बुद्धि और अन्तःकरण हैं अथवा वशिष्ठ और विश्वामित्र आत्मा की ही संज्ञा हैं जो कि तत्तत् गुणों की प्रधानता से मानी गई हैं। क्योंकि वेदों में इतिहास मानना जैमिनि मुनि के सिद्धान्त के विरुद्ध है अतः यही अर्थ-कल्पना उपयुक्त है। गंगा यमुना आदि १० नदियां सूर्य की दस किरणें हैं। इन नदियों का वर्णन "इमं मे गंगे" (१०/७५/५) इत्यादि मंत्र में मिलता है। इसमें गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता, आर्जिकीया, कपिल आदि दस किरणें बताई गई हैं। विषयान्तर होने से यह विषय हम यहीं छोड़ते हैं।

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है। आयुर्वेद नाम का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। ऋग्वेद में कुल ६४ अध्याय, ८ अष्टक, १० मण्डल, २००६ वर्ग, एक हजार सूक्त, ८४ अनुवाक १०४०४ मन्त्र हैं। ऋषि दयानन्द मन्त्रों की संख्या इस से कुछ अधिक मानते हैं।

—:०:—

ऋग्वेद का काल

ऋग्वेद निर्माण काल के निर्धारण के विषय में केवल अनुमान से ही काम लिया जाता है। मैगडानल के अनुसार ईसा से तेरह शताब्दी पूर्व ऋग्वेद बना क्योंकि बौद्ध सम्प्रदाय ईसा से पांच सौ वर्ष पूर्व फैला।

जिसने वेदों का खण्डन किया है तथा वेदों की ब्राह्मण उपनिषद् आदि व्याख्याएँ भी बनने में कुछ समय लेंगी; अतः ईसा से १३०० वर्ष पूर्व ही ऋग्वेद का काल मानना ठीक है। ज्यौतिष-सम्बन्धी चर्चा जो ऋग्वेद में पाई जाती है, उसके अनुसार कुछ विद्वान् (जैसे तिलक आदि) वेदों को ६००० वर्ष पूर्व का मानते हैं। मैगडानल कहता है कि अवेस्ता और ऋग्वेद की भाषा में कोई विशेष अन्तर नहीं। अवेस्ता का निर्माणकाल ईसा से ८०० वर्ष पूर्व माना गया है। इसलिये ऋग्वेद का निर्माण काल १३०० वर्ष ईसा से पूर्व मानना ही उचित है। प्रोफेसर जेकोबी (Prof. Jacebi) इस मत से सहमत नहीं है। वह ब्राह्मण काल और वेदकाल ४५०० वर्ष ईसा से पूर्व का मानता है। Revorent Zimmermann और मेक्समूलर दोनों ही १००० से लेकर १२०० वर्ष ईसा से पूर्व तक का समय ही वेदों के उद्भव का मानते हैं। सभी विचारकों की विचारधारा भिन्न-भिन्न है। Whitney बड़ी मुश्किल से २००० वर्ष पूर्व वेदों का बनना मानते हैं। मैक्समूलर का भी यही कहना है कि ऋग्वेद का निर्माणकाल ईसा से १३ शताब्दी पूर्व है। ऋग्वेद का अन्तः साक्ष्य बतलाता है कि मन्त्रों में आये शब्दों के प्रयोग में परिवर्तन के लिये कम से कम २०० साल लगे होंगें। इस प्रकार अधिक से अधिक १४०० (B. C.) वेदकाल माना जाता है। ऋग्वेद में भाषा सम्बन्धी भेद के कारणों पर भी कतिपय मन्त्रों द्वारा प्रकाश डाला जा सकता है। तदनुसार ९ मण्डलों की भाषा में तो सादृश्य उपलब्ध होता है किन्तु १०वें मण्डल की भाषा अत्यधिक आधुनिकता को लिए हुए है। यह मण्डल बचे-खुचे सूक्तों का संग्रह मात्र है जिनकी भाषा आधुनिकता की छाप को लिए हुए है।

दूसरी बात यह है कि दूसरे से ७वें मण्डल तक के सूक्त-ऋषि, उसके पारिवारिक प्राणी सब-के-सब इन मण्डलों के अन्दर वर्णित हैं और वे ही इन मण्डलों के निर्माता माने गये हैं और जब इनको

उत्पत्तिकालीन सत्यता के आधार पर परखा जाता है तो यह निश्चित है कि नवें मण्डल में होने वाली मन्त्रगत शब्द-परिवृत्ति आधुनिकता के चिह्नों से परिवर्जित नहीं और उसमें भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास छिपा हुआ है। इसी प्रकार Latin भाषा भी पढ़े-लिखों की साहित्य-भाषा रही है और १९०० ई० पूर्व वर्षों तक अपनी सत्ता के चिह्नों को प्रकट करती रही है। Latin भाषा पतन Caesar के बाद हुआ। तदनुसार Latin और संस्कृत की पारस्परिक समताओं के कारण भी २००० वर्ष ईसा से पूर्व वेद का काल नहीं बनता। मैत्रायणीय उपनिषद् में भी आधुनिकता के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

अवेस्ता और वेद की भाषा को मिलाते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने अधिक-से-अधिक ३००० ईसा से पूर्व का काल वेदों को दिया है। यह भी निश्चय किया है कि एक लम्बे समय तक Iranian भाषा अर्थात् अवेस्ता की भाषा और वैदिक भाषा परिवर्तित के बिना ही विद्यामान रही। यह बात ज्योतिष के आधार पर वेदों की प्राचीनता सिद्ध करने वाले तिलक और जेकोबी (Jacobi) ने मानी है। चान्द्रमास और सौरमासों को परस्पर मिलाकर व्यवहार करने की पद्धति वैदिक-काल से चली। क्योंकि उस समय कृत्तिका नक्षत्र मृगशिरा नक्षत्र से मिला था। अंग्रेज़ी में कृत्तिका को Plcides और मृगशिरा को Orion कहते हैं। अतएव तिलक वेदों को ईसा से ६००० वर्ष पुराना बताते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि ध्रुव नक्षत्र (Polar star) के वधू को दर्शन कराने के द्वारा की जाती है। यह पद्धति गृह्य-सूत्रों में वर्णित है। ध्रुव की गति उत्तर दिशा में अर्द्धवृत्त के ऊपर चलती है। जो गति ऋग्वेद काल में थी, वह गति अब नहीं रही। इसके परिवर्तन में कम से कम २८७० वर्ष लगे। तदनुसार वेद की प्राचीनता ईसा से ३००० वर्ष पूर्व हुई।

डा० आर. जी. भाण्डारकर ने एक नया ही विचार उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि ईशावास्य उपनिषद् में असुर्या शब्द आता है, यह शब्द यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का मन्त्र है। यह असुर्या शब्द असीरिया Assyria से बना प्रतीत होता है। आर्य और दस्युओं का युद्ध या देव और दानवों का युद्ध वैदिक काल की प्रसिद्ध गाथा है। तदनुसार उत्तर मैसोपोटामिया से कुछ व्यक्ति भारत में आये और उन्होंने अपने धर्म को बढ़ाया। इस काल में २५०० वर्ष लगे। अतः वैदिक काल ईसा से २५०० वर्ष पूर्व मानना चाहिए। सारांश यह है कि उन्होंने ऋग्वेद का उद्भव काल ईसा से कम से कम ४०० या ५०० वर्ष पूर्व या अधिक से अधिक ६००० वर्ष ईसा से पूर्व निर्धारित किया है।

सृष्टि की रचना की गणना ज्योतिष के ग्रन्थों में मन्वन्तरों की कल्पना द्वारा की गई है उन्होंने इस गणनाक्रम को चिरकाल तक अध्ययन, परीक्षण और विचार के पश्चात स्थिर किया था इस गणना का सूत्रपात वैदिक काल में हो चुका था। अथर्ववेद में ब्रह्म के मन्त्र में यह क्रम पूर्ण विकसित लक्षित होता है—

"शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः॥"

इस गणना के अनुसार ऋग्वेद आदि चारों संहिताओं का आविर्भाव काल आज से १.६६.०८.५३.०५८. वर्ष पूर्व है। हिन्दू धर्म के अनुयायियों ने तथा ऋषि दयानन्द ने वेदों का काल वही माना है जोकि सृष्टि का काल है। तदनुसार वेदों को उत्पन्न हुए उक्त समय बीत चुका है जोकि सृष्टि को बने, हुआ है। हमें भी यही मत रुचिकर है क्योंकि स्मृति कहती है।

"अनादिनिधना दिव्या, वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा" ॥मनुः॥
शतपथ ब्राह्मण एवं कपिल व व्यास महर्षि का भी यही मत है।

—:०:—

वैदिक गाथायें (Vedic Mythology)

वेद में वैसी ही गाथायें भी मिलती हैं जैसी कि पुराणों में। "सं कुमार इव (देवान्) अधमत" (ऋक् २५।२) में देवताओं को दस्युओं के द्वारा वैसे ही तंग किया गया है जैसे एक बालक वृद्ध पितामह को तंग करता है। प्रजापति की कथा वेदों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। वैदिक देवी और देवता, मनुष्य और स्त्रियों के समान वर्णित हैं और उनकी पुरुषरूपता दिखाई पड़ती है। इसमें सन्देह नहीं कि काली या शिव की जैसी पौराणिक गाथायें वेद में नहीं मिलतीं किन्तु पदे-पदे वैदिक देवताओं का भिन्न भिन्न रूप में वर्णन मिलता है। ये देवता एक दूसरे के ऊपर आश्रित हैं जैसे कि इन्द्र वरुण पर और वरुण इन्द्र पर। अग्नि देवता का ६ देवताओं के साथ संयुक्त वर्णन मिलता है। यास्क ऋषि ने निरुक्त के दैवत-काण्ड के पंचम अध्याय में देवताओं को पृथिवी-स्थान (Terrestrial) अन्तरिक्ष स्थान या मध्य स्थान (aerial or inter-madiate) तथा द्युस्थान (Celestial) बतलाया है। साथ ही इन्द्र के अनेक अंगों का वर्णन भी किया है और उसके कर्म मनुष्यों जैसे बतलाये हैं। Bloom Field ने Religion of Veda नाम की पुस्तक के पृष्ठ ९६ पर वैदिक देवताओं के और पौराणिक देवताओं के साम्य की चर्चा की है, जिससे सिद्ध होता है कि यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह किसी वस्तु को अपने जैसे स्वरूप में ही रखकर वर्णन करना चाहता है। तदनुसार प्रजापति की कथा, इन्द्र की कथा, मत्स्य की कथा, अश्विनी कुमारों की कथा, नदी की कथा तथा अन्य कथायें इस दृष्टिकोण से ही रचित प्रतीत होती हैं।

—:o:—

एक देवता एवं बहुदेवतावाद

ऋग्वेद भाषा विज्ञान का ऐतिहासिक विकास और इण्डो-जर्मन पौराणिक गाथाओं दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। लोक-गाथाओं का अन्य

देशों की भाषाओं में कैसा विकृत रूप हुआ है इस के साथ-साथ भारतीय धर्म किस प्रकार रूपान्तरों के साथ देशान्तरों में गया यह भी सूक्ष्मेक्षिका से देखने पर पता चल सकता है। ऋग्वेद के द्वारा इण्डो-आर्यन और इण्डोईटानियन अन्धविश्वासों और धर्मों में कैसे परिवर्तन हुआ यह विदित हो सकता है। ऋग्वेद के देवता वर्णन से ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे वे घटनाएँ आँखों के सामने घटित हुई हों। साहित्यिक एवं पौराणिक गाथा विकास की सामान्य धारा यह है कि उसमें प्राकृतिक वर्णन और फिर उसका मानवीकरण, फिर गुणों का वर्णन किया जाता है। दृष्टान्त के लिये जिन सूक्तों का देवता उषा, सूर्य या पृथ्वी है उनमें केवल देवता का वर्णन ही नहीं मिलता किन्तु प्राकृतिक वर्णन का आधिक्य और प्राकृतिक शक्ति के पीछे कोई दैवी शक्ति काम कर रही है। उनके स्वरूप का ऐसा वर्णन किया जाता है मानो ऋषि उनका व्यक्तिगत मित्र रहा हो। इन्द्र और वरुण का तो ऐसा मिला-जुला वर्णन है कि इन दोनों शब्दों के अर्थों में भी सन्देह होने लगता है। वैदिक देवताओं को स्त्री या पुरुष के रूप में वर्णन किया गया है। इसमें संदेह नहीं कि वैदिक गाथाओं में काली का वह भयंकर रूप नहीं दिखाया गया जो कि पुराणों में मिलता है, किन्तु रुद्र का रूप तो वैसा ही भयंकर है जैसा पुराणों का, बहुदेवतावाद के कारण ही मैक्समूलर को, Henstheism को जन्म लेना पड़ा। इस बहुदेवतावाद में एक ऐसी सामान्य धारा बहती है जो एक देवतावाद की ओर जाती है। ऋत की कल्पना ऐसी ही है। जिससे अनेक देवताओं का जन्म हुआ है, इन्द्र वरुण भी परस्पर एक दूसरे पर आधारित हैं, एक देवता का भक्त अन्य देवताओं को उस देवता का भक्त बना देता है अग्नि देवता का ऋषि उसके वर्णन में इन्द्र वरुण को भी उसका अंगभूत बना देता है, अतः देवताओं का विभागीकरण किसी न किसी दृष्टि से दोष पूर्ण ही रह जाता

है । यास्क मुनि ने देवताओं को तीन भागों में बांटा है, पृथ्वी स्थान, Terrestrial अंतरिक्ष स्थान या मध्यम स्थान Aeirial तथा द्युस्थान Celestial इस विभाग के अनुसार इन्द्र वरुण सब के सब एक ही कोटि के हो जाते हैं । अस्तु, यह भी नहीं कहा जा सकता कि कौन सा देवता प्रागैतिहासिक काल का है और कौनसा उसके बाद का, अतः द्यौः, वरुण, मित्र, सूर्य, सविता, उषा, अश्विनीकुमार और उषा और रात्रि को द्युस्थान का देवता मानना, तथा इन्द्र अपांनपात्, रुद्र मरुत्, वायु, पर्जन्य और आपः को अंतरिक्ष स्थान का देवता मानना, तथा पृथ्वी, अग्नि, सोम और वास्तोष्पति को पृथ्वी स्थान का देवता मानना इस प्रकार यास्क मुनि के विभाग को ही स्वीकार करना सभी दूषणों से रहित और उचित है ।

—:०:—

ऋग्वेद का इतना बृहद् आकार कसे हुआ ?

जब इण्डो-आर्यन लोग भारत में आये तो वे अपने साथ धर्म भी लाए । यह धर्म प्राकृतिक शक्तियों को एक देवता मान लेना ही था । वे अग्नि और सोम के द्वारा यज्ञ-पद्धति के भी प्रवर्तक बने । उन्हें धार्मिक भावनाओं के छन्दोबद्ध बनाने का भी कौशल प्राप्त था । इस निर्णय पर हम वेद और अवेस्ता की भाषा की तुलना से ही पहुँचते हैं । वेद-मन्त्रों का निर्माण परम्परागत पुरोहितों या ऋषियों द्वारा ही हुआ । वे अपने मन्त्रों को अपने शिष्यों या पुत्रों को कण्ठस्थ कराके पढ़ाते थे क्योंकि ७०० ईसवी पूर्व तक लेखन विज्ञान से भारतीय परिचित न थे । (मेरा यह निजी मत नहीं) क्योंकि··· धीरे धीरे इन भिन्न भिन्न पुरोहित तथा ऋषियों द्वारा प्रोक्त मन्त्रों का संग्रह किया गया और वह वर्तमान रूप को धारण कर गया । तदनन्तर संहिता (व्याकरण सन्धियुक्त=वेद संहिता) का निर्माण हुआ ।

ये वे ही सन्धि नियम थे जो उस समय प्रचलित थे। तदनुसार यदि एकार या ओकार के बाद अकार आता था तो उसका पूर्व रूप हो जाता था—ऐसे ऐसे नियम बने। 'पद-पाठ' के बाद संहिता-पाठ बना। तदनन्तर उच्चारण के और भी नियम जटापाठ, घन-पाठ, क्रम-पाठ आदि बनते चले गये। इस प्रकार वेद की सुरक्षा के लिये अनेक सावधानियाँ काम में लाई गईं—जिन के कारण वेद का मूल भाग आज ढाई हजार या छः सहस्र वर्ष से ज्यों का त्यों चला आ रहा है।

—:०:—

ऋग्वेद का विभाजन

ऋग्वेद में कुल १०१७ Hymns या सूक्त हैं, यदि ८म अष्टक के ११ सूक्त और मिला लिये जायें तो १०२८ सूक्त एवं १०,६०० अर्धर्च हैं। सब से बड़े सूक्त में ५८ मन्त्र हैं, सब से छोटे में एक ही मन्त्र है। ऋग्वेद का विभाजन दो तरह का है—अष्टकों में मण्डलों में। प्रथम विभाजन के प्रकार के अनुसार आठ अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टक में ८-८ अध्याय हैं। प्रत्येक अष्टक में अनुवाक होते हैं प्रत्येक अनुवाक् में ५ या ६ वर्ग होते हैं। इस प्रकार अष्टक, अध्याय, अनुवाक, वर्ग-मन्त्र के द्वारा विभाजन पहला प्रकार है। दूसरे विभाजन में मण्डल और सूक्तों में ऋग्वेद विभक्त है। १० मण्डल हैं तथा प्रत्येक मण्डल में ५, ६ से कम सूक्त नहीं, १६, २० तक भी सूक्त हैं, कहीं अधिक भी। यह अन्तिम विभाजन ही पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद के मन्त्रादि निर्देश के लिए अपनाया है क्योंकि यह ऐतिहासिक है।

—:०:—

ऋग्वेद के मण्डलों का क्रम (Arrangement)

१० मण्डलों में से ६ अर्थात् द्वितीय से सप्तम तक के मण्डल एकाकार प्रतीत होते हैं। उन में भारतवर्ष के निवासियों के चरित्र की

छाप है। मन्त्रों के अन्दर पठित-अन्तरे या टेक (refrains) इस बात का अन्तः साक्ष्य दे रहे हैं। Family book या पण्डों की बहियों जैसा उन का वर्णन है। प्रथम, अष्टम एवं दशम मण्डल के सूक्तों की रचना भिन्न-भिन्न ऋषियों की है। बाद में उन का संग्रह कर दिया गया है। यह हम पहिले भी लिख चुके हैं। दशम मण्डल में यह भी विशेषता है कि उस में छन्द-साम्य है तथा एक ही सोम देवता को सम्बोधित करके सब मन्त्रों का चयन या उद्भावन किया गया है। प्रथम काण्ड में अग्नि का, इन्द्र का तथा अन्य प्रधान देवताओं का वर्णन है। द्वितीय मण्डल में सोलह पाद की ऋचाओं से आरम्भ कर छः पाद तक की ऋचाएँ निर्दिष्ट हैं। इस प्रकार द्वितीय मण्डल में ४३, तृतीय में ६२, षष्ठ में ७५ सूक्त हैं, जिनमें एक परिवार के व्यक्तियों की चर्चा है। अष्टम मण्डल कण्व-प्रणीत है। नवम मण्डल प्रथम आठ मण्डलों का पूरक है। सोम की चर्चा इसमें भी है। इस मण्डल में उद्गाता के द्वारा गेय सोम देवता के मन्त्रों का संग्रह है। १०वें मण्डल की रचना से स्वयं प्रतीत होता है कि यह सब के बाद बना है क्योंकि इसकी भाषा शैली अन्य मण्डलों की अपेक्षा आधुनिकतर है। वैदिक कालीन पदों का भी इसमें कम प्रयोग है, नये शब्दों का प्रवेश है। दार्शनिक विचार तथा जादू टोनों के गूढ़ (Recondite) विचार भी इसमें उपलब्ध होते हैं। यही आधुनिकता का ज्वलंत प्रमाण है।

—:o:—

भाषा शैली

ऋग्वेद की भाषा पाणिनि काल से प्राचीन है क्योंकि पाणिनि ने जब भाषा को बन्धनों में बांधा (Stereotyped) उससे पूर्व के प्रयोग किये गये हैं। एक ही शब्द के भिन्न भिन्न प्रयोग मिलते हैं, जैसे—दाधर्ति और दर्धर्ति का। सर्वनामों के प्रयोग भी एकता नहीं रखते। श च त्र प्रयोगों के

१२ भेद इस में मिलते हैं जब कि लौकिक संस्कृत में केवल एक ही प्रकार शेष रह गया है। उच्चारणों में बल प्रदान भी ऋग्वेद से मिलता है जोकि संगीत के आरोहावरोह (Pitch of Voice) के समान है। लौकिक संस्कृत में स्वरों की विशेषता का सर्वथा अभाव है। यही हाल सन्धि-सम्बन्धी नियमों का भी है एकार और ओकार के बाद अकार की ध्वनि ऋग्वेद में बोली जाती है पर लौकिक संस्कृत में नहीं।

—:०:—

ऋग्वेद के छन्द

ऋग्वेद छन्दोबद्ध है। ऋचा का प्रत्येक चरण ८, ११ या १२ यति (Syllable) रखता है। ऋग्वेद में कुल १५ छन्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें ७ सर्वसाधारण हैं। त्रिष्टुप् (४ से ११ तक यति वाला), गायत्री (३ से ८ तक यति वाली), जगती (४ से १२ तक यति वाली) इन तीन छन्दों का प्रयोग सर्वाधिक है। कहीं कहीं उपजाति के प्रकार के दो भिन्न छन्दों का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। आठवें मण्डल में प्रगाथ का प्रयोग अधिक है।

—:०:—

ऋग्वेद का धर्म

देवताओं को पुरुषाकार मान कर उनकी स्तुति करना ही ऋग्वेद का मुख्य विषय है। अतएव इसमें अनेक देवतावाद का प्रतिपादन है। देवता भू-स्थान, द्यु-स्थान तथा अन्तरिक्ष-स्थान पर रहने वाले माने गये हैं। देवताओं को सोम-पान से अमरता प्राप्त होती है। यह सोम अग्नि देवता या सविता के प्रसाद रूप में उपलब्ध होता है देवताओं के शरीर की आकृति कल्पित है तथा उनके प्राकृतिक रूप पर अङ्ग आरोपित है जैसे सूर्य की बाहुओं का वर्णन मिलता है जो कि उसकी किरणें ही

हैं। अग्नि की जिह्वा भी उनकी ज्वालाएँ ही हैं। उनका निवास द्युलोक है जो कि विष्णु का तृतीय पाद है। वहाँ वे सोम-पान कर आनन्द-मग्न रहते हैं। देवताओं का कार्य मनुष्यों की हानिकारक शक्तियों को दूर करना है। प्राणियों पर उनका अधिकार है। वे मनुष्यों को अभ्युदय प्रदान करते हैं। रुद्र ही एक ऐसा देवता है जो चाहे तो मनुष्य की हानि कर सकता है। देवताओं में एक से गुण मिलते हैं तथा सब देवता एक ही महादेव के रूप-रूपान्तर हैं किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि एक देवतावाद ही ऋग्वेद को अभिप्रेत है क्योंकि किसी भी यज्ञ में एक देवता के लिये आहुति या पुरोडाश का प्रदान नहीं मिलता।

स्वर्ग-स्थानीय देवगण

द्यौस्, वरुण, मित्र, सूर्य, अश्विन् तथा उषा और रात्रि नाम की देवियाँ।

अन्तरिक्ष-स्थानीय देवगण

इन्द्र, अपानपात्, रुद्र, मरुद्गण, वायु पर्जन्य एवं आपस्।

भू-स्थानीय देवगण

पृथ्वी, अग्नि और सोम। कुछ नदियाँ भी देवियाँ मानी गई हैं जैसे सिन्धु (Indus), विपाशा (व्यास), शुतुद्रि (सतलुज) आदि जो कि पंजाब की नदियाँ हैं।

—:०:—

बौद्धिक (Abstract) देवता

धाता या ब्रह्मा या प्रजापति को सृष्टिकर्ता माना जाता है जो कि सूर्य, पृथ्वी और चन्द्र का भी उत्पादक है त्वष्टा भी देवता है जिसके घर में बैठकर इन्द्र सोमरस पान करता है। त्वष्टा सरण्यू का पुत्र है जोकि विवस्वान् की स्त्री है। यम और यमी भी सरण्यू की ही सन्तान

हैं। विश्वकर्मा के नाम की भी (१०-८१-८२) दो ऋचाएँ मिलती हैं, इस प्रकार मन्यु (Wrath), श्रद्धा (Faith), अनुमति (Favour), आरमति (Devotion), सूनृता, असुनीति, निर्ऋति, देवताओं की इक्की दुक्की ऋचायें मिलती हैं। अदिति (Liberation or freedom) देवता का ऋग्वेद में अधिक व्याख्यान है। दिति का केवल तीन वार उल्लेख मिलता है। अदिति आदित्यों की माता है। इनके अतिरिक्त वाक्, उषा और सरस्वती का वर्णन पूरे दो सूक्तों में मिलता है। पृथ्वी, रात्रि, अरण्यानी, अग्नायी, इन्द्राणी, वरुणानी इनका भी यत्र तत्र निर्देश पाया जाता है।

युगल देवता

मित्रावरुण, द्यावापृथिवी, इन्द्राग्नी युगल देवता हैं वास्तोष्पति (Lord of dwelling), सीता (Furrow), क्षेत्रस्यपति आदि भी देवताओं में माने गये हैं। असुर, वृत्र, नमुचि आदि दस्यु देवता हैं। मण्डूक आदि पार्थिव देवता हैं। इस प्रकार संक्षेप में यह देव गण परिचय है।

—:०:—

ऋग्वेद में धार्मिक भावना

भारतीय सभ्यता की परिचायिका कुछ ऋचाएँ हैं जैसे मृत्यु (Funeral) की ऋचाएँ। पुरुरवा और उर्वशी का संवाद भी ऋग्वेद में वाकोवाक्य के रूप में मिलता है। (९-११२) (१०-७१)(१०-११७) इन मन्त्रों में उपदेशात्मक (Didactic) भावना मिलती है। (८-२९) में ऐसे मन्त्र हैं जो पहेली या बुझोवल का रूप रखते हैं। ५२ पादों की एक ऋचा (१-१६४) पर मिलती है जिसमें १२ बारह अरों वाले

एक पहिये का वर्णन है जिसका भाव सूर्य द्वारा एक वर्ष के १२ मासों के निर्माण से है।

वस्त्र और खाद्य पदार्थ

ऋण करने का कारण जुआ खेलना था, जिसका प्रचार ऋग्वेद-काल में भी था। वे अधोवस्त्र एवं उपवस्त्र नामक दो वस्त्र धारण करते थे। कञ्चुक परिधान का रिवाज बहुत कम था। खाद्य पदार्थों में मक्खन, घी, गेहूँ. जौ, चना, कन्द, मूल, शाक, फल आदि का विशेष प्रचार था। आभूषणों में कंगन, कड़ा (सोने का Bracelets), पाजेब, बिछुए, कर्णफूल, अंगूठी आदि व्यवहृत होती थीं। माँस केवल पशुयज्ञ में उपयुक्त होता था। सोमपान और मधुपान प्रचलित था। पैष्टा सुरा का भी प्रचार था।

आजीविका के साधन

पशुपालन आजीविका का मुख्य साधन था। भेड़ या गौओं के रेवड़ पालना घोषों का कार्य था। खेत हंसिये से या दरांती से काटे जाते थे। जंगली जानवरों को पालने का भी रिवाज था। कुत्ते शिकार का साधन थे। मैंढों या भैंसों की लड़ाइयाँ होती थीं। डौंगियाँ या बोट या नौकाएँ व्यापार के लिये काम में आती थीं। वस्तु परिवर्तन (Barter) से लेनदेन होता था, रुपया या पैसा व्यवहार का साधन न था। पशुओं का वाणिज्य होता था। वढ़ई, धोबी लुहार, कुम्हार आदि अपने-अपने कार्यों से जीविकोपार्जन करते थे। स्त्रियाँ चटाई बुनती थीं जो घास या पटार की होती थीं। वे कपड़े सीना, रस्सी बंटना, खेत नलाना, कपड़े बुनना, चक्की चलाना, पानी भरना आदि गृहस्थी के कार्य करती थीं। वे वाद्यकर्म, नृत्यकला, संगीतकला, वीणावादन, गानविद्या, आलेख्य तथा ललित कलाओं में भी निष्णात तथा केश प्रसाधन कर्म में भी वे बड़ी निपुण थीं।

ऋग्वेद में साहित्यिक तत्व

मंत्रों की रचना स्वाभाविक एवं सरल है। उनमें समस्त पदों का प्रयोग नहीं है। उनमें प्राचीनता छन्दोबद्धता और भाषा-प्रावीण्य पर्याप्त है। छन्दों को बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ प्रयोग में लाया गया है। यज्ञकर्म के देवता अग्नि और सोम के विषय में जब कुछ कहा जाता है तो वहाँ भाषा और भाव दोनों प्राञ्जल और उज्ज्वल हो उठते हैं। मार्मिक भाव-चित्रों का इस अवसर पर पूर्ण विकास दिखाई पड़ता है। रचना प्रत्येक दृष्टि से उत्कृष्ट हुई है। वृत्रासुर का युद्ध-वर्णन भाषा और भावों का एक सजीव चित्र है। उषा-वर्णन भी किसी खण्डकाव्य से कम आनन्द देने वाला नहीं है। (५-८३) वाली ऋचा अति वृष्टि की हानियों का मनोहर एवं रोमांचकारी वर्णन उपस्थित करती है। वरुण की स्तुति, रामराज्य के सुराज्य का दृश्य प्रस्तुत करती है। द्यूतकारी के कुकृत्य उसकी मृत्यु को चैलेंज देते हैं। द्यूतकारी से बचने का ऐसा मर्म स्पर्शी उपदेश अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। दैत्यों और सरमा का संवाद (१०–१०८) पौराणिक गाथाओं के उद्गम-स्रोत को प्रकाश में लाता है। Mythology का जन्म या नाराशंसी गाथाओं का प्रचार इसका ही अनुकरण मात्र है। यदि हृत्तन्त्री मुखरित करने वाला, दिल में चुभने वाला, गम्भीर और सुन्दर, सत्य और लाभप्रद संगीत सुनना है तो (१०–१८) वाला मन्त्र पढ़िए। सृष्टि रचना जैसा गहन विषय शास्त्रीय भाषा में, दार्शनिक परिभाषा में, एवं विचारों के उन्मुक्त आकाश में किस प्रकार विस्फुरण पाता है यह देखना हो तो (१०–१२९) वीं ऋचा का अवलोकन कीजिये। भावाकाश में बुद्धि किस प्रकार निश्छल, निष्प्रतिबन्ध विचरण कर सकती है, इस तत्व का इसमें अच्छा विस्फोटन हुआ है। इसी से ६–७ सहस्र वर्ष पूर्व की कविता कैसी होती थी इसका इससे बढ़ कर ज्वलन्त उदाहरण और

क्या होगा ? ऋग्वेद के भाष्यों के विषय में अनेक धारणाएँ हैं। कहीं कहीं टीकाएँ जिज्ञासु को उलझन में डाल देती हैं। यास्क ऋषि का 'नासत्यौ' पद का व्याख्यान हमारे जिज्ञासापूर्ण दृष्टिकोण को उद्घाटित करता है। स्वाध्याय करने से विदित होगा कि वेद अपना स्वयं व्याख्यान है।

तथा—"उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे" (वेद)
यह कथन अक्षरशः सत्य है।

—:०:—

यजुर्वेद का उपवेद और शाखाएँ

यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं कृष्ण व शुक्ल। शुक्ल की काण्व और माध्यन्दिनी शाखा हैं। कृष्ण की तैत्तिरीया, कठी, और मैत्रायणी तीन शाखाएँ उपलब्ध होती हैं। वैशम्पायन इसका प्रधान आचार्य है याज्ञवल्क्य आदि उसके शिष्य थे। याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेदाध्ययन किया तथा अपने वेद का नाम 'शुक्ल' तथा गुरु वैशम्पायन के वेद का नाम कृष्ण रखा। कृष्ण यजुर्वेद का प्रचार दक्षिण में है कृष्ण यजुर्वेद के आपस्तम्ब, बोधायन, हिरण्यकेशी (सत्याषाढ़), भारद्वाज, वैखानस, वाधूल, भानव (मैत्रायणी शाखा) और बाराह ये ८ श्रौत-सूत्र मिलते हैं। शुल्व सूत्र जिसमें यज्ञ-कुण्ड-भूमिति का वर्णन है वह भी इन्हीं सूत्रों का एक प्रकरण है। यजुर्वेद के २६वें अध्याय से ३६वें अध्याय तक के १० अध्यायों को 'खिल' (परिशिष्ट) भी कहते हैं। शुक्ल यजुर्वेद का ब्राह्मण "शतपथ ब्राह्मण" है।

—:०:—

याज्ञवल्क्य और गुरु वैशम्पायन में झगड़ा क्यों हुआ ?

यह किंवदन्ती है कि एक बार वैशम्पायन मुनि के हाथ से ब्रह्म-हत्या हो गई। गुरु ने शिष्यों से कहा कि इसका प्रायश्चित करो। सब तैयार

हो गए पर याज्ञवल्क्य ने कहा कि मैं अकेला ही प्रायश्चित करूँगा—अन्य मेरे सतीर्थ्यों को जाने दीजिये। इस गर्वोक्ति को सुन कर गुरु जी रुष्ट हो गये और अपनी शिष्यता से उन्हें पृथक् कर दिया। इतना ही नहीं अपनी पढ़ाई विद्या भी उगलने की आज्ञा दी। उस उद्गीर्ण वेद का ऋषियों ने तित्तिरि रूप से भक्षण कर लिया। इस प्रकार तैत्तिरीय शाखा चली। तदनन्तर सूर्यदेव से महर्षि याज्ञवल्क्य ने वेदाध्ययन किया और उत्तराखण्ड में उसका प्रचार किया। वही शुक्ल यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गुरु वैशम्पायन के लिये जिन शिष्यों ने प्रायश्चित का आचरण किया वे चरक या चरकाध्वर्यु कहलाये—क्योंकि उन्होंने गुरु की आज्ञा का आचरण किया या प्रायश्चित का चरक अनुष्ठान अध्वर (यज्ञ) द्वारा किया। शतपथ में चरक या चरकाध्वर्यु शब्द 'प्रतिपक्षी' 'विरोधी' के अर्थ में इसीलिये कहीं-कहीं प्रयुक्त किया जाता है। यजुर्वेद का श्रौत-सूत्र कात्यायन मुनि ने रचा है तथा इसका एक गृह्य सूत्र है, जो कि पारस्कर गृह्य सूत्र के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गृह्य तथा श्रौत दोनों ही सूत्रों का समावेश है। 'याज्ञवल्क्य शिक्षा' वेदों के उच्चारण पर बड़ा प्रकाश डालती है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा है। इसके अध्येता 'य' को 'ज', 'प' को 'ख', 'व' को 'ब्व' बोलते हैं। स्वरों का निर्देश भी केवल हाथों को हिला कर ही देते हैं, उच्चारण से या गर्दन हिला कर नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है जो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

—:०:—

सामवेद और उसका उपवेद

सामवेद में ऋग्वेद के ही मन्त्र दुहराये गये हैं, केवल ७५ मन्त्र नवीन हैं। कुल ऋचाएँ १८२४ हैं। पुनरुक्ति छोड़ देने पर १५४९ हैं। ऋग्वेद के मन्त्रों के कारण ही सामवेद के दो भाग हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। इसके उच्चारण विशेष को 'स्तोम' कहते हैं। इसकी

गुर्जर प्रान्त में कौथुमी, कर्णाटक में जैमिनीया और महाराष्ट्र में राणायनीया ये तीन शाखाएँ हैं। ताण्ड्य (पंचविंश), षड्विंश, मन्त्र, दैवत, आर्षेय, सामविधान, संहितोपनिषद् और वंश नाम के आठ-आठ ब्राह्मण हैं। पंचविंश, षड्विंश और छान्दोग्योपनिषद्—इन तीनों को महाब्राह्मण के नाम से भी पुकारते हैं—शेष अनुब्राह्मण हैं। षड्विंश के अन्तिम प्रकरण को "अद्भुत् ब्राह्मण" भी कहते हैं। इस वेद के खादिर, लाट्यायन और द्राह्यायण नाम के तीन श्रौत-सूत्र हैं। खादिर, गोभिल और गौतम नाम के तीन गृह्यसूत्र हैं। "नारदीय-शिक्षा" में इस वेद के उच्चारण करने का प्रकार बतलाया है। "पुष्प-सूत्र" इसका प्रातिशाख्य है। गन्धर्ववेद इसका उपवेद है—पर इस नाम का कोई खास ग्रन्थ उपलब्ध नहीं।

—: ० :—

अथर्ववेद और उसका उपवेद

ऋषि अथर्वाङ्गिरस के नाम पर इस वेद का नाम पड़ा। ब्रह्मा का यही वेद है। इसकी पिप्पलाद और शौनक नाम की दो शाखाएँ मिलती हैं। इस वेद में लौकिक अभीष्ट प्राप्ति के उपाय प्रदर्शित किये गये हैं। "कौशिक सूत्रों" में इन मन्त्रों के अनुष्ठान की पद्धति सविस्तार वर्णित है। इसमें २० काण्ड, ७५६ सूक्त, ५६७७ या ६००० मन्त्र हैं। मुण्डक, प्रश्न और माण्डूक्य इसकी ही उपनिषदें हैं। 'वैतान' नामक इसका श्रौत सूत्र है। 'कौशिक' नाम का गृह्य-सूत्र है जो अमेरिका में छपा है। इसकी शिक्षा 'अथर्व-शिक्षा' नाम की है। नक्षत्र-कल्प, रात्रि-कल्प और आङ्गिरस कल्प—ये तीन इस वेद के कल्प सूत्र हैं। गोपथ ब्राह्मण (१–१०) के अनुसार सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहास-वेद आदि ५ उपवेद हैं। 'स्थापत्यवेद' भी इसका ही उपवेद माना जाता है। संक्षेप में इसका उपवेद 'अर्थवेद' कहा जाता है।

—: ० :—

शाखासंहिताएँ:—

१. इन चार वेदों की शाखा संहितायें भी उपलब्ध होती हैं किसी समय इनकी संख्या ११२७ रही बताते हैं ४। आजकल इन में से कुछ ही मिलती हैं उपलब्ध ऋग्वेद संहिता शाकल शाखा की बताई जाती है। इस के आश्वलायन गृह्य-सूत्र आदि कुछ ग्रन्थों में ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के पाठभेद मिले हैं, जिनकी परीक्षा से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि उपलब्ध ऋक्संहिता प्राचीन है और पाठभेद अर्वाचीन। इन अर्वाचीन पाठ भेदों में मूल पाठों को सरल करने की प्रवृति भी लक्षित होती है ५।

२. यजुर्वेद के दो सम्प्रदाय मिलते हैं—शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेद की दो शाखायें मिलती हैं— माध्यन्दिन संहिता और काण्व संहिता। इन दोनों संहिताओं में पर्याप्त साम्य है। वैषम्य के स्थलों पर लगभग सर्वत्र ही काण्व संहिता माध्यन्दिन संहिता से अर्वाचीन और उस का सरल संस्करण मालूम पड़ती है ६। इसी संहिता में सर्वप्रथम मन्त्रों के विनियोगों का विधान पाया जाता है, माध्यन्दिन में नहीं ७। इन दोनों संहिताओं में केवल मंत्र ही मंत्र हैं। काण्व-संहिता के अभी निर्दिष्ट विनियोग वर्णन के अतिरिक्त इन में ब्राह्मणभाग नहीं है। कृष्णयजुर्वेद की संहिताओं में ब्राह्मणभाग भी पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है ब्राह्मण वेदमन्त्रों का अनेक दृष्टियों से संक्षिप्त व्याख्यान देते हैं। इन में मन्त्रविषयक क्रियाकाण्ड का विस्तृत वर्णन और विवेचन पाया जाता है। अतः इस सम्प्रदाय की तीनों उपलब्ध संहिताओं—तैत्तिरीय, मैत्रायणी और काठक को माध्यन्दिन शुकल यजुर्वेद संहिता के अर्वाचीन, सरलीकृत और विस्तृत व्याख्यानों से युक्त संस्करण कहा जा सकता है।

३. सामवेद की दो शाखाएँ हैं—कौथुम और जैमिनीय।

अथर्ववेद की भी दो हैं—शौनक और पैप्पलाद। इनकी पारस्परिक तुलना से यह स्पष्ट मालूम होता है कि कौथुम और शौनक शाखाएँ प्राचीनतम हैं, शेष अर्वाचीन और सरलीकृत संस्करण।

४. मध्यकालीन परम्परा के विद्वान् शाखा संहिताओं को भी मूल वेद ही मानते हैं। वे भी उनकी दृष्टि में अपौरुषेय हैं। आधुनिक विद्वान शाखा—संहिताओं को एक ही अपनी-अपनी मूल वेद संहिता को भौगोलिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न कुछ पाठभेदों वाले संस्करण मानते हैं। परन्तु ये मत ठीक नहीं। जैसा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है, शाखासंहिताओं को पूर्व संदर्भों में लिखे वर्णन के अनुसार मूल संहिता का व्याख्यान या सरलीकृत संस्करण मानना उचित होगा।

ऋषि दयानन्द के सहपाठी श्री उदय प्रकाशदेव जी ने जो सत्यार्थ-प्रकाशिनी स्वर संचारिणी नाम की माध्यन्दिन संहिता की टीका बनाई है उसमें परम हंस विरजानन्द सरस्वती जी को बड़ी श्रद्धा के साथ निम्नलिखित शब्दों में प्रणाम किया है। यहीं पर स्वामी जी के भाष्य को दोषाकर भाष्य कहा है।

प्रणम्य श्रीमन्तं गुरु विरज आनन्द विवुधम्,
परिव्राजं भ्राजं मधुपुर निवासी सुकृतिनाम्।
प्रमोदाय व्याख्यामहमुदयनामानुविदधे,
यजुर्मन्त्राक्षर्या वुधजन विलोक्यां सुगमकाम्॥

यहीं पर कृष्णयजुर्वेद के १४ भेद होते हैं तथा शुक्ल यजुर्वेद के ८० भेद होते हैं जिनमें वाजसनेयों के १५ भेद होते हैं यह लिखा है। और उन १५ भेदों के नाम निम्नलिखित गिनाए हैं। १ काण्व २ माध्यन्दिन ३ शावीय ४ स्थापनीय ५ कायाल ६ पौण्ड्रवत्स ७ आवटिक ८ परमावटिक ९ पाराशर्य १० वैधेय ११ वैनेय

१२ गोधेय १३ गालव १४ वैजप १५ कात्यायनीय।

इन नामों को हमने अन्यत्र नहीं देखा।

स्वर कहाँ लगाए गए हैं ?

वेदों में संहिता-पाठ और पद-पाठ दोनों पाठ मिलते हैं। स्वर को केवल निम्नलिखित सात संहिता ग्रन्थों में लगाया गया है :—

१–ऋग्वेद, २–माध्यन्दिन यजुर्वेद, ३–काण्व यजुर्वेद, ४–तैत्तिरीय यजुर्वेद, ५-कौथुम सामवेद, ६–मैत्रायणीय यजुर्वेद तथा ७–शौनकीय अथर्ववेद।

ब्राह्मणों और आरण्यकों में केवल काण्व, माध्यन्दिन, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तरीय आरण्यक में स्वर लगे मिलते हैं अन्यत्र कहीं नहीं।

—: ० :—

संहिता-पाठ और पद-पाठ में पहले कौन बना

संहिता पाठ में एक पद का प्रभाव निकटवर्ती पदान्तर पर पड़ता है पर पद पाठ में नहीं पड़ता क्योंकि तब प्रत्येक पद स्वतन्त्र होता है। हम कह चुके हैं कि शाकल्य ने पद पाठ चलाया है, संहिता पाठ ऋषि प्रणीत है। स्वर के अनुसार अर्थ भी बदल जाता है—जैसे 'अपस्' शब्द में यदि प्रथम अकार उदात्त और पकाराकार स्वरित है तो आपस् का अर्थ काम या कार्य होता है, तथा यदि आपस् के पकार का अकार उदात्त है तो काम करने वाला अर्थ होता। इस प्रकार स्वरभेद से अर्थभेद हो जाया करता है ऐतरेय ब्राह्मण के २६वें ब्राह्मण के द्वितीय प्रपाठक में लिखा है कि मंत्र चार भागो में विभक्त हैं—ऋचा (ऋक्), अर्धर्च, पद (यहाँ पद शब्द पादवाची है) और अक्षर। 'अर्धर्च' शब्द रूढ़ि है। ऋग्वेद के प्रत्येक सूक्त में जो ऋचाएँ होती हैं उन ऋचाओं

में लौकिक अनुष्टुप् छन्द के समान यह नियम नहीं कि केवल चार ही चरण हों तथा प्रत्येक चरण में ८-८ ही अक्षर हों। वेद में मात्रिक छन्दों का विशेष प्रयोग किया गया है तदनुसार मात्राओं वाले नियम हैं। प्रत्येक ऋचा में कम से कम तीन पाद और अधिक से अधिक छः पाद होते हैं। पर प्रत्येक ऋचा में अर्धर्च दो ही होते हैं इसलिये 'अर्धर्च' एक पाद या एक से अधिक पादों का भी होता है जैसे 'स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये' (ऋक् १/१/६) इस मन्त्र का पहिला 'अर्धर्च' दो पादों का है अर्थात् 'भव' पर समाप्त होता है जबकि पहिला पाद 'सूनवे' तक समाप्त हुआ है। इसलिये 'सूनवे' का स्वर 'अग्ने' के कारण बदल गया है। वेङ्कट माधव ने ऋग्वेद की टीका में लिखा है कि :—

शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः।
यथा शक्त्यनुधावन्ति न सर्वं कथयन्त्यमी॥

ऋक् टीका (८-१-७)

अर्थात् शाकल्य ऋषि, पाणिनि ऋषि और यास्क ऋषि तीनों ने ही ऋग्वेद का अर्थ (पद पाठ) करने का प्रयत्न किया है पर पूरी पूरी कोई भी व्याख्या न कर सका। संहिता और पद दोनों में संहिता मुख्य है क्योंकि दुर्गाचार्य ने निरुक्त की टीका करते हुए लिखा है कि :—

"संहितायाः प्रकृतित्वं ज्यायः। मन्त्रो हि अभिव्यज्यमानः पूर्वं ऋषेर्मन्त्रदृशः संहितयैवाभिव्यज्यते न पदैः। अतः संहितामेव पूर्वमध्यापयन्त्यनूचानाः ब्राह्मणा अधीयते चाध्येतारः। अपिच याज्ञे कर्मणि संहितयैव विनियुज्यन्ते मन्त्राः न पदैः"।

अर्थात् पदपाठ और संहितापाठ में संहितापाठ श्रेष्ठ है क्योंकि ऋषियों के लिये मन्त्र का प्रकाश संहिता रूप में ही हुआ है अतएव वेद की पठन पाठन प्रणाली में संहिता का ही पठन पाठन होता है। यज्ञ

कर्म में भी संहिता का ही विनियोग होता है पदों का नहीं। हमें इस के विपरीत दूसरा पक्ष यह भी मिलता है कि संहिता का निर्माण पदों से होता है। अतः पदों की सत्ता संहिता से पूर्व होनी चाहिये क्योंकि संहिता पद-संदर्भ स्वरूप ही है, किन्तु संहिता को प्राचीन मानने वालों का सिद्धान्त यह है कि पदपाठ संहिता का विश्लेषण मात्र है। अतः संहिता की ही प्राचीनता मानी जानी चाहिये। प्रो० टकर (Tucker) ने लिखा है कि पद या वाक्य केवल रूप में या Staccato के रूप में उच्चरित नहीं होते किन्तु वे जैसे लिखते समय अक्षर अक्षर से जुड़ता है वैसे ही एक पद-ध्वनि दूसरी पद-ध्वनि से जुड़ती है परिणाम यह होता है कि दो पदों में सन्धि विकसित हो उठती है (१)। इस कथन से भी यही सिद्ध होता है कि संहिता-पाठ पद-पाठ की अपेक्षा प्राचीन है। यही कारण है कि प्रतिशाख्य के निर्माता आचार्य पाणिनि के मत में पद-पाठ को अनार्ष कहा जाता है देखिये :—

१—प्राक् चानार्षादितिकरणात् पदान्तास्तद्युक्तानाम्।
(ऋक् प्राति० १/५८)

२—परिग्रहे तु अनार्षान्तात् (ऋक्० ३/ २३)

३—सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे (अष्टाध्यायी १/१-१६) इत्यादि।

आचार्य पाणिनि पदपाठ के पक्षपाती नहीं थे। पतञ्जलि ने लिखा भी है कि "न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैस्तु लक्षणमनुवर्त्य-मिति।" अयमाशयः। संहितैव नित्या, पदविच्छेदस्तु पौरुषेयः। अत एवार्थनिश्चयाभावान्नावगृह्णन्ति, यथा हरिद्रव (ऋ० सं० १२/६४) इति। अत्र किं हरि शब्द इकारान्त उत हरिच्छब्दस्तकारान्त इति सन्देहः किञ्च वने न वायः(ऋ० सं० १०/ २६/ १) इति मन्त्रे "वेति च य इति च चकार शाकल्यः" इत्युपन्यस्य "उदात्तं ह्येवमाख्यातम भविष्यत्" इति अधायि शब्दे अट्स्वरप्रसंगेन दूषयित्वा 'वेरपत्यं वाय'

इत्यैकपद्येन सिद्धान्तं कुर्वन् यास्कः (नि० ६/२८) पदविभागस्य पौरुषेयत्वं स्पष्टमेवाचष्टे । अपि च सति पदत्वेऽवग्रहः असति तु न इति मतद्वयमपि प्रायोवादमात्रम् सम्प्रदायानुरोधादुभयस्यापि बहुधा परित्यागो दृश्यत एव, गोभिर्मदाय (ऋ० सं० ३/४३/१) गोभ्योगातुम (ऋ०सं० ८-४५-३०) इत्यादाववग्रहाभावात् ईयिवाँसमतिस्रिधः (ऋ० सं० ३/९/४) देवयन्तो यथा मतिम् (ऋ० सं० १/३/६) इत्यादाववग्रहाच्चेति दिक् । शब्द कौतुभ ३/७/१०९) ।

तथा पदों में जो सन्धिकृत पदान्तर संयोग कृत परिवर्तन होता है वह पदपाठ में नहीं रहता । शाकल्याचार्य "स" की जगह "सः" लिखते हैं जैसा कि अवेस्ता और ग्रीक भाषा में भी माना गया है । प्रो० Rapson का भी यही मत है । अतः संहिता पाठ की प्राचीनता सिद्ध है ।

सन्धि (Euphonic combination)

प्रश्लिष्ट सन्धि को (Contracted), क्षैप्रसन्धि को (Hastned) अभिनिहित सन्धि को (Absorbed) कहते हैं—

लिखा भी है:—

अथाभिनिहितः सन्धिरेतैः प्राकृतवैकृतैः ।
एकीभवति पादादिरकारस्तेऽत्र सन्धिजाः ।।

जैसे—'रथेभ्योऽग्ने' इत्यादि ।

नोट—स्वरादि के विशेष बोध के लिए मैकडानलकृत 'वैदिक ग्रामर फोर स्टूडेण्ट्स' का ३य प्रकरण पढ़ना चाहिए । इसका हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है ।

—:०:—

"पदपाठ की विशेषता"

षत्वणत्वे गत्वदत्वे ह्रस्वतां दीर्घतां तथा ।
विसृज्य संहिताधर्मान् पदानियत्नतः पठेत् ।।

अर्थात् पद पाठ में संहिता के धर्म हटा दिये जाते हैं। भिस्, भ्याम् भ्यस् और सुप् यदि शब्दों से अलग किये जाते हैं तो इनसे पूर्व पूर्वरूप अकार का चिह्न दे दिया जाता है किन्तु देवेभिः, स्वधाभिः, अद्भिम्याम्, अग्निषु, नदीषु, गीर्षु, पूर्षु इत्यादि में पूर्वरूप का चिह्न नहीं दिया जाता है। इसी शब्द का योग वहाँ किया जाता है जहाँ शब्दगत कोई विशेषता प्रदर्शित करनी होती है। र जातविसर्ग प्रगृह्य संज्ञक वर्णों के इति शब्द अवश्य लगाया जाता है।

अर्थात् संहिता प्रधान है, पद गौण, क्योंकि ऋषियों को मन्त्र संहिता के रूप में प्रतिभासित हुआ है पदात्मक रूप में नहीं। यही कारण है कि संहिता का अध्ययन-अध्यापन होता है पद का नहीं। यज्ञों में भी संहिता से काम लिया जाता है पदों से नहीं। यह सब होने पर भी संहिता बिना पदों के नहीं बनती। इसलिये पदों का भी बड़ा महत्व है पाश्चात्य विद्वान् टकर (Tucker) ने लिखा है कि—"The sounds of speech are not pronounced singly and staccato. They link themselves together very much as writing links togethere the letter in a word. Just as the adopts the easiest or the most fluent method of running on letter into letter so the organs of articulation follow the following course of least effort in running on sound." अर्थात् संहिता पदों के शीघ्र उच्चारण का फल है। यह संहिता पद-संयोग-जन्य है अतः वाक्य संहिता-पदों के बिना और पद-संहिता अक्षरों बिना नहीं हो सकती, अतः पदों के संहिता के कारण न होने से उनकी गुरुभूतता कम महत्व नहीं रखती। हाँ यह दूसरी बात है कि संहिता व्यवहारोपयुक्त होने से लोक में मुख्य मानी जाती है। अतएव संहिता को आर्ष और पदों को अनार्ष कहते हैं जैसे, "सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे" (अष्टाध्यायी १-१-१६) में पाणिनि ने पद को परिभावित किया है जैसे :—

सुप्तिङन्तंपदम् (१-४-१४)
स्वादिष्वसर्वनामस्थाने (१-४-१७)
नः क्ये (१-४-१५) इत्यादि।

महाभाष्यकार पतञ्जलि भी "न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्त्यम्" यह कहते हुए यह बात स्पष्ट स्वीकार कर रहे हैं कि पद-पाठ मनुष्य कृत है तथा संहिता मन्त्रद्रष्टकृत या अनादि है अतएव भट्टोजि दीक्षित ने शब्दकौस्तुभ में उक्त वाक्य की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "संहितैव नित्या पदविच्छेदस्तु पौरुषेयः"। (३-१-१०९)।

—:०:—

पद-पाठ में "इति" का प्रयोग

आचार्य शाकल्य ने पद-पाठ करते हुये किसी शब्द की सन्धिगत या अन्य सामासिकादि विशेषता दिखाने के लिये "इति" का कहीं-कहीं प्रयोग किया है। जैसे मण्डूक सूक्त के सप्तम मन्त्र के पद-पाठ में "अहरिति" "द्यावा पृथिवी सूक्त" के चतुर्थ मन्त्र के पद-पाठ में "रोदसी इति"। इन स्थानों पर इति शब्द क्रमशः सन्धिगत तथा विभक्तिगत विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए लगा दिया गया है, पर यह कोई राजाज्ञा नहीं कि "इति" लगाना ही पड़ेगा अन्यथा जुर्माना किया जायगा। इसी प्रकार समस्त पद को दिखाने के लिये दो पदों के मध्य में (S) इँगलिश के 's' जैसा या पूर्वरूप का चिन्ह लगा देते हैं। इसका भी लगाना अनिवार्य नहीं। अतएव यहाँ पद-पाठ में इन दोनों नियमों का घोर परिपालन नहीं किया गया है।

—:०:—

पद-पाठ का स्वरूप

(१) पद-पाठ को वेद मन्त्रों का व्याख्यान कहा जा सकता है। इसके रचयिता शाकल्य की एक दृष्टि है जिस के अनुसार वे परिच्छेद करते हैं, इति और अवग्रह लगाते हैं। पदकार के अर्थों को जानना सम्भव नहीं है। वे अनुमान का विषय ही कहे जा सकते हैं। अतः पिछले भाष्यकारों ने अनेक बार शाकल्य के पदच्छेद को स्वीकार न करके अपना पदच्छेद दिया है। अनेक बार "इति" और 'अवग्रह' के प्रयोग में नियमों की उपेक्षा की जाती है। ऐसे कतिपय स्थलों पर एक से अधिक पदच्छेद सम्भव हैं यथा चन्द्रमाः। शाकल्य के अतिरिक्त रावण और दयानन्द स्वामी के भी पद-पाठ मिलते हैं।

—:०:—

पद-पाठ व अवग्रह

(१) संहिता पदों से बनती है। संहिता-पाठ में एक अर्धर्च में सब पद एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। उनका एक दूसरे पर प्रभाव रहता है। किन्तु पद-पाठ में प्रत्येक पद पृथक पृथक रखे जाने के कारण यह प्रभाव हट जाता है। प्रगृह्यों के आगे इति लगा दी जाती है और समासों, प्रकृति, प्रत्यय और उपसर्गों और क्रियाओं आदि कतिपय स्थलों पर अवग्रह (ऽ) लगा दिया जाता है। द्विवचन के ई, ऊ और ए के पश्चात् 'इति' लगाई जाती है। जैसे क्रन्दसी इति'। ऊरू इति। उच्येते इति। उ निपात के आगे इति लगाई जाती है। उ को सानुनासिक और दीर्घ भी कर लिया जाता है। ओदन्त निपातों के आगे इति का प्रयोग किया जाता है। जिन पदों के अन्त में सप्तमी अर्थ में प्रयुक्त ई और ऊ आए हों उनके आगे भी इति लगाई जाती है। यथा सरसी

इति। एकारान्त अस्मे, युष्मे आदि के आगे 'इति' लगाई जाती है— 'अस्मे इति'। ओकारान्त सम्बोधनों के आगे 'इति' लगाई जाती है जैसें— 'इन्दो इति'। यदि संहिता में पद के अन्त के विसर्गों को सन्धि-नियम के कारण र् न हो सका हो तो पद-पाठ में विसर्गों के आगे 'इति' लगा-कर विसर्गों का र् कर दिया जाता है जैसे—'अन्तरिति'।

द्वन्द्व समास को छोड़ कर अन्य समस्त पदों के बीच में अवग्रह लगा दिया जाता है—"भूरिऽशृङ्गाः इव" और उसके पूर्व आने वाले पदों के बीच अवग्रह लगाया जाता है। उपसर्गों के बाद आने वाले संज्ञा या कृदन्त पदों के पूर्व अवग्रह लगाया जाता है। जैसे अपऽधा। सुऽशिप्रः। किन्तु प्रधान वाक्य में उपसर्गों को क्रियाओं से पृथक् रक्खा जाता है। गौण वाक्य में यदि एक से अधिक उपसर्ग आ जावें तो प्रथम या अन्तिम उपसर्ग के बाद ही अवग्रह लगता है।

यदि प्रकृति में कोई विकार न हुआ हो तो सुम्, भ्याम्, भिस्, भ्यस्, क्वसु, त्व, तरप्, तमप्, मत् और वत् आदि प्रत्ययों के पूर्व अवग्रह लगाया जाता है-त्रिऽभिः। पत्ऽभ्याम्।

जहाँ उपसर्ग और प्रत्यय दोनों में अवग्रह प्राप्त है वहाँ सामान्यतः प्रत्यय को ही अवगृहीत किया जाता है। यथा—आतस्थिऽवांसो। एक पद में एक से अधिक बार अवग्रह नहीं लगाया जाता।

संहिता पाठ से पदपाठ करते समय पहिले सन्धि तोड़ कर 'इति' तथा अवग्रह लगा लेने चाहिएँ। इसके पश्चात् संहिता पाठ में जो उदात्त होता है वह पद-पाठ में भी सामान्यतः उदात्त ही रहता है तथा उसके आगे वाला वर्ण स्वरित व उदात्त अक्षर से पूर्व का वर्ण अनुदात्त हो जाता है। यदि अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित अक्षर हो तो वह

अनुदात्त ही बना रहता है। पद के बाद आया सम्बोधन पूरा अनुदात्त हो जाता है यदि वह पाद के आदि में न हो तो।

यदि पहिले पद में उदात्त के कारण अगले पद का पूर्वाक्षर स्वरित हो गया हो तो पद-पाठ में अनुदात्त कर दिया जाता है। पहिले पद के स्वरित वर्ण के कारण यदि अगले अनुदात्त पर चिन्ह न लगाया गया हो तो उसे चिह्नित कर दिया जाता है। पहिले पद में उदात्त के पश्चात् आने वाला अनुदात्त यदि अगले पद के उदात्त के कारण स्वरित न हो कर अनुदात्त ही हो तो पद-पाठ में वह स्वरित हो जाता है।

दो उदात्त, अनुदात्त और स्वरितों की सन्धि में स्वर का परिवर्तन इस प्रकार होता है:—

उदात्त+उदात्त =उदात्त। जैसे:—स इति=सेति
अनुदात्त+उदात्त =उदात्त। जैसे:—परि+अभूषत्=पर्यभूषत्
स्वरित+उदात्त =उदात्त। जैसे:—पदानि+अक्षीयमाणा=पदान्यक्षीयमाणा।
उदात्त+अनुदात =स्वरित। जैसे:—वि+अक्रामन्=व्यक्रामन्
उदात्त अ या आ+अनुदात्त स्वर=उदात्त। जैसे:—
भेदा+उरु गायः =भेदोरुगायः
अनुदात्त+अनुदात्त =अनुदात्त जैसे:—
वास्तूनि+उश्मसि =वास्तून्युश्मसि
स्वरित+अनुदात्त =स्वरित जैसे:—
अस्तीति+एनम् =अस्तीथ्येनम्

नोट—जहां उपसर्ग को अनुदात्त होगा वहां क्रिया के साथ उस का समास होगा। उदात्त उपसर्ग का समास नहीं होता।

पद-पाठ या अवग्रह कहां नहीं किया जाता ?

अवग्रह न करने के विषय में यह कारिका प्रसिद्ध है कि—

आदिमध्यान्तलुप्तानि,
समासान्यन्यायभाञ्जि च ।
नावगृह्णन्ति कवयः,
पदान्यागमवन्ति च ॥

अर्थात् जिन शब्दों का आद्यक्षर, मध्याक्षर या अन्तिमाक्षर लोप (Elision) को प्राप्त हो जाता है, या वे समस्त पद जो व्याकरणादि के नियमों के विरुद्ध समस्त बनाए गये हैं या वे पद जिनमें कोई आगम (Infix) लगा दिया गया है, अवग्रह या पद-पाठ के लिये निषिद्ध हैं ।

—:०:—

क्रिया आदि का अन्तिम स्वर कब दीर्घ होता है ?

छन्दः पूर्ति के लिए या प्रातिशाख्य के नियमानुसार क्रिया का अन्तिम अक्षर दीर्घ कर दिया जाता है—जैसे :—

सचस्वा (सचस्व) नः स्वस्तये । (१-१-६) ऋक् ।

निरंहसः पिपृता (पिपृत) निरवद्यात् । (१-११५-६) ऋक् ।

उग्रस्यचिन्मन्यवे ना (न) नमन्ते । (१०-१४-८)

यत्रा (यत्र) नः पूर्वे पितरः परेयुः । (१४-१४-२७) इत्यादि ।

इन स्थलों पर "द्व्यचोऽतस्तिङः (६-३-१३५)", निपातस्य च (६-२-१३६), "ऋचि तुनुघमक्षुतङ्‌ कुत्रोरुष्याणाम् (६-३-१३३)", "अन्येषामपि दृश्यते (६-३-१३७)" इत्यादि दीर्घविधायक पाणिनीय नियमों से दीर्घ हो जाता है। प्रायः ऐसा नियम नहीं जो पाणिनि की वैदिक प्रक्रिया या स्वर प्रक्रिया एवं प्रातिशाख्य के अन्दर न आ गया हो, अतः प्रत्येक पद सुव्यवस्थित प्रतीत होता है ।

सामवेद के स्वर

सामवेद के प्रातिशाख्य में संहिता को 'निर्भुज' और पद-पाठ को 'प्रतृण' कहते हैं। क्योंकि ऐतरेय आरण्यक में "यद्धि सधि विवर्तयति तन्निर्भुजस्य स्वरूपम्। अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृणस्य (३-१-३)", यह लेख आता है जो कि उक्त परिभाषा की पुष्टि कर रहा है। उदात्त अक्षर के ऊपर एक (१) का अङ्क देते हैं। जहां अनेक उदात्त हों वहाँ पहले उदात्त पर एक (१) का चिह्न लगाया जाता है अन्यों पर नहीं। यदि उदात्त के बाद स्वरित अक्षर आता है तो उदात्त के चिह्न (१) के बाद रेफ भी (१ र) इस तरह लगा देते हैं। यदि उदात्त के बाद फिर उदात्त आवे तो पहिले उदात्त के ऊपर दो। (२) का चिह्न लगा दिया जाता है। यही नियम, पद के अन्त में यदि उदात्त आवे तो वहाँ भी लागू किया जाता है। यदि उदात्त के बाद अनुदात्त अक्षर होता है तो उदात्त के चिह्न के साथ (२ उ) इस प्रकार उकार का प्रयोग भी किया जाता है। स्वरित को भी (२ र) इस चिह्न से निर्दिष्ट किया जाता है। प्रातिशाख्यकार "उदात्त स्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य" (८-३-४) इस सूत्र से जो स्वरित किया जाता है उसे "क्षैप्र" कहते हैं। कहीं-कहीं केवल यण् सन्धि को भी "क्षैप्र" कह दिया जाता है। स्वाभाविक, अपराश्रित, स्वतन्त्र को 'जात्य' कहते हैं। उदात्त और अनुदात्त को मिलाकर जो स्वरित होता है (जिसका 'स्वरितोवाऽनुदात्ते पदादौ' (८-२-६) इत्यादि सूत्र विधान करते हैं) वह 'प्रश्लेष' कहा जाता है। प्लुत का चिह्न (३) है जो कि ह्रस्व तथा दीर्घ दोनों के साथ यथारुचि लिखा जाता है। अकार के आगे यदि प्लुत चिह्न होता है तो उसे (अ ३) ऐसा न लिखकर (आ ३) ऐसा लिखते हैं जिससे अशुद्ध उच्चारण न हो। पद

पाठ या 'प्रतृण' के स्वर इससे मिले होते हैं

ऋग्वेद में स्वर लगाने के नियम

टोन Tone, Pitch पिच इन दोनों शब्दों में विशेष अन्तर नहीं। वर्ण को Vowel, अक्षर को Syllable, सुर को भी पिच कहते हैं। स्वर परिवर्तन को Shifting of accent कहते हैं। एक शब्द में कहीं न कहीं जोर अवश्य दिया जाता है जैसे 'जाओ' में 'ओ' पर, 'ब्राह्मण' में 'ब्रा' पर। जहाँ जोर दिया जाता है उसे ही Accent या स्वर कहते हैं। Conduct यदि संज्ञावाचक है तो Con (कान्) पर जोर होता है, क्रिया है तो 'डक्ट' पर। अतएव (कान्डक्ट) और 'कंडक्ट' यह उच्चारण संज्ञा और क्रिया होने पर क्रम से बोला जाता। इस ही बात को तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुवाक २ में लिखा है "वर्णः स्वरः मात्रा बलम् इत्येतज्जिज्ञासितव्यम्" इति बल को Stress भी कहते हैं। धातु के अवान्तर विकार को Ablaut एब्लौट या एब्लाउत कहते हैं पर Umlaut अमलौट या अम्लाउत इससे भिन्न होता है। Ablaut को ही Vowel gradation कहते हैं। उदात को इंगलिश में Higher या Acute या Raised कहते हैं। अनुदात्त को Not-raised या Grove कहते हैं। स्वरित स्वतन्त्र और आश्रित दो प्रकार का होता है। स्वतंत्र स्वरित को independent या enclitic और आश्रित को dependent या circumflex कहते हैं। स्वरित प्रायः यणादि सन्धि होने पर होता है। स्वरित के बाद आने वाले अनुदात्तों को 'प्रचय' 'प्रचित' या एकश्रुति नाम से पुकारते हैं क्योंकि शेर जब उछलता है तब पहिले सिकुड़ता है इसी प्रकार उदात्त से पूर्व अनुदात्त अवश्य होता है। जात्य, क्षैप्र, प्रशिलष्ट और अभिनिहित स्वतंत्र स्वरित कहे जाते हैं। उदात्त के बाद स्वरित इसी लिये होता है क्योंकि जो चढ़ता है वह गिरता है यह संसार का नियम है।

स्वर लगाने के नियम

१—एक पद में एक उदात्त होता है शेष स्वर अनुदात्त हो जाते हैं चाहे आगे हों या पीछे। (अष्टाध्यायी ६-१-१५८)

२—उदात्त के पश्चात् अनुदात्त स्वरित (Circumflex) हो जाता है। (८-४-६६)

३—यदि अनुदात्त के बाद उदात्त या स्वरित अक्षर हो तो अनुदात्त ही बना रहता है। (१-२-४०)

४—स्वरित के बाद अनुदात्तों पर कोई चिह्न नहीं लगता है। वे प्रचय स्वर वाले, प्रचित एकश्रुति कहाते हैं। (१-२-३९)

५—उदात्त के बाद अनुदात्त स्वरित हो जाता है यदि अनुदात्त के बाद उदात्त न हो तो। (८-२-४)

६—सर्वप्रथम उदात्त ही ढूंढना चाहिए। उस पर कोई चिह्न नहीं होता यही उसकी निशानी है।

७—अतिङन्त (सुबन्त) परे तिङन्त सर्वानुदात्त हो जाता है। (८-१-२८)

८—पद के बाद आया सम्बोधन पूरा अनुदात्त हो जाता है यदि वह पाद के आदि में न हो तो। (८-१-१९)

९—कहीं-कहीं सम्बोधन पद का आदि अक्षर ही उदात्त होता है। (६-१-१९८)

१०—जहाँ दो अनुदात्तों को दीर्घादेश होता है वहाँ दोनों के स्थान में स्वरित हो जाता है जैसे अब+अधमानि जीव से (अवाधमानि) में 'वा' स्वरित है। (देखो ऋक् १-२५-२१)

समासों के स्वर

आम्रेडित (पुनरुक्त) पदों के समासों में पूर्वपद में उदात्त स्वर होता है। जैसे—अह रहः। यथा यथा। प्र। प्र। इनको पद पाठ में अवगृहीत किया जाता है।

बहुव्रीहि समासों में पूर्वपद में उदात्त स्वर होता है। जैसे—विश्तोमुखः। भूरिश्रृंगाः (६)। युक्तग्राव्णः, सुतसोमस्य (१२)। बहुत से बहुव्रीहि समासों में उदात्त स्वर अन्तिम पद में होता है। विशेषतः जब पूर्वपद बहु, पुरु, नञ् (अ या अन्) और सु हों। जैसे—सुशिप्रः (१२)। उरुगायायं (३) उरुक्रमस्य (५) कृचरः (२)।

कर्मधारय में अन्तिम पद में उदात्त स्वर होता है। जैसे—प्रथमजा प्रातर्युज्। महाधन। परन्तु जब पूर्वपद नञ् में (अ+अन्) हो तो उदात्त पूर्वपद में होता है। जैसे—अनग्निदग्धाः। अनश्वदा।

तत्पुरुषों में उत्तर पद में अन्तिम स्वर उदात्त होता है। जैसे—गोत्रभिद्। भद्रवादिन्। उद्भेद। परन्तु षष्ठ्यन्त पूर्वपद वाले समासों में दोनों पदों में उदात्त स्वर रहता है। जैसे वृहस्पतिः। अपानपात् शुनः शेपः।

द्वन्द्व समासों में समास करने पर बने प्रतिपदिक का अन्तिम स्वर उदात्त होता है। जैसे—अजावयः (२१) यहाँ अजावि प्रतिपदिक है। साशनानने (२५)।

देवताद्वन्द्व समासों के दोनों पदों में उदात्त स्वर होता है। जैसे—इन्द्रावरुणा। द्यावापृथिवी (१३) इस पद में दोनों भागों को पृथक्-पृथक् प्रयुक्त किया गया है। इनके बीच में (चिदस्मै) पद भी आ गये हैं।

स्वतन्त्र स्वरित :—कहीं २ पूर्व में उदात्त के बिना भी अनुदात्त को स्वरित हो जाता है। जैसे—वीर्याणि, वीर्येण, राजन्यं। इत्यादि।

संहिता पाठ में सन्धि के कारण स्वर स्वरित दिखाई पड़ता है पर सन्धिच्छेद होने पर वह नहीं रहता, जैसे—ब्राह्मणोऽस्य=ब्राह्मणः, अस्य। स्वतन्त्र स्वरित के बाद यदि उदात्त आ जाय तो स्वतंत्र स्वरित के ह्रस्व होने पर उसके आगे १ लिखकर उस अंक के ऊपर स्वरित व नीचे अनुदात्त का चिह्न लगा देते हैं। जैसे :—व्य १ 'स्यत्, वण्य १' नभः।

सर्वनाम शब्द—इव-स्य, चित्, स्वित्, उ, ह, घ, मे, ते, एन, ईय सीम्, त्व, सम आदि शब्द नित्य अनुदात्त होते हैं।

सम्बोधन पद का पहला वर्ण उदात्त और शेष वर्ण अनुदात्त होते हैं। यदि क्रिया वाक्य के आरम्भ में हो तो उसका आदि अक्षर प्रायः उदात्त होता है।

कंपितस्वर—साधारण नियम के अनुसार उदात्त यदि अनुदात्त के बाद आता है तो स्वरित हो जाता है। (८—४—६८) इस स्वरित को अस्वतंत्र (परतंत्र) स्वरित कहते हैं। जो स्वरित यणादि संधि के बाद होता है जैसे—क्व स्व ! आदि शब्दों में, उन शब्दों को स्वतंत्र स्वरित कहते हैं।

जब स्वतंत्र स्वरित के अनन्तर उदात्त अक्षर होता है या दूसरा स्वतंत्र स्वरित होता है तो उस स्वरित को ह्रस्व अक्षर के बाद १ लिखकर और दीर्घ अक्षर के बाद ३ लिख कर प्रकट करते हैं, यदि ह्रस्व स्वर के बाद १ का चिह्न दिया जाता है तो १ संख्या के नीचे अनुदात्त का चिह्न और ऊपर स्वरित का चिह्न लगाते हैं तथा जिस स्वर में संधि अक्षर होने से स्वर लगना चाहिये था उसमें नहीं लगाते जैसे :—ऋक्वेद के छठे मण्डल के दूसरे सूक्त के दूसरे मन्त्र में—

यजस्व तन्व १' तव स्वाम्—इसमें १ संख्या के ऊपर नीचे स्वर

लगाये गये हैं किन्तु स्व पर कोई चिह्न नहीं लगाया गया है इसी प्रकार—

सुप्राव्ये ३' यज'मानाय (१०—१२५—२) में व्ये के नीचे अनुदात्त का चिह्न है। तथा ३ संख्या के नीचे भी अनुदात्त का चिह्न है इससे यह सिद्ध हुआ कि जहाँ दीर्घ स्वतन्त्र स्वरित होता है वहाँ दीर्घ अक्षर के नीचे भी अनुदात्त का चिह्न लगता है इस स्वर को ही कम्प स्वरित या कम्प स्वर कहते हैं।

पदपाठ में रेफ के स्थान में होने वाला विसर्जनीय 'रजात' कहलाता है तथा उस विसर्जनीय को इति शब्द जोड़कर प्रकट किया जाता है तथा इति शब्द का इकार उदात्त है अतः स्वर् शब्द का स्वः कम्प स्वर का उदाहरण बन जाता है।

किन्तु क्व ३ विश्वानि सौभगा (१—३८,४) इस संहिता पाठ में तथा (क्व ३ इति) इस पद पाठ में दोनों जगह पर कम्प स्वर हो जाता है क्योंकि पद-पाठ में इति का इ उदात्त है जिस प्रकार संहिता पाठ में विश्वानि पद का वकारोत्तर इकार उदात्त है ऐसा ही एक उदाहरण ('स्वः सविता') (१२९—२) में भी संहिता पाठ व पद पाठ का कम्प स्वर एक सा ही रहता है।

कम्प स्वर के विषय में 'ऋक् प्रातिशाख्य' में लिखा है कि—

जात्योऽभिनिहितश्चैव क्षैपः प्रश्लिष्ट एव च।
एते स्वराः प्रकम्प्यन्ते यत्रोच्चस्वरितोदयाः ॥

व्यंकट माधव ने (६—८—१४वें) ऋग्वेद का भाष्य करते हुए लिखा है :—

पादे पादे समाप्यन्ते प्रायेणार्था अवान्तराः।
'शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थपरास्त्रयः ॥

पद-पाठ के ज्ञान के लिए ऋक्, अर्द्धर्च, पद और अक्षर का ज्ञान आवश्यक है पद और पाद शब्द पर्यायवाची हैं। पाणिनि "नः क्ये" इस नियम से जो पद संज्ञा का विधान करते हैं शाकल्य उसे नहीं मानता।

स्वराङ्कन की रीति

ऋग्वेद और तैत्तिरीय यजुर्वेद में उदात्त को मुख्य स्वर माना गया है। मुख्य स्वर स्वयं कोई चिन्ह नहीं रखता। इसे पूर्वागत अनुदात्त से (जिसका चिन्ह नीचे पड़ी पाई (—) का होता है) तथा स्वरित बनाये गये अनन्तर उत्तर भाग में प्रयुक्त वर्ण के ऊपर लगाये गये चिन्ह (।) से पहिचाना जाता है जैसे 'अग्नेये' यहाँ ग्न उदात्त है। 'अ' अनुदात्त तथा 'ये' स्वरित हैं।

शौनकीय अथर्ववेद, माध्यन्दिन यजुर्वेद तथा काण्व यजुर्वेद में इस नियम का पालन नहीं किया जाता। कहीं "ꕀ" तथा कहीं "L" चिन्ह स्वरित के बतलाने के लिये लगाया जाता है।

—: ० :—

चिन्ह-पद्धति

	भारतीय (Indian)	विदेशी (Europeon)
उदात्त	(चिह्न रहित)	⊥
अनुदात्त	—	चिह्न रहित
स्वरित	।	–

—: ० :—

स्वर लगाने की जटिल पद्धति

यदि सूत्र याद नहीं, तथा व्याकरण नहीं आता तब तो ऊपर लिखे नियमों से काम चल जायगा पर यदि व्याकरण आता है तो यों समझिए

कि—'अग्निमीडे' इस मन्त्र में स्वर लगाना है तो—'अग्निमीडे+पुरोहितम्' यहाँ पर अग्नि शब्द अव्युत्पत्तिपक्ष में 'फिषोऽन्तः उदात्तः' इस फिट सूत्र से या 'घृतादीनां च' से अन्तोदात्त है। व्युत्पत्ति पक्ष में 'अङ्गेर्नलोपश्च' उणादि सूत्र ४९९ से निष्पन्न अन्तोदात्त' है। 'अम्' प्रत्यय सुप् होने से "अनुदात्तौ सुप्पितौ" से अनुदात्त हुआ है पर 'अमि पूर्वः से पूर्व रूप होने पर 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' से उदात्त हो गया है। इस प्रकार अग्नि शब्द में इकार उदात्त और अकार अनुदात्त हुआ। 'ईडे' यह सारा पद 'तिङ्ङतिङः' से अनुदात्त हुआ पर 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' से ईकार स्वरित (आश्रित) हो गया तथा 'डे' "स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम्" इस नियम के अनुसार प्रचय स्वर वाला या एक श्रुति स्वर वाला बना तथा प्रचित स्वर पर कोई चिह्न नहीं लगता यह कहा जा चुका है। 'पुरस्' शब्द पूर्व शब्द से "पूर्वाधरावराणामसिपुरधवश्चैषाम्" (५-३-३९) इस सूत्र से बना है इसलिये अन्तोदात्त हुआ—प्रत्यय स्वर होने से। हित शब्द भी प्रत्यय स्वर से अन्तोदात्त ही हुआ—पुरस् और हित शब्द का गति समास होने पर समासान्तोदात्त प्राप्त हुआ, अव्यय पूर्व पद प्रकृति स्वर प्राप्त हुआ। तथा थाथादि स्वर प्राप्त हुआ तथा पूर्व-पूर्व का उत्तर-उत्तर स्वर से बाध होता चला गया तब 'गतिरनन्तरः' से पूर्व पद प्रकृति स्वर हो गया। पुरस् का ओकार अनुदात्ततर हो गया, क्योंकि 'हित' का 'हि' स्वरित है। यज्ञ शब्द में नङ् प्रत्ययस्वर होने से नकार उदात्त है। 'स्य' प्रत्यय अनुदात्त है पर बाद में वे स्वरित बन जाते हैं। देव अन्तोदात्त है। ऋत्विज शब्द अन्तोदात्त है। होतृ शब्द फिट् सूत्रों से अन्तोदात्त है। रत्न शब्द आद्युदात्त है। समास होने पर अन्तोदात्त हो गया। 'तमप्' पित् है अतएव इसे स्वरित प्रचय हो गया।

———

अन्य स्वर नियम

१. किसी भी स्वर को वैदिक क्रियाओं में प्लुत किया जा सकता है।

२. किसी भी स्वर को सानुनासिक किया जा सकता है।

३. क, ख, ग, घ को इन्हीं किन्हीं शब्दों में द्वित्व किया जा सकता है।

४. क्षैप्रसंधि होने पर क्षैप्र स्वरित होता है। उदात्त इ, उ, ऋ के बाद जब अनुदात्त भिन्न स्वर हों तो स्वरित होता है। नु+इन्द्र=न्विन्द्र।

५. जात्य स्वरित Independent. जिस स्वरित के पहले उदात्त न हो उस स्वरित को जात्य स्वरित कहते हैं। स्वरूपेणैवोदात्तानुदात्त संगति विना जातो जात्यः से स्वः। कन्या में।

ऊपर के स्वरित उदात्त+अनुदात्त से बनने वाले हैं तथा पांचवां जात्य स्वरित है। इसके अतिरिक्त स्वरों Accents. की निम्न संधियों समझ लेना चाहिये।

(क) उदात्त के बाद उदात्त की संधि हो तो उदात्त होता है। उ+उ=उ।

(ख) अनुदात्त के साथ उदात्त, उदात्त होता है। अ+उ=उ।

(ग) स्वरित के साथ उदात्त की संधि होने पर उदात्त। स्व+उ=उ।

६. Iterative जिसमें एक ही शब्द की आवृति हो उसमें पहले पद पर उदात्त होता है अहरहः।

७. बहुव्रीहि में प्रथय पद पर (बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्) राजपुत्र।

८. कर्मधारय में अन्त के पद पर (प्रथमजा) किन्तु जब अन्त में 'त' प्रत्यय से बना पद हो या 'ति' से समाप्त होने वाला शब्द हो तो पहले पद पर उदात्त होगा। दुर्हित, सधस्तुति।

९. जिन द्वन्द्व समासों में देवताओं के नाम होते हैं और दोनों द्विवचनान्त होते हैं तो दोनों पदों पर उदात्त होता है। सूर्यामासा, इन्द्रावरूणा।

१०. आगम (Augment)'अ' पर उदात्त होता है। अभंवत्।

११. Aorist में धातु पर उदात्त होता है। वंसि।

१२. Future में 'स्य' प्रत्यय पर उदात्त होता है। इष्य।

१३. दो उपसर्ग हों तो दोनों स्वतन्त्र और उदात्तयुक्त होते हैं। उप प्र याहि।

१४. 'आ' के पहले कोई उपसर्ग हो तो 'आ' उदात्त होगा। समाकृणोषि।

१५. प्रत्येक शब्द में एक उदात्त अक्षर होता है कुछ शब्दों में 'स्वरित' की प्रधानता पाई जाती है। कुछ शब्दों में दो उदात्त अक्षर पाए जाते हैं। जैसे—

१६. Dative Infinitive 'तवै' से बने शब्दों में—एतुवै में 'ए' और 'वै' दोनों पर उदात्त है।

१७. वे समास से बने शब्द जिनके दोनों पद द्विवचनान्त हों—'मित्रा-वरूणा' (त्रा और व पर) बृहस्पति में (बृ 'प' पर)।

१८. कुछ शब्दों पर उदात्त कभी नहीं होता है, वे हैं—

(क) एन, त्व, सम, मा, त्वा, मे, ते, नौ, वाम्, नः, वः, ईम्, सीम्।

(ख) अव्यय—च, उ, वा, इव, घ, ह, चित् भल, समहः स्म, स्विद् कुछ शब्द वाक्य या पाद में स्थिति के अनुसार उदात रहित (Unaccented) होते हैं।

१९. तमान्त में मूलशब्द पर (अपवाद, पुरुतम, उत्तम, शश्वतम) पर संख्यावाची शब्द के साथ तम लगाने पर तम के म पर उदात्तहो

है शततम ।

२०. मान्त शब्दों में 'म' पर उदात्त होता है अष्टम ।

"सुबन्त विभक्तियों" में अवग्रह

पाणिनि के मत में भ्यां भिस् आदि विभक्तियां प्रातिपादिक से संयुक्त करने के बाद, किन्तु शाकल्य के मत में भ्यां भिस् से पूर्व पदत्व आता है। वह इन्हें अवग्रह से पृथक कर देता है।

—:०:—

"समास" में अवग्रह

वाजसनेयी प्रातिशाख्य के मत में प्रजा प्रजापति इत्यादि शब्दों को जहाँ अन्तिम पूर्वपद का योग होता है, वहाँ आकार के पूर्व रूप जैसा ही अवग्रह का चिन्ह लगता है। जैसेः—'प्रऽजा'। यह पूर्वरूप का चिन्ह नञ् समास में नहीं लगता। 'इव' शब्द के साथ समास करने पर तो इसे लगाया जाता है।

—:०:—

" 'इति' का प्रयोग"

जहाँ कोई विशेषता बतलानी होती है, वहाँ शाकल्याचार्य के मत में इति जोड़ दी जाती है। र् जात में विशेषतया प्रयोग होता है। कहीं कहीं स् जात विसर्ग में भी। प्रगृह्य-संज्ञा के साथ भी इसका प्रयोग होता है।

—:०:—

"छान्दसिक दीर्घों का ह्रस्वीकरण"

कुछ पदों में तो दीर्घ का विधान पाणिनि के नियमानुसार तथा कुछ पदों में केवल छन्दः पूर्ति के लिये ह्रस्व किया जाता है। कहीं-

कहीं पर अभ्यास को दीर्घ किया जाता है। जैसे :—

"सचस्वा नः स्वस्तये ।" १/१/९। "यमाय अहुताहविः" १०/१४। १३। "निरंहसः पिपृता" १/११५/६। "न जानीमो नयता" १०।३४। ४। "मित्रं कृणुध्वं खलु मृडता नः" १०।३४।१४। "यं स्मा पृच्छन्ति" २।१२।५। "अद्या देवा उदिताः" १।११५।६ । वृहस्पतिः ऋक्वभि वावृधानः" १०।१४।३ इत्यादि पदों में जो दीर्घ हो रहा है, वह पद-पाठ में ह्रस्व कर दिया जाता है।

—:०:—

"तद्धित प्रत्यय"

'तरप्' या 'तमप्' प्रत्यय अवग्रह से पृथक कर दिये जाते हैं। यदि 'दा' 'धा' 'सा' 'पा' 'भू' 'हू' धातुओं तथा गोपा शब्द के बाद जब 'तरप्' या 'तमप्' प्रत्यय किया जाता है तो इनसे पूर्व अवग्रह का चिन्ह दिया जाता है। इसी प्रकार 'मतुप्' और 'त्व' प्रत्यय से पूर्व भी अवग्रह का चिन्ह लगता है।

—:०:—

"कृदन्त प्रत्यय"

"लिट्' के स्थान में जब 'क्वसु' प्रत्यय किया जाता है, तब उसका भी अवग्रह कर दिया जाता है। किन्तु 'वसु' प्रत्यय जब अकारान्त शब्दों से होता है तभी अवग्रह का चिन्ह लगता है। 'क्यच्' 'क्यङ्' और 'क्यष्' से पूर्व में भी कभी-कभी अवग्रह लगा दिया जाता है।

—:०:—

"स्वराघात" (Accent)

स्वराघात के द्वारा ग्रीक आदि भाषाओं में भी एक ही शब्द का

भिन्न-भिन्न अर्थ होता है। इसके विषय में महाभाष्यकार ने लिखा है कि यदि स्वर में भूल हो जाती है तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। जैसे— यदि 'इन्द्र शत्रु' पद में प्रथम पद में स्वराघात किया जाता है तो इन्द्र रूपी 'शत्रु मारने वाला' यह अर्थ बहुव्रीहि समास के द्वारा या 'इन्द्र एव शत्रु' विग्रह करके अर्थ किया जाता है। 'शत्रु शब्द शातयिता या हन्ता अर्थ में प्रयुक्त होता है। यदि 'शत्रु' पद पर स्वराघात किया जावे या इन्द्रस्य हन्ता यह तत्पुरुष समास किया जाय तो इन्द्र को मारने वाला (वृत्र) इत्यादि अर्थ होता है। इसी प्रकार 'ते' पद को यदि निघातयुक्त कर दिया जाता है तो इसका अर्थ 'वे' होता है और यदि निघात नहीं किया जाता तो 'तुम्हारा' अर्थ होता है। यह संस्कृत भाषा की ही गति नहीं, किन्तु इसी प्रकार ग्रीक भाषा भी यदि 'Lithobolos' शब्द में अन्तिम वर्ण को Penult स्वर युक्त किया जाता है तो इसका अर्थ 'पत्थर फैंकने वाला' होता है यदि आदि पद पर स्वराघात किया जाता है तो दूसरा अर्थ 'पत्थरों से आहत' (आघात-युक्त व्यक्ति) अर्थ होता है। जर्मन भाषा में भी यदि 'Urergehen' शब्द में मुख्य स्वर अन्तिम स्वर पर लगाया जाता है तो इसका अर्थ 'Ourboron' उपेक्षा होता है किन्तु यदि प्रथम स्वर पर आघात किया जावे तो 'पार करना' या ऊपर से जाना अर्थ होता है। फ्रैंच भाषा में भी 'Cote' शब्द में द्वितीय स्वर पर आघात करने से पेटीकोट (petticoat) अर्थ होता है तथा प्रथम स्वर पर आघात करने से, पसली (Rib) या 'किनारा' अर्थ होता है। अंग्रेजी में 'Conduct' आदि शब्दों में तो स्वराघात से क्रिया और संज्ञा का अर्थ भेद प्रसिद्ध है।

—:—

स्वराघात से अर्थभेद

किसी शब्द के उच्चारण में कहीं न कहीं जोर या बल (Stress.) अवश्य दिया जाता है। जैसे—'जाओ' में 'ओ' पर और 'ब्राह्मण' में 'ब्रा' पर। जहां जोर दिया जाता है उसे ही Accent या स्वर कहते हैं। Conduct यदि संज्ञावाचक है तो (कान्) Con पर जोर दिया जाता है और क्रिया है तो डक्ट (Duct) पर। अतएव कान् डक्ट और कंडक्ट यह उच्चारण संज्ञा और क्रिया होने पर क्रम से बोला जाता है। इसे Shifting of accent या स्वर परिवर्तन कहते हैं।

इस ही बात को तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुवाक् २ में लिखा है "वर्णः-स्वरः मात्रा बलम् इत्येतज्जिज्ञासितव्यम्"। स्वर का वेदों के मन्त्रों में बहुत बड़ा महत्त्व है। सब से मुख्य कार्य अर्थ-भ्रान्ति का दूर करना है। मा के दो अर्थ होते हैं। एक मुझ को (माम्) और दूसरा निषेधात्मक। इन दोनों में कौन सा अर्थ कहां करना चाहिये यह स्वर का ही कार्य है। स्वर तीन प्रकार के होते हैं उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। यदि 'मा' अनुदात्त है तो उसका अर्थ "अनुदात्तं सर्वमयादादौ" से सर्वनाम (माम्) ही होगा। और यदि उदात्त है तो उसका अर्थ निषेधात्मक होगा। इसी लिये वेदों में स्वर का अत्यधिक महत्व है। इसी स्वर पर ही वेदों के संहिता पाठ और पद पाठ आधारित हैं।

इसी प्रकार स्वराघात (Accent) के द्वारा ग्रीक आदि भाषाओं में एक ही शब्द का भिन्न भिन्न अर्थ होता है। इस के विषय में महाभाष्यकार ने लिखा है कि यदि स्वर में भूल होती है तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। 'इन्द्र शत्रु' पद में प्रथम पर स्वराघात करने से 'इन्द्र रूपी शत्रु मारने वाला' यह अर्थ होता है और द्वितीय पर स्वराघात करने से वृत्रासुर अर्थ हो जाता है। फ्रैंच में Cote शब्द में प्रथम तथा द्वितीय

शब्द पर Accent करने से क्रमशः पसली (Rib) और Petti Cout अर्थ होते हैं। इसी प्रकार ग्रीक और जर्मन भाषा के भी अनेकों उदाहरण हैं।

स्वर भेद से अर्थभेद के कुछ निम्नलिखित उदाहरण हैं :—

"क्षयं गतः देवदत्तः" इस वाक्य में क्षय शब्द के दो अर्थ हैं घर और विनाश। यदि "क्षयो निवासे" (६-१-१९८) इस सूत्र से 'क्षय' शब्द को आद्युदात्त माना जावे तो "गृहंगतः" यह अर्थ होगा और यदि चित् स्वर से 'क्षय' को अन्तोदात्त माना जावे तो 'मृत' अर्थ होगा इसी प्रकार "सुपुरुषः कार्यं पश्यति" इस वाक्य में "सोरवक्षेपणे" (६-२-१९४) अन्तोदात्त होगा तो सुपुरुष का अर्थ दुष्ट पुरुष होगा। और जब 'सु' को "तत्पुरुषे तुल्यार्थः" अव्यये नञ् कु निपातानाम् (६-२-२) से आदिदात्त माना जायगा तब सज्जन अर्थ होगा तथा "नमस्ते" इस शब्द में यदि नकार को उदात्त माना जाय और सारे पद में एक ही स्वर माना जाय तो 'तुम्हें नमस्कार हो' यह अर्थ होगा, यदि 'न' का स्वर अलग हो और 'मस्ते' का स्वर अलग हो तो 'मस्तक पर कुछ भी धारण नहीं किया गया है' यह अर्थ होगा इसी प्रकार "अर्य" शब्द 'यतो नावः' से आदि दात्त माना जाय तो 'वैश्य' अर्थ होगा। तथा "अर्यः स्वामि वैश्ययोः" से यदि अन्तोदात्त होगा तो स्वामी अर्थ होंगा। इस प्रकार स्वर भेद से अर्थ भेद पद पर देखा जाता है।

—:०:—

स्वर विधायक नियम (सूत्र)

१—अनुदात्तं पदमेकवर्जम्।

२—अधुदात्तस्य च यत्रोदात्तलोपः (अनुदात्तः उदात्तः)।

३—चौ (पूर्वस्यान्तोदात्तः)।

४–आमन्त्रितस्य च (आदिरुदात्तः)।

५– „ „ (पदात्परस्यानुदातत्त्वम्)।

६–अनुदात्तं सर्वमपादादौ (वां, तौ, वः, नः, त्वा, मा, ते, मे)।

७–आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्।

८–उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य।

९–एकादेश उदात्तेनोदात्तः।

१०–उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः।

११–नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यपगालवानाम् (उदात्तपरः स्वरितपश्चानुदातो न स्वरितः)।

१२–स्वरितात्संहितायामनुदात्तानाम् (एकश्रुति)।

१३–अनुदात्तं च (द्विरुक्तस्य परं रूपम्)।

१४–धातोः (अन्त उदात्तः)।

१५–अभ्यस्तानामादिः (लसार्वधातुके, उदात्तः)।

१६–अनुदात्ते च (अभ्यस्तानामादिरुदात्तः)।

१७–लिति (प्रत्ययात्पूर्वमुदात्तः)।

१८–कर्षात्वतो घञोऽन्त उदात्तः।

१९–चतुरः शसि (अन्त उदात्तः)।

२०–झल्युपोत्तम् (षट्त्रिचतुर्भ्यः) पञ्चभिः।

२१–ञ्नित्यादिर्नित्यम् (आदिरुदात्तः)।

२२–अन्तश्च तवै युगपत् (तवैप्रत्ययान्तस्य आदिरंतश्चोदात्तौ)।

२३–संज्ञायामुपमानम् (आद्युदात्तम्)।

२४–निष्ठा च द्व्यजनात् (आदिरुदात्तः)।

२५–अनुदात्तौ सुप्पितौ।

२६–यतोऽनावः (यत्प्रत्ययान्तस्यादिरुदात्तः)।

२७–मतोः पूर्वमात्संज्ञायां स्त्रियाम् (उदात्तः)।

२८–ईवत्याः (मतुपअन्त उदात्तः)।

२९–फिषोऽन्त उदात्तः (फिट् प्रातपदिक)।

३०–खान्तल्पाश्मादेः (अन्त उदात्तः)।

३१–अर्यस्य स्वाम्याख्याचेत् (अन्त उदात्तः)।

३२–ज्येष्ठ कनिष्ठयोर्वयसि (अन्त उदात्तः)।

३३–ह्रस्वान्तस्य स्त्री विषयस्य (आदिरुदात्तः)।

३४–तृणधान्यानाञ्च द्व्यषाम् (आदिरुदात्तः)।

३५–नः संख्यायाः (नकारान्त रेफान्त संख्याया आदिरुदात्तः)।

३६–स्वाङ्गशिटामदन्तानाम् (आदिरुदात्तः)।

३७–वर्णानाम् तणतिनितान्तानाम् (आदिरुदात्तः)।

३८–ह्रस्वान्तस्य ह्रस्वमनृत्ताच्छील्ये (आदिरुदात्तः)।

३९–इगान्तानां च द्व्यषाम् (आदिदात्तः)।

४०–निपाता आद्युदात्ताः।

४१–उपसर्गाश्चाभिवर्जम्।

४२–एवादीनामन्तः।

४३–चादयोऽनुदात्ताः।

४४–यथेति पादान्ते।

४५–प्रकारादिद्विरुक्तौ परस्यान्त उदात्तः।

४६–आद्युदात्तश्च (प्रत्ययः)।

४७–चितः (अन्त उदात्तः)।

—:०:—

समास स्वर विधायक सूत्र

१–समासस्य (अन्तउदात्तः)।

२–वहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्।

३–तत्पुरुषे तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाऽव्ययद्वितीयाकृत्याः।

४–संख्या (पूर्वपदं प्रकृत्या द्वन्द्वे)।

५–गतिरनन्तरः (क्तान्ते प्रकृत्या)।

६–तादौ च निति कृत्यतौ (अनन्तरोगतिः प्रकृत्या)।

७–अणि नियुक्ते+संज्ञायां च (अणन्त आद्युदात्तः)।

८–नञो जरमरमित्रमृताः (आद्युदात्तः)।

९–उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्।

१०–नञ् सुभ्याम्। अन्तोदात्तो भवति।

११–तिङ्ङःतिङः।

१२–न लुट्।

१३–निपातैर्यद् यदि हन्तकुविन्नेच्चेचणकच्चिद्यत्रयुक्तम्।

१४–यद्वृत्तान्नित्यम्।

१५–हि च।

१६–यावद्यथाभ्याम्।

१७–तुपश्यपश्यताऽहैः पूजायाम्। इत्यादि।

इन सूत्रों पर ध्यान रखने से यदि स्वर संचार किया जाएगा तो अवश्य स्वर का यथार्थ ज्ञान होगा। सन्धि सम्बन्धी नियम विस्तार के भय से छोड़ दिये हैं। ईश्वरेच्छा हुई तो अगले संस्करण में सन्धि नियमों पर प्रकाश डालेंगे।

—:०:—

छन्दः प्रकरण

छन्दोब्राह्मण में यह वाक्य आते हैं कि "अनुष्टुभा ऋचा यजति, बृहत्या ऋचा यजति, गायत्र्या ऋचा स्तौति", इन वाक्यों में छन्दों का निर्देश किया गया है। बिना छन्दोज्ञान के कौन सी आनुष्टुभी ऋचा है यह जानना असंभव है। अतएव महर्षि पाणिनि ने 'शिक्षा' में 'छन्दः पादौ तु वेदस्य" यह लिखा है इसी प्रकार "यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो

दैव विनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाऽध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छति, गर्तं वा पद्यते, प्रमीयते वा पापीयान् भवति, यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति"। (छन्दो ब्राह्मण ३-७-५)

अर्थात् बिना छन्दों का. ज्ञान किये मन्त्रों का पढ़ना पढ़ाना या मंत्रों का स्वयं उच्चारण करना पाप का कारण बन जाता है। इतना ही नहीं ऐसे गुरु या याजक या अध्यापक को मरने पर वृक्षादि स्थाणु योनि प्राप्त होती है। बृहद्देवता में भी लिखा है :—किस मंत्र का किस छन्द में विनियोग है।

अविदित्वा ऋषिच्छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जापेद्वापि पापीयान जायते तु सः ॥इति॥

इसी प्रकार यह भी लिखा है कि :—योगः =विनियोगः, यस्यवाक्यं स ऋषिः, या तेनोच्यते सा देवता, यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः। (सर्वानुक्रमणी २।४६) छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात् कर्मणः। (ऐ. आ. २।१।६)।

अन्यत्र भी लिखा है :—

मन्त्राणां दैवतं छन्दो निरुक्तं ब्राह्मणानृषीन्।
कृत्तद्धितादींश्चाज्ञात्वा यजन्तो यागकण्टकाः ॥

ऋषिछन्दो दैवतानि ब्राह्मणार्थं स्वराद्यपि।
अविदित्वा प्रयुञ्जानो मन्त्रकण्टक उच्यते ॥

इसलिये छन्दः परिज्ञान बड़ा ही आवश्यक एवं अनिवार्य है। तदनुसार वैदिक छन्दोज्ञान के लिए पिंगल मुनि के बनाये हुये "पिंगल छन्दः सूत्र" से उपयोगी अंश उद्धृत कर दिया है।

—:०:—

वेद में लौकिक छन्दों का प्रयोग

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थं एव च ।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥

(षड् गुरुशिष्य कृत कात्यायन सर्वानुक्रमणी)

इस युक्ति के अनुसार महाकवि कालिदास ने सात वैदिक छन्दों में से "आर्षी त्रिष्टुप्" का प्रयोग 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के चतुर्थ अङ्क के सातवें श्लोक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर काश्यप (कण्व) ऋषि के द्वारा किया है जो निम्नलिखित है :—

अमी वेदिं परितः क्लृप्तधिष्ण्याः,
समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः ।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैः,
वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु ॥

कालिदास ने शाकुन्तल में काश्यप के बोलने से पहिले कोष्ठक में (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते इस प्रकार का निर्देश भी किया है ।

ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के ५१वें उषः सूक्त का प्रारम्भ भी इसी छन्द से होता है ।

इस छन्द में कुल ४४ वर्ण होते हैं । प्रत्येक चरण में ११ वर्ण पाये जाते हैं जैसे—

इदमुत्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्,
ज्योतिस्तमसोवयुनावादस्थात् ।
नूनं दिवोदुहितरो विभातीर्,
गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ (ऋक० ४।५१।१)

ठीक इसी प्रकार वैदिक ऋषियों ने भी लौकिक छन्दों का प्रयोग

भी कहीं-कहीं किया है। जैसे :—

स्तुहि श्रुतं गर्त सदं युवानम्' (ऋक्० २।७।१८)

यह "उपेन्द्रवज्रा" छन्द है। इस छन्द का लक्षण—"उपेन्द्र वज्रा यदि तौ जगौ गः" है। तथा "रथं न दुर्गात् वसवः सुदानवः" (ऋ० स० १–७–२४) इस मन्त्र में वंशस्थवृत्त है।

इस छन्द का लक्षण "जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ"

इसी प्रकार :—

'हृदिस्पृगस्तु शन्तमः' (ऋ० स० १–१–३१) में प्रमाणिका छन्द है।

'पूषण्वते ते ते चकृमा करम्भं' (ऋ० सं० ३–३–१८) में इन्द्रवज्रा छन्द है।

'अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुहचिद्दिवेयु,
(ऋ० सं० १–२–१४) में 'उपजाति' है।

"इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत्" (ऋ० सं० ५–७–६) में शालिनी है।

"आ देवानामभवः केतुरग्ने" (ऋ० सं० २–८–१६) में 'वातोर्मी' छन्द है।

"यूना ह सन्ता प्रथमं वि जज्ञतुः (ऋ० सं० ७–२–१९) में 'इन्द्रवंशा' छन्द है।

"अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर" (ऋ० सं० १–१–१९) में 'नराच' छन्द है।

—:०:—

विचार कर देखा जाय तो एक अक्षर की या दो अक्षरों की या तीन या चार अक्षरों की चार बार या दो बार आवृत्ति करने मात्र से छन्द बना जाता है तथा मामूली बातचीत में छन्द होते हैं—जैसे:—

सात आठ—पढ़ो पाठ।

Give my paper—भजभाई हरहर ॥ इत्यादि।

यही हाल वैदिक छन्दों का है। अतएव एक अक्षर का छन्द 'दैवी' गायत्री कहाता है। इन छन्दों के नामों का निर्देश अथर्ववेद में भी किया है:—

''गायत्रेण प्रति मिमीतेऽर्कम्,
अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदीं चतुष्पदीम्,
अक्षरेण मिमते सप्त वाणी ॥
(अथर्व०)

'ऋचः पादं मात्रमाकल्पयन्तः।'
(अथर्व०)

वेद में मात्रिक छन्दों का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। किन्तु उर्दू में 'वर्णिक' छन्द नहीं होते। 'गजल' कसीदा (निन्दा या स्तुति पद्य) संस्कृत में भी होते हैं। दो मिसरों वाले 'शेर' हिन्दी में बहुत हैं। जैसे—

स्वदेशी का साहब असर देख लेना।
यह लाएगी सर खींच कर देख लेना ॥ इत्यादि ॥

पिङ्गल से पूर्व के आचार्य

'पिङ्गल' के पूर्व भी 'क्रौष्टुकि' 'यास्क' 'तण्डि' 'सैतव' 'काश्यप'

'रात' तथा मांडव्य, प्रभृति छन्द शास्त्र के प्रणेता हुए। 'रात' और 'माण्डव्य' दोनों ने मिल कर ही छन्दोग्रन्थ निर्माण किया था। अथवा दोनों के नाम जुड़े हुए एक साथ प्राप्त होते हैं।

'पिङ्गल' मुनि कितने प्राचीन थे इसका प्रमाण यह है कि महाभाष्य 'नवाह्निक' में 'पैङ्गल काण्व' (आह्नि० ९ सू० ७३) शब्द मिलता है तथा भाष्य से प्राचीन 'ऋक्सर्वानुक्रमणी' में भी 'छन्द शास्त्रीय सूत्रों का अनुवाद उपदर्शित है। किन्हीं व्यक्तियों का यह विचार है कि 'महाभाष्यकार पतञ्जलि ही 'पिङ्गल' थे। परन्तु यह विचार इन प्रमाणों से निर्मूल हो जाता है।

वामनपुराण में—'सनत्कुमारः सनक. सनन्दनः। सनातनोऽप्यासुरि पिङ्गलौ च' तथा स्कन्द पुराण में:—(काशीखण्ड) 'गणेन पिङ्गलाख्येन पिङ्गलेशाख्य संज्ञितम्। लिङ्गं प्रतिष्ठितं शम्भोः कपर्दीशादुदग्दिशि' इन उद्धरणों में 'पिङ्गल' नाम का ही वर्णन प्रतीत होता है।

पिङ्गल मुनि का निवास स्थान:—समुद्र के पश्चिम तट के निवासियों के लिए अपरान्त शब्द तथा वहाँ की स्त्रियों के लिए 'अपरान्तिका' शब्द रूढ़ है। 'अपरान्तिका' और 'वानवासिका' दो छन्द भी छन्द शास्त्र में मिलते हैं।

वात्स्यायन सूत्र की व्याख्या जयमङ्गला के अनुसार 'पश्चिम समुद्रसमीपं अपरान्तदेशः तत्र भवाः।' 'कोंकणविषमात् पूर्वेण वनवास विषयः तत्रभवाः' अर्थात् पश्चिम समुद्र के पास अपरान्त देश है और कोंकण से पूर्व वनवास देश कहलाता है। वहाँ के रहने वाले अपरान्तिक और वानवासिक कहलाते हैं।

तदनुसार पिङ्गल मुनि गुजरात के निकट समुद्र के किनारे के रहने वाले थे' यह अनुमान किया जा सकता है।

—:o:—

मात्रा-विचार

वार्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छन्द होते हैं। इनमें वार्णिक छन्दों का वेदों में अधिक प्रयोग है। मात्रिक छन्द भी प्रयुक्त हैं पर बहुत ही कम। इनमें मात्राओं के ज्ञान का यह क्रम है :—

'एकमात्रो भवेद ध्रस्वः' द्विमात्रो दीर्घं उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयः, व्यञ्जनं चार्धमात्रिकाम्॥

चुटकी (छुटिका या छोटनी सं०) बजाने में जितना समय लगता है उतना ही एक मात्रा के बोलने में लगता है। त्रैमासिक स्वर का उपयोग विशेषतया व्याकरण और संगीत शास्त्र में होता है। दीर्घ अक्षर की दो मात्राएँ मानी जाती हैं। 'ए' या 'ओ' दीर्घ ही माने जाते हैं। व्यञ्जनों या हल वर्णों की आधी मात्रा मानी जाती है यह साम्प्रदायिक सिद्धान्त है। इसमें क्यों ? कैसे ? करना भूल है, तर्कान्धत्व है। अक्षरों की गणना में जितने अक्षर एक स्वर के साथ होंगे वह सब एक ही अक्षर या वर्ण माना जाता है।

—:o:—

गण-विचार

म्यरस्तजभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना॥
(वृत्तरत्नाकर)

"मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः सोन्त्यगुरुः कथितोन्त्यलघुस्तः॥
यमाताराजभानसलगाः॥"

इस प्रकार मगण, नगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण इन गणों का निरूपण किया है। यमाता में जो गण है उसके निर्देशक अक्षर से आगे के तीन अक्षर गिनेंगे तो उस गण के गुरु लघु अक्षरों का परिज्ञान हो जयगा। जैसे 'यमाता' में 'य' अक्षर सर्व प्रथम है तो यह समझा गया कि यगण में आदि का अक्षर लघु तथा शेष दो अक्षर गुरु होते हैं। क्योंकि प्रत्येक गण में तीन तीन अक्षर ही माने जाते हैं।

—:o:—

पिङ्गलाचार्य

पिङ्गलाचार्य पाणिनि के छोटे भाई थे जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने स्वरचित 'वेदार्थदीपिका' में लिखा है :—
'तथा च सूच्यते हि भगवता पिङ्गलेन पाणिन्यनुजेन क्वचिन्नवकाश्चत्वारः' ॥ (पिङ्गल सूत्र ३/३३)' इति।

पाणिनि ने भी घोषादिगण (६–२–८५) में पिङ्गल नाम का उल्लेख किया है। पतञ्जलि ने भी 'पिङ्गलकाण्वस्य छात्राः पैङ्गलकाण्वाः' (१–१–७३) में ऐसा ही लिखा है। कुछ लोग पतञ्जलि को ही पिङ्गल नाग कहते हैं। किन्तु यदि ऐसा होता तो भाष्यकार पिङ्गल का नाम भाष्य में क्यों देते? अतः पतञ्जलि पिङ्गल के परवर्ती हैं। पतञ्जलि ही पिङ्गल नहीं थे। कुछ लोग पिङ्गल को नाग जाति

का ब्राह्मण मानते हैं जैसी कि किंवदन्ती है कि 'एक बार पिङ्गल मुनि भूलोक की यात्रा कर रहे थे, अकस्मात् गरुड़ से उनकी भेंट हो गई। गरुड़ उन्हें खाना चाहता था परन्तु पिङ्गल ने कहा कि मैं छन्दःशास्त्र तुन्हें सिखा देना चाहता हूँ। यदि मुझे अभी आपने खा लिया तो यह विद्या लुप्त हो जायगी। तदनुसार पिङ्गल ने यकार का चतुरत्तर प्रस्तार गरुड़ जी को समझाना आरम्भ किया तथा उसका विस्तार इतना
। कि वह पृथ्वीरूपी स्लेट पर न समाया और पिङ्गल जी पीछे सरकते सरकते पश्चिम समुद्र के किनारे पहुँच गये। वहाँ जाते ही उन्होंने गरुड़ को अंगूठा दिखाया और "चतुर्भिर्यकारैर्भुजङ्गप्रयातम्" यह कहते हुए समुद्र में डुबकी लगा ली। गरुड़ जी पछताते ही रह गये। अस्तु वात्स्यायन मुनि प्रणीत कामसूत्रों की 'जयमंगला' नाम की व्याख्या में वानवासिका एक स्त्री का नाम बताया गया है। वह लिखते हैं कि "कोङ्कण विषयात् पूर्वेण वनवासविषयः तत्रभवा" अर्थात् कोङ्कण देश के पूर्व भाग में वनवास नाम का देश है वहां जो रहे—उस स्त्री को वानवासिका कहते हैं। तदनुसार हो सकता है कि समुद्र के किनारे पिंगल रहते हों तथा उन्हें वहां किसी जंगली पक्षी से जो गरुड़ जैसा हो, उनकी भेंट हो गई हो तथा उन्होंने सांप की तरह टेढ़ा मेढ़ा भाग कर उससे अपनी जान बचाई हो। पर पिंगल का जन्म स्थान वनवास देश नहीं माना जा सकता। हां ये रामभक्त होने से वहीं जा बसे हों यह माना जा सकता है। क्योंकि पाणिनि तक्ष-शिला के आस पास के किसी ग्राम के थे, पिंगल भी वहीं के होंगे। पंचतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने भी मित्र सम्प्राप्ति के ३६वें श्लोक में पिंगल की मृत्यु का वर्णन किया है—

सिंहो व्याकरणस्य कर्त्तुरहरत्प्राणान् प्रियान् पाणिनेः,
मीमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनिम् ।
छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलम्,
अज्ञानावृतचेतसामतिरुषां कोऽर्थंस्तिरश्चां गुणैः ॥

इस प्रकार पिङ्गल मुनि विक्रम शताब्दी से पूर्व पंचम शताब्दी में विद्यमान थे इसमें कोई सन्देह नहीं ।

—:०:—

पिङ्गल छन्दः सूत्र (वैदिक प्रकरण)
(द्वितीयोऽध्यायः)

छन्दः ॥ १ ॥

यह अधिकार सूत्र है ॥ १ ॥

गायत्री ॥ २ ॥

इस सूत्र का बारहवें सूत्र तक अधिकार जाता है ॥ २ ॥

दैव्येकम् ॥ ३ ॥

यह दैवी गायत्री का लक्षण है । एक अक्षर वाले छन्द को दैवी गायत्री कहते हैं ॥ ३ ॥

—:०:—

'आसुरी गायत्री का लक्षण'

आसुरी पञ्चदश ॥ ४ ॥

पन्द्रह अक्षर वाले छन्द को आसुरो गायत्री कहते हैं ॥ ४ ॥

प्राजापत्याष्टौ ॥ ५ ॥

आठ अक्षर वाले छन्द को प्राजाप्रत्या गायत्री कहते हैं ॥ ५ ॥

यजुषाँ षट् ॥ ६ ॥

छः अक्षर वाले छन्द याजुषी गायत्री कहलाते हैं ॥ ६ ॥

साम्नां द्विः ॥ ७ ॥

बारह अक्षर वाले छन्द को साम्नी गायत्री कहते हैं ॥ ७ ॥

ऋचां त्रिः ॥ ८ ॥

अठारह अक्षर वाले छन्द को 'आर्च्ची गायत्री' कहते हैं ॥ ८ ॥

द्वौ द्वौ साम्नां वर्धेत ॥९॥

साम गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः दो दो अङ्क की वृद्धि होती है (जैसे—बारह अक्षर की साम गायत्री होती है उसमें दो अङ्क बढ़ा देने से वह सामोष्णिक छन्द हो जाता है। इसी प्रकार सामानुष्टुबादि में भी समझना चाहिए) ॥९॥

त्रींस्त्रीनृचाम् ॥१०॥

आर्ची गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः तीन तीन अङ्कों की वृद्धि होती है (जैसे—अठारह अक्षर की आर्चो गायत्री होती है उसमें तीन अङ्क बढ़ा देने से वह आर्च्युष्णिक छन्द हो जाता है। इसी प्रकार आर्च्यनुष्टुबादि में भी समझना चाहिए) ॥१०॥

चतुरश्चतुरः प्राजापत्यायाः ॥११॥

प्राजापत्या गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः चार चार अङ्क की वृद्धि होती है ॥११॥

एकैकं शेषे ॥१२॥

जिस गायत्री में अङ्क की संख्या वृद्धि नहीं कही गयी है उसमें उत्तरोत्तर क्रमशः एक एक संख्या की वृद्धि होती है ॥१२॥

जह्यादासुरी ॥१३॥

आसुरी गायत्री में उत्तरोत्तर क्रमशः एक एक संख्या का ह्रास (अल्प) करना चाहिए ॥१३॥

तान्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यः ॥१४॥

वैदिक सात छन्दों में से सूत्रकार ने सर्व प्रथम 'गायत्री' (पि० सू० २/२) इस सूत्र से केवल गायत्री छन्द का ही उलेख किया है ॥१४॥

तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य एकैका ब्राह्मः ॥१५॥

याजुषी गायत्री, साम्नी गायत्री और आर्ची गायत्री यह तीनों एकत्रित होकर छत्तीस अक्षर की ब्राह्मी गायत्री होती है एवं याजुषी उष्णिक्, साम्नी उष्णिक् और आर्ची उष्णिक् यह तीनों एकत्रित होकर बयालीस अक्षर का ब्राह्मी उष्णिक् छन्द होता है। इसी प्रकार अनुष्टु-बादि में समझना चाहिए ॥१५॥

प्राग्यजुषामार्ष्य इति ॥१६॥

प्राजापत्या गायत्री, आसुरी गायत्री और दैवी गायत्री यह तीनों एकत्रित होकर चौबीस अक्षर की आर्षी गायत्री होती है एवं प्राजापत्या उष्णिक्, आसुरी उष्णिक् और दैवी उष्णिक् यह तीनों एकत्रित होकर आठ इस अक्षर का आर्षी उष्णिक् छन्द होता है। इस प्रकार अनुष्टु-बादि में भी समझना चाहिए ॥१६॥

—:o:—

(पिङ्गले तृतीयोऽध्यायः)

पादः ॥१॥ यह अधिकार सूत्र है।

इयादिपूरणः । २॥

जिस छन्द में पाद के अक्षरों की संख्या पूर्ति न होती हो वहाँ पर 'इय्' या 'उव्' इत्यादि अक्षर लगा कर अक्षर पूर्ति करनी चाहिए। जैसे 'वरेण्यम्' में 'वरेणियम्' इस प्रकार 'इय्' लगा कर वर्ण पूर्ति करनी पड़ती है। कात्यायन ने भी लिखा है कि "पाद पूरणार्थन्तु क्षैत्रसंयोगैकाक्षरीभावान् व्यूहेत" अर्थात् पादपूर्ति के लिये क्षैप्र (यण्

सन्धि) जैसे 'वज्रिन्' का वजरिन। सवर्ण दीर्घ व्यूह जैसे 'अस्यास्ते' का अस्य आस्ते। गुणव्यूह जैसे 'उपेन्द्र' का उप इन्द्र। वृद्धिव्यूह जैसे 'ब्रह्मैतु' में 'ब्रह्मा एतु' यह भेद कर लिया जाता है। शौनकाचार्य ने भी लिखा है कि :—

व्यूहेदेकाक्षरीभावान् पादेषूनेषु सम्पदे ।
क्षैप्रवर्णांश्च संयोगान् व्यवेयात् सदृशैः स्वरैः ॥

"व्यूह" शब्द का अर्थ है पृथक् पृथक् करना ।

गायत्र्या वसवः ॥ ३ ॥

गायत्री के एक चरण में आठ आठ अक्षर होते हैं पर आठ आठ अक्षरों के चरण कुल तीन होते हैं क्योंकि इस में कुल २४ ही अक्षर होते हैं।

जगत्या आदित्याः ॥ ४ ॥

जगती छन्द में एक पाद बारह अक्षरों का होता है।

विराजो दिषः ॥ ५ ॥

विराट् का एक पाद दस अक्षरों का होता है। अतः 'वैराज पाद' कहने से दस अक्षर लिये जाते हैं।

त्रिष्टुपो रुद्राः ॥ ६ ॥

त्रिष्टुप् छन्द के एक पाद में ग्यारह अक्षर होते हैं।

आद्यं चतुष्पाद् ऋतुभिः ॥ ८ ॥

आद्य अर्थात् आर्षी गायत्री में चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में छः छः अक्षर होते हैं।

क्वचित् त्रिपाद् ऋषिभिः ॥ ९ ॥

ऋषि अर्थात् सात सात अक्षरों के तीन चरणों वाली भी गायत्री

होती है। उसे 'पाद निचृत्' कहते हैं।

उष्णिग् गायत्रौ जागतश्च ॥ १८ ॥

जिस छन्द के दो चरण ८-८ अक्षरों के हों और एक पाद बारह अक्षरों का हो उस तीन पद वाले छन्द को उष्णिक् कहते हैं।

ककुम्मध्ये चेदन्त्यः ॥१९॥

यदि मध्य का पाद बारह बारह अक्षर का हो और आदि तथा अन्त के चरण आठ आठ अक्षरों के हों तो उस 'उष्णिक्' को 'ककुप्' कहते हैं। इसी प्रकार पुर उष्णिक्' और परोष्णिक् छन्द भी थोड़े ही भेद से बन जाते हैं।

चतुष्पाद् ऋषिभिः ॥ २२ ॥

सात सात अक्षरों वाले यदि चार चरण हों तो 'उष्णिक्' ही छन्द होता है।

अनुष्टुब्गायत्रैः ॥ २३ ॥

आठ आठ अक्षरों के यदि चार चरण हों तो 'अनुष्टुप्' छन्द होता है।

आठ अक्षर का एक पाद और बारह बारह अक्षरों के दो पाद हों तो वह भी एक प्रकार का अनुष्टुप् छन्द ही माना जाता है।

बृहतीजागतस्त्रयश्च गायत्राः ॥ २६ ॥

जिस के तीन पाद आठ आठ अक्षरों के तथा एक पाद बारह अक्षरों का हो तो वह बृहती छन्द कहलाता है।

पश्चा पूर्वश्चेत् तृतीयः ॥ २७ ॥

यदि तृतीय पाद बारह अक्षरों का, पहिला, दूसरा और चौथा पाद आठ आठ अक्षरों के हों तो 'पश्चा बृहती, छन्द होता है।

न्यङ्कुसारिणी द्वितीयः ॥ ३८ ॥

यदि बारह अक्षरों का द्वितीय पाद हो, एक, तीन, चार पाद आठ आठ अक्षरों के हों तो 'न्यङ्कुसारिणी छन्द होता है।

पंक्ति जागतौ गायत्रौ च ॥ ३७ ॥

यदि दो चरण बारह बारह अक्षरों के तथा दो आठ आठ अक्षरों के हों तो पंक्ति छन्द होता है।

प्रस्तारपंक्तिः पुरतः ॥ ४० ॥

यदि शुरू से दो पाद बारह बारह के तथा शेष दो आठ आठ अक्षरों के हों तो 'प्रस्तारपंक्ति' छन्द होता है। इसी प्रकार थोड़े हेर-फेर से 'आस्तारपंक्ति', विष्टारपंक्ति', संस्तारपंक्ति' आदि छन्द होते हैं।

एकेन त्रिष्टुब् ज्योतिष्मती ॥५० ॥

यदि ग्यारह अक्षरों का एक पाद हो तथा आठ आठ अक्षरों के चार पाद हों तो वह पाँच पाद वाला 'ज्योतिष्मती त्रिष्टुप्' नाम का छन्द होता है।

तथा जगती ॥ ५१ ॥

यदि बारह अक्षरों का एक चरण हो तथा ८-८ अक्षरों के चार चरण हों तो पांच पादों वाला वह छन्द 'ज्योतिष्मती जगती' नामक कहा जाता है। इस के 'पुरस्ताज्ज्योतिः', मध्येज्योतिः', 'उपरिष्टाज्ज्योतिः'

नामक अन्य भी भेद होते हैं।

(विशेष छन्द)

एकस्मिन्पञ्चके छन्दः शंकुमती ॥ ५५ ॥

जब ५ अक्षरों का एक चरण हो, तथा छः अक्षरों के शेष तीन चरण हों तो वह 'शंकुमती गायत्री' नामक छन्द होता है।

षट्के ककुद्मती ॥ ५६ ॥

यदि उन सारे लक्षणों के होने पर जो छन्द बन रहा हो उस में एक छः अक्षरों वाला पाद और बढ़ा दिया जाय तो वे सारे ही 'ककुद्मती' नाम से पुकारे जाते हैं।

त्रिपादणिष्ठमध्या पिपीलकमध्या ॥ ५७ ॥

यदि तीन पाद के छन्द का मध्यम पाद कम अक्षरों का हो तथा आदि और अन्त्य का अधिक अक्षरों वाला हो तो वह छन्द 'पिपीलक-मध्या' नामक कहा जाता है। यदि आदि और अन्त्य के पाद कम से कम अक्षरों वाले हों और बीच का अधिक अक्षरों वाला हो तो 'यवमध्या' छन्द होता है।

—:०:—

छन्दों के देवता

अग्निः सविता सोमो बृहस्पतिमित्रावरुणाविन्द्रो विश्वे देवा देवताः ॥ ६३ ॥

नोट—यदि छन्द कौन सा है—यह पता न चल रहा हो तो उस मन्त्र में अग्नि के देवता होने पर गायत्री छन्द मानना चाहिये सविता के देवता होने पर उष्णिक् छन्द मानना चाहिए।

छन्दों के नाम और देवता निम्नलिखित प्रकार से समझने चाहिएँ :—

छन्दः संज्ञा	ऋषि	देवता	स्वर	वर्ण (रंग)
१–गायत्री	आग्निवेश्य	अग्नि	षड्ज (स)	सित
२–उष्णिक्	काश्यप	सविता	ऋषभ (रे)	सारङ्ग
३–अनुष्टुप्	गौतम	सोम	गान्धार (ग)	पिङ्ग
४–बृहती	आङ्गिरस	बृहस्पति	मध्यम (म)	कृष्ण
५–पंक्ति	भार्गव	मित्रावरुण	पञ्चम (प)	नील
६–त्रिष्टुप्	कौशिक	इन्द्र	धैवत (ध)	लोहित
७–जगती	वशिष्ठ	विश्वेदेव	निषाद 'अम्बष्ठ' (नि)	गौर

अर्थात् देवता के जान लेने पर उस से छन्द का अनुमान कर लेना चाहिये।

हमने पिङ्गल छन्दः सूत्र के तृतीय अध्याय में से अपने उपयोग की सभी बातें लेलीं हैं अतएव यहाँ छन्द-सूत्रों की क्रम संख्या में उलटपुलट प्रतीत होगी। क्योंकि हमने एक तरफ से सब सूत्र नहीं लिये हैं।

चतुर्थ अध्याय में एक सौ चार अक्षरों वाले छन्द को "उत्कृति"

कहते हैं ऐसी बातें व छन्दः संज्ञा-विचार ही मुख्यतया बतलाया गया है। इसी प्रकार 'अभिकृति', 'संस्कृति', 'विकृति', 'आकृति' इत्यादि छन्द भी होते हैं।

—: ० :—

वैदिक छन्दोबोधक चित्र

	छन्दः	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्तिः	त्रिष्टुप्	जगती	अङ्कानां वृद्धिः क्षयश्च
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८	४ वृद्धिः
२	देवी	१	२	३	४	५	६	७	१ वृद्धिः
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	६	१ ह्रासः
४	प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	४ वृद्धिः
५	याजुषी	६	७	८	६	१०	११	१२	१ वृद्धिः
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४	२ वृद्धिः
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६	३ वृद्धिः
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२	६ वृद्धिः

—: ० :—

देवता-परिचय

१—अग्नि

अग्नि ऋग्वेद के २०० मन्त्रों में वर्णित है और विस्तार की दृष्टि से दूसरे नम्बर का है। इसका सम्बन्ध विशेषतया यज्ञ की अग्नि से है, अतएव अग्नि को Butter backed घृतपृष्ठ, Flame haird शोचिष केश, touny beard रक्त श्मश्रु Sharp jaws तीक्ष्ण दंष्ट्र और goolden teeth रुक्मदन्त पुरुष माना गया है। इसकी जिह्वा के द्वारा देवता हवि भक्षण करते हैं। दीप्यमान मूर्धा से, ज्वालाओं से यह सब दिशाओं में विचरण करता है। इसकी उपमा अनेक पशुओं से दी गई है। शब्द करते हुये (डकराते हुए) बैल से इसका अधिक सादृश्य बतलाया है। इसके सींग भी हैं जिनको यह तेज करता है। उत्पन्न हुआ अग्नि बालवत्स के समान है। यह अग्नि देवताओं के एक वाहन (घोड़े) के समान है जो यज्ञ को देवताओं तक पहुँचाता है। आकाश में उड़ने वाले गरुड़ या श्येन के सदृश तथा जल में रहने वाले हंस के समान भी इसे बतलाया गया है। यह लकड़ी को उसी प्रकार आक्रान्त करता है जैसे पक्षी विटंक पर बैठता है, लकड़ी या घी इसका भोजन है, पिघला हुआ मक्खन इसका पेय है, तथा यह दिन में तीन बार खाना खाता है। यह देवताओं का मुख है। इसकी लपटें चम्मच हैं। इससे हव्य को स्वयं भोजन करने के लिए प्रार्थना की जाती है। इसे सोमरस पान के लिए बुलाया जाता है। इसके ज्योतिष्मान् शरीर का अधिक वर्णन दिखाई पड़ता है। यह सूर्य के समान चमकता है। सूर्य की किरणों और बिजली के समान इसका प्रकाश है। यह रात्रि में दीप्त होता है और अन्धकार को भगा देता है। इसका रास्ता काला है।

जब यह जंगलों को जलाता है तो उन्हें दाढी को नाई की तरह साफ कर देता है, इसकी लपटों की ध्वनि समुद्र की लहरों की गर्जन के समान है। इसका लाल रंग का धुआँ आकाश तक उठता है और ऐसा दिखाई पड़ता है जैसे आकाश को थामने के लिए खम्बा हो। इसे धूमकेतु या Smoke Bannered भी कहा गया है। इसका रथ सोने के समान चमकता हुआ दो या अधिक लाल घोड़ों के द्वारा खैंचा जाता है।

जिस रथ पर यह देवताओं को बैठा कर यज्ञभूमि में लाता है वह द्युपुत्र या द्यौष् पिता है। (child of heaven)। यह जल-पुत्र (वडवा-नल) भी कहा गया है। इन्द्र और अग्नि को जुड़वाँ भाई भी (twin-brother) बताया गया है। पौराणिक वर्णन के अनुसार अग्नि के अनेक रूप हैं और अनेक स्थान हैं। यह दो अरणियों (Kindling Sticks) से पैदा होता है जो उसके मातृ स्थानीय हैं। सूखी समिधाओं से, शुष्क काष्ठों से अग्नि का जन्म होता है और उत्पन्न होते ही यह अपने माता-पिता का बध कर देता है। अग्नि का जन्म दश कन्याओं से माना जाता है अर्थात् वे दश कन्यायें प्रत्येक मनुष्य की दश अंगुलियां हैं। इसे "सहस् पुत्र" भी कहा जाता है क्योंकि जब अग्नि जलाई जाती है तब मनुष्य को जोर लगाना पड़ता है। प्रतःकाल के समय अग्नि का बालक रूप होता है। अग्नि जल का गर्भ रूप (Ambrio) है जो जल में भी उत्पन्न होता है। जब वह आकाश में उत्पन्न हुआ तब मातरिश्वा (वायु) के द्वारा पृथ्वी पर आया। सूर्य भी अग्नि का ही एक रूप है। अग्नि के कहीं-कहीं दो जन्म बताए गए हैं, द्युलोक और पृथ्वी लोक। अग्नि का सम्बन्ध मानवीय जीवन से अधिक है। इसीलिए अग्नि को गृहपति या अतिथि कहते हैं। यह प्रायः उपासकों के पिता, भाई और पुत्र के रूप में भी बताया गया है। वह देवाओं का दूत है और ऋत्विज भी कहलाता है। इसे पुरोहित, होता, अध्वर्यु

(यज्ञ करने वाला) या ब्रह्मा भी माना जाता है। इसका ऋत्विजपन (priesthood) एक विशेष रूप है जिस प्रकार इन्द्र का योद्धा होना एक विशेष रूप है। यह यज्ञ के प्रत्येक रहस्य को जानता है अतएव इनका नाम जातवेद भी है। इसके महत्त्व का वर्णन अन्य देवताओं से बढ़ कर है, इसकी सार्वभौम शक्तियाँ अनेक बार प्रशंसित की गई हैं। हव्य-वाहन (Who conveys the offering) नाम का अग्नि क्रव्याद नामक (Corps devouring) अग्नि से भिन्न है। अग्नि यह संज्ञा इण्डोयोरोपियन है, लैटिन में इसे इग्नि और सालावोनिक में ओग्नि कहते हैं। सम्भव है कि यह शब्द agile फुर्तीला गुण रखने के कारण बना हो।

जिस प्रकार ऋतु और युद्ध कर्म इन्द्र के आधीन है उसी प्रकार आर्यों के सारे गृहकृत्य अग्नि के द्वारा होते हैं। इन्द्र जल का प्रदाता है और अग्नि तेज का। प्राकृतिक दृश्य स्पष्टतया अग्नि को पुरुषाकारता (Personification) प्रदान नहीं करता। अग्नि का हँसना मनुष्यों के समान वर्णित है। अग्नि को सहस्र शृङ्ग, यविष्ठय (ever young) मेध्य (ever pure), कविशस्त (Praised by the Wise) दमुना (intiment house friend) भी कहते हैं। अग्नि काष्ठों से उत्पन्न होता है, जल से उत्पन्न होता है और द्युलोक में उत्पन्न होता है। इस प्रकार अग्नि के तीन जन्म माने जाते हैं। दूसरे जन्म के कारण ही अग्नि का नाम 'अपांनपात्' (Son of the water) पड़ा है। अवेस्ता में इसे 'अपांनेपो' कहते हैं। प्रातःकाल उषा के आते ही अग्नि का जन्म होता है और यह वैसे ही जमीन से उठता है जैसे पक्षी वृक्षों से। अग्नि घी के द्वारा हव्य भक्षण करता है अतएव घृतजिह्व कहलाता है। इसके लिए वेदी माता के वक्षःस्थल के समान है जहां यह बढ़ता है वहां यह हव्यवाहन बनता हुआ एक दूत अर्थात् messenger के समान है। यह अग्नि वैश्वानर और नाराशस इन दो नामों वाला भी कहा जाता

है। क्योंकि इसे सब मनुष्य चाहते हैं और सब ही इसकी स्तुति करते हैं। यह जहां उत्पन्न होता है वहीं नष्ट होता है। अतएव अग्नि को पितृहन्ता भी कहते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद के २०० मन्त्रों में अग्नि का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

—:०:—

2—Marutas. (मरुत्)

मरुत् देवताओं के एक समुदाय का नाम है जिनका इन्द्र, अग्नि और पूषा के साथ वर्णन किया गया है। इनका वर्णन सदैव बहुवचन में होता है। ये मरुत् रुद्र के पुत्र और पृश्नि के भी पुत्र रूप में वर्णित हैं। पृश्नि एक गौ का नाम है। आगे चल कर मरुतों को वायु का पुत्र भी बतलाया गया है। वे मरुत् सब भाई हैं और उम्र में एक से हैं। एक ही जगह से उत्पन्न हुये और एक ही घर में रहते हैं। ये पृथ्वी पर बढ़े और आकाश में पले। 'रोदसी' का वर्णन इनके सम्बन्ध में किया गया है। वह इनके रथ में रहती है तथा इन की पत्नी सी प्रतीत होती है। मरुतों की सूक्ष्म बुद्धि का वर्णन स्थान स्थान पर मिलता है। ये शरीर से सुनहरे या लाल हैं और अग्नि के समान दीप्तिशाली हैं। इनकी तलवारें बिजली की तरह चमकती हैं और इनके भाले lighting speared को 'ऋष्टि विद्युत्' विशेषण दिया जाता है। इनका सुनहला कुल्हाड़ा है। ये धनुष और बाण को भी उपयोग में लाते हैं पर विशेषतया धनुष बाण इनके पिता रुद्र का अस्त्र है। ये माला पहनते हैं, सुनहला चोगा, भूषण और टोप (helmets) पहनते हैं। केयूर और कड़े इनके आभूषण हैं। इनके रथ बिजली की तरह चमकते हैं जिनमें घोड़ियां जोती जाती हैं जो मटियाली और चितकबरी होती हैं। उन पर धूल नहीं जमती, वे बूढ़ी नहीं होती और शेरों जैसी भयंकर होती हैं। ये पहाड़ों को हिला देते हैं। द्युलोक और पृथ्वीलोक

उनके भय से काँपते हैं। जंगली हाथियों के समान ये पेड़ों को गिरा देते हैं और उनका विध्वंस कर देते हैं। इनका मुख्य कार्य बादल से वर्षा गिराना है। ये सूर्य को ढक देते हैं। ये पहाड़ से झरनों को प्रवाहित करते हैं। इनकी वर्षा दूध, घी या शहद की वर्षा है। ये गर्मी पसन्द नहीं करते और सूर्य के लिये मार्ग बनाते हैं। कहीं कहीं वे गायक रूप में भी वर्णित हैं। जब इन्द्र दैत्यों को मारता है तब ये इन्द्र की प्रशंसा में गान करते हैं और सोमरस निकालते हैं। इनका बिजली की कड़क के साथ सम्बन्ध है। इनका इन्द्र के साथ भी सम्बन्ध है क्योंकि ये वृत्र के साथ युद्ध करने में उसकी सहायता करते हैं। कभी कभी वे स्वयं दैत्यों का हनन करते हैं और वृत्र को मार कर गौ का उद्धार करते हैं।

मरुतगण अपने भक्तों से ओले, वर्षा, बिजली का प्रहार दूर करते हैं और उनकी गौओं की रक्षा करते हैं। वे अपने उपासकों को रोग से मुक्त करते हैं। इनकी रोगनिवारक औषधी एकमात्र जल है। मरुत् कहीं आँधी तथा कहीं जलप्रलय का भी देवता है।

—:०:—

३—विष्णु देवता

ऋग्वेद के पहले मण्डल के १५४वें सूक्त में विष्णु देवता का वर्णन मिलता है। सर्वानुक्रमणी के अनुसार ६ ऋचायें विष्णु की स्तुति में प्रयुक्त हुई हैं। विष्णु की प्रसिद्धि 'त्रिविक्रम' के नाम से है। पुराणों में 'बलिदैत्य' को छल से पराजित करने की कथा इस त्रिविक्रम के आधार पर ही कल्पित की गई है। तीन लोकों को व्याप्त करने वाला देवता ही 'विष्णु' कहलाता है। व्याकरण की रीति से 'विष्णु' शब्द

इसी अर्थ का द्योतक है। वेद में 'विष्णु' शब्द सूर्य वाचक भी है। सूर्य अपनी किरणों को द्युलोक, पृथ्वी-लोक और अन्तरिक्ष-लोक में फैलाता है। यही उसका त्रिधा विक्रम है। सूर्य के उदित होते ही जरायुज, अण्डज और उद्भिज तीनों प्रकार के प्राणि चहचहा उठते हैं। यही विष्णु का उरुगायत्र है। 'उरुगाय' शब्द का अर्थ है—जिसकी अनेक प्राणि स्तुति करें या जिसकी बड़ी विशाल कीर्ति हो, या जो अनेक देशों में गमन करे या जिस की सामर्थ्य को देख कर भयभीत होते हुए शत्रु दल क्रन्दन कर उठे। 'उरुगाय' शब्द ऋग्वेद में १२१ बार आया है और विष्णु के लिये यह बहुधा प्रयुक्त होता है। यद्यपि प्राणियों में एक "स्वेदज" भी भेद है—उसकी यहाँ गणना नहीं की गई है—क्योंकि वह क्षुद्रतम है। विष्णु संसार का रक्षक प्रसिद्ध है और रक्षा करने के लिये शक्ति की बड़ी आवश्यकता होती है। पाशविक शक्ति की अपेक्षा बौद्धिक शक्ति प्रबल है। इसी-लिये विष्णु सब देवताओं में चतुरतम प्रसिद्ध है। शिव और ब्रह्मा पर जब आपत्ति आती है—वहां पर भी विष्णु रक्षा का काम करते हैं। कोष में 'विष्णु' को इन्द्र का छोटा भाई कहा गया है। इन्द्र का नाम वृषा और विष्णु का ही नामान्तर 'उपेन्द्र' है। आसुरी शक्तियां जब इन्द्र (आत्मा) को घेर लेती हैं, तब व्यापक परमात्मा अपनी शक्ति से इन्द्र की रक्षा करता है यही 'वृष्णोः' इस विशेषण का तत्व है। विष्णु के तीन पदक्षेप (कदम) आत्मशक्ति से परिपूर्ण हैं। 'स्वधा' शब्द का अर्थ 'अपना स्थान है, अर्थात् विष्णु आत्माराम' हैं, उसका पदक्षेप ही किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिये नहीं, किन्तु आत्मतृप्ति और आत्मरति के लिये है। अर्थात् उन तीन चरणों में केवल आत्मानन्द है—और एक एक चरण में द्युलोक, अन्तरिक्ष-लोक और पृथ्वी-लोक समाये हुए हैं। विष्णु के सेवकों के लिये आनन्द का स्रोत

प्रवाहित होता है। यज्ञ में यज्ञादि के द्वारा परोपकार में निरत व्यक्ति उस आनन्द के स्रोत में गोता लगाते हैं। इस आनन्द के स्रोत का ही वर्णन अनेक सींगों वाली गायों के रूप में किया गया है। वे गायें इन्द्रियां हैं—उनके सींग वासनायें हैं। ये वासनायें जब अन्तर्मुख होती हैं—तब आनन्द का स्रोत उद्भिन्न हो जाता है। किसी किसी मन्त्र में विष्णु शब्द का अर्थ 'यम' और 'वायु' भी किया जाता है—जिसका स्पष्ट आशय है कि विष्णु शब्द यौगिक अर्थ को लेकर उन उन अर्थों में व्यवहृत हुआ है। विष्णु के महत्व प्रदर्शन के लिये हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद के द्वारा उपासना का वर्णन भागवत में आता है। वहां पर विष्णु के निवास-स्थान का नाम 'गोलोक' है। गोलोक और गोकुल दोनों पर्यायवाची हैं। तदनुसार "स उ हि एव साधुकर्म कारयति यं उन्नि नीषते। स उ ही एव असाधुकर्म कारयति यं अधोनिनिषते"। इस बृहदारण्यक उपनिषद् के वाक्य के अनुसार विष्णु वह शक्ति है—जो इन्द्रियों और आत्मा को उन के कर्मानुसार नियुक्त करती है। इस प्रकार विष्णु को हम शरीर का अधिष्ठातृ देव कह सकते हैं।

विष्णु शब्द सूर्य का भी वाचक है। विष्णु ने ऋग्वेद में मुख्य स्थान नहीं ग्रहण किया केवल पांच छः सूक्तों में ही इसका वर्णन मिलता है। (Anthropomorphic अन्तः पुमर्पितं, अन्तः=अन्दर पुमान् के लिये अर्पित) अर्थात् मनुष्य के समान जो विष्णु के गुण हैं उनमें से एक यह है कि वह युवा है। पदन्यास करता है (वामन अवतार) और बालक से अधिक ऊंचाई वाला नहीं है। उसके लम्बे कदम Three Steps जिनके कारण उरुगाय या उरुक्रम कहलाता है, प्रसिद्ध है। उसके दो क्रम मनुष्यों द्वारा ज्ञात हो सकते हैं किन्तु तृतीय क्रम मानव-दृष्टि से अगम्य है। स्वर्ग या विष्णु-लोक उसका निवास स्थान था जहां पर सूर्यादि ग्रह गति करते हैं। उसके दस घोड़े हैं अर्थात् तीन महीने का एक ऋतु है और उनके चार हैं अर्थात् वर्ष में चार मुख्य ऋतुएं

होती हैं जो प्रत्येक तीन मास वा ६० दिन की होती हैं, उनके बनाने वाला सूर्य है, इस प्रकार विष्णु सूर्य की क्रियाओं का एकमूर्त रूप है। उसके तीन पैर १२ महीने के तीन २ त्रिक को बताता है अर्थात् तीन त्रिक एक वर्ष को बनाता है। इस वर्ष भर को व्याप्त करने वाला विष्णु या सूर्य है, दूसरा विष्णु का गुण इन्द्र की मैत्री है जिसके साथ वह वृत्रासुर के वध में सहयोग देता है। विष्णु के नाम से आने वाली ऋचाओं में इन्द्र ही एकमात्र देवता है जो एससे सयुक्त है। केवल पहले मण्डल की ६ सूक्त की ६६वीं ऋचा ऐसी है जो दोनों देवताओं को अर्थात् विष्णु और इन्द्र को एक साथ सम्बोधित करती है। वृत्र-वध के कारण विष्णु का सम्बन्ध मरुत् गण से भी होता है जैसाकि १–५–८७ में कहा गया है। विष्णु शब्द का अर्थ क्रियाशील है। यह क्रियाशीलता सूर्य आदि में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है अतः वही असली विष्णु है।

४—द्यावापृथिवी

द्युलोक और पृथ्वी को एक युगल देवता के रूप में ऋग्वेद में बार २ कहा गया है। वेद में द्यौः नाम की अपेक्षा द्यावापृथिवी का नाम अधिक आता है। इसे 'रोदसी' के नाम से भी पुकारते हैं और यह शब्द ऋग्वेद में १०० बार आया है। द्यावापृथिवी सब प्राणियों के जनक और रक्षक हैं। अनेक मंत्रों में ये भिन्न भिन्न देवताओं के उत्पन्न करने वाले भी कहे गऐ हैं। ये एक महान् वृषभ और अनेक रंगों वाली एक गौ के उत्पादक हैं। ये कभी वृद्ध नहीं होते। ये विस्तृत और लम्बे चौड़े हैं। ये भोजन और धन देते हैं। ये यज्ञ और स्थान के देने वाले हैं। ये कभी कभी आचार के नियमों के पालन करने वाले भी कहे जाते हैं। ये बुद्धिमान् हैं और शरीर के पोषक तत्त्व को बढ़ाते हैं। माता पिता के समान वे भूमण्डल के रक्षक हैं। यह दोनों देवता प्रायः

सम्बद्ध रहते हैं। दोनों का एक दूसरे पर समान अधिकार है। यह दोनों अन्य युगलों की अपेक्षा अधिक अधिकार रखते हैं।

—:०:—

५—इन्द्र

इन्द्र एक प्रिय राष्ट्रीय देवता है। शारीरिक दृष्टि से अत्यधिक Anthropomorphic है। इन्द्र के विषय में काल्पनिक पौराणिक गाथायें अधिक कही गई हैं।

आरम्भ में वह विद्युत् का देवता माना जाता था। जो वर्षा के रोकने वाले दैत्यों का संहार करता था और अन्धकार को दूर करता था। इन्द्र को युद्ध का भी देवता कहा गया है। इन्द्र आर्यों की रक्षा करता है, जो उनके निसर्ग शत्रु हैं उन्हें मारता है। उसके सोमपानादि कार्य ऐसे हैं जिनसे वह मनुष्य जैसा लगता है। उसके मनुष्य की तरह दाढ़ी और जबड़ा (jaws) भी है। सोमपान में उसके पेट की शक्ति बहुत बड़ी बताई गई है। उसकी भुजायें वज्र को घुमाने वाली और बिजली को गिराने वाली मानी गई हैं। इस वज्र को इन्द्र के लिये त्वष्टा ने बनाया था जो पक्के मकानों में रहता था। उसे अंकुशधारी भी कहा गया है। उसका सुनहला रथ है और उसके हरे घोड़े हैं। वह रथ पर चढ़ा हुआ ही लड़ता है। उसके रथ के बनाने वाले ऋभु हैं जो देवताओं के शिल्पी हैं। वह तीन सोम भरी झीलों को पी गया था ऐसा वर्णन दसवें मंडल के ११९वें सूक्त में आता है। इन्द्र का पिता द्यौ माना गया है। अग्नि उसका सगा भाई है, पूषा भी उसका भाई है। इन्द्राणी नाम की उसकी स्त्री है। मरुतगण उसके मुख्य सहायक हैं। जो युद्ध में उसकी सहाता करते हैं इसलिये इन्द्र का नाम मरुत्वान् है। इसी प्रकार शक्तिशाली होने के कारण उसे शक या शची-पति भी कहते हैं क्योंकि शची नाम शक्ति का है। कर्मों

की शक्ति रखने के कारण ही उसे शतक्रतु कहा गया है। वह सोपान से आनन्दित हो और मरुतगण की सहायता प्राप्त कर वृत्रासुर पर प्रहार करता है, जो वृत्रासुर वर्षा को रोकता है। जब इन्द्र और वृत्रासुर का युद्ध होता है। तब द्युलोक और पृथ्वी लोक काँप उठता है। इन्द्र और वृत्र के युद्ध में पहाड़ नष्ट हो जाते हैं और जलों के झरने वह पड़ते हैं जो गौओं के समान बाड़े में बन्द थे। वेद में विद्युत् और मेघ गर्जन को वज्र शब्द दिया गया है, बादलों को पहाड़ बतलाया गया है और वर्षा को नदियों के बहने का रूप दिया गया है। बादल रूपी पहाड़ों में दैत्य निवास करते है जहाँ से इन्द्र उन्हें गिरा देता है। जलों का कहीं कहीं गौ के रूप में वर्णन किया गया है और कहीं झरना (Spring, उत्स), कहीं कबन्ध (cask) कहीं जल का बर्तन (pale), कोष, घड़ा के रूप में वर्णन किया गया है। बादल १०० की संख्या में दैत्यों के निवास स्थान बन कर इन्द्र पर हमला करने के लिये आते हैं और इन्द्र उन्हें मार कर पुरभित् नाम धारण करता है। इन्द्र ने हिलते हुए पहाड़ को स्थिर करके रक्षा की और संसार की क्रियायें यथावत् चलाईं। उसी ने पृथ्वी को चटाई की तरह चौड़ा किया और अदृश्य पदार्थों को दृश्य रूप दिया। इन्द्र अपने उपासकों का रक्षक, सहायक और मित्र कहा गया है क्योंकि वह उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण करता है इसलिये उसे मघवा कहा जाता है। इन्द्र को उषा के रथ को हिलाने वाला अर्थात् सूर्य को प्रेरणा देने वाला बतलाया गया है। वह सूर्य के घोड़ों को रोक लेता है और सोम को जीत लेता है। पौराणिक गाथाओं में आता है कि इन्द्र को एक बार कैद किया गया था जिसमें सरमा (देवशुनी) की मदद ली गई थी जब कि पणियों ने गौओं को गुफाओं में बन्द कर दिया था। इन्द्र का सुदास नाम के राजा से किये गये युद्ध का वर्णन भी मिलता है। सारांश यह है कि इन्द्र कार्य

करने में शक्तिशाली दुर्धर्ष है और अथक लड़ने वाला है। मनुष्यों की भलाई करने, दान देने में बड़ा ही उदार है। वह साथ ही साथ सोमपान करने में शराबखोरों से बढ़ कर और अपने त्वष्टा के मारने में प्रसिद्ध है। इन्द्र उस वरुण की अपेक्षा अनेक दृष्टि से बढ़ कर है, जो वरुण संसार का एक बड़ा राजा है और संसार को एक नियम में चलाता है तथा धर्म, चरित्र के आदर्शों को स्थापित करता है।

वैदिक गाथाओं में इन्द्र और वृत्र दोनों ही बड़े प्रबल शत्रु कहे गए हैं तथा इन्द्र का अन्य देवताओं के साथ सम्बन्ध किसी न किसी रूप में वेद में भी पाया जाता है। यही कारण है कि १०२८ सूक्तों में इन्द्र ही वर्णित है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष गुणों का वर्णन करने के लिए देवताओं का भी स्वरूप वैसा ही विचित्र चित्रित किया जाता है। अतएव देवताओं को कुछ लोग पुरुषाकृति वाले मानते हैं तथा कुछ अपुरुषाकृति वाले। ऋग्वेद में इन्द्र की तीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। (१) उसकी सर्वतोमुखी प्रतिभा है। (२) वह युद्धप्रियों का नेता है। (३) वह दैत्यों या राक्षसों का स्वाभाविक शत्रु है। वृत्र और इन्द्र के युद्ध का वर्णन तो पद पद पर दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक दृष्टि के अनुसार वृत्र एक असुर है, जो वृष्टि का अवरोधक है तथा जिसके मारने के लिये इन्द्र अपना वज्र तेज करता है जैसे, अमरूद या आम काटने के लिए चाकू पैना किया जाता है।

Hillie Brant नामक पाश्चात्य वैदिक विद्वान् ने यह सिद्ध किया है कि इन्द्र कोई वृष्टि देवता न था और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वर्षा काल के सम्बन्ध के मन्त्रों से तीन नामों का विशेष सम्बन्ध दिखाई देता है, त्रित, पर्जन्य और इन्द्र का। पर इन्द्र का वृष्टि का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

तैत्तरीय ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने सारे देवता उत्पन्न किये, पर इन्द्र को नहीं किया। ऋग्वेद के १/५/२/३ मन्त्र को देखने से स्पष्ट विदित होता है कि त्रित ही पहले जलावरोधक दैत्यों का संहार करता था परन्तु बाद में इन्द्र ने इस कार्य को अपने हाथ में ले लिया। वैदिक देवताओं में मनुष्य की आकृति और प्रकृति से इन्द्र अधिक मिलता जुलता है, उसका वर्णन ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल, सूक्त १६, मन्त्र २ में, ८/८५/३ में व १/७/२ में मिलता है। वह हमारे समक्ष एक सुदृढ़, सुन्दर आर्य की आकृति उपस्थित करता है। उसकी उत्पत्ति माता के पार्श्वभाग से बताई गई है और उसने अपनी माता को विधवा बना दिया। इन्द्र को कन्या वर्ग का गीत सुनने का बड़ा शौक है तथा वह अविवाहित कन्याओं की भलाई में रुचि लेता है। 'मरुत्' इन्द्र के सहकारी हैं इसीलिये इन्द्र का नाम मरुत्वान् भी पड़ा है। इन्द्र ज्येष्ठ' पद से भी मरुतों का ही ग्रहण किया गया है। इन्द्र शक्ति का प्रतीक है अतः उसे 'महान् वृषभ' से उपमित किया जाता है। शुक्र, शुन्मत्, वृषा, शचीवित्, शतक्रतू, मनुस्वान् इत्यादि शब्द उसकी उच्च गुणातिशयता को दिखाते हैं। जब इन्द्र विजय करता हुआ आगे बढ़ता जाता है, तब वरुण उसके विजित देशों में नियम और व्यवस्था करता चलता है। वरुण का यह नारा था कि इन्द्र जीतता चले और वह अधिकार, नियम और व्यवस्था करता चले।

इन्द्र का सम्बन्ध जहां वरुण के साथ अत्यधिक है, वहां बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति के साथ भी अधिक दीखता है, किन्तु यह सारी धार्मिक जगत् की आलङ्कारिक कल्पना है। वस्तुतः ऋषि दयानन्द की दृष्टि से यह सब आलङ्कारि कल्पित सत्य है और वह इस प्रकार है कि उनके मतानुसार इन्द्र प्राण है, वरुण इन्द्रियाँ हैं असुर पराजय आसुरीभावों को पराजित करता है। ऋग्वेद में स्वर्ण, रजतादि चमकदार, कान्तियुक्त वस्तुओं को भी इन्द्र नाम से व्यहृत किया गया

है। इसीलिये निरुक्तकार कहते हैं कि "या च का च बल कृतिः इन्द्र कर्मैव तत्" अर्थात् सब बलयुक्त दीप्तिशाली पदार्थ इन्द्र कहे जाते हैं, यही इन्द्र की व्यपकता है।

६—रुद्र देवता

रुद्र का ऋग्वेद में विशेषता स्थान नहीं है। उसका वर्णन कुछ ऋचाओं में ही मिलता है। एक ऋचा में तो सोम के साथ रुद्र का वर्णन गुणीभूत रूप में मिलता है। उसके बाहु, शरीर तथा अवयवों की सत्ता का भी वर्णन है। उसके ओष्ठ सुन्दर हैं। वह पटियादार बाल रखता है। वह भूरे रङ्ग वाला है। उसकी आकृति कान्तियुक्त और मसृण है। वह मध्याह्न कालीन सूर्य के समान चमकता है और सोने के समान वर्ण वाला है। वह सोने के आभूषणों को धारण करता है। वह एक चमकदार हार गले में पहने हुए है। वेद में निष्क शब्द हार का ही वाचक है। वह सर्वदा एक सवारी में चलता है। उसके अनेक प्रकार के शस्त्रों का प्रायः वर्णन मिलता है। वह वज्र धारण किये हुये है। उसके बिजली सी चमक वाले बाण ही एक मात्र विशेष आयुध हैं। रुद्र का मरुत् गणों के साथ सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। वह मरुतों का पिता है और उसने पृश्नि नाम की गौओं के teats या थनों से उन्हें उत्पन्न किया था। वह नाश करने में एक भयंकर जङ्गली जन्तु के समान है। वह जन्तु लाल रंग का स्वर्ग का शूकर है, उसे 'अरुष्' कहते हैं। वह शूकर विशालकाय है, रुद्र शक्तिशालियों से भी बढ़कर शक्तिशाली है। शीघ्रगामी, फुर्तीला और अदम्य है। शक्तिमत्ता में उसे कोई देवता भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। वह युवा है, वह संसार का स्वमी (Lord) है, जगत् पिता है। वह मनुष्यों के पुण्य

और पापों का निरीक्षण भी करता है। वह उदार (मीढवान्) है। वह आशुतोष और शिव है। ऋचाओं में उसके भयंकर बाणों का वर्णन मिलता है। उस का क्रोध संसार का महत्त्व कम करने वाला अपरिवर्त्य, ऊधर्षणीय और वीभत्स है। शिव को एक द्रोह रखने वाला देवाधिदेव समझा जाता है। उसकी प्रार्थना की जाती है जिससे वह हमें न मारे और न हानि पहुँचावे।

उसके द्रोह को दूर करने के लिये एवं उसके गौ और मनुष्यों के मारने वाले वज्र से बचने के लिये अनेक तरह की प्रार्थनाएँ की गई हैं। वह राक्षसों के समान एक मात्र अपकारी नहीं है, वह केवल कष्टों से ही नहीं बचाता किन्तु दया का दान भी देता है। उसकी स्वास्थ्य देने वाली शक्तियाँ विशेषतया वर्णित हैं। उसके पास हजारों औषधियाँ हैं। इस अर्थ को व्यक्त करने के लिये जलाष (cooling) और जलाषभेषज (Possessing cooling remedies) यह दो भिन्न-भिन्न अर्थों वाले विशेषण वेद मंत्रों में आते हैं। उसकी भौतिक शक्तियाँ स्पष्टतया नहीं गिनाई गई हैं, फिर भी प्राकृतिक वर्णन से यह समझा जाता है कि आँधी उठाना इसी का काम है। उसका दुःखपूर्ण स्वरूप नर-वृक्ष-पशु ध्वंस करने वाली बिजली के समान दिखाई पड़ता है। उसके कठोर पर कोमलता पूर्ण विशेषणों से यह सिद्ध होता है कि वह वस्तुतः शिव ही है रुद्र संज्ञा द्युलोक और पृथ्वी को अपनी शक्ति से रोदन कराने के कारण पड़ी है। रुद्राष्टाध्यायी या यजुर्वेद में तो उसे शत्रु-प्रतिकार करने में अनुपम सामर्थ्ययुक्त कहा गया है। वह शान्ति का अग्रदूत है। इस प्रकार वैदिक रुद्र विरोधाभासों का एक मूर्त उदाहरण है।

—:o:—

७—मित्र

मित्र और वरुण का इतना अधिक साहचर्य है कि तीसरे मण्डल की ५९वीं ऋचा को छोड़ कर और कहीं भी मित्र का एकाकी रूप में

वर्णन नहीं मिलता। उस मंत्र में वर्णित अर्थों के आधार पर मित्र का चरित्र अनिश्चित दिखाई पड़ता है। वह शब्दों द्वारा मनुष्यों को नियन्त्रित करता है। निर्निमेष आँखों से कृषकों को देखता है तथा मनुष्यों को कृषि आदि के लिये प्रेरणा देता है। सविता भी मित्र के जैसे ही गुण वाला है। अग्नि जो कि ऊषा के आगे आगे होता है, मित्र का जन्मदाता है। पूर्ण रूप से प्रदीप्त होने पर वही अग्नि 'मित्र' संज्ञा धारण कर लेता है। अथर्ववेद के अन्दर मित्र और वरुण का भेद बताया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में मित्र दिन के साथ सम्बन्धित है और वरुण रात्रि के साथ। मित्र सूर्य का देवता है। वह Sue God कहाता है। कहीं कहीं मन्त्रों में वह प्रकाश का भी देवता है। मित्र शब्द का व्याकरण रीति से विश्लेषण करने पर वह सुहृदवाची मिद् धातु से बनता है, जैसा कि वेद में मित्र के स्वभाव का वर्णन मिलता है उससे प्रतीत होता है कि मित्र देवता बड़ा दयालु और शक्तिशाली है।

—:o:—

८—उषस्

उषा देवता का वर्णन ३२ मन्त्रों में मिलता है। इसको Anthropomorphism में वर्णित किया गया है। भौतिक दृश्यों का वर्णन कवि की कल्पना से प्रस्तुत किया गया है। उषा एक नर्तकी के समान सजी हुई, चमकीले वस्त्र पहने हुए पूर्व में उदित होती है और अपने आकर्षक रूप को प्रकट करती है। वह प्रकाश में स्नान करती हुई अन्धकार को भगाती है और रात्रि-रूपी नायिका की काली पोशाक (वस्त्रों) को उतार कर फेंक देती है। वह युवती है और प्रतिदिन उत्पन्न होती है। वह एक प्रकार के रंग में चमकती है और मरणशील मनुष्यों के जीवन का उद्बोधन करती है। उसके निकलते ही आकाश का प्रत्येक कोना जगमगा जाता है और वह स्वर्ग का द्वार खोल देती है। उसकी किरणें पशुओं के झुण्ड के समान निकलती हैं। यह दुःस्वप्नों

और हानिकारक भूत-प्रेत, पिशाचों को भगा देती है। वह प्रत्येक प्राणी को अपनी अपनी क्रिया प्रवृत्त करती है। चिड़ियाँ आकाश में उड़ने लगती हैं और मनुष्य कार्य में व्यस्त हो जाता है। वह प्राकृतिक नियम का उल्लंघन नहीं करती, वह देवताओं के उपासकों को प्रातःकाल जगाती है और उनको भजन में प्रवृत्त करती है, वह देवताओं को सोमपान में लगाती है। उसका रथ चमकदार है और उस में लाल रंग के घोड़े जुतते हैं जिन से वह खींची जाती है। यह लाल घोड़े सूर्य की किरणें ही हैं। उषा का सम्बन्ध सूर्य के साथ अधिक है। उसने सूर्य के यातायात के मार्ग को अनावृत कर दिया है। वह सूर्य की पत्नी के समान है, सूर्य उसका एक रसिक युवक के समान अनुगमन करता है। वह देवताओं से अनेक प्रकार के भावों को अपने लिये बलात् आदर-पूर्ण वाक्यों में निकलवाती है। कहीं कहीं उषा को सूर्य की माता भी बताया गया है और सूर्य उसका कान्तियुक्त पुत्र है। वह अपनी बड़ी बहन रात्रि की छोटी बहन है, इसी कारण 'उषा सानक्त' और 'न क्तो षासा' यह दो शब्द साथ साथ वेद में प्रस्तुत दिखाई देते हैं। वह आकाश में उत्पन्न होती है इसी लिये वह स्वर्ग की पुत्री है। उषा का सम्बन्ध अग्नि के साथ भी है जो कि उसका कामुक (lover) है। उषा अग्नि को जलाती है, अग्नि उषा से मिलने के लिये ऊपर को लपटें लेती हैं। उषा का वर्णन अश्विनी-कुमारों के साथ भी मिलता है। उषा अपने उपासकों को धन और पुत्र प्रदान करती है; वह अपने भक्तों को यश और महत्व भी देती है इसी कारण उसका नाम 'मघोनी' भी कहते हैं। व्याकरण की रीति से उषा······संज्ञा······वस्······धातु से बनी है। जिस में ज्योतिष्मान् पदार्थ निवास करते हैं वही उषा है। उषा का नाम ऋग्वेद में ३०० बार आया है। ऋषियों द्वारा इसकी बहुधा स्तुति की गई है। उषा वैदिक काव्य का विशेष विषय रहा है, अनेक क्रियायें उषा के बिना अधूरी हैं। पौराणिक गाथायें और ऐतिहासिक

सत्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि उषा ब्राह्मण भाग में और यज्ञों में विशेष स्थान रखती है। उषा अपनी शानदार चमक के लिये, त्रुटि रहित नियमों के लिये, अबाधित उन्नति के लिये, सुखदायक भौतिक परिणामों के लिये और प्रत्येक नवीन दिन के लिये प्रतीक रूप है। उषा का आगमन प्राचीन आर्यों को हर्षातिरेक से भर देता था। उषा का व्यक्तित्व, कार्य और देवत्व अन्य किसी भी देवता से कम नहीं। उषा लौकिक कार्यों के साथ बहुत सम्बद्ध है। उषा से बौद्धिक और आचार सम्बन्धी त्रुटियों को पूर्ण करने की प्रार्थना की गई है, इसीलिये उषा को 'रश्मिभिः व्यक्ता' यह विशेषण दिया गया है। उषा के कार्यों का वितरण ऋत (natural law) के द्वारा होता है। उषा की सवारी प्रकाश युक्त घोड़ियां हैं जो 'सुभगा' विशेषण वाली हैं। उषा वर्ष (साल) की स्त्री और ऋतुओं की स्वामिनी मानी जाती है। शतपथ ब्राह्मण में उषा के विषय में यह कथा आती है कि उसे एक काले रंग के दैत्य ने गुफा में बन्द कर दिया था। सब देवता ढूंढते फिरते थे। अन्त में सूर्य ने उषा को दैत्य के पंजे से छुड़ाया। जिसका स्पष्ट अर्थ है कि सूर्य-किरणों का रात्रि संहार करती है और इन्द्र रूपी सूर्य उषा रूपी गौओं को बन्धन से मुक्त करता है। उषा को सूर्या भी कहते हैं जिसका अर्थ सूर्य की स्त्री अर्थात् Sun goddess है। इस प्रकार उषा का बहुविध वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

९—पर्जन्य

पर्जन्य का वर्णन केवल ऋग्वेद के तीन सूक्तों में मिलता है। इसे मेघ का देवता भी कहा जाता है। बादल जल के रखने के लिए एक बड़ा वर्तन या मशक (दृति) है। पर्जय को एक वृषभ के समान बताया गया है जो कि अंकुरोत्पत्ति और पृथ्वी के विस्तृत बनाने में विशेष निपुण है उसकी सवारी जल पूर्ण मेघ है। वह दिव्य जलों का पिता

कहा जाता है और जल वर्षा करने में कभी-कभी उसे वज्र अर्थात् गर्जन और बिजली के रूप में भी कहा गया है। पर्जन्य तृण और अंकुरों का जन्मदाता तथा पालक माना जाता है। पर्जन्य के कारण ही गौओं में, घोड़ियों में और अन्य स्त्री जाति के प्राणियों में उत्पादन शक्ति का आविर्भाव होता है। उसे द्युलोक और पृथ्वीलोक का पिता भी कहा जाता है। पृथ्वी पर्जन्य की पत्नी रूप में मानी गई है। पर्जन्य को द्यौः (द्युलोक) का पुत्र भी कहा गया है। पर्जन्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है जन्य—उत्पन्न होने वाले चराचर को पूर्ण करने वाला। अतएव "आपो वै प्रजापतिः" यह ब्राह्मण वाक्य इस अर्थ का ही समर्थक है और इस तरह ही इसकी संगति भी है।

१०—पूषन्

पूषा का वर्णन सोम के साथ आता है। पूषा की पुरुष रूपता (Anthropomorphic रूप) बहुत कम मिलती है। इसके पैर व दाहिने हाथ का वर्णन मिलता है। उसके पटियादार जुल्फों वाले बाल हैं और एक दाढ़ी भी है। उसकी सुनहरी तलवार है, उसके समीप एक मोचियों जैसी टाँकी (awl) तथा एक अंकुश (goad) भी रहता है। पूषा के रथ में घोड़े के स्थान पर बकरे जोते जाते हैं। उसका भोजन दलिया या दही मिले सत्तू (करम्भक) हैं। वह प्रत्येक प्राणी को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखता है, वह अपनी माता का प्रेमी और अपनी बहिन उषा (dawn) का भी। वह सूर्य की पुत्री या पत्नी है। सूर्य को देवताओं ने पति बनाया है उसके विवाह की विधि का वर्णन १०वें मण्डल के ८५वें सूक्त में मिलता है। सुनहरी, दिव्य रथ में बैठ कर वह सूर्या का दूत बनता है। उसका निवास-स्थान द्युलोक में है। वह प्राणियों का संरक्षक या साक्षी है। वह द्युलोक व पृथ्वीलोक में गति करता है। उसे मार्गों या सड़क का देतता भी माना जाता है। वह

मार्गों के भयों को दूर कराता है। उसे त्यागियों का पुत्र "विमुचीनपात्" कहा गया है। वह पशुओं का पालन करने वाला और पशुओं को बिना हानि के घर पहुँचाने वाला है। उसकी उदारता का वर्णन अधिक मिलता है। उसका विशेषण आधृणिक (glowing) दिया गया है। वह धन और शरीर की उन्नति करता है। पूषा को सूर्य का अधिदेवता बताया गया है। पूषा ही मैदानों में चरने वाले पशुओं का रक्षक है। इस प्रकार 'पूषा' चराचर का स्वामी है।

—:०:—

११—अपस्

जलों को चार मन्त्रों में सम्बोधित किया गया है तथा कुछ इधर उधर प्राप्त होने वाले मन्त्र में भी जलों का वर्णन मिलता है। पुरुष-विधता (Anthromorphism) की दृष्टि से जल वह देवता है जिसका वर्णन कहीं माता, कहीं स्त्री और कहीं अधि देवता के रूप में मिलता है। वह यज्ञ कर्त्ताओं को वरदान है। वह देवताओं का अनुयायी है। वज्रधारी इन्द्र ने जलों के लिए एक मार्ग का खनन किया। जिस मार्ग से वह कभी नहीं हटता। जल के दिव्य और भौम नामक दो भेद हैं, दोनों का गन्तव्य स्थान समुद्र है। वे जल जहां देवता रहते हैं वहीं रहते हैं। मित्रा, वरुण और सूर्य उसके साथी हैं। वह मनुष्यों के पाप और पुण्यों पर दृष्टि रखता है। जल अग्नि की माता है और अग्नि का इसीलिए उत्पादक है। वे अपने तरल तत्व को संसार के लिये देते हैं, जितनी गति संसार में हो रही है वह सब जलों के कारण से है। जल गन्दगी को दूर करता और पवित्रता को देता है। वे आचार सम्बन्धी पापों को भी दूर करते हैं। बलात् किये गए शाप व आलस्य जल से ही दूर होते हैं, वे औषध हैं। स्वास्थ्य, धन, शक्ति व लम्बी आयु और अमरत्व जल से प्राप्त होता है। उनकी

कृपा के लिए संसार प्रार्थना करता है। वे सोम नाम के पुरोहित को रस का दान करते हैं। जलों का सम्बन्ध मधु के साथ भी है। वे अपने दूध को शहद से मिलाते हैं और इन्द्र उस शहद का पान करता है जिस से इन्द्र को शक्ति और आनन्द प्राप्त होता है। शहद की लहरें इन्द्र को मादकता प्रदान करती हैं और आकाश तक ऊंची उठ जाती हैं। सोम इन्द्र को विशेष आनन्द देता है। जबकि जल, घी, दूध और शहद ले करके आते हैं तब सोम को इन्द्र के लिए प्रस्तुत करते हैं। सोम उनमें इसी प्रकार आनन्द प्राप्त करता है जिस प्रकार एक युवा पुरुष सुन्दर लड़कियों में (VIII मण्डल ४८वां सूक्त), वह उनके पास उसी भांति पहुँचता है जैसे एक प्रेमी प्रेमिका के पास। वह ऐसी लड़कियां हैं जोकि युवकों के सामने नत हो जाती हैं।

जलों का मानना वैदिक काल से पूर्व की घटना है क्योंकि अवेस्ता में भी उनको देवता मान कर व्यवहार किया गया है।

—: ० :—

१२—अश्विन् (अश्विनौ)

अश्विनी-कुमार नाम के दो देवता इन्द्र, अग्नि और सोम के बाद परिगणित होते हैं। अश्विन् का अर्थ सईस (horseman) है, वे देवताओं के लिए प्रकाश, प्राकृतिक आनन्द तथा अन्य अनेक प्रकार के कामपूर्ति के साधन उपस्थित करते हैं। वे जुड़वां भाई हैं। वेदमन्त्र जिस प्राकृततिक दृश्य को उपस्थित करते हैं वह दृश्य कोई वास्तविक नहीं तथा उसके उद्भव का अनुसंधान पूर्व वैदिक काल में करना चाहिये। २ या ३ मन्त्रों में उन्हें अलग अलग (जुड़वां नहीं) भाई बताया गया है। वे युवा हैं और प्राचीन हैं। वे चमकदार हैं और कान्ति के स्वामी हैं। सुनहरी चमक, सौन्दर्य और कमल की मालाओं से वे सदा भूषित रहते हैं। एकमात्र वे ही ऐसे देवता हैं जिनका

स्वर्णमय (हिरण्यपवर्तनी) मार्ग है। वे दृढांग स्फूर्तिशाली तथा गरुड़ के समान वेगगामी हैं, उनकी बुद्धि निःसीम है और अदृश्य शक्तियाँ (occult powers) उनमें विद्यमान हैं। उनकी संज्ञा 'दस्र' और 'नासत्य' भी है जोकि वेदों में बहुत अधिक व्यवहृत होती है। दस्र= आश्चर्यपूर्ण (wonder) और नासत्य का अर्थ सत्य युक्त (true) है। उनका सम्बन्ध मधु या शहद के साथ अधिक मिलता है। वे मधु-प्रेमी हैं। उन्होंने चमड़े की सौ (१००) गोथियाँ (skins) शहद से भर कर रखी थीं और सौ घड़े शहद इकट्ठा किया था। उनका रथ शहद के अंकुश से हांका जाता है। वह शहद के रंग वाला है और शहद की तरह धीरे-धीरे चलता है। वे मधु-मक्खियों को शहद देते हैं। सोम रस के प्रति भी इनका अनुराग कम नहीं क्योंकि उषा और सूर्य के साथ वे सोम-पान के लिये बुलाये जाते हैं उनके रथ की चमक सूर्य के समान है और रथ के अन्य अवयव भी स्वर्ण के हैं। उस रथ में तीन पहिये हैं, उसका वेग पवन से बढ़ कर है। इस रथ को ऋभु नामक तीन देवताओं ने बनाया था और इसमें पंखों वाले सुनहरी घोड़े जुते हैं। कभी-कभी उनके रथ में भैंसे और गदहे भी जोते जाते हैं, यह रथ पांच देशों को पार करता है। ये पांच लोक आकाश, भूलोक, द्युलोक, सूर्यलोक और चन्द्र-लोक हैं। यह रथ आकाश के चारों ओर चलता है, भूलोक और द्युलोक में गति करता है। सूर्य के भी चारों ओर इसकी गति निषिद्ध नहीं है। इनकी गति या वर्ति का वर्णन वेदों में विशेष मि..ता है। वे अश्विनी-कुमार वायु-लोक, स्वर्गलोक और कभी समुद्र में निवास करते हैं पर निश्चित रूप में उनके निवास-स्थान का पता नहीं। उनके प्रकट होने का काल उषा के उदय होने के अनन्तर और सूर्योदय के मध्य में है जब कि रात्रि की कालिमा पाटल गौओं के समान लाल-लाल बन जाती है। उषा अश्विनी-कुमारों

को जगाती है, वे उसका अनुसरण करते हैं। वे अपने रथ में बैठे हुए ही पृथिवी-लोक में आते हैं और भक्तों का उद्धार करते हैं। उनका आगमन केवल प्रातःकाल में ही नहीं किन्तु मध्याह्न और सायंकाल में भी होता है, वे अन्धेरे और हानिकारक भूत-प्रेत आदि आत्माओं को भगा देते हैं। वे स्वर्ग के पुत्र हैं किन्तु उन्हें विवस्वान् का पुत्र और त्वष्टा की पुत्री सरण्यू का पुत्र भी कहा गया है। 'सरण्यु' शब्द का अर्थ सूर्य और उषा का उदयकाल है। अश्विनी-कुमारों का पुत्र पूषा बताया गया है और उषा उनकी बहन है। वे सूर्य के साथ भी सम्बद्ध हैं, पर यह सम्बन्धी सूर्य नहीं किन्तु सूर्या है जो कि सूर्य की पुत्री है। इस सूर्या के दोनों ही पति हैं जिनको सूर्या ने स्वयं वरण किया और वह उनके रथ पर स्वयं आरूढ़ हुई। इस प्रकार उनके विवाह-सूचक मन्त्र में उन्हें सूर्या के घर आने की प्रेरणा की जाती है और वे उसे (सूर्या को) प्रजनन शक्ति प्रदान करते हैं। ये दोनों देवता सहायक देवता हैं जिनकी उपासना से दुःखों से छुटकारा जल्दी मिलता है। वे शान्तिपूर्ण और दयापूर्ण हैं, अपने प्रभाव से भक्तों की रक्षा करते हैं किन्तु युद्ध के खतरों से नहीं बचाते। वे स्वर्ग के वैद्य हैं। नवीन आंखें, नवीन हाथ आदि अंग प्रदान करना और बीमारियाँ दूर करना उनका कार्य है। ऐसी अनेक गाथायें हैं जिनमें उन्होंने देवताओं को युवत्व प्रदान किया है एवं देवताओं की शारीरिक अशक्ति दूर की है। 'भुज्यु' नाम के राजा को उन्होंने समुद्र में डूबते हुये बचाया था। यास्क ऋषि से पूर्व विद्वानों को अश्विन् शब्द का यथार्थ अर्थ जानना एक समस्या थी। अतएव यास्क ने अश्विन् शब्द के अनेक अर्थ किये हैं। अश्विन् शब्द का अर्थ महा-काल है, जब कुछ अन्धेरा व कुछ प्रकाश (झुट-पुटा प्रकाश) हो। इसीलिए प्रातःकाल और सायंकाल के समय उदित होने वाले तारों को अश्विन् कहते हैं। वे द्यौः के पुत्र हैं। द्यौः अंग्रेजी का (Zeus) प्रतीत होता है जो कि हेलीना (Helena) के भाई हैं जो दोनों अपने घोड़ों पर

सवार होकर सूर्य की पुत्री से प्रेम करना आरम्भ करते हैं। (Lattic) गाथा के अनुसार प्रातःकाल का तारा सूर्य की पुत्री को देखने के लिए आता है। वे दोनों तारे सूर्या (उषा) से विवाह करते हैं और वे उसे समुद्र में डूबने से बचाते हैं। इस प्रकार अश्विन् का सम्बन्ध (Bible) की उक्त घटना के साथ भी जोड़ा जा सकता है।

अश्विनी-कुमारों के 'निचेत्तास', 'मधुयुवा', 'स्यूमगभस्ति' आदि विशेषण मिलते हैं। अश्विनी-कुमारों का मनुष्यों के प्रति मित्रता पूर्ण दृष्टिकोण है। उनका रक्षकत्व और उदार-व्यवहार मनुष्यों को आकृष्ट करता है। जितना भी दान दिया जाता है उनके देवता अश्विनी-कुमार हैं। (दान देने की भावना अश्विनी-कुमारों के कारण ही उत्पन्न हुई है)। यास्क ने अश्विना-कुमारों को न सुलझने वाली पहेली लिखा है। वस्तुतः ये दो तारे हैं जिन में से एक प्रातः काल उदित होता है और दूसरा सायंकाल। इस प्रकार की व्याख्या करने में यद्यपि कुछ कठिनता है क्योंकि वे तारे दो नहीं संख्या में तो एक ही हैं। किन्तु यह शीघ्रतया विश्वास किया जा सकता है कि ज्योतिष-शास्त्र में इन तारों का विशेष स्थान है, वेद के अनुसार भी ये दोनों तारे साथ ही रहने चाहिए। Lattic Song के अनुसार सूर्य प्रातः काल के तारे के साथ विवाह करता है और सायंकाल के समय सायंकाल के तारे के साथ विवाह करता है। अर्थात् एक सूर्या की दो अश्विनी-कुमारों के साथ शादी होती है यही कारण है कि इन तारों को Pair of twins कहा जाता है। ज्योतिष-शास्त्र में अश्विनी-कुमार तारों का समुदाय है जो मनुष्यों के शुभ वा अशुभ का द्रष्टा है। इनका रथ शूद्र जातीय रासभों से खींचा जाता है और ये दोनों अपनी सामाजिक मर्यादा को इन्द्र की अपेक्षा प्रौढ़ बनाये हुये हैं। हठयोग के अनुसार वाम एव दक्षिण नासापुटों को अश्विनी-कुमार कहते हैं। इनका ही दूसरा नाम इन्द्रा व पिङ्गला है। शीघ्र गमन करने के कारण वायु को 'अश्विन्'

कहते हैं। इनकी रासभवाहनता यौगिक अर्थ को लेकर है क्योंकि जब हवा चलती है। तब झांय झांय या सांय सांय यही "भ=आकाश का 'रास' शब्द युक्त या शब्द पूर्ण करना कहता है"।

—:०:—

१३—वरुण सूक्त

इन्द्र के बाद व्यापकता की दृष्टि से वरुण दूसरे नम्बर का देवता है। यद्यपि उन मन्त्रों की संख्या केवल १२ है जिन में कि वरुण का वर्णन मिलता है। उसका मुख, आंखें, भुजायें, हाथ और पैरों का वेदों में वर्णन किया है। उसकी आंखें, सूर्य हैं जिसके द्वारा वह मनुष्यों को देखता है। वह दूरदर्शी और सहस्र नेत्र है, वह दुष्कर्मियों को कुचल डालता है, कुशा पर बैठता है, सुनहरा चोगा पहनता है, उसका रथ भी सूर्य के समान दीप्तियुक्त होता है जिस में घोड़े जुते हुये हैं। वरुण अपने प्रासाद में बैठ कर अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान रखता है। पूर्वज लोग उसे स्वर्ग में उत्तम आसन पर बैठा हुआ पाते हैं। वरुण के गुप्तचर भी संसार में घूमते हैं। वे वरुण के चारों ओर उसे घेर कर बैठते हैं और उसकी स्तुति करते हैं। वरुण का एक सुनहरे पखों वाला जो दूत माना गया है वह सूर्य ही है। वरुण को एक राजा बताया गया है, वस्तुतः वह ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। वरुण को शारीरिक और चारित्रिक नियमों के पलवाने का अधिकार दिया गया है, उसने स्वर्ग और भूलोक को अपनी शक्ति से धारण किया हुआ है और वही सूर्य को बनाने वाला, अग्नि और जल का निर्माता तथा सोम वल्ली को पर्वतों में उत्पन्न करने वाला है। वायु जो ध्वनि करती है वह वरुण के कारण ही करती है। चन्द्रमा जो रात्रि को प्रकाश करता है वह वरुण की आज्ञा में चलता है। तारे भी वरुण का आदेश पालते हैं,

इस प्रकार वरुण रात्रि और दिन का अधिष्ठाता है। वह जलों का भी नियमन करता है। नदियां उसकी आज्ञा से बहती हैं, समुद्र उस के नियमों में अपनी वेला का अतिक्रमण नहीं करता और मेघ जल की वर्षा करके पृथिवी को उसकी आज्ञा से ही सींचते हैं। वरुण का 'धृतव्रत' विशेषण है जिसका अर्थ है संसार को नियम में चलाने वाला। वह द्युलोक और पृथिवीलोक को व्याप्त करके स्थित है। उसका सर्वज्ञ होना एक विशिष्ट गुण है। वह आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गति को पहिचानता है। समुद्र में चलने वाले जहाजों को जानता है कोई भी प्राणी उसकी निगाह से ओझल नहीं हो सकता। वरुण अन्य देवताओं से बढ़ कर है। पाप कर्म को देखते ही वह क्रुद्ध हो उठता है और नियम भंग करने वाले को दण्ड देता है। वेद में वरुण के पाशों का वर्णन अधिकतया मिलता है। वरुण पश्चत्ताप करने वालों के लिए दयालु भी है, वह उनके पाशों को ढीला कर देता है, जो लोग भूल से कोई गलती करते हैं या उसके नियमों को भंग करने के बाद आत्म-समर्पण करते हैं उन्हें वह क्षमा प्रदान करता है। वरुणसूक्त में ऐसा कोई मन्त्र नहीं जिसमें अपने किये गये पापों के लिए प्रार्थना न की गई हो। आदिकाल में यह धारणा थी कि वरुण आकाश को व्याप्त करने वाला देवता है किन्तु यह धारणा अब नष्ट हो चुकी है। अवेस्ता के 'अहरामज़दा' (Wise spirit) की असुर वरुण के साथ समता दिखाई गई है और वरुण का व्यापक महत्व सिद्ध किया है। ऐसी अवस्था में असुर शब्द का अर्थ असु = प्राण, र = देने वाला, अर्थात् प्राणियों में प्राण शक्ति का संचार करने वाला देवता ही वरुण है। कहीं २ वरुण और यम की एकरूपता भी परिलक्षित होती है, पर बहुत कम। वरुण से सुख देने की प्रार्थना स्थान-स्थान पर की गई है।

—:o:—

१४—मण्डूक-सूक्त

मण्डूकसूक्त की ऋचाएँ वर्षा लाने में, अनावृष्टि दूर करने में एक अद्भुत शक्ति रखती हैं ऐसा योगिकों का विश्वास है। इस सूक्त में मेंढ़कों की स्तुति की गई है जो अनावृष्टि काल में एक गर्म पतीली के समान माने गये हैं। उच्च ध्वनि करने वाले मेंढ़क वेद पढ़ने वाले विद्यार्थियों के समान बतलाये गये हैं। विचार करने से यह प्रतीत होता है कि मण्डूक शब्द योगिक है तथा ब्रह्मचारियों के लिये प्रयुक्त हुआ है। क्योंकि उसके 'व्रतचारिण' इत्यादि विशेषण दिये गये हैं इसलिये 'मडिभूष अलङ्कारे' इस धातु से बना है तथा उन नियम-धारी, वेदपाठी ब्रह्मचारियों की ओर संकेत करता है जो कि वर्षा करवानें के लिये वेद की ऋचाओं के अध्ययन एवं स्वाहाकार में व्यस्त हैं तथा कारीरीइष्टि के आरम्भ करने को उद्यत हैं। 'शाक्तस्य इव शिक्षमाणाः' इस क्षेत्र में आया हुआ यह पद उन वेदज्ञों को निर्दिष्ट करता है जो कि वेद के उच्चारण करने में अपनी ध्वनि गौ बकरा या चितकबरे हरिण के समान बोलते हैं अर्थात् वेद का उच्चारण गोस्वर में, अजस्वर में या हरिण की सी ध्वनि में किया जा सकता है जो कि ध्वनियां उदात्त, अनुदात्त, स्वरित या उच्च, नीच, व एकश्रुति स्वर में बोली जाती हैं, जिसके उच्चारण से वृष्टि के प्रयोजक मन्त्र गान-विद्या के अनुसार ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं कि उस वायु-मण्डल में मेघों का उदय हो जाता है। "तप्ताधर्मा अश्नुवते विसर्गम्" इस वाक्य के अनुसार मेघ को ज्योतिःप्रभव बताया है जैसा कि 'धूम ज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपात क्व मेघः' इस मेघदूत के वाक्य में भी यही तत्व निर्दिष्ट किया गया है। मण्डूक सूर्योपासक देवगण हैं, सोम याज्ञी ब्राह्मण हैं या पंचाग्नि तपने वाले अध्वर्यु हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप के व्रतियों को मण्डूक रूप में वर्णित किया गया है। इतना

ही नहीं इन मण्डूकों का सादृश्य सूर्य के विशेषणों के साथ भी दिया गया है, जैसे उदीयमान सूर्य अपनी किरणों का प्रकाश करता हुआ आकाश में बढ़ जाता है वैसे ही प्रातःकाल के समय मन्त्रों का शनैः शनैः उच्चारण करते हुये वटुकगण भी अपनी ध्वनि का आरोह, अवरोह के साथ विस्तार करते हैं। इस सूक्त में गन्धर्व विद्या का, बीज तथा अनावृष्टि-निवारक मन्त्रों का, विचारों का वर्णन किया गया है।

१५—यमसूक्त या "Funeral Hymns"

यम विवस्वान् का पुत्र है और सरण्यु या सरण्यू उसकी माता है जो कि त्वष्टा की पुत्री है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दसम् सूक्त के द्वितीय मन्त्र में यम और यमी पति और पत्नी बताये गए हैं, जो कि प्राणों के देवता हैं। यम वह व्यक्ति है जिसने मनुष्यों के लिए मरने के बाद सब से पहले जीवगति का मार्ग प्रदर्शित किया है। वह मनुष्यों को एक स्थान पर एकत्रिक करता है। एक मन्त्र में उन संघीभूत जीवों के एक घने पत्तों से घिरे हुए पेड़ के समान बतलाया है, उसी वृक्ष के नीचे यम भी बैठा हुआ बताया गया है (यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः)। यम पुण्यात्माओं को प्रकाश वाले स्थानों पर भेजता है। वहां पर यम की आज्ञा से पितृगणों की पुत्रों के द्वारा सेवा की जाती है। इन पितरों की कई श्रेणियां हैं, जैसे अंगिरा, विरूप, नवग्वा, अथर्वा, भृगु, वसिष्ठ इत्यादि। पितृगण कव्य-भक्षण के लिए बड़े उत्सुक रहते हैं और उन्हें यम के साथ आमन्त्रित करते हैं। शरीर के पाँच भूतों में मिल जाने के बाद जीवात्मा भिन्न-भिन्न लोकों में भ्रमण-विचरण करता है। यम शब्द द्वित्व या युगल अर्थ का वाचक है जिससे सिद्ध हुआ कि यम और यमी दोनों जुड़वां उत्पन्न हुये थे या यम और यमी दोनों नित्य सहचर होने से यम यमी कहे जाते हैं इसीलिये यम

और यमी भाई-बहन हैं या पति-पत्नी यह एक विवादास्पद विषय है। यम के शब्द की व्युत्पत्ति से यह प्रतीत होता है कि यम नाम उस शक्ति का है जो मनुष्यों के जीवन और मरण को नियंत्रित करती है, तदनुसार (यच्छति उपरमयति जीवितात् सर्वं भूतग्रामम् इति यमः) इस पद की व्युत्पत्ति या निर्वाचन हुआ। इन मन्त्रों से यह भी प्रतीत होता है कि शव का दाहसंस्कार ही प्राचीन कालों में होता था। अग्नि मृतक शरीर को लोकान्तर में पहुँचाता है। उस अग्नि से यह प्रार्थना की गई है कि तू इस शव की रक्षा कर तथा इसके स्थान पर किसी अज को भस्म कर। दाह-संस्कार के समय अग्नि और सोम से प्रार्थना की जाती है कि वे इस शरीर को पशुओं से, पक्षियों से, चींटियों से और सर्पों से बचावें। मृत व्यक्ति के शरीर के समीप और चिता के समीप उसकी पत्नी लेट जाती है और अपने हाथ में धनुष लिये उठती है। इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में मृतक की पत्नी और उसके अस्त्रों को भी मृतक के साथ ही जला दिया जाता था। इस प्रकार मृतक की दो गति कही गई है—पहली पितृयाण और दूसरी देवयान। इनमें से पितृयाण गति देवयान गति से अधम है। इन दोनों मार्गों में यम ही मृतक की रक्षा करता है, अर्थात् मृतात्मा को स्वर्ग तक पहुँचाता है। जिस का भाव स्पष्ट है मृतक जीव वाचक देह धारण कर लोक-लोकान्तरों में कर्मानुसार जाता है। यम नाम प्राण वायु का है, जिसके निरोध को प्राणायाम कहते हैं जो कि हठ योग का बीज है। राजयोग में प्राणायाम मानो निरोध का साधन नहीं माना जाता। जीव की गति के विषय में यदि सविस्तार विवरण देखना हो तो मेरी बनाई हुई "अन्त्येष्टि कर्म-पद्धति" पढ़िए। यहां प्रसंगवश यह भी जान लेना उचित होगा कि आर्य-समाज यम

और यमी को पति-पत्नी तथा सनातन-धर्म भाई-बहन मानता है इस विवाद के स्पष्टीकरण का यह अवसर नहीं।

—:०:—

१६—अक्षसूक्त जूएबक्ज़ "Gambler" अक्ष सेवी या जुआरी

इस अक्षसूक्त में मनुष्यों को यह उपदेश दिया गया है जिससे कि चरित्र या जीवन का निर्माण होता है। इस सूक्त में हारे हुए जुआरी के पश्चात्ताप का वर्णन है जो कि द्यूत में अधिक आसक्ति के कारण अपने मन को रोक नहीं सकता। वह 'नाल' पर जुए खेलने के स्थान पर बार-बार जाता है और अपनी भूलों व नुकसान के लिए पश्चात्ताप करता है। द्यूत-साधन इन पाशों या अक्षों का निर्माण विभीतक वृक्ष के पेड़ के फलों से होता है यह माना जाता है। इस सूक्त से यह भी पता चलता है कि वैदिक काल में मनोरञ्जन के लिए द्यूत-क्रीड़ा और अश्व-क्रीड़ा दो प्रधान क्रीड़ाएं थीं। ये यहां तक बढ़ीं कि लोगों को इनका व्यसन पड़ गया। इस अक्ष वर्णन से महाभारत के 'नलोपाख्यान' का स्मरण हो आता है जिसमें द्यूत-क्रीड़ा की बुराइयों का वर्णन है। अक्षसूक्त के विषय में कई मत-भेद हैं। Schroeder के मत में यह एक नाटक का भाग है किन्तु Oldenbery के मत में यह अक्षसूक्त दान में प्रवृति कराने वाली ऋचाओं का एक समुदाय है। Winternitz के मत में यह एक स्वगत कथन Soliloquy है जिसे कि द्यूत-क्रीड़ा करने वाला अपने आप गाता है। यह सूक्त उसके गान का Ballad की तरह का एक अंश है। अक्ष संज्ञा विभक्ति के फलों की है इसीलिए इनका "बभ्रु" यह विशेषण दिया गया है। द्यूत के इन पाशों की संख्या कुल ५३ मानी गई है। जब पाशों के फैंकने पर उनकी सम संख्या दो या चार आती है तब द्यूत की "कृत" संज्ञा होती है और जबकि तीन

संख्या के पासे अनुकूल पड़ते हैं या तीन फैंक (दाव) अनुकूल होते हैं तब उनकी संख्या "त्रेता" कहलाती है, इस प्रकार से दो के अनुकूल पड़ने पर "द्वापर" और एक के पड़ने पर "कलि" संज्ञा पड़ती है। यह भी प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में यह जूआ किसी कपड़े या लकड़ी के बने Board पर नहीं खेला जाता था, इस अर्थ को "अधिदेवता" शब्द प्रकट कर रहा है। 'मूजवत्' या "मौंजवत्" यह एक पहाड़ की दो संज्ञाएँ हैं जिस पहाड़ पर अक्षों के पेड़ अधिकतया उगते थे। कुछ विद्वान 'मुंजवान्' शब्द का अर्थ सोम करते हैं। सोम का वर्णन, चिकित्सा-स्थान सुश्रुत में किया गया है। वहां लिखा है कि:—

सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पंच च।
तानि शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च॥

एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा।
शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पंचदशच्छदः।

शीर्यंते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः।
कृष्णपक्षये चापि लता भवति केवला॥ इत्यादि

इस वर्णन से यह सिद्ध है कि सोमलता के फलों द्वारा जुआ खेलने का प्रचार था—सोमवल्ली आस-पास दृष्टिगोचर नहीं होती, अतः 'मुञ्जवत्' शब्द का सोमवल्ल अर्थ करना एक जबरदस्ती है। द्यूत-कर्म से होने वाली भयंकर हानियों का, दुर्दशा का इस सूक्त में नग्न चित्र अङ्कित है, जिस से लोग इसके दुष्परिणाम को जानकर इस से बचते रहें। अस्तुः द्यूत-क्रीड़ा भी एक वीरों का, क्षत्रियों का पवित्र कर्म माना जाता था, पर वास्तविकता ऐसी नहीं है, क्योंकि सारे ही सूक्त में द्यूत-क्रीड़ा की घोर निन्दा की गई है।

—:o:—

१७—पुरुष सूक्त या विराट् पुरुष

जन्तु जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऋग्वेद में केवल यही एक सूक्त है जिसका नाम पुरुष सूक्त है। मनुष्य परमात्मा का एक साधन है जिसके द्वारा वह सृष्टि बनाता है। यहां पर सृष्टि-निर्माण को एक यज्ञ बतलाया गया है, जिस यज्ञ में पुरुष की बलि दी जाती है। उस पुरुष के अंग सारे संसार के अंग बन जाते हैं, जिसके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण करता है। उसकी रचना यह सिद्ध कर रही है कि ऋग्वेद का यह सूक्त सब मन्त्रों के अन्त में बना। इस सूक्त में ब्राह्मणादि चार वर्णों का वर्णन मिलता है और एक देवतावाद की भी सिद्धि की गई है। पुरुष को भूत और भव्य का स्वामी बताया है। उस विराट् पुरुष के संसार में व्याप्त होने के बाद भी तीन हिस्से बच जाते हैं। उस पुरुष से वसन्तादि ऋतुएँ उत्पन्न हुईं तथा ऋषियों के द्वारा इस पुरुष यज्ञ का विस्तार व प्रचार किया गया। उस पुरुष से ही ऋग्, साम, अथर्व और यजुर्वेद उत्पन्न हुये। विराठ् पुरुष का वर्णन १२ वें मंत्र में किया गया है जहां वर्णों को अंग-स्थानीय, सूर्य को चक्षुःस्थानीय, वायु को प्राण-स्थानीय और अग्नि को मुख-स्थानीय बतलाया गया है। स्वर्ग की प्राप्ति या नरक की प्राप्ति भी इस कर्म रूप यज्ञ के द्वारा ही होती है। इस कर्म में निरत रहना ही मनुष्य के लिए परम कर्त्तव्य है। पुरुषसूक्त का वर्णन गीता के योग विभूति वर्णन का स्मरण दिला देता है। पुरुष या परमात्मा निमित्त कारण बनकर किस प्रकार सृष्टि निर्माण करता है इसका इस सूक्त में निरूपण है। जिस प्रकार बालक के जन्म से पूर्व माता के स्तनों में दूध उतर आता है उस ही तरह परमात्मा वृक्ष, पशु तृण, सूर्य, चन्द्रादि की उत्पत्ति मनुष्य से पूर्व कर देता है—अर्थात् भूत, भौतिक जगत् पुरुष सृष्टि से पूर्व हुआ है। पुरुषों के कर्मानुसार चार भेद हैं जिन्हें शरीर के अवयवों द्वारा वर्णित किया गया है, जैसे यह

शरीर किसी एक भी अवयव के विना अधूरा है, अपूर्ण है वैसे ही मनुष्य समाज का शरीर भी एक भी वर्ण के विना अधूरा है, चारों वर्णों की ही सत्ता कर्म-व्यवस्था के लिये व लोक-व्यवस्था के लिये आवश्यक है। मनुष्यमात्र को आत्म-दान के द्वारा जीवन सफल बनाना चाहिए, यही पुरुष सूक्त का निगूढ़ रहस्य है।

—:०:—

१८—सृष्ट्युत्पत्ति या

Hymn of Creation (**नासदीयसूक्त**)

सृष्टि विचार सम्बन्धी इस नासदीयसूक्त में सृष्टि का विकास सत् तत्व से हुआ है, यह कहा गया है। असत् से सृष्टि का निर्माण कभी नहीं हो सकता। जल सब से प्रथम प्रकट हुआ और इससे ही बुद्धितत्व का सृजन किया गया। यह बुद्धितत्व आग्नेय है या अग्नितत्व रूप है, अतएव उपनिषदों में "अग्ने रापः" यह वाक्य आता है, इस सूक्त में साँख्य सिद्धान्त को लेकर जगत्-निर्माण की चर्चा की गई है। आभु और तुच्छ यह दो विशेषण अव्याकृत स्वरूप की अवस्था को तमस् शब्द से सम्बोधित करते हैं, मानसिक सृष्टि सर्व प्रथम बनाई गई इस बात का संकेत "मनोरेतः प्रथमं यत् आसीत्" इस वाक्य में किया गया है। सृष्टि की दुर्विज्ञेयता अथवा कारणवाद की गम्भीरता ऐसी है कि जिससे यह जानना कठिन है कि सृष्टि परमाणुओं से उत्पन्न हुई या सत्व, रज, तम नामक तीन तत्वों से बनी या माया से सम्भूत हुई। यह एक गुत्थी है जिसका निर्णय अभी तक नहीं हो सका है।

सृष्टि नियम को प्रवाहरूप से अनादि बतलाने के लिये "स्वधा" और "प्रयति" यह दो विशेषण दिये हैं जिन से यह सिद्ध होता है कि ऋत और सत्य सृष्टि के बनाने वाले हैं, इन दो नियमों में ही सारा संसार व्याप्त है जिसका कि अध्यक्ष 'परमे व्योमन्' आकाश में या आकाश की तरह व्यापक रूप में रहता है। इस प्रकार सृष्टि का

"अज्ञेयवाद" इन मन्त्रों से सिद्ध किया गया है और इस गूढ़ तत्व को जानना ही मनुष्य-जीवन का ध्येय है। तम से प्रकाश में आना और उस प्रकाश की सदा उपासना करते रहना ही मनुष्यता है तम या संसार पर्यायवाची शब्द हैं। प्रकाश या परमात्म-साक्षात्कार भी इसी प्रकार पर्यायवाची शब्द हैं। आत्मा का साक्षात्कार परमात्म-तत्व के साक्षात्कार से व्यतिरिक्त नहीं है, परमात्मा ही जगत् की गुत्थी को सुलझा सकता है—उसकी कृपा से इसकी जानकारी होने पर जीव सहसा कह उठता है कि—

"त्रिगुणाऽलौकिकीरज्जुः,
मयादृष्ट जहातु माम्" इति।

सृष्टि की वास्तविकता दुर्बोधतम है यही इस सूक्त का तत्त्व है।

—:०:—

सविता

सविता और सूर्य का अत्यधिक साम्य है। ये दोनों कभी कभी एक ही देवता माने जाते हैं। ४—१४—२ में तथा १५८—१—४ में जो मन्त्र हैं वे ऐसे ही है। इन दोनों का भेद विशेषणों तथा प्रकरण द्वारा ही पता चलाया जा सकता है। सविता को गतिशील प्रेरक, प्राणदायक देवता कहा गया है। सूधातु से निष्पन्न यह शब्द अपना मौलिक अर्थ प्रकाशित कर रहा। अपनी सुवर्णमय बाहुसदृश किरणों से आकाश को व्याप्त करता हुआ सविता आकाश में उदित होता है—तथा प्रत्येक जीव में गति शीलता ला देता है। प्रत्येक प्राणी को विश्राम देता है, रात्रि का उद्गम करता है, इस प्रकार सविता दिन रात का स्वामी है। दुःस्वप्न का नाशक है, उसकी शक्ति रात्रि में नष्ट नहीं होती, उषा की तरह उदित और अस्त होते हुए सूर्य की शक्ति है। उसके घोड़े सुनहरे हैं

एवं उसकी प्रत्येक वस्तु सुनहरी है। वह दुर्भाग्य का भी विनाशक है। दैत्यों का पीछा करता है और पाप का विनाशक है। मर्त्य लोक निवासियों को मृत्यु के बाद वह स्वर्गलोक पहुंचाता है। सूर्य केवल सौर मण्डल का देवता है। वह चमकीला, शानदार युवक के समान है। जब कि सविता एक दैवी शक्ति स्वरूप है और सूर्य को प्रेरणा देने वाला है। इन्हीं कारणों से वैदिक साहित्य में सविता का स्थान पौराणिक हिन्दुओं की दृष्टि में महत्त्व पूर्ण है। सावित्री मंत्र में भी देवता की स्तुति की जाती है। यही गायत्री मन्त्र सविता की महत्ता का द्योतक है। पाश्चात्य जगत में जो स्थान जेनुस् Janus का है तथा रोमन मैथोलॉजी में जैसा वर्णन मिलता है उसके अनुसार सूर्य में जिस देवता को माना जाता है वह सविता ही है और वह जेनुस् के समान है, ऋग्वेद के ५–८२–६ वें मंत्र में लिखा है कि वह सविता संसार को अपनी कीर्ति से व्याप्त कर रहा है। वह मन्त्र यह है—

य इमा विश्वा जातन्या श्रावयति श्लोकेन।
प्र च सुवाति सविता॥

वात देवता

वायु भौतिक शरीर का वाचक है और उसके देवता का नाम वात है। उसे वायु का प्रेरक और वायु का आत्मा कहा गया है। ऋग्वेद में वात देवता का केवल एक ही सूक्त मिलता है। वात और वायु दोनों शब्दों की उत्पत्ति एक ही वा धातु से हुई है। कहीं २ पर इसका संबंध पर्जन्य देवता से भी माना जाता है। जिस प्रकार वायु का सम्बन्ध इन्द्र से है और इन्द्र वायु शब्द का साथ-साथ प्रयोग होता हैं उसी प्रकार वात और पर्जन्य भी संबद्ध हैं। वात देवताओं का श्वास प्रश्वास है। रुद्र के समान वह जीवन को बढ़ाता और शारीरिक व्रणों का

पूर्ण करने वाला है। इसका विशेष कार्य बिजली के चमकने के समान दिखाई पड़ता है। वात के कारण ही बभ्रु वर्ण की वायु बहने लगती है और प्रातः काल के समय उषा में प्रकाश होता है, वात की ध्वनि भी कहीं कहीं विशेष रूप से वर्णित होती है। वात देवता का एक रथ है जो आकाश में गमन करता है और पृथ्वी पर धूल उड़ाता है। वही वात देवता अन्तरिक्ष में भी गमन करता है वात का स्वरूप किसी को दिखाई नहीं पड़ता है। केवल घोष ही सुनाई देता है।

—: ० :—

सूर्य देवता

सूर्य शब्द से उसका घेरा और सूर्य देवता दोनों ग्रहण किया गया है। सौर देवताओं में सूर्य देवता का महत्वपूर्ण स्थान है। उस का चमकदार घेरा उपासकों के लिये विशेष आकर्षक है। सूर्य के नेत्रों का वर्णन भी मिलता है किन्तु सूर्य को स्वयं मित्र वरुण का नेत्र कहा गया है। अग्नि भी देवताओं का नेत्र माना गया है किन्तु सूर्य नामक नेत्र दूरद्रष्टा और सर्वद्रष्टा माना गया है। वह संसार का गुप्तचर है। वह प्रत्येक जीव के क्रिया कलाप को देखता है। स्थावरों में जो गति प्रदान करने वाला है वह सूर्य है। उसके रथ में एक ही घोड़ा जुड़ता है जिसका नाम एतश है। या सात घोड़े जुड़ते हैं जिनका नाम हरित् है। इसकी उत्पत्ति उषा से मानी गई है पर कहीं-कहीं उषा को सूर्य की पत्नी कहा गया है, यह अदिति का भी पुत्र है और द्यौः इसके पिता का नाम है। सूर्य को समुद्र में छिपे हुए देवताओं ने ऊपर उठाया है और उसे द्युलोक का अधिष्ठाता बना दिया। सूर्य को कहीं कहीं आकाश में उड़ने वाला पक्षी भी कहा है। यह एक प्रकार का अनेक रंगों वाला अनड्वान् या अश्व है, जिसे उषा लाती है। मित्रावरुण का यह आयुध है जो कि बादलों

में छिपा रहता है। यह इन्द्र का पवि है। इसे अंग्रेजी में Felly (वज्र) कहते हैं। यह अन्धकार को दूर करता है और कैंचुली के समान अंधेरे के आवरण को दूर फैंक देता है। विश्वकर्मा इसका ही विशेषण है, जिसका अर्थ है जन्मदाता। सूर्य शब्द स्वः, अर्थात् प्रकाश से निकाला है। अवेस्ता भाषा में सूर्य के तेज घोड़ों का वर्णन मिलता है और इसे अहूरा मज़दा (Ahura mazda) का नेत्र भी कहा गया।

—:o:—

विश्वेदेव देवता

विश्वेदेव देवताओं का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि लगभग ४० मन्त्र विश्वेदेव को संबोधित किये गये हैं। संपूर्ण देवगणों में ८-२१-१ वाला सूक्त ऋग्वेद में महत्वपूर्ण है इस का प्रत्येक मंत्र एक देवता का वर्णन करता है जोकि अनेक देवताओं के गुणों से युक्त है, विशेषतया सोम, अग्नि, त्वष्टा, इन्द्र, रुद्र, पूषा, विष्णु, अश्विनीकुमार, मित्रावरुण और अंगिरस देवताओं का विश्वेदेवों में अधिक वर्णन आता है। विश्वेदेव सो जाने पर हम लोगों की रक्षा करते हैं और हमारे सुख-दुख के क्रम के व्यवस्थापक हैं। सूर्य का नियमन रात्रि का आगमन विश्वेदेवों के आधीन ही माना गया है। यह एक प्रकार से देवताओं का वह समुदाय है जिस में अनाहूत देवताओं का भी समावेश हो जाता है।

—: o :—

वाक् देवता

सर्वानुक्रमणी में वाक् के पिता का नाम अम्भृण ऋषि दिया गया है परन्तु इसके विषय में और प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, इसे ब्रह्म से उत्पन्न हुई एक महान् शक्ति के रूप में वर्णन किया गया है। वह सब देवताओं की प्रेरक है। उनकी कर्तव्य-पालन में सहायक होती है, वाक्

और ब्रह्म का एक ही रूप माना गया है। वह अपने तेज से अपने भक्त को ऋषि ब्राह्मण अथवा विद्वान् बना देती है। यह सूक्त "अहं ब्रह्मास्मि" इस दार्शनिक सिद्धान्त का बीजभूत है, योगजन्य शक्तियों से मानवीय इतना अधिक विकास हो सकता है इसका यह पुष्ट प्रमाण है। वाणी की महत्ता के लिये और वाक् शक्ति के विकास के लिये इस सूक्त का पाठ आवश्यक है। वाणी के प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपों का वर्णन भी इसमें विस्तार के साथ किया गया है।

—:०:—

हिरण्य-गर्भ सूक्त

प्रजापति और हिरण्यगर्भ दोनों पर्यायवाची हैं। कहीं हिरण्यगर्भ को प्रजापति से बढ़ कर और कहीं प्रजापति को हिरण्यगर्भ से बढ़ कर बताया गया है। विराट् और ब्रह्मा भी वही कार्य करते हैं जो हिरण्यगर्भ करता है। आत्म-शक्तियों का विकास और शारीरिक बल की प्राप्ति हिरण्यगर्भ के द्वारा मानी गई है।

पर्वतों की उच्चता और समुद्र की गहराई हिरण्यगर्भ को परिज्ञात है। द्युलोक उसका शिर है और पृथ्वी उसका पैर है। देवलोक और पृथ्वी-लोक के प्राणी अपनी रक्षा के लिये हिरण्यगर्भ का आह्वान करते हैं। जलों से वाडवाग्नि की उत्पत्ति का कारण भी हिरण्यगर्भ है, हिरण्यगर्भ ही वह देवता है जो हिंसकों को दण्ड देता है और कर्म फल का दाता है। यही एक ऐसा सूक्त है जो हिरण्यगर्भ की प्रशंसा में प्राप्त है। इस सूक्त का दसवां मन्त्र जो "प्रजापते न त्वदेतानि" से आरंभ होता है उसकी ये विशेषता है कि उसकी संहितापाठ और पदपाठ में कोई भी अंतर नहीं। इससे सिद्ध होता है कि कहीं-कहीं पदपाठ में भी संहिता पाठ का समावेश किया गया है।

—:०:—

वास्तोष्पति देवता

वास्तोष्पति शब्द का ऋग्वेद में सात बार प्रयोग किया गया है तथा वास्तोष्पति देवता का एक ही सूक्त है, वास्तोष्पति के वे ही गुण वर्णन किये गये हैं जो सोम देवता के हैं। जिससे यह प्रतीत होता है कि इन दोनों की अपेक्षा एक बड़ा देवता था जिसका नाम गृहपति या अग्नि था। इन्हीं सूक्तों में ऐसा वर्णन मिलता है कि जब किसी नये मकान में प्रवेश किया जाये तो वास्तोष्पति देवता का अनुग्रह अवश्य मानना चाहिये। यह कोई महत्त्वपूर्ण देवता नहीं है। इसका आधिपत्य घर की वस्तुओं पर है। वृक्षों का पर्वतों पर भी है। क्योंकि वृक्षों और पर्वतों का देवता भी इसी प्रकार माना गया है। शाला कर्म संस्कार में जिस प्रकार गृहस्थ के साधनभूत वस्तुओं का वर्णन किया जाता है और उनके उपयोग के लिये अनुमति मांगी जाती है इसी प्रकार वास्तोष्पति से भी इस सूक्त में मांगी गई है। ७-६७-७ के ऋग्वेद के मन्त्र से और वास्तोष्पति देवता के पहले मंत्र से एवं १०-६३-१६वें निम्नलिखित मन्त्र से बहुत अधिक साम्य है, वह मन्त्र निम्न-लिखित है—

स्वतिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सानो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥

इस मन्त्र का ये अर्थ है कि स्वस्ति नाम के देवता हमारी रक्षा करें और वह हमारे इस मकान में प्रवेश के लिये सुखदायी हो। इन तीनों मन्त्रों में स्वावेशः शब्द का समान प्रयोग है। वास्तोष्पति देवता से यह भी मनाया गया है कि वह हमारे धन की तथा पशु-धन की वृद्धि करे और हमारी वृद्धिता को दूर करे एवं गृहजीवनोपयोगी वस्तुओं को जुटावे और उनकी कमी न होने देवे। इससे सिद्ध है कि उत्तम गृहपति को एक गृहस्थी के लिये जिन उत्तम वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे

इस सूक्त में गिनाई गई हैं और यह सूक्त गृहस्थोपयोगी सामग्री का एक प्रकार से पूर्ण वर्णन कर रहा है। जो लोग अपनी सम्पत्ति सुरक्षा और अभ्युदय की कामना करते हैं, उन्हें इस सूक्त के अनुसार कार्य करना चाहिये।

—:०:—

इन्द्रावरुण देवता

इन्द्रावरुण सूक्त में सुदास और तृत्सु नामक दो राजाओं का दास राज्यों के साथ युद्ध वर्णन है। जिसमें सुदास ने अपनी विजय को इन्द्रवरुण के कारण से कहा है, अतएव इस इन्द्रावरुण सूक्त में इन्द्र विद्युत् शक्ति है तथा वरुण जलीय शक्ति है। विजय प्राप्ति के लिए जहां सैनिक बल की अपेक्षा है वहां साथ-ही-साथ नौसेना की भी आवश्यकता है। बिना इन्द्रिय विजय के लोक विजय असम्भव है। यह इस सूक्त की शिक्षा है जब तक अच्छे आयुध और सेना में संगठन नहीं होता तथा सेनापति की आज्ञा मानने को सैनिक सन्नद्ध, तत्पर नहीं रहते तब तक शत्रु विजय करना असंभव है। दो राजा १० राजाओं पर किस प्रकार विजय प्राप्त करते हैं इसका मूल मन्त्र आत्मविश्वास और ईश्वर आदि है। इन्द्र सूक्त और वरुण सूक्त दोनों अलग-अलग आ चुके हैं। इन सूक्तों में यह कहा गया है कि इन्द्र ने वृत्र का वध किया। शंबर और नमुचि को मारा। राक्षसों का विनाश किया। बोगाज कोई के कीलाक्षरों के लेख में इन्द्र का उल्लेख होने से यह भारोपीय काल का देवता है। इसी प्रकार वरुण भी ऋग्वेद के देवताओं में इन्द्र के बाद का व्यापक देवता है। वह सुनहरा कवच धारण करता है, सर्वत्र संसार में उसके गुप्तचर घूमते हैं। नियम भंग करने वाले को वह दण्ड देता है, पश्चात्ताप करने वाले को वह क्षमा प्रदान करता है। इस

इन्द्रावरुण सूक्त में इन दोनों गुणों वाले राजा को विजय प्राप्त होती है, यह कहा गया है, अतः स्थल-सेना और जल-सेना अथवा स्थल-शक्ति तथा जल-शक्ति इन दोनों शक्तियों से संपन्न होकर ही अथवा आध्यात्मिक पक्ष में आत्म-शक्ति व शरीरिक-शक्ति से युक्त होकर मनुष्य बाहरी शत्रु और आन्तरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकता है अतएव उपनिषद् में कहा है कि "नाममात्मा बल हीनेन लभ्यः" इत्यादि।

अध्यक्ष—संस्कृत विभाग
डी. ए. वी. कालेज,
कानपुर।
गुरुपूर्णिमा (६–७–६३)

निवेदयिकाः—
हरिदत्त शास्त्री

वेद

आग्निमारुत सूक्त

संहिता-पाठः

१. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

प्रति त्यम् चारुम् अध्वरम् गोऽपीथाय प्र हूयसे।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि ॥१॥

सायण :—त्यच्छब्दः सर्वनाम, तच्छब्दपर्यायः। हे अग्ने यो यज्ञः चारुः अङ्गवैकल्यरहितः त्यं तथाविधं चारुमध्वरं प्रतिलभ्य गोपीथाय सोमपानाय प्र हूयसे प्रकर्षेण त्वं हूयसे। तस्मादस्मिन्नध्वरे त्वं मरुद्भिः सह देव विशेषैः सह आ गहि आगच्छ।

अवतरणिकाः—कारीरी नामक वर्षेष्टि में 'प्रति त्यम्' इत्यादि धाय्या नामक ऋचाओं का उपयोग होता है जैसा कि आश्वलायन श्रौत सूत्र के द्वितीय अध्याय १३।१-२ में प्रतिपादित है। इस सूक्त में ६ ऋचायें हैं। मेधातिथि काण्व इसका ऋषि है तथा गायत्री छंद है इस ऋचा का ईडे अग्नि स्ववसं नमोभिः—(ऋक् ५-७-१)इत्यादि मन्त्र के साथ मिल कर कारीरी पद्य में उपयोग होता है।

शब्दार्थ :—हे अग्ने ! =हे अग्नि देवता। (तुम को) त्यम्—उस प्रसिद्ध, चारुम्=सर्वाङ्गपूर्ण, अध्वरम्=यज्ञ में, गोपीथाय=सोमपान के

लिये, प्रहूयसे=बार-बार बुलाया गया है। (अतः ऐसे यज्ञ में) मरुद्भिः=मरुद् नामक देव गण विशेषों के साथ आगहि=आइए-पधारिये (स्वयं आइए तथा अपने देवों को भी साथ लाइये। सब मिल कर यजमान की कामना पूर्ण कीजिये—यह भाव है)।

व्याकरणम्:—चारुम्=चर् धातु से "दृ सनि जनि चरीत्यादि" (१–३) उणादि सूत्र से गुण प्रत्यय है। गोपीथाय=निशीथ गोपीथावगथा— ६-६ इति' (२-६) इस उणादि सूत्र से गो उपपद पा पाने धातु से थक् प्रत्ययान्त यह शब्द निपातिव है। 'घुमास्या' सूत्र से ईत्व हुआ है। इसी प्रकार गश्चोदि सूत्र से उत् पूर्वक 'गै' धातु से थक् प्रत्यय करने पर 'उद्गीथ' बनता है। आगाहि=आङ्पूर्वक गम् धातु के मकार का लोप तथा मध्यम पुरुष के एक वचन के सिप् को हि आदेश हुआ है।

विशेष:—'गोपीथ' शब्द का अर्थ मैक्समूलर ने 'दूध का घूँट' किया है—तथा 'रक्षा' भी अर्थ लिया है किन्तु 'सोमपीथ' के समान 'गोपीथ' का प्रयोग मानना चाहिये तथा मूलोक्त अर्थ ही ठीक है।

संहिता-पाठः

२. नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः।
मरुद्भिरग्न आ गहि॥

पद-पाठः

नहि देवः न मर्त्यः महः तव क्रतुम् परः।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि॥२॥

सायण:—हे अग्ने महो महतस्तव सम्बन्धिनं क्रतुं कर्म विशेषमुल्लङ्घ्य परो नहि उत्कृष्टो देवो न भवति खलु। तथा मर्त्यो मनुष्यश्च परो न भवति। ये मनुष्यास्त्वदीयं क्रतुमनु-

तिष्ठन्ति ये च देवास्त्वदीये क्रताविज्यन्ते त एव उत्कृष्टा इत्यर्थः। मरुद्भिरित्यादि पूर्ववत्।

शब्दार्थ:—हे अग्ने ! = प्रकाशस्वरूप अग्ने ! महः = तुम महान् हो ऐसे तुम्हारे द्वारा आदिष्ट क्रतुं = यज्ञ या कर्म विशेष का उल्लंघन करके कोई भी परः = उत्कृष्ट नहीं बन सकता नहि = न परं = उत्कृष्ट देवः = देव ही बन सकता है। न = व ही (परं = उत्कृष्ट) मर्त्यः = मनुष्य ही बन सकता है।

व्याकरणम्—क्रतुः = कृ धातु से…औणादिक १-८ सूत्र द्वारा तुन् प्रत्यय। गहि = गम् धातु, लोट् लकार, मध्यम पुरुष समझना चाहिये। 'सि' को 'हि' बहुलं छन्दसि से शप् का लोप हुआ। अनुदात्तोपदेश से अनुनासिक लोप हुआ। उसके 'असिद्ध बदत्राभात्' इस सूत्र से असिद्ध होने के कारण 'अतो हेः' इस सूत्र से 'हि' का लुक् नहीं होता।

विशेषः—क्रतु शब्द का ऋग्वेद में यज्ञ अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता। वहां क्रतु शब्द शक्ति वाची है अतएव शतक्रतु शब्द से सौ मनुष्यों की शक्ति वाला यह अर्थ लिया जाता है। ऋग्वेद २-५-१२ में यह शब्द बुद्धि और शरीर दोनों अर्थों में प्रयुक्त है। ग्रीक भाषा का 'क्रतोस' शब्द भी शक्ति-वाचक है जो सम्भवतः ऋग्वेद से ही लिया गया है। अतः इस शब्द का कर्म या यज्ञ अर्थ करना सायण की भूल है यह पीटर्सन का कथन है क्योंकि इस अर्थ की संगति के लिये उल्लंघ्य का अध्याहार करना पड़ता है। अतः 'परः' को उपसर्ग समानार्थक मानना चाहिये। इस प्रकार 'देवता या मनुष्य तुम्हारी शक्ति का अतिक्रमण नहीं कर सकता।' यह पीटर्सन के अनुसार मन्त्र का अर्थ है।

संहिता-पाठः

३. ये म॒हो रज॑सो वि॒दुर्विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒द्रुहः॑ ।
म॒रुद्भि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥

पद-पाठः

ये म॒हः रज॑सः वि॒दुः विश्वे॑ दे॒वासः॑ अ॒द्रुहः॑ ।
म॒रुत्ऽभिः॑ अ॒ग्ने॒ आ ग॒हि॒ ॥३॥

सायणः—हे अग्ने ये मरुतो महो रजसो महत उदकस्य वर्षणप्रकारं विदुः तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः। कीदृशा मरुतः। विश्वे सर्वे सप्तविधगणोपेताः। सप्तगणा वै मरुत इति श्रुतेः। देवासः द्योतमानाः। अद्रुहः द्रोहरहिताः, वर्षणेनसर्वभूतोपकारित्वात्।

शब्दार्थः—हे अग्ने। ये = जो मरुत् गण महः = महान् रजसः = जल को (बरसाने के ढंग को) जानते हैं तथा विश्वे = वे सब (अर्थात् सात गणों वाले) देवासः = प्रकाशमान और अद्रुहः = द्रोहरहित हैं क्योंकि वर्षा के द्वारा सब प्राणियों के उपकारी हैं—उन मरुत् गणों के साथ यज्ञ में पधारिये।

व्याकरणम्—विश्वे=विश् धातु से क्वन् प्रत्यय किया गया। अद्रुहः=नञ् पूर्वक द्रुह धातु से सम्पदादित्वात् क्विप् प्रत्यय किया गया है।

विशेषः—ये महो रजसो विदुः=जो महान् रजः=आकाश लोक को जानते हैं—यह अर्थ पीटर्सन मानते हैं क्योंकि सायण के अर्थ में "वर्षण प्रकारम्" का अध्याहार करना पड़ता है। मैक्समूलर ने भी लिखा है कि The sky or welkin is the proper abode of the

Maruts, तथा विश्वे देवाः, के विषय में 'The appellation' विश्वे देवाः all Gods together, or host Gods—विश्वे देवाः के लिये यह व्याख्या की है।

संहिता-पाठः

४. य उग्राः अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

ये उग्राः अर्कम् आनृचुः अनाधृष्टासः ओजसा।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि ॥४॥

सायणः—ये मरुत उग्रास्तीव्राः सन्तः अर्कं उदकं आनृचुः अर्चितवन्तः वर्षणेन संपादितवन्तं इत्यर्थः। तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः। कीदृशा मरुतः। ओजसा बलेन आनाधृष्टासः अतिरस्कृताः सर्वेभ्योपि प्रबला इत्यर्थः।

शब्दार्थः—ये=जो मरुत् गण उग्रः=तीव्र होकर (अत्यधिक भक्ति के साथ) अर्कम्=जल को आनृचुः=वर्षा के द्वारा उत्पन्न करते हैं तथा ओजसा—बल से अनाधृष्टासः=किसी से तिरस्कृत नहीं होते। ऐसे मरुत् गणों को.........।

व्याकरणम्—उग्रः=उत् पूर्वक गृ निगरणे धातु से या गुरी उद्यमने से उग्र शब्द निपातित है। अर्क=शब्द अर्च् धातु के आगे क शब्द का योग होने पर बना है, अर्च्+क (जल)=अर्क। आनृचुः= ऋच् धातु, लिट् लकार्, प्रथम पुरुष, बहु वचन।

विशेष:—पीटर्सन ने अर्क शब्द का अर्थ गान (Song) किया है। इस प्रकार आनृचुः क्रिया का अर्थ भी गाना है तथा 'जो मरुत् गण

अपना गान गाते हैं' यह इस वाक्य का अर्थ हुआ क्योंकि "मरुतः स्वर्काः" ऋक् ७-३५-६ में सायण ने स्वयं स्वर्क का अर्थ शोभनस्तुति किया है। अतः शब्द का उदक अर्थ होने में "आपो वा अर्कः" (शतपथ १०-६-५१) यह वचन प्रमाण हैं और वहीं पर इसका निर्वचन दिया गया है। "अर्चतो वै मे कमभूत् इति तदेवार्कस्यार्कत्वम्" इति। अतः अर्क शब्द जल वाची है।

संहिता-पाठः

५. ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

ये शुभ्राः घोरऽवर्पसः सुऽक्षत्रासः रिशादसः।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि ॥

सायणः—ये मरुतः शुभ्रत्वादिगुणोपेतास्तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः। शुभ्रा=शोभमानाः। घोरवर्पसः=उग्ररूपधराः। सुक्षत्रासः=शोभनधनोपेताः। रिशादसः=हिंसकानां भक्षकाः। मघमित्यादिष्वष्टाविंशतिसंख्याकेषु धननामसु 'क्षत्रम् ।भगः' इति पठितम्।

हिन्दी व्याख्या:—ये=जो मरुद्गण, शुभ्राः=शोभित होते हैं, घोर वर्पसः=उग्र रूप धारण करने वाले हैं, (युद्ध में सैनिक सेना के धारण करने से, सुक्षत्रासः=पुण्यार्जित धन वाले हैं, तथा रिशादसः=हिंसकों के भक्षक या विनाशक हैं, उन मरुतों के साथ पधारिये।

व्याकरणम्—शुभ्राः="शोभनो हति शुभ्र स्फादि ताञ्चि" इत्यादि उणादि सूत्र से स्क् प्रत्यय हुआ है। रिशादस=रिशन्ति हिन्सन्ति इति रिशाः तानदन्तीति रिशादसः सर्वधातु भ्योऽसुन्, इस नियम से ऽसुन्

प्रत्यय हुआ। ऋप् धातु तुदादि गणी है घोर वर्पसः=वृञ् वरणे धातु से असुन् प्रत्यय करने पर पुगागम हुआ है। व्रियते इति वरपः। घोरं वरपः (शरीरम्) येषां ते घोर वर्पसः।

विशेष :—क्षत्र शब्द का अर्थ राज्य या राजा है। यहाँ पर धन वाची क्षत्र शब्द लिया गया है क्योंकि निघण्टु में धन के २८ नाम गिनाये हैं जिन में क्षत्र शब्द भी है जैसा लिखा भी है—"क्षत्रं भगः" इति। ऋग्वेद के १।२५।५वें मन्त्र में क्षत्रश्रियम्—प्रयोग मिलता है। जिसका अर्थ बल भी है। ऐसा सायण ने लिखा है। ऋशादस् शक् के विषय में 'सेन्ट पीटर्स वर्ग' डिक्शनरी में लिखा है कि इस शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वानों ने इसे रेशयदारिनं शक् से निकला हुआ कहा है जिस का अर्थ 'नाश कर्ता' 'टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ने वाला' होता है। अन्य विद्वानों ने इसे 'रेशयदाशिन्' शब्द से निकला हुआ बताया है। इसमें दंश दशने धातु है।

संहिता-पाठः

६. ये नाकस्याधिरोचने दिवि देवास आसते।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

ये नाकस्य अधि रोचने दिवि देवासः आसते।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि।

सायण :—ये मरुतो नाकस्याधि दुःखरहितस्य सूर्यस्योपरि दिवि=द्युलोके रोचने=दीप्यमाने ये देवासः=स्वयमपि दीप्यमाना आसते। तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः।

हिन्दी व्याख्या :—ये=जो मरुद्गण, नाकस्य, दुःख रहित,

सूर्यलोक के, अधि=ऊपर, रोचने=प्रकाशमान, दिवि=द्युलोक में, देवासः=दीप्यमान नहीं हुए, आसते=स्थित रहते हैं। उन मरुत् गणों के साथ आइये।

व्याकरणम्—कं सुखं यस्मिन् नास्ति तत् अकं न अकं नाकम् (नाकः वा) 'न भ्राण नपात्' (६।३।७५) सूत्र से न का लोप नहीं होता। रोचनम्=रुच दीप्तौ धातु से "अनुदात्तेतश्च हलादेः" ३।२।१८९ सूत्र से युच् प्रत्यय होता है।

विशेषः—पीटर्सन ने 'नाकस्य अधिरोचने' का On the shining arch of heaven और मैक्समूलर ने नाक का permanent अर्थ किया है। अतः इसका यह भाव हुआ कि देवगण सूर्य द्वारा प्रकाश्य स्थानों में निवास करते हैं।

संहिता-पाठः

७. य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

ये ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रम् अर्णवम्।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि

सायणः—ये मरुतः पर्वतान्मेघानीङ्खयन्ति चालयन्ति। तथा अर्णवम् उदकयुक्तम् समुद्रं तिरः कुर्वन्तीति शेषः। निश्चलस्य जलस्य तरङ्गाद्युत्पत्तमे चालनं तिरस्कारः। तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः।

हिन्दी व्याख्या—ये=जो मरुद्गण, पर्वतान्=मेघों को, ईङ्खयन्ति=इधर उधर उड़ा देते हैं, तथा अर्णवम्=प्रचुर जलयुक्त समुद्रम्=समुद्र को, तिरः=तिरस्कृत करते हैं। अपने अधीन रखते हैं ऐसे मरुद्गणों के साथ आइये।

व्याकरणम्—समुद्रम्=सम पूर्वक उन्दी क्लेदने धातु से "स्फायितञ्चीत्यादि" २।१७८ उणादि सूत्र से रक् प्रत्यय होता है।

विशेषः—'तिरस्' इस अव्यय का 'समुद्रम्' कर्म है। इसी प्रकार अगले मन्त्र में भी है। विचारणीय विषय यह है कि 'पर्वत' शब्द का क्या अर्थ है। यहाँ 'पर्वत' शब्द लाक्षणिक है जोकि 'पर्वत' जैसी ऊंची-ऊंची लहरों को लक्षित कर रहा है। "न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः"। (२–१६–३) मन्त्र में भी यही अर्थ अभीष्ट है। 'पर्वत का अर्थ मेघ भी है। जो १–५७–६ "त्वं तमिन्द्र ! पर्वतं…… चकर्तिथ" इस मन्त्र में लिया गया है।

संहिता-पाठः

८. आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥

पद-पाठः

आ ये तन्वन्ति रश्मिऽभिः तिरः समुद्रम् ओजसा।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि ॥८॥

सायणः—ये मरुतो रश्मिभिः=सूर्यकिरणैः सह आ। तन्वन्ति=आप्नुवन्ति । आकाशमितिशेषः। किं च ओजसा= स्वकीयबलेन समुद्रं तिरस्कुर्वन्ति। तैर्मरुद्भिरित्यन्वयः।

हिन्दी व्याख्याः—ये= जो मरुतः=मरुद्गण रश्मिभिः=सूर्य की किरणों तथा ओजसा=अपने बल से समुद्रम्=समुद्र को भी ढक लेते हैं। हे अग्ने उन मरुद्भिः मरुद्गणों के साथ आगहि पधारिये (यज्ञ में दर्शन दीजिये)।

विशेष:—जो पूर्वमन्त्र में विशेषता दिखलाई है वही यहां भी समझनी चाहिए।

संहिता-पाठः

९. अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु।
मरुद्भिरग्न आ गहि॥

पद-पाठः

अभि त्वा पूर्वऽपीतये सृजामि सोम्यम् मधु।
मरुत्ऽभिः अग्ने आ गहि॥

सायणः—हे अग्ने! पूर्वपीतये पूर्वकाले प्रवृत्ताय पानाय त्वां प्रति सोम्यं मधु सोम सम्बन्धिनं मधुरसं अभि सृजामि सर्वतः सम्पादयामि। अतस्त्वं मरुद्भिः सह अत्र आगच्छ।

हिन्दी व्याख्या:—हे अग्ने, पूर्वपीतये=सब देवताओं सर्व प्रथम पान करने के लिये या पूर्वकाल में पीने के लिये प्रवृत्त हुए, त्वां=तुम्हारे लिए, सोम्यम्=सोमसम्बन्धी, मधु=मधुर-रस वाले सोम-रस को, अभि=तुम्हारे अभिमुख, सृजामि=उपस्थित करता हूँ या उत्पन्न करता हूँ। इसलिये आप अन्य मरुद् गणों के साथ आइये।

व्याकरणम्—पूर्वपीतये=पूर्वाचसौ पीतिः, पूर्वपीतिः तस्यै सोम्यम्=सोममर्हति, इस विग्रह में 'तर्हति' इस सूत्र से यत् प्रत्यय हुआ। मधु=मनु अवबोध ने इस धातु से औणादिक उ प्रत्यय हुआ तथा धातु और प्रत्यय के बीच में 'फलिपाटि' (१/१८ उणादि) सूत्र से नकार के स्थान पर धकार आदेश हुआ, मन्यते इति मधु यह व्युत्पत्ति हुई।

विशेषः—गायत्री छन्द की पूर्ति के लिये 'सोम्यम्' के स्थान पर 'सोमियम्' ऐसा पाठ करना होगा।

वरुण सूक्त

संहिता-पाठः

१. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥

पद-पाठः

यत् चित् हि ते विशः यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविऽद्यवि ॥१॥

सायणः—हे वरुण यथा लोके विशः प्रजा कदाचित्प्रमादं कुर्वन्ति तथा वयमपि ते तव सम्बन्धि यच्चिद्धि यदेव किंचिद् व्रतं कर्म द्यविद्यवि प्रतिदिनं प्रमिनीमसि=प्रमादेन हिंसितवन्तः । तदपि व्रतं प्रमादपरिहारेण साङ्गं कुर्विति शेषः ।

अवतरणिकाः—इस सूक्त का शुनःशेप् ऋषि है, गायत्री छन्द और वरुण देवता है ।

शब्दार्थः—हे वरुण ! यथा=जिस प्रकार, संसार में, विशः=प्रजाजन, कभी प्रमाद करते हैं उसी प्रकार हम भी, वे= तुम्हारे संबंध के यच्चित् हि=जो कुछ, व्रतम्=यज्ञादि कर्म को, द्यवि द्यवि=प्रतिदिन, मिनीमसि=प्रमाद से नाश कर बैठे हैं, 'उस कर्म को हमारे प्रमादों का परिमार्जनकर के पूर्ण अंगों वाला कर दीजिये' (यह वाक्य अध्याहार के द्वारा लगाना चाहिये) ।

व्याकरणम्—मिनीमसि=मीञ् हिंसायाम् क्र्यादि गण, लट्-लकार, उत्तमपुरुष बहुवचन, 'मीनातेर् निगमे' (७-३-८१) इस सूत्र

से ईकार को ह्रस्व हो जाता है तथा श्ना के आकार को 'ईहल्यघोः' इस सूत्र से विकरणप्रत्यय को ईकारादेश हुआ।

विशेषः—व्रत शब्द What is enclosed set apart, Fenced off, For bidden, setteled. इन अर्थों में आता है। द्यवि-द्यवि में उत्तर शब्द बिना स्वर का रहता है।

संहिता-पाठः

२. मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिहीळा॒नस्य॑ रीरधः।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥

पद-पाठः

मा न॒ः व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जि॒हीळा॒नस्य॑ री॒र॒धः मा
हृ॒णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥२॥

सायणः—हे वरुण जिहिडानस्यानादरं कृतवतो हत्नवं हन्तुः पाप हननशीलस्य तव सम्बन्धिने त्वत्कर्तृकाय वधाय नः अस्मान्मा रीरधः संसिद्धान्विषयभूतान्मा कुरु। हृणानस्य हृणीयमानस्य क्रुद्धस्य तव मन्यवे क्रोधाय मा अस्मान्रीरधः।

शब्दार्थः—हे वरुण, जिहीडानस्य=अनादर करने वाले का, हत्नवे=नाश करने वाले, तुम्हारे द्वारा, (किये जाने वाले), वधाय= वध के लिये, नः=हम यजमानों की मारीरधः=वध का विषय मत बनाइये, और हृणानस्य=क्रुद्ध हुए तुम्हारे, मन्यवे=क्रोध का पात्र भी हमें न बनाइये।

व्याकरणम्—वधाय=हन् धातु से अप् प्रत्यय करने पर हन् को वध् आदेश हुआ। हत्नवे=हन् धातु से औणादिक क्नु प्रत्यय करने पर तथा धातु के नकार को तकार करने पर यह हत्नु शब्द सिद्ध

होता है। जिह्रीडानस्य=हेड़् अनादरे धातु से लिट् के स्थान पर कानच् प्रत्यय हुआ। द्वित्व, लोप, ह्रस्व, श्चुत्व, जश्त्व होने के बाद एकार को ईकार छान्दस हो जाता है। रीरधः=राध् संसिद्धौ, लुङ् मध्यम् पुरुष एक वचन चङ् णिलोप, उपधा ह्रस्व, अभ्यास ह्रस्व, सन्वद्भाव-इत्व-अभ्यास दीर्घ करने पर तथा 'न माङ्योगे' इस सूत्र से अडभाव होने पर रीरधः बनता है। हृणानस्य= हृणीङ् रोषणे लज्जायां च इस धातु से शानच् करने पर पृषोदरादित्वात् अभीष्ट लोप की सिद्धि होती है। अर्थात् कण्वादित्वात् प्राप्त यगभाव ईकार लोप किया जाता है।

विशेष :—दो स्वरों के बीच में आने पर प्रातिशाख्य के अनुसार डकार णकार बन जाता है ऐसा प्रातिशाख्य का नियम है। पीटर्सन के मत में 'हृणानस्य' और 'जिह्रीडानस्य' दोनों विशेषण शत्रुओं के हैं जो भूलोकवासी या द्युलोकवासी शत्रुओं के हैं तथा 'हृणान' का अर्थ रुष्ट है।

संहिता-पाठः

३. वि मृ॒ळीका॑य ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न॒ संदि॑तम्।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि॥

पद-पाठः

वि॒ मृ॒ळीका॑य ते॒ मनः॑ र॒थीः अश्व॑म् न संऽदि॑तम्।
गीःऽभिः॑ व॒रु॒ण॒ सी॒म॒हि॒ ॥३॥

सायण :—हे वरुण मृडीकाय अस्मत्सुखाय ते तव मनो गीर्भिः स्तुतिभिः वि सीमहि विशेषेण बध्नीमः प्रसादयाम इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः। रथी रथस्वामी संदितं सम्यक्खण्डितं

दूरगमनेन श्रान्तमश्वं न अश्वमिव। यथा स्वामी श्रान्तमश्वं घासप्रदानादिना प्रसादयति तद्वत्।

शब्दार्थ :—हे वरुण! मृडीकाय=सुख के लिये, ते=तुम्हारे मनः=मन को, गीर्भिः=स्तुतियों से, उसी प्रकार प्रसन्न करते हैं जिस प्रकार, सन्दितम्=दूर जाने से श्रान्त, अश्वम्=घोड़े को, रथी (सारथी) या रथ का स्वामी (प्रसन्न करता है)।

व्याकरणम्—रथी यह ईकारान्त शब्द है। मत्वर्थीय ईकार प्रत्यय है। सन्दितम्= "दोऽवखण्डने" 'निष्ठा' इति क्तः प्रत्यय। 'द्यतिस्यति' इत्यादि सूत्र से इकारान्तादेश। विसीमहि=षिवु तन्तु सन्ताने या षिञ् बन्धने धातु से लिङ् उत्तम पुरुष एक वचन, व्यत्यय से आत्मनेपद। 'बहुलं छन्दसि' से विकरण प्रत्यय श्यन् या श्नु का लोप धातु को छान्दस दीर्घ। षिवु तन्तु सन्ताने से बनाने पर धातुगत वकार का लोप हो जाता है।

विशेषः—पीटर्सन के अनुसार सायण का अर्थ नितान्त अशुद्ध है, तथा इस सूक्त की पांचवीं और उन्नीसवीं ऋचा से मेल नहीं खाता। अतएव सीमहि शब्द षिञ् बन्धने से बना है। विसीमहि का (क्रोध के) बन्धन मुक्त करना है। जोर से बाँधना नहीं। अतः इस मन्त्र का अर्थ यह है कि वरुण के कानों तक उसकी स्तुति पहुँचेगी और जैसे यात्री चलते समय घोड़े की अगाड़ी और पिछाड़ी खोल देता है वैसे ही वरुण मेरे पिछले और अब के अपराधों को क्षमा कर दया के लिये अपने मन को क्रोध के बन्ध से मुक्त कर देगा। ऋग्वेद में नकार इवार्थक होता है जब कि वह मन्त्र के आदि में प्रयुक्त नहीं होता। यह निरुक्तकार का मत है। साथ ही यह बात लोक व्यवहार से सिद्ध है कि जब हम यह कहें कि मालती और मनचन्दा एक नहीं हैं इस अवस्था में यह निश्चित है कि हम यह मानते हैं कि गुणों से या आकृति में वह इतना सादृश्य रखती हैं कि यह कहने की आवश्यकता बलात् पड़ ही जाती है कि अमुक

अमुक नहीं है। इस प्रकार यह न का ध्वनन करता हुआ अर्थापति से सादृश्यवाची बन जाता है।

संहिता-पाठः

४. परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्यइष्टये।
वयो न वसतीरुप ॥

पद-पाठः

परा हि मे विऽमन्यवः पतन्ति
वस्यःऽइष्टये। वयः न वसतीः उप ॥४॥

सायणः—हे वरुण मे मम शुनःशेपस्य विमन्यवः क्रोध-रहिता बुद्धयो वस्यइष्टये वसीयसोऽतिशयेन वसुमतो जीवनस्य प्राप्तये परा पतन्ति पराङ्मुखाः पुनरावृत्तिरहिताः प्रसरन्ति। हि शब्दोऽस्मिन्नर्थे सर्वजनप्रसिद्धिमाह। परापतने दृष्टान्तः। वयो न। पक्षिणो यथा वसतीर्निवासस्थानान्युपसामीप्येन प्राप्नुवन्ति तद्वत्।

शब्दार्थः—हे वरुण, मे=मुझ शुनःशेप ऋषि की, विमन्यवः=क्रोधरहित, बुद्धिया वस्या=अत्यधिक वसु (धन) युक्त जीवन की इष्टये—प्राप्ति के लिये, परायतन्ति हि=निश्चय से पराङ्मुख होकर अर्थात् पुनरावृत्ति होकर प्रसरण करती है अर्थात् मेरे मन में जब वरुण की भक्ति उदित होती है तब सुखमय जीवन कभी निवृत्त नहीं होता। वह उसी तरह मेरी ओर दौड़ कर आता है जैसे—सायं-काल के समय वयः—पक्षिगण, वसतीः=अपने घोंसलों के लिये, उदपतन्ति=दौड़ कर जाते हैं।

व्याकरणम्—'वस्यः' वसुमत् शब्द से ईयसुन् प्रत्यय करने पर

'विन्मतोर्लुक्' से मतुप् का लुक् होने पर टि लोप हुआ और ईयसुन् के यकार का लोप छान्दस है। वसतीः=वस् धातु से 'वहिवस्यर्तिभ्यश्चित्' इस औणादिक सूत्र से ति प्रत्यय है।

विशेषः—विमन्यवः। पूर्व मन्त्र में आये गीर्भिः मन्त्र के साथ विमन्यवः का साम्य है। अतएव यह शब्द भी स्तुति वाचक है। Roth ने इसका अर्थ Desires या Longings किया है। वस्यस् का अर्थ ग्रासमान (Grassman) ने Highest good fortune किया है।

संहिता-पाठः

५. कुदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे।
मृडीकायोरुचक्षसम् ॥

पद-पाठः

कुदा क्षत्रऽश्रियम् नरम् आ वरुणम् करामहे।
मृडीकाय उरुऽचक्षसम् ॥५॥

सायणः—मृडीकाय अस्मत्सुखाय वरुणं कदा कस्मिन् काले आ करामहे अस्मिन्कर्मण्यागतं करवाम। कीदृशम्। क्षत्रश्रियम् बलसेविनं नरं नेतारम् उरुचक्षसं बहूनां द्रष्टारम्।

शब्दार्थः—मृडिकाय=अपने सुख के लिये क्षत्रश्रियम्=बलयुक्त, नरम्=नेता, उरुचक्षसम्=संसार के द्रष्टा अथवा त्रिकालदर्शी वरुण को इस कर्म में कदा=कब, आकरामहे=बुलाने में समर्थ हो सकेंगे अर्थात् वरुण के द्वारा हमारे कर्मों की पूर्णता और घर की पवित्रता कब होगी।

व्याकरणम्—क्षत्राणि श्रयति इति क्षत्रश्रीः, क्विप् और दीर्घ। नरम्=नॄ नये (क्र्यादि) धातु से ऋदोरप् से अप् प्रत्यय नर।

करामहे=व्यत्यय से उ प्रत्यय के स्थान पर शप् हुआ 'ऊरुचक्षसम् चक्षोर्बहुलम् शिच्च' से असुन्, शिद्वद् भाव होने से ख्यादेश नहीं होता। मृडीकाय=मृड पृड सुखने धातु से ईकन् प्रत्यय।

विशेष :—क्षत्रश्रियम्-मैक्स मूलर के अनुसार who is victory to the warriors अर्थ है जो पीटर्सन को अभिमत है। नरम्=में etymological meaning लिया गया है।

संहिता-पाठः

६. तदित्स॒मा॒नमा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र यु॑च्छतः।
धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥

पद-पाठः

तत्। इत्। स॒मा॒नम्। आ॒शा॒ते॒ इति॑। वेन॑न्ता। न।
प्र। यु॒च्छ॒तः। धृ॒तऽव्र॑ताय। दा॒शुषे॑ ॥६॥

सायण :—धृतव्रताय अनुष्ठितकर्मणे दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय वेनन्तौ कामयमानौ। मित्रावरुणावितिशेषः तावुभौ समानं साधारणं तदिदस्माभिर्दत्तं तदेवहविराशाते अश्नुवाते। न प्रयुच्छतः कदाचिदपि प्रमादं न कुरुतः।

शब्दार्थ :—धृत व्रताय=यज्ञ कर्म करने वाले दाशुषे=और हवि प्रदान करने वाले यजमान के लिये, वेनन्ता=शुभ कामना करते हुए मित्रावरुण दोनों, समानम्=एक सी, तदित्=उस ही को, आशाते= प्राप्त करते हैं और हवि के स्वीकार करने में न प्रयुच्छतः=कभी प्रमाद नहीं करते।

व्याकरणम्—अशु व्याप्तौ लिट् प्रथम पुरुष द्विवचन, आगम शास्त्र के अनित्य होने से यहाँ नुडागम नहीं हुआ। वेनन्ता='वेनतिः' कान्ति

कर्मा, शतृ, प्रथमा द्विवचन, औ के स्थान पर आकार छान्दसः। दाशुषे=दाशृ दाने, क्वसु, दाश्वानित्यादि सूत्र से।

विशेष:—ऋग्वेद में केवल यही एक मन्त्र है जहां धृत व्रत शब्द भक्त के लिये विशेषण रूप में दिया गया है। अन्य मन्त्रों में यह विशेषण केवल ईश्वरार्थ प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ ईश्वर का विशेषण होने पर up holder of the law है और भक्त का विशेषण होने पर A man who obeys the law है। इस मन्त्र में मित्र शब्द का भी ग्रहण किया गया है जो कि वरुण का जुड़वां भाई (Twin brother) माना जाता है। दाशुषे में क्वसु होने पर भी द्वित्व नहीं होता।

संहिता-पाठः

७. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियं॥

पद-पाठः

वेद यः वीनाम् पदम् अन्तरिक्षेण पतताम्।
वेद नावः समुद्रियः॥

सायण:—अन्तरिक्षेण पततामाकाशमार्गेण गच्छतां वीनां पक्षिणां पदं यो वरुणो वेद तथा समुद्रियः समुद्रेवस्थितो वरुणो नावो जले गच्छन्त्याः पदं वेद जानाति। सोऽस्मान्बन्धनान्मोचयत्विति शेषः।

शब्दार्थः—यः=जो वरुण, अन्तरिक्षेण=आकाश मार्ग से, पततां=जाने वाले, उड़ने वाले, वीनां=पक्षियों का, पदम्=स्थान, वेद=जानता है (या जो उड़ते पक्षियों को पहचानता है) तथा समुद्रियः=समुद्र में विद्यमान जो वरुण, नावः=जलयानों को (जानता है), वह

हमें दुःख के बन्धन से मुक्त करे' इतना अध्याहार कर के वाक्य पूर्ति करनी चाहिये।

व्याकरणम्—समुद्रियः—'समुद्रे भवः' इस अर्थ में 'समुद्राभ्राद्धः" इस सूत्र से घ प्रत्यय हुआ।

विशेषः—सायण के मत में नावः शब्द षष्ठ्यन्त एक वचन है तथा इसका 'पदम्' के साथ सम्बन्ध होता है तथा समुद्रियः वरुण का विशेषण है किन्तु Roth, Delbraek, Grassman के अनुसार द्वितीयान्त बहुवचन स्त्रीलिङ्ग है तथा इसका वेद के साथ साक्षात् सम्बन्ध है। छन्द के अनुसार 'वीनाम्' को 'वी-ना-आम्' इस प्रकार उच्चारण करके मात्राओं की पूर्ति की जायगी।

संहिता-पाठः

८. वेद॒ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः।
वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते ॥

पद-पाठः

वेद॑ मा॒सः धृ॒तऽव्र॑तः द्वाद॑श प्र॒जाऽव॑तः।
वेद॑ यः उ॒प॒ऽजाय॑ते ॥८॥

सायणः—धृतव्रतः स्वीकृतकर्मविशेषो यथोक्तमहिमोपेतो वरुणः प्रजावतस्तदा तदोत्पद्यमान प्रजायुक्तान्द्वादश मासश्चैत्रादीन्फाल्गुनान्तान्वेद जानाति। यस्त्रयोदशोधिकमास उपजायते संवत्सर समीपे स्वयमेवोत्पद्यते तमपि वेद। वाक्यशेषः पूर्ववत्।

शब्दार्थः— यः=जो वरुण, धृतव्रतः=कर्म विशेष को स्वीकार कर, प्रजावतः उत्पद्यमान=प्रजा वाले, द्वादश=बारह, मासः=

चैत्रादि या जनवरी आदि मासों को, वेद=जानता है तथा यः=जो तेरहवां मलमास उपजायते=संवत्सर में तीसरे या चौथे वर्ष अधिक बढ़ जाता है, उसको भी जानता है। वह हमें बन्धन से छुड़ावे।

व्याकरणम्— मासः=अकारान्त मास शब्द के स्थान में सकारान्त मास शब्द आदेश होता है। उपजायते=जन् धातु से कर्म कर्ता में लट् है तथा कर्म वद्भाव से आत्मनेपद है तथा यक् प्रत्यय है।

विशेषः— यहां पर भी 'द्वादश' को छन्दः-पूर्ति के लिये 'दु-आ-दश्' इस प्रकार उच्चारण किया जायगा। लेटिन में बारह को 'Du-O-de-cim' (द्वादेसिय) कहते हैं।

प्रजावतः =डैलब्रुक के मत में वर्तमान मास के बाद में आने वाले सभी मास वर्तमान मास की प्रजा कहलाते हैं। इसी प्रकार उत्पन्न होने वाला मास भी तेरहवां महीना है जो किसी किसी साल में बढ़ता है तथा चान्द्रमास तथा सौरमास के वर्षों के दिनों की संख्या को पूरा करने के लिये चान्द्र मासों में वृद्धि को प्राप्त होता है। अंग्रेज़ी में इसे 'Inter-calary' कहते हैं जो क्षेपक 'Inter-polation' के समान बीच में आता है। पीटर्सन का कहना है कि मासों की प्रजा यदि दिनों को माना जाय तो ठीक रहेगा।

संहिता-पाठः

९. वेद वार्तस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः।
वेदा ये अध्यासते ॥

पद-पाठः

वेद वार्तस्य वर्तनिम् उरोः ऋष्वस्य बृहतः।
वेद ये अधिऽआसते ॥९॥

सायण:—उरोर्विस्तीर्णस्य ऋष्वस्य दर्शनीयस्य बृहतो गुणैरधिकस्य वातस्य वायोर्वर्तनिं मार्गं वेद वरुणो जानाति। ये देवा अध्यासते उपरि तिष्ठन्ति तानपि वेद जानाति ।

शब्दार्थ:—तथा जो वरुण, उरो:=विस्तीर्ण, ऋष्वस्य=दर्शनीय, बृहत:=गुणों से महान्, वातस्य=वायु के वर्तनिम्=मार्ग को, वेद=जानता है तथा ये=जो देवगण, अधि=द्युलोक या परिवह=आदि वायु के मार्गों में आसते=निवास करते हैं, उन्हें भी जानता है (वह हमें दुःख बन्धन मुक्त करे)।

व्याकरणम्—'वात' शब्द में 'असि हसि' इत्यादि उणादि सूत्र से तन् प्रत्यय हुआ है। वर्तनि:=वर्तते प्रवर्तते अनेनेति वर्तनि:=मार्ग या स्तोत्रम्। ऋष्व=ऋषी गतौ से मतुबर्थीय 'व' प्रत्यय करने पर 'ऋष्य' शब्द बनता है। ऋष्व का Lofty यह भी अर्थ होता है।

विशेष:—'ऊर्ध्व' शब्द "वृध्" धातु से बनता है। वकार को ऊकार ऋकार को गुण तथा मत्वर्थीय 'व' प्रत्यय किया जाता है।

संहिता-पाठ:

१०. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या स्वा ।
सम्राज्याय सुक्रतुः ॥

पद-पाठ:

नि ससाद धृतऽव्रतो वरुणः पस्त्यासु आ ।
सांऽराज्याय सुऽक्रतुः ॥१०॥

सायण:—धृतव्रत: पूर्वोक्तो वरुण: पस्त्यासु दैवीषु प्रजासु आ नि षसाद आगत्य निषण्णवान्। किमर्थम् प्रजानां साम्राज्य-सिद्ध्यर्थम्। सुक्रतु: शोभनकर्मा।

शब्दार्थः—धृतव्रतः=भक्तों की रक्षा करने के व्रत, सुक्रतुः=सुन्दर कर्मों वाला, वरुणः=वरुण देवता, वस्त्यासु=दिव्य प्रजाओं में, साम्राज्याय=प्रजाओं के द्वारा साम्राज्य की प्राप्ति के लिये, आससाद= स्थिर रूप से निवास करता है।

व्याकरणम्—क्रतुः=क्रि धातु से क्तुन प्रत्यय। निंससाद=नि उपसर्ग के आगे आने वाले सद् धातु का दन्त्य 'स' मूर्धन्य हो जाता है। पस्त्यासु=निघण्टु ने 'पस्त्य' शब्द को निपातन से सिद्ध माना है। यहाँ गृह वाची है, स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है।

विशेषः—आदमी को पीपस्त्यु कहते हैं। इस का प्रयोग "अग्नि प्रकाश" के मन्त्रों के बीच-बीच में भी वर्णित है तथा इस शब्द का उच्चारण Past-i-a-su आ "पास्तियासुआ" और साम्राज्य का "साम-राजियम्" है। जिससे कि छन्द के अक्षरों की पूर्ति ठीक ढंग से हो सके। Pichel ने पस्त्यासु का अर्थ "जलों में" किया है अतः वरुण का निवास जलों में है। यह इस मन्त्र का अर्थ हुआ तथा वाजस्नेयी संहिता, अध्याय १०, मन्त्र ७ "पस्त्यासु चक्रे वरुणः" इत्यादि एवं ऋग्वेद ४।१।११ "स जायत प्रथमः पस्त्यासु"। इन मन्त्रों में भी 'पस्त्या' शब्द जल वाचकहै तथा "सः" से अग्नि का ग्रहण किया गया है अतः अग्नि, जल से उत्पन्न होता है। वह वैदिक विचार धारा है। ऋग्वेद मण्डल ९ सूक्त ६५ मन्त्र २३ में पस्त्या शब्द नदी वाचक भी है।

संहिता-पाठः

११. अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति
कृता॑नि॒ या च॒ कर्त्वा॑॥

पद-पाठः

अतः विश्वानि अद्भुता चिकित्वान्
अभि पश्यति । कृतानि या च कर्त्वा ॥११॥

सायणः—अतोऽस्माद्वरुणाद्विश्वान्यद्भुता। सर्वाण्याश्चर्याणि चिकित्वान्प्रज्ञावानभि पश्यति सर्वतोवलोकयति। या कृतानि यान्याश्चर्याणि पूर्वं वरुणेन संपादितानि। चकारादन्यानि यान्यश्चर्याणि कर्त्वा इतः परं कर्त्तव्यानि। तानि सर्वाण्यभि-पश्यतीति पूर्वत्रान्वयः।

शब्दार्थः— अतः=इस वरुण से अर्थात् वरुण की दया से सर्वाणि=सारे, आश्चर्याणि=अद्भुत् संसार के पदार्थों के या=जिन्हें कृतानि=वरुण बना चुका है, च=और या=जिन्हें कर्त्वा=वरुण बनावेगा ताकि उन सारे अद्भुत् पदार्थों को, अभिपश्यति=देखता है।

व्याकरणम्—चिकित्वान्=कित् ज्ञाने, लिट् क्वसु। कर्त्वा= कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः (३–४–१४) से त्वन् प्रत्यय हुआ।

विशेषः—अतः यह पद पूर्व मन्त्र में आये 'पस्त्यासु' की ओर संकेत करता है। अतः घरों में होने वाली अद्भुत् घटनायें हुआ। Delbruck ने 'अद्भुता' के स्थान पर 'अद्भुतः' पाठ माना है तथा इसे वरुण का विशेषण भी माना है तथा ऐसा होने पर अद्भुत् शब्द अदृश्य Concealed from other अर्थ का वाचक है। ग्रासमान ने भी 'Invisible' अर्थ किया है। Maxmullar ने तो 'अद्भुता' पाठ माना है और 'All wondrous things' अर्थ किया है वरुण का स्वर्गाधिपति होना और उसका भूत् और भविष्यत् के हमारे कार्यों पर दृष्टि रखना एवं तदनुसार फल देना ही आश्चर्यजनक है। 'चिकित्वान्' शब्द में सकार का लोप हुआ है तथा ऋग्वेद

में 'आन्' की जगह पर 'आँ' लिखा जाता है। अतः 'चिकित्वाँ' ऐसा समझना चाहिये। इस उच्चारण की शुद्धता में द्वितीयान्त एक वचन चिकित्वाँसम् प्रमाणभूत है। छन्द के अक्षरों की पूर्ति के लिये या प्रतिशाख्य के अनुसार उचारण के लिये 'कर्त्वा' को 'कर्त्तु-आ' इस प्रकार पढ़ना चाहिये।

संहिता-पाठः

१२. स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्याः सु॒पथा॑ करत्।
प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत्॥

पद-पाठः

सः नः॒ वि॒श्वाहा॑ सु॒ऽक्रतुः॑ आ॒दि॒त्यः सु॒ऽपथा॑
क॒र॒त्। प्र नः॒ आयूं॑षि ता॒रि॒ष॒त्।

सायणः—सुक्रतुः शोभन प्रज्ञः स आदित्यो वरुणो विश्वाहा सर्वेष्वहः सु नोऽस्मान् सुपथा शोभन मार्गेण सहितान् करत् करोतु। किंच नोस्माकमायूंषि प्र तारिषत् प्रवर्धयतु।

शब्दार्थ:—सुक्रतुः=तीव्र बुद्धि वाले, आदित्य=अदिति का पुत्र, सः=वह वरुण, विश्वाहा=सब दिन, नः=हम लोगों के, सुपथा= अच्छे मार्ग से, तरत्=ले जावे या सुमार्ग गामी बनावे तथा, नः=हमारी आयूंषि=आयुषों को प्रतारिषत्=बढ़ावें।

व्याकरणम्—सुपथा=स्वती पूजायाम् २।२।१८ से समास तथा 'न पूजनात्' ५।४।६९ से समासान्त टच् प्रत्यय का निषेध। करत्=कृ लेट् व्यत्यय से उ के स्थान पर शप्। शप् का लोप, 'लेटो लुटौ' से अडागम, 'इतश्च' से इकार का लोप अथवा कृ लुङ् 'कृमह' ३।१।५९ से 'च्लि' को अङ् 'ऋदृशोऽङिगुणः' ७।४।१६ से गुण बहुलं छन्दसि

से अडागम का निषेध। इस प्रकार यह प्र-णः "उपसर्गात् बहुलम्" ७।४।२८ मन्त्र से नकार को णकार। तारिषत्=तृ+णिच्+लेट् 'सिब्बहुलं लेटी' 'लेटोडाटौ' 'इतश्च' 'आदेश प्रत्यययोः' इन सूत्रों से यथावत् कार्य होता है।

टिप्पणीः—पीटर्सन ने 'सुपथा' को द्वितीया का बहुवचन मान कर 'उत्तम मार्गों को' यह अर्थ किया है।

'प्राणः' के 'न' को 'णः' कर दिया गया है।

संहिता-पाठः

१३. बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥

पद-पाठः

बिभ्रत् द्रापिम् हिरण्ययम् वरुणः वस्त निःऽनिजम्।
परि स्पशः नि सेदिरे ॥१३॥

सायणः—हिरण्ययं सुवर्णमयं द्रापिं कवचं बिभ्रद्धारयन्वरुणो निर्णिजं पुष्ट स्वशरीरं वस्त आच्छादयति। स्पशो हिरण्य-स्पर्शिनो रश्मयः परि निषेदिरे सर्वतो निषण्णः।

शब्दार्थ :— हिरण्यम्=सुवर्ण के बने, द्रापिम्=कवच को, बिभ्रत्=धारण करता हुआ, वरुणः=वरुण, निर्णिजम्=पुष्ट, अपने शरीर को, वस्त=ढकता है, स्पशाः=सुवर्ण कवच की चमकदार किरणें, परिनिसेदिरे=चारों तरफ स्थित हैं या व्याप्त हो रही हैं।

व्याकरणम्— बिभ्रत्=भृ+शतृ 'नाभ्यस्ताच्छतुः' ७।१।७८ से नुङ् का निषेध 'भ्रति ही इत्यादि' ७।३।३६ से। द्रापि=द्रा, णिच् पुक्- औणादिक इ प्रत्यय। 'द्रापयति ईषन् कुत्सितां गतिं प्रापयति

विफली करोति इति द्रापी। हिरण्ययः=हिरण्य शब्द से मयट् के मकार का लोप निपातित हुआ। वस्त=वस् आच्छादने (अदादि) लङ् शप् का लुक् अट् आगम का अभाव।

निर्णिजम्=नेनेक्ति-परिमर्ष्टि प्रतिदिनम् इति निजम् (शरीरम्) निज् अच् निर् उपसर्ग।

विशेष :—द्रापी 'लिप्युआनियन भाषा में Drapana (द्रपण) शब्द cloak, Mantle अर्थ में प्रयुक्त हुआ है जो संस्कृत के द्रापी का अपभ्रंश है और इस से मिलता जुलता है।

निर्णिजम्— सायण साधारणतया इस शब्द का अर्थ रूप लेते हैं; परन्तु पीटर्सन इस शब्द का अर्थ बैज (Bedge) या ज़रीदार पोशाक मानता है; क्योंकि 'वस्त' का अर्थ 'He has put on' है। 'He is covering' नहीं।

स्पशः=पीटर्सन के कथनानुसार (यहां सायण ने यह भूल की है कि वे स्पशः का अर्थ गुप्तचर या दूत न कर के यहां किरण करते हैं, जब कि अन्य मन्त्रों में spies या massanger अर्थ किया गया है। जैसे ऋग्वेद के ७।८७।३ में है। अतः यहां भी His spies sit down around' यह अर्थ करना चाहिये। महाकवि माघ ने भी 'शकविधवनो भाति राजनीतिरपस्पशा' यह लिखते हुए स्पश शक का दूत ही अर्थ लिया है।

संहिता-पाठः

१४. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्
न देवमभिमातयः ॥

पद-पाठः

न यम् दिप्संन्ति दिप्सवः न द्रुह्वाणः जनानाम् ।
न देवम् अभिऽमातयः ॥१४॥

सायणः—दिप्सवो हिंसितुमिच्छन्तो वैरिणाः यं वरुणं न दिप्सन्ति भीताः सन्तो हिंसितुं इच्छां परित्यजन्ति । जनानां प्राणिनां द्रुह्वाणो द्रोग्धारोपि यं वरुणं प्रति न द्रुह्यन्ति । अभिमातयः पाप्मानः। पाप्मा वा अभिमातिरिति (T. S. ii, 1,3,5) श्रुत्यन्तरात् देवं तं वरुणं न स्पृशन्ति । दिप्सन्ति ।

भाषाः—दिप्सवः=हिंसा करने की या दमन करने की इच्छा करने वाले, वैरीगण, यम्=जिस वरुण को, न दिप्सन्ति=डर कर हिंसा करने का भाव छोड़ बैठते हैं , तथा जनानां=मनुष्यों में द्रुह्वाणः=द्रोह बुद्धि रखने वाले व्यक्ति भी जिस वरुण से डर कर न=द्रोह बुद्धि छोड़ बैठते हैं । अभिमातयः=पापी लोग तो, देवम्=दिव्य गुण वाले वरुण को, न=छू भी नहीं सकते अर्थात् पापियों के लिये वरुण अगम्य है ।

व्याकरणम्—दिप्सन्ति=दम्भ, सन्, लट् ब० व०, सनीवन्त (७,२,४६) से इट का अभाव। 'हलन्ताच्च' (१–२–१०)से सन् को कित्व तथा 'दम्भ इच्च' से दकार से आगे के अकार को इकार हुआ भश् भाव छान्दस् है । 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' (७–४–५९) से अभ्यास लोप । दिप्सवः=सन्यशंस ३–२–१६८) से उ प्रत्यय हुआ । द्रुह्वाणः='द्रुह् जिघांसायाम्' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इस सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय किया गया है ।

विशेषः—Tikal पहाड़ी या सरहद्दी जातियों में हिंसा की बुद्धि अधिक होती है। वे वरुण देव की कोई हानि नहीं कर सकती क्योंकि वे केवल मनुष्यों को ही सता सकती है देवों को नहीं । Grassman ने

जनानाम् का सम्बन्ध अभिमातयः के साथ किया है। तथा अभिमाति शब्द का अर्थ शत्रु माना है। Maxmullar ने भी "The formantors of men" यह अर्थ किया है। अतः 'अभिमति' शब्द अभिपूर्वक मन धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर या मीञ् हिंसायान् (क्र्यादि) से क्तिन् प्रत्यय करने पर बनता है तथा अभिमन्यते इति अभिमातिः या अभिभूयमिनाति हिनति इति अभिमातिः यह व्युत्पत्ति करनी उचित है। "मीनाति मिनोतिं से एज् विषय में आत्व होने पर रूप सिद्ध होता है।

संहिता-पाठः

१५. उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा ॥

पद-पाठः

उत यः मानुषेषु आ यशः चक्रे असामि आ।
अस्माकम् उदरेषु आ ॥१५॥

सायणः—उत अपि च यो वरुणो मानुषेषु यशोन्नम् आचक्रे सर्वतः कृतवान्। स वरुणः कुर्वन्नप्या सर्वतः असामि सम्पूर्णं चक्रे न तु न्यूनं कृतवान्। विशेषतोस्माकमुदरेषु आ सर्वतश्चक्रे।

शब्दार्थः—उत=और जो यः=वरुण, मानुषेषु=मनुष्यों के लिये यशः=अन्न को, आचक्रे=संस्थानों में उत्पन्न करता है वह वरुण अन्न को उत्पन्न करता हुआ, आ=सब प्रकार से असामि=पूर्ण रूप से ही अर्थात् अन्न के सब भेदों सहित अन्न को उत्पन्न करता है और पर्याप्त रूप से करता है। विशेषतया उस वरुण ने अस्माकम्=हमारे, उदरेषु=पेटों में, आ, चक्रे=अन्न को हर प्रकार से पचाने की शक्ति दी है।

व्याकरणम्—मानुषः="मनोर्जातौ" (४।१।१६१) इस सूत्र से अञ् और बुक् का आगम। यशः='असेयुट् च'। (४।१६०) इस उणादि सूत्र से अस् धातु से असुन् प्रत्यय हुआ और आदि में युट् का आगम हुआ। असुनोति व्याप्नोति जगत इति यशः यह व्युत्पत्ति है।

उदरेषु:=उत् उपसर्ग पूर्वक् दॄञ् (क्र्यादि) विदारणे धातु से 'उदिदृणातेरजलौ पूर्वपदानपलोपश्च' इस सूत्र से अल् प्रत्यय हुआ। उद्गतम्—प्रातम् दृणाति जरयति इति उदरम्, यह व्युत्पत्ति है।

विशेषः—छन्दः पूर्ति के लिये आवश्यकतानुसार मानुषेषु आ, उदरेषु आ इत्यादि सन्धि तोड़ कर पाठ करना चाहिये—सन्धि सहित नहीं। यशः शब्द का अन्न अर्थ करना 'उदरेषु' को देखते हुये ठीक बैठता है, किन्तु मानुषेषु के साथ अन्न का उचित सम्बन्ध नहीं बैठता। अतः मैक्समूलर ने यशः का अर्थ glory ही किया है और उदरेषु का अर्थ जठर न कर के मनुष्य शरीर किया है। ग्रासमान ने 'यशः' का अर्थ Blessing किया है। Ludwig (लुडविग) ने उदरेषु की जगह 'द्युषु' पाठ दाना है और उसका अर्थ घर किया है।

संहिता-पाठः

१६. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥

पद-पाठः

परा मे यन्ति धीतयः गावः न गव्यूतीः अनु।
इच्छन्तीः उरुऽचक्षसम् ॥१६॥

सायण:—उरुचक्षसं बहुभिर्द्रष्टव्यं वरुणमिच्छन्तीर्मे धीतयः शुनःशेपस्य बुद्धयः परा यन्ति पराङ्मुखा निवृत्तिरहिता गच्छन्ति। तत्र दृष्टान्तः गावो न यथा गावो गव्यूतीरनु

गोष्ठान्यनुलक्ष्य गच्छन्ति तद्वत् । गव्यूतीः । गावोत्र यूयन्त इत्यधिकरणे क्तिन् ।

शब्दार्थः—उरुचक्षसम्=संसार से सौंदर्यातिशय के कारण दर्शनीय वरुण के, इच्छन्ती=दर्शन कामना वाली, मे=मेरी, धीतयः=स्तुति करने वाली बुद्धियाँ, गव्यूतीः=गोष्ठों के अनु=उद्देश्य से सायंकाल के समय जाने वाली गौओं की न=तरह,=निवृत्ति के लिये चली जाती है, पहुँच जाती है । वरुण स्तुति में तन्मय हो कर लीन हो जाती है ।

व्याकरणम्—'गव्यूतिः' गो उपपद 'यु' धातु से क्तिन् । उकार को पृषोदरादित्वात् दीर्घ । गावो यूयन्ते निबध्यन्ते यत्रंसा । गव्यूतिः=यह निर्वचन है । उरुचक्षसम्=उरुभिः चक्षणं दर्शनं यस्य सः उरुचक्षाः तम् । पिछले पांचवें मन्त्र में इसकी सिद्धि की जा चुकी है ।

विशेष :—गव्यूति शब्द गो+ऊति के मध्य मुखस्वार्थ (euphony) यकार का आगम करने से बनाया गया है यह पीटर्सन कहता है तथा इसका अर्थ पशुओं का मार्ग है, गोष्ठ नहीं ।

संहिता-पाठः

१७. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥

पद-पाठः

**सम् नु वोचावहै पुनः यतः मे मधु आऽभृतम् ।
होताऽइव क्षदसे प्रियम् ॥१७॥**

सायण :—यतो यस्मात्कारणात् मे मज्जीवनार्थं मधुरं हविराभृतम् । अञ्जः सवाख्ये कर्मणि सम्पादितम् । अतः कारणाद्धोतेव होमकर्तेव त्वमपि प्रियं हविः क्षदसे अश्नासि ।

पुनर्हविः स्वीकाराद्रूर्ध्वम् तृप्तस्त्वं जीवन्नहं च नु अवश्यं संवोचावहै संभूय प्रियवार्तां करवावहै वोचावहै।

शब्दार्थः—यतः=चूंकि मेरे लिये, मधु=मधुर हवि, आमृतम्=इस उज्जासव नामक वर्णनों में निष्पादित की है। इसलिये होतेव=होता की तरह तुम भी, प्रियम्=प्रिय हवि को अदसे=भक्षण करते हो, तथा हवि भक्षण के बाद तृप्त होकर तुम और मैं नु=निश्चय से, संवोचावहै=मिलकर प्रेमालाप करें।

व्याकरणम्—वोचावहै=ब्रू धातु, वच् आदेश, लुङ्, च्लि को अङ्, उत्तम पुरुष द्विवचन है किन्तु लोट् लकार की तरह टि के एकार होने पर 'एवऐ' से ऐकार आदेश हुआ है। आमृतम्—आङ् पूर्वक हृ धातु से क्त हुआ।

विशेषः—पीटर्सन के मतानुसार पत्, नश्, वच्, की धातुऐं व्यवहार में पप्त्, नेश्, वोच्—रूपों को द्वित्वादि के कारण या अन्य कारणों से धारण करती हैं तथा मौलिक धातुओं के समान इनके भी रूप चलते हैं। अतः वोचाति, वोचावहै, वोचे इत्यादि प्रयोग होते हैं। 'होतेवक्षदसे' का अर्थ मैक्समूलर ने 'Thou eatest what thou likest live a friend' यह किया है। किन्तु 'होन्' शब्द का अर्थ 'friend' नहीं, 'होता' हो सकता है। इसका व्यापक अर्थ मान कर यह अर्थ किया है। इस मन्त्र द्वारा किसी ऐसी रीति की ओर संकेत किया जा रहा है जब कि होता या भोजन का ग्रहण सर्वप्रथम किया करता था तथा परिवार के सदस्य बाद में उसका प्रसाद समझ भोजन करते थे।

संहिता-पाठः

१८. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि।
एता जुषत मे गिरः॥

पद-पाठः

दर्शम् नु विश्वऽदर्शतम् दर्शम् रथम् अधि क्षमि ।
एताः जुषत मे गिरः १८॥

सायणः—विश्वदर्शतं सर्वैर्दर्शनीयमस्मदनुग्राहार्थमत्राविर्भूतं वरुणं दर्शं नु अहं दृष्टवान्खलु । क्षमि क्षमायां भूमौ रथं वरुण-संबन्धिनमधिदर्शम् आधिक्येन दृष्टवानस्मि । एता उच्यमाना मे गिरो मदीयाः स्तुतीर्जुषत वरुणः सेवितवान् ।

शब्दार्थः—विश्व दर्शतम्=संसार से दर्शनीय हमारे ऊपर दया करके प्रकट हुए वरुण को, नु=निश्चय से, दर्शम्=मैं देख चुका हूँ । क्षामि=पृथ्वी पर, रथम्=वरुण के रथ को, अधि=आँख भर के' अधिकतया, दर्शम्=देख चुका हूँ । अतः एताः=इन, वक्ष्यमाण मे=मेरी, गिरः=स्तुतियों को, जुषत=सेवन कीजिये, ग्रहण कीजिये ।

व्याकरणम्—दर्शम्=दृश् , लुङ् च्लि को अङ् , उत्तम पुरुष, एक वचन ।

विशेषः—इसके I saw और I may see दोनों अर्थ होते हैं । इनमें प्रथम अर्थ अधिक प्रामाणिक है । वेद में लुङ् का प्रयोग विशेषतया अभी समाप्त हुई क्रिया के अर्थ में होता है । क्षामि=क्षमा, सप्तमी एक वचन, आ का लोप ।

संहिता-पाठः

१९. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके ॥

पद-पाठः

इमम् मे वरुण श्रुधि हवम् अद्य च मृळय ।
त्वाम् अवस्युः आ चके ॥१९॥

सायणः—हे वरुण मे मदीयमिमं हवमाह्वानं श्रुधि शृणु। किंच अद्य अस्मिन्दिने मृळय अस्मात्सुखय। अवस्युः रक्षणेच्छुरहं त्वां वरुणमाभिमुख्येन चके शब्दयामि स्तौमीत्यर्थः।

शब्दार्थः—हे वरुण! मे=मेरे इयम्=इस, हवम्=आह्वान् को श्रुधि=सुनो, च=और अद्य=आज मृलय=सुख प्रदान कीजिये। त्वाम्—तुझ को अवश्युः=अपनी रक्षा के उद्देश्य से, आचके=बुला रहा हूँ, स्तुति कर रहा हूँ।

व्याकरणम्—श्रुधि=लोट् मध्यम पुरुष, एक वचन, विकरण लोप। श्रु शृणु ६।४।१०२ से हि को धि आदेश। अवश्युः=अवस् शब्द से चाहने अर्थ में क्यच् प्रत्यय। "क्याच् छन्दसि" (३।२।१७०) से उ प्रत्यय। आचके="कै गै शब्दे, लिट् आदेचः" ६।२।४५ से आकार अन्ता देश, द्वित्व, श्चुत्व, उपधा ह्रस्व। "आतो लोपः" ६।४।६४ से आकार लोप।

संहिता-पाठः

२०. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि॥

पद-पाठः

त्वम् विश्वस्य मेधिर दिवः च ग्मः च राजसि।
सः यामनि प्रति श्रुधि॥२०॥

सायणः—हे मेधिर मेधाविन्वरुण त्वं दिवश्च द्युलोकस्यापि ग्मश्च भूलोकस्यापि एवमात्मकस्य विश्वस्य सर्वस्य जगतो मध्ये राजसि दीप्यसे। सः तादृशः त्वं यामनि क्षेमप्रापणेऽस्मदीये प्रति-श्रुधि प्रतिश्रवणमाज्ञापनं कुरु रक्षिष्यामीति प्रत्युत्तरं देहीत्यर्थः।

शब्दार्थः—हे मेधिर=मेधाविन् वरुण, त्वम्=तू, दिवः=द्युलोक

का, च=और ग्मः=भूलोक का, इस प्रकार विश्वस्य=सारे संसार के मध्य में, राजसि=देदीप्यमान हो रहे हो, सः+इस प्रकार के तुम, यामनि=हमारे कल्याण के दिलाने के विषय में, प्रति श्रुध=प्रतिज्ञा कीजिये "मैं तुम्हारी रक्षा करूंगा" ऐसा वचन दीजिये।

व्याकरणम्—ग्मः शब्द निरुक्त में पृथ्वी के नामों में पठित है। यह षष्ठी का एक वचन है। 'आतो धातो' में आतः का योग विभाग किया गया और उससे यह लोप हुआ। यामनि=या प्रापणे आतो मनिन् सूत्र से मनिन् याति प्राप्नोति इति याभन्।

विशेषः—राजसि का अर्थ 'Thou rulest over' है तथा यह सायण का व्याख्या करने का अपना ही प्रकार है।

संहिता-पाठः

२१. उदु॑त्त॒मं मु॑मुग्धि॒ नो॒ वि पाशं॑ मध्य॒मं चृ॑त।
अवा॑ध॒मानि॑ जी॒वसे॑ ॥

पद-पाठः

उत् उ॒त्ऽत॒मम् मु॒मु॒ग्धि॒ नः॒ वि पाश॑म्
म॒ध्य॒मम् चृ॒त॒। अव॑ अ॒ध॒मानि॑ जी॒वसे॑ ॥२१॥

सायणः—नोऽस्माकमुत्तमं शिरोगतं पाशमुन्मुमुग्धि उत्कृष्य मोचय मध्यममुदरगतं पाशं वि चृत वियुज्य नाशय। जीवसे जीवितुमधमानि मदीयान्पादगतान्पाशानव चृत अवकृष्य नाशय।

शब्दार्थः—हे वरुण! त्वम्=तू, नः=हमारे, उत्तमम्=उत्तम स्थान वर्ती अर्थात् सिर के पाश को उन्मुमुग्धि=छुड़ा दो, एवं मध्यमम्=मध्यस्थान वर्ती अर्थात् कमर के, पाशम्=बन्धन को, विचृत=खींच

कर के नष्ट कर दो । जीवसे=जीवन के लिये अधमानि=पैरों में लगे हुए पाशों को ही, अवचृत=खींच कर नष्ट कर दो ।

व्याकरणम्--मुमुग्धि=मुच्लृ मोचने 'बहुलं' छन्दसि से तुदादि विकरण को हटाकर जुहोत्यादि श्लु विकरण प्रत्यय हुआ । 'द्वित्व इझल्भ्यो हेर्धिः' से हि को धि आदेश हुआ । चृत=चृती हिंसा ग्रन्थनयोः लोट् 'तुदादिभ्यः शः' से श प्रत्यय विकरण और हि का लुक् । जीवसे =जीव धातु से 'तुमर्थेसे सेन्' ३।४।६ से तुम के स्थान पर सेन् प्रत्यय हुआ ।

विशेषः--जीवसे यह वैदिक, Infinitive है । यह कभी-कभी Quasi-infinitive के sense में भी प्रयुक्त होता है किन्तु चतुर्थी के अर्थ में विशेषतया प्रयुक्त है ।

—:०:—

मण्डल १ सूक्त ११५

सूर्य सूक्त

परिचय :—इस सूक्त का कुत्स त्रिष्टुप् छन्द है, सूर्य देवता है, आदि की तीन ऋचायें अनुबन्धा हैं, तथा अगली दो याज्या नाम है ।

संहिता-पाठः

१. चित्रं देवानामुदगादनीकं
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

पद-पाठः

चि॒त्रम् दे॒वाना॑म् उत् अ॒गा॒त् अनी॑कम्,
चक्षुः॑ मि॒त्रस्य॑ वरु॑णस्य अ॒ग्नेः ।
आ अ॒प्राः॒ द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ अ॒न्तरि॑क्षम्,
सूर्यः॑ आ॒त्मा जग॑तः त॒स्थुषः॑ च ॥१॥

सायण :—देवानाम् । दीव्यन्ति इति देवाः रश्मयः । तेषां देवजनानामेव वा अनीकं तेजः समूहरूपं चित्रमाश्चर्यकरं सूर्यस्य मण्डलमुदगात् । उदयाचलं प्राप्तमासीत् कीदृशम् । मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्च । उपलक्षणमेतत् । तदुपलक्षितानां जगतां चक्षः प्रकाशकं चक्षुरिन्द्रियस्थानीयं वा । उदयं प्राप्य च द्यावापृथिवी दिवं पृथिवीमन्तरिक्षं च आ अप्राः स्वकीयेन तेजसा आ समन्तादपूरयत् । ईदृग्भूतमंडलान्तवर्ती सूर्योन्तर्यामितया सर्वस्य प्रेरकः परमात्मा जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य चात्मा स्वरूपभूतः । स हि सर्वस्व स्थावरजङ्गमात्मकस्य कार्यवर्गस्य कारणम् । कारणाच्च कार्यं नातिरिच्यते । तथा च पारमर्षं सूत्रम् । 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः' इति । यद्वा स्थावरजङ्गमात्मकस्य सर्वस्य प्राणिजातस्य जीवात्मा । उदितेः हि सूर्ये मृतप्रायं सर्वं जगत्पुनश्चेतनयुक्तं सदुपलभ्यते । तथा च श्रूयते । 'योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति' इति ।

हिन्दी व्याख्या :—देवानाम्=रश्मियों का या देव गणों का, अनीकम्=समूह स्वरूप, चित्रं=आश्चर्यकारक, तथा मित्रस्य=मित्र नामक सूर्य का, वरुणस्य=वरुण का, अग्नेः=अग्नि का अर्थात् सम्पूर्ण संसार का, चक्षुः=प्रकाशक या द्योतक वा नेत्र के समान सूर्य का मण्डल, उद्गात्=उदित हुआ या उदयाचल को प्राप्त हुआ । उदित

होने के बाद उसने द्यावा पृथिवी=द्युलोक व पृथ्वी लोक को, अन्तरिक्षम्=नभः स्थल को, आ=सब तरफ से, अप्राः=अपने प्रकाश से भर दिया। इस प्रकार का यह सूर्य, सूर्य=सब का प्रेरक है, च=और, जगतः=जङ्गम संसार का, तस्थुषः=स्थावर जगत् का, आत्मा=व्यापक अथवा कारण है क्योंकि सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम रूप संसार सूर्य के उदय से पहले मृत प्राय दशा में रहता है सूर्य के निकलने पर उससे ही प्रेरणा या वृष्ट्यादि प्राप्त करता है।

व्याकरणम्—देवानाम्=दीव्यति प्रकाशन्ते इति देवाः रश्मयः अथवा दीव्यति मोदन्ते इति देवाः—इस व्युत्पत्ति के अनुसार आत्मानम् मग्न होने वाले कर्मकाण्डी विद्वान् या वरुणादि देवगण देव शब्द का अर्थ है।

२. अगात्=इण् धातु लुङ् लकार, एक वचन (इणो गा लुङि)।

३. अप्राः=प्रा पूरणे अदादि लङ्, प्रथम पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष है।

४. सूर्यः=सरति सारयति इति वा सूर्यः क्यप्।

५. जगत् =मम्+क्विप् गमे द्वें। गम क्वौ। अनुनासिक लोप।

६. तस्थुषः=स्था लिट् क्वसु वसो सम्प्रसारण। आतो लोप इटि च। शासि वीस घसिनां च इति मूर्धन्य षत्वम्।

विशेष:—अनीक शब्द 'अन् प्राणने' से ईकक् प्रत्यय करने से बनता है अतः इसका आत्मा या प्रेरक अर्थ है। सेना को भी इसी लिये कहते हैं क्योंकि वह राज सभा के लिये राजा को प्रेरित करती है।

संहिता-पाठः

२. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां,
मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि,
वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥

पद-पाठः

सूर्यः देवीम् उषसम् रोचमानाम्,
मर्यः न योषाम् अभि एति पश्चात् ।
यत्र नरः देवऽयन्तः युगानि ।
विऽतन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥

सायणः—सूर्यो देवीं दानादिगुणयुक्तां रोचमानां दीप्यमानामुषसं पश्चादभ्येति उषसः प्रादुर्भावानन्तरं तामभिलक्ष्य गच्छति । तत्र दृष्टान्तः । मर्यो न योषाम् । यथा कश्चिन्मनुष्यः शोभनावयवां गच्छन्तीं युवतिं स्त्रियं सततमनुगच्छति तद्वत् । यत्र । यस्यामुषसि जातायां देवयन्तो देवं द्योतमानं सूर्यं यष्टुमिच्छन्तो नरो यज्ञस्य नेतारो यजमानाः युगानि । युग शब्दः कालवाची । तेन च तत्र कर्त्तव्यानि कर्माणि लक्ष्यन्ते यथा दर्शपूर्णमासाविति । अग्निहोत्रादीनि कर्माणि वितन्वते विस्तारयन्ति । यद्वा देवयन्तो देवयागार्थं धनमात्मन इच्छन्तो । यजमानपुरुषा युगानि हलावयवभूतानि कर्षणाय वितन्वते प्रसारयन्ति । तामुषसमनुगच्छन्तीत्यर्थः । एवं विधं भद्रं कल्याणं सूर्यं प्रति भद्राय कल्याणरूपाय कर्मफलाय स्तुम इति शेषः । यद्वा देवयन्तो देवकामा यजमाना युगानि युग्मानि भूत्वा पत्नीभिः सहिताः सन्तो भद्रं कल्याणमग्निहोत्रादिकं कर्म

भद्राय तत्फलार्थं प्रति प्रत्येकं यस्यामुषसि प्रवृत्तायां वितन्वते विस्तारयन्ति।

शब्दार्थ—सूर्यः=सूर्य, देवीम्=दीप्यमान, उषसम्=ऊषा के, पश्चात्=पीछे पीछे, मर्यः=जैसे, मनुष्यः योषाम्=किसी सुन्दर युवति के, पश्चाद्=पीछे पीछे, अभि=उसको लक्ष्य करके, एति=जाता है। न=उसी तरह (सूर्य ऊषा का अनुगमन करता है उसका साहचर्य नहीं छोड़ता), यत्र=जिसका ऊषा के काल में, देवयन्तः=सूर्य देव की उपासना के इच्छुक नरः=यजमान, युगानि=कालोचित यज्ञादि कर्मों को वितन्वते=करते हैं। अथवा देवयन्तः—देवयज्ञ के लिये धन की इच्छा रखने वाले नरः=हल को जोतने वाले कृषक गण, युगानि=हलों को, वितन्वतः=चलाते हैं अथवा देवयन्तः=देवाधिदेव ईश्वर के दर्शनार्थी व्यक्ति, युगानि=सपत्नीक (सद्वितीया होकर भद्रं वितन्वते) तथा प्रति=प्रत्येक ऊषा के काल में भद्राय=उत्तम स्वर्गादि फल की प्राप्ति वाला भद्रम्=कल्याण कारक कर्मों को वितन्वते=करते हैं।

व्याकरणम्—मर्त्यः=मृङ् प्राण त्यागे 'छन्दसि निष्कर्म' इस सूत्र से यत् प्रत्यय निपातित होता है। युगानि=युज् से घञ् प्रत्यय, गुणाभाव छान्दस है। देवयन्तः=देव शब्द से इच्छार्थक क्यच्—ईकाराभाव छान्दस है।

विशेषः—इस मन्त्र में उत्तरार्ध के सायण ने अनेक अर्थ किये हैं जिनमें कार्य भी प्रमाण जनक या प्रामाणिक नहीं है। 'प्रति मण्डल भद्रम्' का "There where pious men add life to life, each new one happier than the one before" युग का अर्थ यहाँ हल जोड़ना अधिक ठीक है क्योंकि 'युनक्तसीरां वियुगातनुध्वम्' (R. V. X १०१) ३०४ में वही अर्थ प्रकटित है। यही अर्थ Ludwig और Roth को भी अभिमत है।

संहिता-पाठः

३. भ॒द्रा अश्वा॑ ह॒रित॑ः सूर्य॑स्य
चि॒त्रा एत॑ग्वा अनु॒माद्या॑सः ।
न॒म॒स्यन्तो॑ दि॒व आ पृ॒ष्ठम॑स्थुः
परि॒ द्यावापृ॑थि॒वी य॑न्ति स॒द्यः ।

पद-पाठः

भ॒द्राः अश्वा॑ः ह॒रित॑ः सूर्य॑स्य,
चि॒त्राः एत॑ऽग्वा अ॒नु॒ऽमाद्या॑सः ।
न॒म॒स्यन्त॑ः दि॒वः आ पृ॒ष्ठम् अ॒स्थुः,
द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ य॒न्ति॒ स॒द्यः ॥

सायणः—भद्राः कल्याणाः । अश्वाः=एतग्वा इत्येतदुभय-मश्वनाम तत्रैकं क्रियापरं योजनीयम् । अश्वास्तुरगा व्यापन-शीला वा । हरितो हर्तारश्चित्राः विचित्रावयवाः अनुमाद्यासोनु-क्रमेण सर्वैं स्तुत्या मादनीयाः इति यावत् । एवंभूताः सूर्यस्यै-तग्वाः अश्वाः । यद्वा एतं गन्तव्यं मार्गं गन्तारोश्वाः । एतं शवलवर्णं नीलवर्णं वा प्राप्नुवन्तोश्वाः । नमस्यन्तोस्माभिर्न-मस्यमानाः सन्तो दिवोन्तरिक्षस्य पृष्ठमुपरिप्रदेशं पूर्व-भाग-लक्षणम् आस्थुः । आतिष्ठन्ति प्राप्नुवन्ति । यद्वा हरितो रसहरणशीला रश्मयो भद्रादिलक्षणविशिष्टाः दिवः पृष्ठं नभः-स्थलमातिष्ठन्ति । आस्थाय च द्यावापृथिव्यौ सद्यस्तदानी-मेवैकेनाह्ना परियन्ति । परितो गच्छन्ति व्याप्नुवन्तीत्यर्थः ।

शब्दार्थः—भद्राः=कल्याण करने वाले, एतग्वाः रंग-विरंगे या आकाश में जाने वाले, हरितः=हरण करने वाले या हरे रंग वाले, चित्राः=विचित्र अवयव वाले, अनुमाद्यासः=एक एक करके स्तुति

योग्य, सूर्यस्य=सूर्य के, अश्वाः=घोड़े, नमस्यन्तः=हमारे द्वारा नमस्कार किये जाते हुए, दिवः=अन्तरिक्ष लोक के, पृष्ठम्=स्थल पर, आस्थुः=आरूढ़ हो चुके हैं (अथवा हरितः=रस का आकर्षण करने वाली सूर्य की किरणें जो कि भद्र, एतग्व, चित्र और स्तुत्य हैं वे आकाश में व्याप्त हो रही हैं) तथा द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथ्वी-लोक के परि=चारों ओर, सद्यः=शीघ्र, एक ही दिन में, यन्ति=परिक्रमा कर लेते हैं।

व्याकरणम्—अश्व=अशू व्याप्तौ, क्वन्। एतग्वा=इण् गतौ धातु, असि हसि इत्यादि उणादि सूत्र से तन् प्रत्यय, इ को गुण एत, गम् धातु से औणादिक, ड्व प्रत्यय, ग्व। एतम्=एतव्यं प्रति ग्वः गमनं येषां ते एतग्वाः अथवा 'चित्रं किर्मीरकल्माष शवलैताश्च कर्बुरे' इस कोश के अनुसार 'एत' शब्द चितकबरे का वाची है। चितकबरे रंग को जो गमन करे वह हुआ एतग्व। इस प्रकार एतग्व शब्द सूर्य के घोड़ों का विशेषण है। अनुमाद्यासः=मदी स्तुतौ णिच्। अचोयत्। अनु उपसर्ग का पूर्व प्रयोग। अनु माद्यति अनुमन्दते वा स्तौति या अनुमादयितुं योग्या अनुमाद्यासः। नमस्यन्तः=नमस् शब्द से पूजार्थक क्यच् प्रत्यय हुआ। तदनन्तर व्यत्यय से कर्म में शतृ प्रत्यय करने पर 'नमस्यन्तः' शब्द बनता है। अस्थुः=वर्तमान अर्थ में अर्थात् तिष्ठन्ति' के अर्थ में लुङ् लकार का प्रयोग किया गया है। 'गातिस्था' सिच् लुक्, आतः ३।४।११० से झि को जुस्।

विशेषः—'एतग्व' शब्द ऋग्वेद में ७।७०।२ तथा ८।७०।७ मन्त्रों में भी आया है। इस प्रकार कुल तीन बार आता है। यहां पर सायण ने इसे 'अश्व' का विशेषण माना है।

संहिता-पाठः

४. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं,
मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्था-
दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥

पद-पाठः

तत् सूर्यस्य देवऽत्वम् तत् महिऽत्वम्
मध्या कर्तोः विऽततम् सम् जभार ।
यदा इत् अयुक्त हरितः सधऽस्थात् आत्
रात्री वासः तनुते सिमस्मै ॥४॥

सायणः—सूर्यस्य सर्वं प्रेरकस्यादित्यस्य तद्देवत्वमीश्वरत्वं स्वातंत्र्यमिति यावत् । महित्वं महत्वं माहात्म्यं च तदेव । तच्छब्दश्रुतेर्यच्छब्दाध्याहारः । यत्कर्तोः । कर्मनामैतत् प्रारब्धापरिसमाप्तस्य कृष्यादिलक्षणस्य कर्मणो मध्या मध्ये अपरिसमाप्त एव तस्मिन् कर्मणि विततं विस्तीर्णं स्वकीयं रश्मिजालमस्तं गच्छन्सूर्यः सं जभार । आस्माल्लोकात्स्वात्मन्युपसंहरति । कर्मकरश्च प्रवृत्तमपरिसमाप्तमेव विसृजत्यस्तं यन्तं सूर्यं दृष्ट्वा । ईदृशं स्वतन्त्र्यं महिमा च सूर्यव्यतिरिक्तस्य कस्यास्ति । न कस्यापि । सूर्य एवेदृशं स्वातन्त्र्यं महिमानं चावगाहते । अपि च । इदित्यबधारणे यदेत् यस्मिन्नेव काले हरितो रसहरणशीलान्स्वरश्मीन् हरिद्वर्णानश्वान्वा सधस्थात्सहस्थानादस्मात्पार्थिवाल्लोकादादायायुक्त । अन्यत्र संयुक्तान्करोति । यद्वा युजिः केवलोपि विपूर्वो द्रष्टव्यः । यदैवासौ स्वरश्मीनश्वान्वा सधस्थात् । सह तिष्ठन्तियस्मिन्निति सधस्थो रथः तस्मादयुक्त

अमुञ्चत्। आदनन्तरमेव रात्री निशा वास आच्छादयितृ तमः सिमस्मै। सिमशब्दः सर्वशब्दपर्यायः। सप्तम्यर्थे चतुर्थी। सर्वस्मिँल्लोके तनुते विस्तारयति। यद्वा वासो वासरमाहः। तत् सर्वस्माल्लोकादपनीय रात्री तमस्तनुते।

शब्दार्थः—सूर्यस्य=सर्व प्रेरक आदित्य का, तत्=वह, देवत्वम्=ईश्वरत्व या स्वातंत्र्य है तथा, तत=वही महत्वम् माहात्म्य है जो कि, कर्तो=क्रिया के। (यज्ञादि क्रिया या कृशादि क्रिया)। मध्याः मध्य=में ही, विततम्=विस्तीर्ण अपने रश्मि जाल के अस्त को प्राप्त होता हुआ सूर्य इस लोक से संगृहीत कर लेता है। सूर्य को अस्त होता हुआ देखकर कर्मकार अपना कार्य बीच में ही छोड़ देते हैं। सूर्य उनका काम समाप्त हुआ या नहीं, इसकी चिन्ता नहीं करता और अस्त हो जाता है। यही सूर्य का माहात्म्य या स्वातंत्र्य है। ऐसा स्वातंत्र्य अन्य किसी देवता का नहीं। अपि च=और यदा=जब, इत् =ही, हरितः=हरे रंग के घोड़ों को, सधस्थात्= साथ में बैठने योग्य रथ से, अयुक्त=अपने रथ में जोड़ता है या अपने रथ से पृथक् करता है अर्थात् जबकि सूर्य इस पृथ्वी लोक के रथ से अपने घोड़ों को हटाकर अन्य लोक में स्थित अपने रथ में जोड़ता है, तो, आत्=इसके अनन्तर ही, रात्री=निशा, सिमस्मै=सारे संसार में, वासः=आच्छादक अन्धकार को तनुते=विस्तृत कर देती है अथवा वासः=दिन को हटा कर रात्रि को फैला देती है।

व्याकरणम्—महित्त्वम्=मह पूजायाम् औणादिक् इन् प्रत्यय हुआ। भाव में त्व प्रत्यय। मध्या=मध्ये की सप्तमी की जगह 'डा' आदेश करने पर 'मध्या' बनता है। कर्तोः=कृ धातु से औणादिक तोसुन् प्रत्यय है। 'वितत' में क्त प्रत्यय हुआ। 'उदितो-वा' इस सूत्र से इडभाव पक्ष का यह रूप है।

जभार=हृग्रहीर्भश्छन्दसि।

अयुक्त—युज् लुङ 'झलोझलि' सूत्र से सिच् लोप हुआ।

सधस्थात्=सह पूर्वक "धा" धातु से घञर्थे कं 'विधानम्' से 'क' प्रत्यय हुआ। "सधमादस्थयोश्छन्दसि" इस सूत्र से सह की जगह सध आदेश हुआ।

रात्री=रात्रेश्चाजसौ से रात्रि शब्द से ङीप् प्रत्यय हुआ।

विशेष :—सायणाचार्य ने अयुक्त का अर्थ अमुञ्चत् किया है जो कि 'विसीमहि'। इस संग्रह के दूसरे सूक्त के तृतीय मन्त्र (१।२५।३) के समान ही समाधेय है, इसी प्रकार 'कर्तोः' को "गन्तोः" की तरह "तोसुन्" प्रत्ययान्त सायण ने माना है परन्तु पीटर्सन इसे "तुन्" प्रत्ययान्त "कर्त्तु" शब्द की षष्ठी मानता है तथा तदनुसार सूर्य की प्रातः काल रथ में घोड़ों के जोड़ने की क्रिया अभी मध्य में थी पूर्ण भी न हो पाई थी कि उस ने रात्रि का विस्तर गोल कर दिया यह अर्थ उचित समझता है। अतएव "अमुञ्चत्" व्याख्या को उसने अशुद्ध ठहराया है अतः "मध्या कर्त्तोः" का "In the very making, while the act is proceeding" यह अर्थ किया है।

"वितत" शब्द भी यही बतलाता है कि पांच मन्त्र की तरह इस मन्त्र में भी प्रातःकाल का वर्णन है, सायंकाल का नहीं सायण के अर्थानुसार यह रात्रि का वर्णन हो जाता है। तथा "प्रक्रम भङ्ग" दोष आता है इसी प्रकार "तनुते" और "विततम्" का परस्पर सम्बन्ध बैठ भी सकता है। अतः पीटर्सन के अनुसार सारे मन्त्र का अर्थ यह हुआ किः—

यह सूर्य का देवत्त्व (God head) है तथा यही महत्त्व है कि सूर्य जब अपना कार्य ही आरम्भ कर रहा था कि उसी समय उसने वितत्= जाले के समान रात्रिरूपी मकड़ी द्वारा फैलाये गये अन्धकार की जवनिका को संजभार संहृत कर दिया (Rolled away) जब कि सूर्य

अपने घोड़े जोड़ रहा था (यदेदयुक्त) तब रात्रि अपने वासः=आ-च्छादक अन्धकाररूपी चादर को सारे संसार पर ढके हुए थी, इस प्रकार सूर्य ने वरुण एवं मित्र की दृष्टि में अपने महत्त्व (———) को नभः मण्डल में व्याप्त कर दिया। 'अयुक्त' इस क्रिया का अर्थ अन्य टीकाकारों ने सायण के अनुसार ही किया है जैसा कि (Siebennzig Lieder) सीबैंसिक लीडर की व्याख्या से स्पष्ट है This is Divine strength, the might of Surya ! labour though only half done, comes to a stop, so soon as he loosens his horses from his car and night covers all with her viel" किन्तु Ludwig (लुड् विग्) ने वितत शब्द का अर्थ labour स्वीकार नहीं किया और उसने इसे महत्वम् का विशेषण माना है क्योंकि उसने "this is his greatness that widespread greatness he has" यह अर्थ किया है। प्रकरणानुसार हमें भी पीटर्सन का अर्थ अधिक-रुचिकर प्रतीत हो रहा है इन व्याख्याओं में "मध्याकर्तोः" सूर्य का विशेषण है जब कि सायण के मत में यह कर्म करो का वाचक है। सिम शब्द का अर्थ सर्व किया गया है जो कि यास्क के अनुकूल है किन्तु अन्य भारतीय टीकाकारों ने इस का अर्थ श्रेष्ठ भी किया है। यही अर्थ सायण को भी १।६५।७ में तथा अन्य स्थलों पर स्वीकार है। १०।२८।११। के मन्त्र में प्रयुक्त सिम शब्द स्वयं का पर्यायवाची है, और सर्वनाम के समान प्रयुक्त है इस प्रकार Geldner के मतानुसार भी पीटर्सन से मिलताजुलता नीचे लिखा अर्थ है :—

'That is the god-head, that the might of Surya, in the midst of her work she rolled up the spread out web, so soon as he yoked the boys from the stall. And the might works the viel for herself. That is the Rotri spins by night a web of darkness over the world and in the morning. She covers herself with it and disappears.

इसका मतलब यह हुआ कि रात्रि सूर्य के निकलते ही बीचमें अपना कार्य छोड़ बैठती है इस प्रकार मध्याकर्तोः की ही "in the midst of her work" व्याख्या है जो अन्धेरे की छाया उस ने संसार पर फैलाई हुई थी उसे अपने ऊपर कई तहों में लपेट कर सिकुड़ कर एक तरफ बैठ जाती है, इसी प्रकार भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। इन व्याख्याओं का औचित्य और अनौचित्य विद्वद्गण स्वयं विचारें।

संहिता-पाठः

५. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे
सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः
कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥

पद-पाठः

तत् मित्रस्य वरुणस्य अभिऽचक्षे सूर्यः रूपम् कृणुते द्योः उपऽस्थे। अनन्तम् अन्यत् रुशत् अस्य पाजः कृष्णम् अन्यत् हरितः सम् भरन्ति॥५॥

सायणः— तत्तदानीमुदयसमये मित्रस्य वरुणस्य एतदुभयोलक्षितस्य सर्वस्य जगतो अभिचक्षे आभिमुख्येन प्रकाशनाय द्योर्नभस उपस्थे उपस्थाने मध्ये सूर्यः सर्वस्य प्रेरकः सविता रूपं सर्यस्य निरूपकं प्रकाशकं तेजः कृणुते करोति। अपि च अस्य सूर्वस्य हरितो रसहरणशीला रश्मयो हरिद्वर्णा अश्वा वा अनन्तमवसानरहितं कृत्स्नस्य जगतो व्यापकं रुशद्दीप्यमानं श्वेतवर्णं पाजः। बलनामैतत्। बलयुक्तम् अतिबलस्यापि नैशस्य तमसो निवारणे समर्थम् अन्यत्तमसो विलक्षणं तेजः

सं भरन्ति अहनि स्वकीयागमनेन निष्पादयन्ति। तथा कृष्णं कृष्णवर्णमन्यत्तमः स्वकीयापगमनेन रात्रौ अस्य रश्मयो-ऽयेवं कुर्वन्ति। किमु वक्तव्यं तस्य महात्म्यमिति सूर्यस्य स्तुतिः।

व्याख्याः— तत्=उस समय मित्रस्य=आग्नेय शक्ति युक्त वरुणस्य=जलीयशक्ति युक्त अर्थात् मैथुनी सृष्टिमय इस सारे जगत् के (मित्र और वरुण शब्द प्राण और रवि शक्ति के वाचक हैं जो संसार को चला रही है उस से निर्मित संसार के) अभिचक्षे=आभिमुख्येन वस्तुस्वरूप ज्ञान के लिये द्योः=द्युलोक के अर्थात् आकाश के उपस्थे=सिरे पर या मध्य में स्थित सूर्यः=संसार का प्रेरक सविता रूपम्=संसार के निरूपक।

व्याकरणम्— "अभिचक्षे" यह चतुर्थी का एक वचन है। "अभिख्यानाय" यह इसकी व्याख्या है अभिपूर्वक चक्ष धातु से सम्पदादित्वात् भाव में क्विप् प्रत्यय है। अभिचष्टे इति अभिचक् "द्यौः" यह द्योः शब्द की षष्ठी का एक वचन है "ङसिङसोश्च" (६-१-११०) से पूर्वरूप हो गया।

"उपस्थे"=उप पूर्वक स्था धातु से "घञर्थे क विधानम्" से क प्रत्यय किया है।

पाजः=पाति रक्षति स्वं स्वीयान् वा इति पाजः बलम्। तद् अस्यास्ति इति पाजस्वि, यह रुशत् का विशेषण है। (पातेर्बले जुट् च) ४-२०२ इस उणादि सूत्र से असुन प्रत्यय और जुट् का आगम होता है। मत्वर्थीय विनि प्रत्यय का लोप छान्दस है। रुशत्=रुश दीप्तौ शतृ प्रत्ययः।

विशेषः— मित्र और वरुण शब्द सूर्य और चन्द्रमा के वाचक हैं जो संसार में ओज और रस को प्रदान करते हैं वरुण शक्ति रस का संचय करती है और सूर्य की शक्ति उसका औषध्यादि में विस्तार करती है इस प्रकार यह शब्द संसार का उपलक्षक है। मन्त्र के उत्तरार्ध

में दिन और रात्रि के प्रवाह का निदर्शन किया गया है अर्थात् सूर्य के घोड़े ही दिन में प्रकाश और रात्रि में अन्धकार को करते हैं ये घोड़े सूर्य की किरणें ही हैं। प्रकाश को कृणुते=जगत् में फैलाता है तथा अस्य=इस सूर्य की (के) हरितः किरणें अथवा हरे रंग के घोड़े अनन्तम् =अपार अर्थात् सारे संसार को व्याप्त करने वाले रुशत्=चमकदार अन्यत्=विलक्षण श्वेत वर्ण के पाजः=बल को अर्थात् जिस से प्रबल रात्रि का घोर अन्धकार भी दूर करने में समर्थ तेज को प्रातःकाल के समय में सम्भरन्ति=निष्पादन करते हैं तथा वे ही रश्मियां सूर्य के अस्त होने के समय अन्यत्=दीप्यमान तेज से भिन्न कृष्णम्=काले वर्ण के अन्धकाररूपी तेज को सम्भरन्ति=निष्पादन करते हैं। अर्थात् सारांश यह है कि जिस सूर्य की किरणें भी करोड़ों मील दूर से आकर पृथ्वी तल पर व्याप्त अन्धकार को दूर कर देती हैं इन किरणों के जन्मदाता सूर्य की शक्ति कितनी बढ़ी चढ़ी है इसका अनुमान इस से ही लगाया जा सकता है इस प्रकार सूर्य की स्तुति की गई है।

संहिता-पाठः

६. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य,
निरंहस पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता-
मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

पद-पाठः

अद्य देवाः उत्ऽइता सूर्यस्य,
निः अंहसः पिपृत निः अवद्यात्।
तत् नः मित्रः वरुणः ममहन्ताम्,
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥६॥

सायण:—हे देवा द्योतमानाः सूर्यरश्मयः अद्य अस्मिन् काले सूर्यस्यादित्यस्योदिता उदितौ उदये सति इतस्ततः प्रसरन्तो यूयमस्मानंहसः पापान्निर्षिपृतनिष्कृष्य पालयत । यदिदमस्माभिरुक्तं नोस्मदीयं तन्मित्रादयः षड्देवता ममहन्तां पूजयन्तु अनुमन्यन्ताम् । रक्षन्त्विति यावत् ।।

व्याख्या:—देवाः ! = द्योतमान सूर्य रश्मियो ! तुम अद्य = इस (समय) सूर्यस्य = सूर्य के उदितौ = उदयकाल में हमें अंहसः = पाप से निष्पिपृत = छुड़ा कर हमारी रक्षा करो, तथा अवधात् = निन्द्य कर्मों की प्रवृत्ति से भी निः = (निष्पिपृत, = बचाओ । तथा मित्रः = मित्र नामक सूर्य वरुणः = आवरण या आच्छादन या व्यापन करने वाली जल की शक्ति या वरुण देवता, अदितिः = अखण्डनीय शक्ति या देवमाता, सिन्धुः = नदी की स्पन्दनशील शक्ति या देवता, पृथिवी धारणशील शक्ति या देवता, उत = और द्यौः दीप्तियुक्त शक्ति अन्तरिक्ष देवता तत् = उस या इस हमारी प्रार्थना को मामहन्ताम् = अनुमोदित करें या रक्षा करें ।

व्याकरणम्—अद्या = यहाँ पर 'निपातस्य च' (६–३–१३६) से दीर्घ हुआ है। उदितौ = उत् पूर्वक् इण् गतौ से भाव में क्तिन् प्रत्यय है । 'सुपाम् सुलुक' से ङि को डा आदेश हुआ है । पिपृता = पृ पालन पूरणयोः । पृ इत्येके लोट् , मध्यमपुरुष, बहुवचन । जुहोत्यादि-गणी होने से शप् को श्लु, द्वित्व, उरदत्व, हलादि शेषः 'अर्तिपिपर्त्योश्च' से इत्व तथा 'त' को 'सार्वधातुकमपित्' से ङित्व होने पर 'ऋचितुनु' (६–३–१३३) से दीर्घ हुआ है।

विशेषः—पीटर्सन ने अंहस् का अर्थ भय तथा अवध का अर्थ पापकर्म जन्मा लज्जा किया है वह लिखता है कि "Free us from danger, free us from shame" 'निष्पिपृत' का अर्थ 'free' तो किया ही है पर इसका अर्थ (make us to cross over या ferrey us across) भी किया है जो संगत हो सकता है।

अग्नि सूक्त

संहिता-पाठः

१. प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये,
वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो,
होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥

पद-पाठः

प्र तव्यसीम् नव्यसीम् धीतिम् अग्नये,
वाचः मतिम् सहसः सूनवे भरे ।
अपाम् नपात् यः वसुऽभिः सह प्रियः
होता पृथिव्याम् नि असीदत् ऋत्वियः ॥१॥

परिचयः—इस सूक्त का दीर्घतमा ऋषि है। त्रिष्टुप और जगती छन्द हैं। अग्नि देवता है।

सायणः—अहमग्नये तव्यसीम् तवीयसीम् अतिशयेन वर्धयित्रीम् । नव्यसीम् नवतरामपूर्वां धीतिं यागलक्षणामुक्त-गुणकं कर्म प्र भरे प्रकर्षेण करोमि । यथोक्तलक्षणां वाचो मतिं स्तुतिरूपं कर्म भरे कीदृशायाग्नये । सहसो बलस्य सूनवे पुत्राय । किंच योग्निरपां नपात् तासां नप्ता । अद्भ्य ओषधयः ओषधीभ्योऽग्निरित्यग्नेर्नप्तृत्वम्; अथवा अपां न पातयिता वैद्युताग्निरूपेण प्रवर्षकत्वादिति भावः । तथा प्रियो यजमानस्य प्रीणयिता प्रियतमो वा तस्य होता होमनिष्पादकः ।

सोऽग्निर्ऋत्वियः प्राप्तकालः प्राप्तप्रदानसमयः सन्पृथिव्यां वेदिलक्षणायां वसुभिर्निवासयोग्यैर्गवादिधनैः सहितो न्यसीदत् नितरां सीदति ।

व्याख्याः—सहसः=बल के, सूनवे=रूपान्तरभूत पुत्र के समान, तथा यः=जो अग्नि, अपाम्=जलों का, नपात्=पौत्र के समान है, नप्ता है या जलों का विद्युत-रूपी अग्नि के रूप में पातयिता नहीं, किन्तु जलों की अत्यधिक वर्षा कराने वाला है। एवं यजमान के लिए प्रियः= प्रीणन करने वाला, होता=यज्ञ निष्पादक है। ऐसे अग्नि देवता के लिए मैं तव्यसीम्=बलयुक्त या बढ़ाने वाली नव्यसीम्=अत्यन्त नवीन अर्थात् अपूर्व, धीतिम्, यज्ञरूपी कर्म को प्रभरे=खूब करता हूँ, तथा वाचः=वाणी से सम्पादित, मतिम्=अग्नि के स्तुति रूप कर्म को भी (प्रभरे) करता हूँ। सः=वह अग्नि देवता इस समय, ऋत्वियः= कालोपयोगी या यज्ञकुण्ड में प्रज्वालन योग्य होता हुआ, पृथिव्याम्= वेदी रूपी स्थान पर वसुभिः=निवास योग्य गवादिधनों के सहित, न्यसीदत्=स्थित होकर प्रज्वलित हो रहा है।

व्याकरणम्—तव्यसीम्=वृद्ध्यर्थक सौत्र तु धातु से तृच् प्रत्यय करने पर बनें तोतृ शब्द से अतिशय अर्थ में ईयसुन् प्रत्यय करने पर "तुरिष्ठे मे" इत्यादि (६।४।१५४) सूत्र से तृ प्रत्यय का लोप होने पर "तवीयस्" बना छान्दस ईकार का लोप करने पर उक्त रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार "नव" शब्द से ईयसुन् करने पर नव्यसी शब्द बनता है "असीदत्" यह प्रयोग कालव्यत्ययसे वर्तमानार्थक है।

विशेषः—नपात् शब्द का अर्थ नप्ता किया है जो अंग्रेज़ी में Nephew जो नपात् का या नप्ता का अपभ्रंश है। वेद में यह शब्द पौत्र नामक अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता, किन्तु पुत्रवाची भी है। ऋत्विय शब्द सामान्य वृत्ति से काल का उपलक्षण है वस्तु शब्द का अर्थ सायण ने निवास योग्य किया है जिस का तात्पर्य गवादि धनों का प्राप्त

कराने वाला है। Roth और Peterson ने Dwelling as a beloved companion with the gods or gladly dwelling with the gods यह अर्थ "वसुभि सह प्रियः" इस वाक्यांश का किया है। तदनुसार "प्रिय बनकर देवताओं के साथ रहने वाला या खुशी के साथ देवों के साथ रहने वाला" यह अर्थ उक्त मंत्रांश का होगा। तथा वसु शब्द इस अर्थ में देवता मात्र का उपलक्षण समझा जायेगा।

संहिता-पाठः

२. स जायमानः परमे
व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना
प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥

पद-पाठः

सः जायमानः परमे विऽओमनि
आविः अग्निः अभवत् मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा सम्ऽइधानस्य मज्मना
प्र द्यावा शोचिः पृथिवी इति अरोचयत् ॥२॥

सायणः—स पूर्वोक्तोऽग्निर्जायमानः अरणीभ्यामुत्पद्यमानः काष्ठेषु वा प्रादुर्भूतः सन् तदानीमेव परमे उत्कृष्टे व्योमनि विविधरक्षणवतिवेदिदेशे मातरिश्वने अन्तरिक्षसंचारिणे वायवे प्रथममाविरभवत्प्रत्यक्षोऽभूत्। त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भवेत्यादिश्रुत्यन्तरप्रसिद्धेः वायुसंयोगात्प्रज्वलित इत्यर्थः। अथवा मातरि फलस्य निर्मातरि यज्ञे श्वसिति चेष्टत इति मातरिश्वा यजमानः तदर्थम्। किंच समिधानस्य इन्धनैः सम्यग्वर्धमानस्याग्नेर्मज्मना। बलनामैतत्। बलवता क्रत्वा

क्रतुना कर्मणा ज्वालनादिव्यापारेण शोचिः द्यावा पृथिवी च प्रारोचयत् प्रकर्षेणादीपयत्। प्रबलेन समिन्धनादिव्यापारेण समिध्यमानस्येत्यर्थः।

व्याख्याः—सः वह अग्नि पूर्वोक्त अग्नि, जायमानः=दो अरणियों से पैदा होता हुआ या काष्ठों में प्रादुर्भूत हुआ, परमे=उत्कृष्ट, व्योमनि=विविध प्रकार के रक्षक उपायों से रक्षित वेदी नामक स्थान में, मातरिश्वने=वायु के लिए, आविरभवत्=प्रत्यक्ष हुआ, अर्थात् अग्नि को वायु ने अपनी सहायता से प्रज्वलित किया। अथवा मातरिश्वा शब्द यजमान का वाची है और इस अर्थ के करते समय "मातरिफलस्य निर्मातरि यज्ञे स्वसिति कर्मकरोति इति मातरिश्वा" यह व्युत्पत्ति करनी होगी। समिधानस्य=इन्धनों के द्वारा प्रज्वलित होते हुए, अस्य=इस अग्नि के, मज्मना=बलयुक्त, क्रत्वा=कर्म से अर्थात् लपटों को लेते हुए जलने की क्रिया से उत्पन्न, शोचिः=चमक या प्रकाश के द्वारा, द्यावा=द्युलोक पृथ्वी=भूलोक अर्थात् दोनों ही लोक, प्रारोचयत्=(अग्नि द्वारा) चमका दिये गये। अथवा "मज्मना" और 'क्रत्वा' इन दोनों का समिधानस्य के साथ अन्वय है। तदनुसार प्रबल. पर्याप्त मात्रा में समिधाओं की वेदी में लगाने के बल (मज्म) युक्त अर्थात् जोर-शोर से बढ़ती हुई अग्नि की शोचिः=चमक ने द्यावा पृथिवी को प्रकाशित कर दिय, यह अर्थ है। ऐसी अवस्था में 'मज्मना' शब्द 'क्रत्वा' का विशेषण है।

व्याकरणम्—समिधानस्य=इन्धीदीप्तौ, (रुधादि) शानच् श्नम्। इन्ध के नकार का लोप छान्दस है। अथवा एधवृद्धौ शानच् शप् एकार को ह्रस्व और मुगागम का आभाव छान्दस है। व्योमनि=वि उपसर्ग, अव रक्षणे मनिन् प्रत्यय, सप्तमी एकवचन।

विशेषः—वायु द्वारा अग्नि के बढ़ाने में "त्वमग्ने प्रथमः मात-

रिश्वन आविर्भव" (ऋक् १।३१।३) यह मन्त्र भी प्रमाण भूत है। कालिदास ने भी "मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभम्" (रघुवंश सर्ग २) में अग्नि को वायु का मित्र कहा है। द्यावा पृथिवी के बीच में मन्त्र में शोचिः शब्द का पाठ अनुचित है, तथापि छान्दस होने से क्षम्य है। क्रत्वा=क्रतु शब्द की तृतीया का एकवचन, ना आदेश आ आभाव छान्दस है। पीटर्सन कहता है कि 'परमेव्योमनि' का अर्थ भद्दा है। निरुक्तकार की 'मातरिश्वसिति' यह व्याख्या भी युक्तियुक्त नहीं। मातरिश्वा शब्द ऋग्वेद में अनेक स्थानों में प्रयुक्त है और वहां कभी साक्षात् अग्नि का वाचक है। जैसे कि ३।२९।४ वा १०।११४।१ एक संख्या वाले मन्त्रों में देखा जाता है। तथा कहीं पर यजमानरूपी शक्ति का वाचक है जो अन्तरिक्ष लोक से देवताओं से छीन कर अग्नि को भू-लोक पर भृगुओं के लिए लाता है। देखिए १।६०।१ तथा ३।५।१० आदि। ऐसी अवस्था में द्युलोक से भू-लोक पर अग्नि लाने वाला मनुष्य नहीं हो सकता। अतएव यजमान भी मनुष्य होने से नहीं हो सकता। अतः मातरिश्वा एक Demi-gods की जाति का मुनि है जो कभी द्युलोक पर और कभी पृथिवी-लोक पर रहता है। ऐसा ही वैदिक गाथाओं में वर्णन मिलता है। मातरिश्वा ने भृगु को, भृगुओं ने मनुष्य को अग्नि प्राप्त कराई। यह अग्नि प्राप्ति की परम्परा है। ६।१६।१३ के मन्त्र में अग्नि का भू-लोक पर लाने वाला अथर्वा नाम का ऋषि बतलाया है। अथर्वा की बहनों को मातरिश्वरी कहा गया है। देखिए मन्त्र १०।१२०।९ इसी प्रकार द्यावा पृथिवी शब्द में समास हो जाने पर भी दोनों शब्दों के आगे द्विवचन का प्रयोग किया जाता है तथा छान्दस होने से औ का आ हो जाता है। इन दोनों का साहचर्य दृढ़ नहीं। अतएव शोचिः शब्द बीच में आ घुसा है।

संहिता-पाठः

३. अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः
सुसंदृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने
रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥ ३ ॥

पद-पाठः

अस्य त्वेषाः अजराः अस्य भानवः
सुऽसंदृशः सुऽप्रतीकस्य सुऽद्युतः ।
भाऽत्वक्षसः अति अक्तुः न सिन्धवः
अग्ने रेजन्ते असंसन्तः अजराः ॥३॥

सायणः—अस्य स्तूयमानस्याग्नेः त्वेषा दीप्तयः अजरा जरारहिता अजीर्णाः अविरता इत्यर्थः । नञो जरमरेत्यादिनोत्तरपदाद्युदातत्वम् । तथा सुप्रतीकस्य शोभनमुखस्याग्नेर्भानवो रश्मयः दीप्तेरुक्तत्वादत्र विस्फुलिङ्गा अवगन्तव्याः ते च सुसंदृशः सुष्ठु सम्यग्द्रष्टारः सर्वतो व्याप्ता इत्यर्थः । सुद्युतः सुष्ठु सर्वतो द्योतमानाः । तथा अस्याग्नेर्भात्वक्षसः त्वक्ष इति बलनाम त्वक्षः शर्ध इति बलनामसु पाठात् । भासमानबलाः । अक्तुरिति रात्रिनामैतत् अक्तुरूर्म्येति तन्नामसूक्तत्वात् । द्वितीयार्थे प्रथमा । अक्तुं जगदञ्जकं नैशं तमः अति अतिक्रम्य सिन्धवः स्यन्दमानाः सर्वत्र व्याप्नुवन्तः असंसन्तः स्वव्यापारेष्वस्वपन्तः अविरताः अत एवाजरा न रेजन्ते न कम्पन्ते दाहपाकादिषु न चलन्ति न चाल्यन्ते वान्यैः । यद्वा न शब्दो दृष्टान्तवचनः । भात्वक्षसो भा एव त्वक्षो बलं यस्य तादृशं स्यादित्यस्य सिन्धवो न रश्मय इव । ते यथा स्यन्दनशीला व्याप्तिमन्तः अक्तुरिति अञ्जकं

तमोतिक्रम्य अससन्तो रेजन्ते तद्वद्भ्रात्वक्षसोऽस्याग्नेरुक्तलक्षणा-दीप्तयोऽपि सर्वत्र रेजन्ते कम्पन्ते व्याप्नुवन्तीत्यर्थः।

व्याख्याः—अस्य=इस स्तूयमान अग्नेः=अग्नि की त्वेषाः=दीप्तियाँ अजराः=कभी नष्ट न होने वाली हैं। तथा सुप्रतीकस्य=शोभन मुख वाले अग्नि की, भानवः=किरणें या चिनगारियां भी सुसंदृशः=अच्छी प्रकार, सद=समन्तात लोक दृष्टा बनी हुई हैं। तथा अस्य=इस, अग्नेः भात्वक्षसः=प्रकाश के बल वाली अर्थात् चमकदार बनी हुई तथा अक्तुः=संसार को कालिमा से लिप्त करने वाले रात्रि के अन्धकार को, अतिक्रमण करने वाली है। यहाँ "अक्तुः" इस प्रथमा के स्थान पर "अक्तुम्" द्वितीया चाहिए, क्योंकि "अति" का "अक्तुः" कर्म है तथापि द्वितीया के अर्थ में प्रथमा का प्रयोग हुआ है तथा वे किरणें सिन्धवः=व्याप्त होने वाली अससन्तः=कभी विश्राम न लेने वाली अतएव अजरा=कभी नष्ट न होने वाली बनी हुई, न रेजन्ते=दहन या पाचन कर्म से विचलित नहीं की जा सकती, इस अर्थ में 'भात्वक्षसः' प्रथमा का बहुवचन और 'भानवः' का विशेषण है।

अथवा न शब्द उपमार्थक है। अतः 'भात्वक्षसः' का भा एव त्वक्षः बलं यस्य तस्य इस व्युत्पत्ति के अनुसार सूर्य है। उसकी सिन्धवो न=रश्मियों की तरह यह अर्थ हुआ। सूर्य की रश्मियां स्पन्दनशील अर्थात् व्याप्तशील होती हैं और अत्यक्तुः=अन्जक अन्धकार का अतिक्रमण करने वाली भी होती है। अत एव वे अससन्तः=कभी विराम न करने वाली होकर ही रेजन्ते—प्रकाशित होती हैं। इसी प्रकार अग्नि की भी चमक या स्फुलिंग सब जगह पर व्याप्त हो रहे हैं। इस अर्थ में 'भात्वक्षसः' षष्ठी का एक वचन है।

व्याकरणम्—त्वक्ष धातु से असुन् प्रत्यय करने पर भात्वक्षस बनता है। अक्तुः शब्द में अनक्ति लिम्पति तमसा जगत् इति अक्तु इस

विग्रह के अनुसार अञ्जू धातु से लुक् प्रत्यय किया गया है और इस शब्द का रात्रि अर्थ है सुऽसंदृशः, और सुऽद्युतः में दृश् और द्युत् धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ है। असमन्तः में 'घसमस्ति स्वप्ने' इस धातु से शतृ प्रत्यय किया गया है।

विशेषः—यद्यपि सब ही विशेषण प्रथमा बहुवचनान्त हैं तथापि मुख्य विशेष्य पद अजराः है, क्योंकि उसकी द्वितीयार्थ में आवृत्ति हुई है। परन्तु सायण ने त्वेषा को विशेष्य माना है। "अजरा" पद का अर्थ विशेष्य होते हुए प्रतिबन्ध रहिता युक्त किया जायेगा। भाव यह है कि अग्नि देवता कभी बूढ़े नहीं होते। अत एव उन की चिनगारियां भी कभी समाप्त नहीं होतीं। अब प्रथमान्त अक्तु शब्द से द्वितीयान्त में परिवर्तित करना भी व्याकरण का दुरुपयोग है। सिन्धवः को यदि सिन्धोः की जगह प्रयुक्त माना जाय तथा भात्वक्षसः से अन्वित किया जाय तो इसका अर्थ होगा कि नदी के प्रवाह में जो जल की लहरी उठती है उन के समान "Like the shimmer which floats on the surface of the stream" (यही अर्थ Lieder को भी स्वीकार है। Ludwig ने 'भात्वक्षसः' का सम्बन्ध अग्नि के साथ किया है। तदनुसार "who has light for his strengths" 'अत्युक्तः' का अर्थ भी सारी रात (All night through) किया है।

संहिता-पाठः

४. यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं
नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे
य एको वस्वो वरुणो न राजति॥

पद-पाठः

यम् आऽईरिरे भृगवः विश्वऽवेदसम्
नाभा पृथिव्याः भुवनस्य मज्मना ।
अग्निम् तम् गीःऽभिः हिनुहि स्वे आ
दमे यः एकः वस्वः वरुणः न राजति ॥४॥

सायणः—विश्ववेदसं सर्वधनम् । वेद इति धन नाम । 'वेदो वरिवा' इति तन्नामसु पाठात् । तादृशं यमग्निं भृगवः भृगुगोत्रोत्पन्नाः पापस्य भर्जकाः पृथिव्या वेद्याः । एकदेशे कृत्स्नशब्दः यद्वा एतावती वै पृथिवीत्यादिश्रुतेर्वेद्याः पृथिवीत्वम् । तस्या नाभौ उत्तरवेद्यां भुवनस्य भूतजातस्य मज्मना बलेन निमित्तेन आ आभिमुख्येन ईरिरे ईरितवन्तः स्थापितवन्तः । तमग्निं स्वे स्वकीये दमे गृहे उत्तरवेद्यां गीर्भिः स्तुतिभिः आ हिनुहि प्राप्नुहि । 'हि गतौ वृद्धौ च' । उतश्च प्रत्ययाच्छन्दसि वा वचनमिति हेर्लुगभावः । योऽग्निरेको मुख्यः सन् एक एव वा वस्वः वसुनो गवादिधनस्य राजति ईश्वरो भवति । प्रदातुमिति शेषः । राजतीत्यैश्वर्यकर्मा । क्षिपति राजतीति तन्नामसु पाठात् तत्र दृष्टान्तः । वरुणो न वारक आदित्य इव । स यथा सर्वस्येष्टे तद्वत् ।

व्याख्या :—विश्ववेदसम्=सब प्रकार के धन वाले, यम्=जिस अग्नि को, भृगवः=भृगु गोत्रोत्पन्न या पाप के भर्जक (भून देने वाले) मुनियों ने पृथिव्याः=पृथिवी रूपी वेदी के, नाभा=मध्यभाग में, भुवनस्य=प्राणियों के मज्मना=बल के कारण, आ=अभिमुख होकर ईरिरे=स्थापित किया । तम=उस, अग्निम्=अग्नि को, स्वे=अपने

दमे=घर में, गीर्भिः=स्तुतियों से, आहिनुहि प्राप्त कर तथा यः=जो अग्नि, एकः=मुख्य होता हुआ, वस्वः=गवादि धन का याचकों को देने के लिए, राजति=स्वामी बनता है। इस विषय में दृष्टान्त दिया है कि वरुणः=वृष्टि का पारक अर्थात् आदित्य जैसे सारे जगत् का या धन का ईश्वर है इसी प्रकार यह अग्नि भी है।

व्याकरणम्—मज्मना मज्जतिमनः यत्र तत् मज्मन् बलमस्ज-मनस्+ड। डित्वाहि लोप, अनुनासिक होने से प्रत्यय के उकार का लोप भी हो जाता है।

हिनुहि=हि गतौ लोट् मध्यम पुरुष एक वचन श्नु विकरण वृणोति सर्वं जगत् यं स वरुणः सूर्यः।

विशेषः—विश्ववेदस का अर्थ विश्वप्रज्ञ भी होता है। अतः यथायोग्य अर्थ लगाना चाहिए। हिनुहि का प्रयोग कृणुहि, चिनुहि, धुनुहि, स्पृणुहि, तनुहि के समान किया गया है। अतः हि का लोप वैदिक होने से नहीं भी किया जाता है।

संहिता-पाठः

५. न यो वराय मरुतामिव स्वनः,
सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति,
योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते॥

पद-पाठः

न यः वराय मरुताम्ऽइव स्वनः,
सेनाऽइव सृष्टा दिव्या यथा अशनिः।

अग्निः जम्भैः तिगितैः अत्ति भर्वति,
योधः न शत्रून् सः वना नि ऋञ्जते ॥५॥

सायणः—योऽग्निर्वराय वरणाय निग्रहाय शक्तो न भवति। तत्र दृष्टान्तत्रयमुच्यते। मरुतां स्वन इव। स यथा अग्राह्यस्तद्वत्। तथा सृष्टा वैरिक्षयार्थं प्रबलेनाभिऽसृष्टा सेनेव। सा यथान्यैरनिरोध्या तद्वत्। तथा दिव्या दिवि भवा अशनिर्यथा पतत्येव न निवार्यते तद्वत्। ईदृक्सामर्थ्यमस्तीति दर्शयति। अयमग्निस्तिगितैः निशितैः तीक्ष्णीभूतैः। अन्त्यविकारश्छान्दसः। जम्भैः दन्तैः दन्तस्थानीयाभिर्ज्वालाभिः अत्ति अस्मद्विरोधिनो भक्षयति। तथा भर्वति हिनस्ति। तत्र दृष्टान्तः। योधो न संप्रहर्ता शूर इव। स यथा शत्रून्भर्वति भक्षयति तद्वत्। किंच सोऽग्निः वना वनानि वृक्षादिसमूहान् न्यृञ्जते नितरां प्रसाधयति दहतीत्यर्थः।

व्याख्याः—यः=जो अग्नि, वराय=किसी के द्वारा आवरण के लिए, निग्रहीत होने के लिए या अवरुद्ध होने के लिए, मरुताम्=वायुओं की स्वनः=ध्वनि की, इव=तरह समर्थ नहीं होता। तथा सृष्टा=वैरी-क्षय के लिए तैयार की गई, सेना इव=सेना की तरह एवं दिव्या=आकाश में बादलों से उत्पन्न होने वाली, अशनिः=विद्युत् यथा=जिस प्रकार किसी से निवार्य नहीं होती वैसे ही अग्नि भी किसी से निरोध्य नहीं होती। यह अग्निः=अग्नि, तिगतैः=तीक्ष्ण, जम्भैः=दाँतों से अर्थात् ज्वालाओं से अत्ति=शत्रुओं का भक्षण करती है तथा, भर्वति=शत्रुओं की हिंसा करती है। यह हिंसा उसी प्रकार होती है, नः=जैसे योधः= सैनिक रणाङ्गण में शत्रु की हिंसा करता है। किंच सः=वह अग्नि, वना=वृक्षादि समूहों को नि ऋञ्जते=दहन करती है।

व्याकरणम्—तिगितैः=तीक्ष्ण+इत् इस अवस्था में "पृषोदरादित्वात्" षकार का लोप ईकार को ह्रस्व और ककार को जश्त्व या तिज निशाने से क्त प्रत्यय इडागम कुत्व।

विशेष:—वराय यह शब्द भ्रामक है। वर देने के लिए यह अर्थ प्रतीत होता है, किन्तु यहाँ दूसरे के द्वारा आवरण या निग्रह प्राप्त करने के लिए यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

६. कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्व–
सुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः,
शुचिऽप्रतीकं तमयाधिया गृणे॥

पद-पाठः

कुवित् नः अग्निः उचथस्य वीः असत् वसुः,
कुवित् वसुऽभिः कामम् आऽवरत्।
चोदः कुवित् तुतुज्यात् सातये धियः,
शुचिऽप्रतीकम् तम् अया धिया गृणे॥६॥

सायणः—अयमग्निर्नोस्माकमुचथस्य उक्थस्य स्तोत्रस्य कुवित् बहुवारं वीः कामयिता असत् भवतु। यद्वा। उचथस्य एतन्नामकस्य महर्षेर्गोत्रप्रभवस्य न इति सम्बन्धः। तथा वसुः वासयिता सर्वेषां वसुस्थानीयो वा वसुभिः वासयितृभिर्धनैः कामम् अत्यर्थमभिमतं वा कुवित् अतिप्रभूतं आवरत् आवृणोतु। अभिमतप्रदानेन कामं निवर्तयत्वित्यर्थः। अयमग्नि-

श्चोदः अस्माकं कर्मसु प्रेरकः सन् धियः कर्माणि सातये लाभाय कुवित् बहु तुतुज्यात् त्वरयितुं प्रेरयत्वित्यर्थः । शुचिप्रतीकं शोभनावयवं शोभनज्वालं तमग्निं अया धिया अनया स्तुति-रूपया प्रज्ञया गृणे उच्चारयामि स्तौमीत्मर्थः ।

व्याख्या :—यह अग्निः=अग्नि, नः=हमारे, उचथस्य=उक्थ या स्तोत्र का, कुवित्=अनेक बार, वीः चाहने वाला, असत्=बने । अथवा उचथ नामक ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुए हम लोगों की कामना करने वाला बनें तथा वसुः=सब को निवास-स्थान प्रदान करने वाला या वसु-स्वरूप अग्नि, वसुभिः=कामना योग्य धनों से, कामम्=अत्यधिक या अभीष्ट वस्तु को कुवित्=प्रचुर मात्रा में, आवरत्=प्राप्त करावे, अर्थात् हमारी इच्छायें प्राप्त करावे । यह अग्नि चोदः=हमारा कर्मों में प्रेरक होता हुआ, धियः=हमारे कर्मों को, सातये=सुख लाभ के लिए, कुवित्= अत्यधिक, तुतुज्यात्=प्रेरणा दे । शुचिप्रतीकम्=सुन्दर अवयव वाले या अच्छी ज्वाला वाले, तम्=उस अग्नि को, अया=इस, धिया=स्तुति-रूप बुद्धि से, गृणे=स्तुति करता हूँ ।

व्याकरणम्—असत् लेट् का प्रयोग लोट् के स्थान पर है । अत-एव अट् का आगम हुआ है ।

आवरत्=वृञ् धातु से लेट् लकार का प्रयोग है । आट् का आगम हुआ है और विकरण का लोप छान्दस हुआ है ।

तुतुज्यात्=तुज् प्रेरणे विधिलिङ् शप् के स्थान पर श्लु । प्रथम पुरुष एकवचन ।

चोदः=चुद् प्रेरणे घञ् ।

अया=इदम् शब्द स्त्रीलिंग अन् के नकार का लोप ।

विशेष:—वेद में अनयोः की जगह अयोः, अनया की जगह अया और एभिः की जगह ऐः ऐसे प्रयोग इदम् शब्द के मिलते हैं।

संहिता-पाठः

७. घृत प्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं
मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्र–
वर्णामुदु नो यंसते धियम्॥

पद-पाठः

घृतऽप्रतीकम् वः ऋतस्य धूःऽसदम् अग्निम्
मित्रम् न सम्ऽइधानः ऋञ्जते ।
इन्धानः अक्रः विदथेषु दीद्यत् शुक्र-
ऽवर्णाम् उत् ऊं इति नः यंसते धियम्॥७॥

सायणः— घृत प्रतीकं घृतोपक्रमं प्रयाजादिष्वाज्यैर्हूयमानत्वात् यद्वा। प्रतीकमङ्गम्। दीप्तज्वालमित्यर्थः किंच वः युष्मत्संबन्धिनः ऋतस्य यज्ञस्य धूर्षदं धुरि निर्वहणे सीदन्तं यज्ञनिर्वाहकमग्निं मित्रं न मित्रमिव समिधानः इध्मैर्दीप्यमानः ऋञ्जते प्रसाधयति। ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा। इन्धानः सम्यग्दीपायमानः। अक्रः ज्वालासमिदादिभिराक्रान्तः अन्यैरनाक्रान्तो वा। विदथेषु यज्ञेषु वेदयत्सु स्तोत्रेषु निमित्तभूतेषु दीद्यत् स्वयं दीप्यमानः अस्मदीयां धियं प्रज्ञां यागादिविषयां शुभ्रवर्णां निर्मलां ज्योतिष्टोमादि कर्म वा उदु यंसते उद्योतयत्येव।

व्याख्या:— घृत प्रतीकं=घृत के द्वारा परिवर्धित किए गये अथवा

प्रतीक शब्द अंगवाचक है अतः प्रदीप्त ज्वाला वाले, वः=तुम्हारे, ऋतस्य=यज्ञ के, धूर्षदम्=भार को वहन करने वाले अथवा यज्ञ के अग्र भाग में बैठकर यज्ञ क्रिया के सम्पादन करने वाले, अग्निम्=अग्नि देवता को मित्रम्=मित्र की, न=तरह समिधानः=समिधाओं से दीप्त होता हुआ, ऋञ्जते=अपने कार्य की सिद्धि अर्थात् दहन करता है तथा अक्रः=ज्वालाओं से परिवेष्टित (आक्रान्त) या समिधाओं से आवृत्त या अक्र शब्द में नञ् समास करने पर अन्यों के द्वारा अनाक्रान्त एवं, विदथेषु=यज्ञों में या स्तुति-काल से, दीद्यत् स्वयं दीप्यमान अग्निः=अग्नि देव नः=हमारी, धियम्=यज्ञादि विषयक बुद्धि को, शुक्रवर्णम्=शुभ्रवर्ण वाली अर्थात् निर्मल करता हुआ उदु यंसते=बुद्धि की तीक्ष्णता को उत्पन्न करता है।

व्याकरणम्:— "धूः सदम्" में धुर् उपपद है, सद् धातु है तथा अच् प्रत्यय है।

'मित्रम्' मित् हिंसायाम् से और त्रैङ् पालने इन दो धातुओं से मिलकर बना है। मिनातेः हिंसयाः त्रायते रक्षति इति मित्रम्। 'अक्रः' = नञ् पूर्वक क्रमु धातु से 'ऽ' प्रत्यय है। अन्य स्थानों पर यह क्रिया के रूप में व्यवहृत होता है।

विशेष:— 'ऋतस्य धूर्षदम्' का ओल्डनवर्ग ने The charioteer of Rita अर्थात् ऋत का सारथी यह अर्थ किया है। ऋञ्ज धातु का अर्थ प्रसाधन है। यहां पर अग्नि का प्रसाधन दहन ही माना गया है। यास्क, देवराज, दुर्ग और सायण इन चारों का यही मत है। 'शुभदीप्तौ'की यह धातु पर्याय वाचक है। अतः to shine, to decorate, to show respect आदि अर्थ है। अक्रः के विषय में पीटर्सन कहता है कि सायण इसका अर्थ नहीं जानता है। परन्तु पीटर्सन ने अपना कोई नवीन अर्थ नहीं दिखाया केवल अक्र को 'ममृजेन्य— उशिग्भिर्नाक्रः' (१–१८७–६) इस मन्त्रानुसार 'अक्र' शब्द घोड़े

का वाचक है क्यों कि इस मन्त्र में अग्नि को प्रशंसनीय घोड़े के समान कहा गया है और घोड़े से अग्नि की उपमा अनेक स्थानों पर दी गई है यह ठीक है अत एव लोक में भी अग्नि का दूसरा नाम वाडवाग्नि है। 'विदथेषु' यह शब्द वि पूर्वक धा धातु से बनाया गया है और इसका अर्थ Distribution, disposition or ordinance है। छान्दस होने से धकार के स्थान में दकार और अथच् प्रत्यय है। 'वृहद्वदेम विदथे सुवीराः' इस मन्त्र में विदथ शब्द सभा का वाचक है। 'विदथ' और 'यज्ञ' Sacrifice का अर्थ को लेकर पर्यायवाची है। इस प्रकार धा धातु से निष्पन्न होने के कारण 'विदथ' का अर्थ the act of disposing any business" लिया जाता है। विदथ शब्द के 'सभा' समानार्थक होने से ही विदथ और सभा शब्द का अर्थ 'A person influential in council" यह माना जाता है, अत एव 'विदथ' और 'समेय' शब्द भी समान वाचक माने गये हैं।

संहिता-पाठः

८. अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभि रिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥

पद-पाठः

अप्रऽयुच्छन् अप्रयुच्छत्ऽभिः अग्ने
शिवेभिः नः पायुऽभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिः अदृपितेभिः इष्टे अनि-
मिषत्ऽभिः परि पाहि नः जाः ॥८॥

सायणः—हे अग्ने अप्रयुच्छन् अस्मास्वाप्रमाद्यन्। 'युच्छ प्रमादे'। अविच्छिन्न प्रवृत्तिः सन् अप्रयुच्छद्भिः अप्रमाद्यद्भिः अनवधानरहितैः शिवेभिःमन्त्रकल्याणैः शग्मैः सुखकरैः पायुभिः रक्षणप्रकारैः नोऽस्मान् पाहि रक्ष। किंच हे इष्टे सर्वैरेषणी-

याग्ने जाः ज.यमानः अस्माभिर्दीप्यमानः सन् अदब्धेभिः अहिंसितैः अदृपितेभिः केनचिदप्यपरिभूतैः। दृप दृम्फ उत्क्लेशे तौदादिकः। अनिमिषद्भिः निमेषरहितैः अनलसस्वभावैः। ईदृशैः लक्षणैर्नोऽस्मान् परि परितः पाहि पालय। यद्वा उपर्युपरि जायन्त इति जाः। नो जाः अस्मत्सम्बन्धिनीः पुत्रपौत्रादिरूपाः प्रजाः परिपाहि परितो रक्ष। न केवलमस्मान् किंत्वस्मत्पुत्रपौत्रा-दीनपि रक्ष।

व्याख्याः—हे अग्ने=हे अग्नि देवता तुम, अप्रयुच्छन्=हमारे रक्षा करने में प्रमाद न करते हुए, अप्रयुच्छद्भि=सावधान रहने की चेतावनि देने वाले, शिवेभिः=उदर्थ में कल्याण कारक, शग्मैः=सुखकरी, पायुभिः=रक्षा करने के विविध उपायों से, नः=हमारी, पाहि=रक्षा कीजिए, किंच=और, इष्टे=हे सुखेच्छु व्यक्ति मात्र से चाहे गये, अग्ने=तुम, जाः=हमारे द्वारा जापमान अर्थात् दीप्यमान होते हुए, अदब्धेभिः=अहिंसित अर्थात् सफल, अदृपितेभिः=अन्यों के द्वारा अपरिभूत, अनिमिषद्भिः=आलस्य शून्य लक्षणों से युक्त बना कर या उक्त विशेषणों वाले साधनों के द्वारा, नः=हमारी, परि=सब तरफ से, पाहि=रक्षा कीजिए, अथवा 'जाः' शब्द उपरि-उपरि जायन्ते इति जाः प्रजाः इस व्युत्पत्ति से सन्तान परम्परा का वाचक है। अतः "नः जः=हमारी पुत्र पौत्रादि रूप प्रजा की रक्षा कीजिए, "नः" द्वितीया का बहुवचन भी और षष्ठी का भी बहुवचन है अतः हमारी और हमारे पुत्र पौत्रादि की रक्षा कीजिए, यह भाव है।

व्याकरणम्—शिवेभिः, अदब्धेभिः, उदृपितेभिः इत्यादि पदों में छान्दस होने से भिस् को ऐस् आदेश नहीं हुआ। ऐसे प्रयोग ऋग्वेद में अत्यधिक पाये जाते हैं। अप्रयुच्छन् पुच्छ प्रमादेशतृ। अदृपितेभिः में दर्प, दम्प, उत्श्लेषे इस तुदादि गणी धातु से कृत् प्रत्यय है अदब्धेभिः हिंसार्थक दभ् धातु से क्त प्रत्यय किया गया है।

विष्णुसूक्त

संहिता-पाठः

१. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं
यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥

पद-पाठः

विष्णोः । नु । कम् । वीर्याणि । प्र । वोचम् ।
यः । पार्थिवानि । विऽममे । रजांसि ।
यः । अस्कभायत् । उत्ऽतरम् । सधऽस्थम् ।
विऽचक्रमाणः । त्रेधा । उरुऽगायः ॥

परिचयः—इस सूक्त का दीर्घतमाः ऋषि है तथा त्रिष्टुप् छन्द है ।

संस्कृतव्याख्याः—हे नराः, विष्णोः=व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि=वीरकर्माणि । नु कम्=अतिशीघ्रम्, प्रवोचम्=प्रब्रवामि । यः=विष्णुः, पार्थिवानि=पृथिवीसम्बन्धीनि, रजांसि=अग्निवाय्वादिरूपानि रञ्जनात्मकान् । लोकान्, विममे=विशेषेण निर्ममे । यश्च विष्णुः, त्रेधा=त्रिप्रकारम्, विचक्रमाणः=स्वसृष्टान् लोकान् क्रममाणः, 'अतएव' उरुगायः=उरुभिर्महद्भिर्गीयमानः, उत्तरम्=उत्कृष्टतरम्, सधस्थम्=लोकत्रयाश्रयभूतमन्तरिक्षम्, अस्कभायत्=स्तम्भितवान् ।

हे मनुष्यो ! विष्णुः=व्यापनशील देवता के, वीर्याणि=वीरतायुक्त कर्मों को, नु=और भी, कम्=शीघ्र, प्रवोचम्=कहता हूँ। यः=जिस विष्णु ने, पार्थिवानि=पृथिवी सम्बन्धी, रजांसि=मनुष्यों के मन को या रंजन करने वाले अग्नि, वायु और आदित्य आदि लोकविशेषों को, विममे=विशेष रूप से बनाया (ऋग्वेद के १।१०८।९ 'यदिन्द्राग्नी' इत्यादि मन्त्र के अनुसार पृथिवी शब्द तीनों लोकों का वाचक है।) तथा जिस विष्णु ने उत्तरम्=उद्गततर=अतिविस्तीर्ण, सधस्थम्=सह-स्थिति वाले तीनों लोकों के आश्रयभूत अन्तरिक्ष लोक, अस्कभायत्=आधार रूप से बनाया है, (अथवा जिस विष्णु ने पृथ्वी सम्बन्धी भूः आदि सात लोकों को बनाया व पुण्यात्माओं के साथ रहने के योग्य उत्तम लोकों को जब बनाया है)। तब इन लोकों के निर्माण के समय विष्णु ने तीन प्रकार से क्रमण किया और इसी ही कारण वह उरुगाय=महान्, व्यक्तियों महर्षि या विद्वानों से गीयमान (स्तूयमान) स्तुति योग्य बना या 'उरुगाय' का अर्थ अधिक कीर्ति वाला है। (ऐसे विष्णु के मैं पराक्रमों का वर्णन करता हूँ)। (त्रेधा=त्रेधा शब्द छन्दःपूर्ति के लिये त्र-ये-धाः इस प्रकार उच्चारण किया जायगा।)

सायणः—हे नरा ! विष्णोर्व्यापनशीलस्य देवस्य वीर्याणि वीरकर्माणि नु कम् अतिशीघ्रं प्रवोचं ब्रवीमि अत्र यद्यपि नु कम् इति पद द्वयं तथापि यास्केन नवोत्तराणि पदानीत्युक्तत्वात् (निघण्टु ३-१२) शाखान्तरे एकत्वेन पाठाच्च नु इत्येतस्मिन्नेवार्थे नु कम् इति पदद्वयम्। कानि तानीति तत्राह—यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवी सम्बन्धीनि रजांसि रञ्जनात्मकानि क्षित्यादि लोकत्रयाभिमानीन्याग्नि वाय्वादित्य रूपाणि रजांसि विममे विशेषेण निर्ममे। अत्र त्रयो लोका अपि पृथिवी शब्द वाच्याः। तथा च मन्त्रान्तरम्—'यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः। (ऋग् १-१०८-९) तैत्तिरीयेऽपि "योऽस्यां पृथिव्यामस्यायुषे"त्युपक्रम्य यो द्वितीयस्यां

तृतीयस्यां पृथिव्यामिति (तै. सं. १–२–१२–१) तस्माल्लोक-त्रयस्य पृथिवी शब्दवाच्यत्वम् । किञ्चयश्चविष्णुः उत्तर मुद्गततरम् अतिविस्तीर्णं सधस्थं सहस्थानं लोकत्रयाश्रयभूतं अन्तरिक्षं अस्कभायत् तेषामाधारत्वेन स्तम्भितवान् ! निर्मितवानित्यर्थः । अनेनान्तरिक्षाश्रितं लोकत्रयमपि सृष्टवा-नित्युक्तं भवति । यद्वा यो विष्णुः पार्थिवानि पृथिवी सम्बन्धीनि रजांसि पृथिव्या अधस्तन सप्तलोकान् विममे विविधं निर्मितवान् । रजःशब्दो लोकवाची लोका रजांस्युक्तिर्या-स्कस्य (नि. ४–३–१९) । किं च यश्च उत्तरमुद्गततरम् उत्तर-भाविनं सधस्थं सहस्थानं पुण्यकृतां सहनिवासयोग्यं भूरादि लोकसप्तकं अस्कभायत् स्कम्भेः 'स्तम्भु स्तुम्भु' इति विहितस्य श्नः छन्दसि शायजपीति व्यत्ययेन शायजादेशः पाणिनि (३–१–४८) । अथवा पार्थिवानि पृथिवीनिमित्तकानि रजांसि भूरादिलोकत्रयं विममे इत्यर्थः । भूम्यामुपार्जित कर्मभोगार्थत्वादितरेषां लोकानां तत्कारणत्वात् । किञ्च यश्चोत्तरमुत्कृष्टतरं सर्वेषां लोकानामुपरिभूतं, अपुनरावृत्ते स्तस्योत्कृष्टत्वम् । सधस्थमुपासकानां सहस्थानं सत्यलोकं अस्कभायत् ध्रुवं स्थापितवान् किं कुर्वन् त्रेधा विचक्रमाणः त्रिप्रकारं स्वसृष्टान् लोकान् क्रममाणः । विष्णोस्त्रेधा क्रमणम् । 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (१–२२–१७ ऋक्) इत्यादि श्रुतिषु प्रसिद्धम् । अत एवोरुगाय उरुभिर्महद्भिर्गीयमानः, अति प्रभूतं गीयमानो वा । य एवं कृतवान् तादृशस्य विष्णोर्वीर्याणि प्रवोचम् ।

व्याकरणम्—प्रवोचम्=अडभावश्छान्दसः । पार्थिवानि=पृथिवी+अण् । अस्कभायत्=स्कम्भ+शामच्+लङ्, एकवचन, प्रथमपुरुष,

विचक्रमाणः=वि+क्रम्+शानच्+शप्, मुम् आगम का छान्दसत्वात् अभाव ।

विशेषः—'त्रेधा' को छान्दोऽनुसार 'त्रेयधा' पढ़िए । उरुगामः—दूरगन्ता भी अर्थ है । "त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे" (८–२६–७ ऋक्) ।

संहिता-पाठः

२. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण
मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्व्-
अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥

पद-पाठः

प्र । तत् । विष्णुः स्तवते । वीर्येण ।
मृगः । न भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः ।
यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु ।
अधिऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—यस्य=विष्णोः, उरुषु=विस्तीर्णेषु, त्रिषु=त्रिसंख्याकेषु, विक्रमणेषु=पादप्रक्षेपेषु, विश्वा=सर्वाणि, भुवनानि=भूतजातानि, अधि क्षियन्ति=आश्रित्य निवसन्ति । स विष्णुः, वीर्येण=स्वकीयेन वीरकर्मणा (स्तवते=स्तूयते) भीमः=भीतिजनकः, कुचरः, कुत्सितहिंसादिकर्ता, दुर्गमप्रदेशगन्ता वा, गिरिष्ठाः=पर्वताद्युन्नतप्रदेशस्थायी, (सर्वैः स्तूयते) इति पूर्वेणान्वयः ।

'तत्' पद को लिंग व्यत्यय से पुलिंग 'सः' मानना चाहिये और यह विष्णु का विशेषण है । 'प्र' इस उपसर्ग का 'स्तवते' क्रिया के साथ

अन्वय है। तत्=वह विष्णु, वीर्येण=अपने पराक्रमयुक्त कार्यों से, स्तवते= सब से स्तुति किया जाता है (कर्म में व्यत्यय से शप् प्रप्यय हुआ है)। न=जिस प्रकार' मृगः=विरोधियों को ढूँढ कर मारने से, सिंह, भीमः= भयदायक, कुचरः=कुत्सित हिंसादि कार्य करने वाला या दुर्गम प्रदेशों में जाने वाला, गिरिष्ठाः=पर्वतादि उन्नत प्रदेशों में रहने वाला सिंह सब से स्तुति किया जाता है वैसे ही विष्णु की भी स्तुति की जाती है। तथा जिस विष्णु के उरुष=विस्तीर्ण, त्रिषु=तीन, विऽक्रमणेषु=कदमों में, विश्वा=सम्पूर्ण, भुवनानि=भूत भौतिक पदार्थ, अधिऽक्षियन्ति=आश्रय लेकर निवास करते हैं। वह विष्णु स्तुति योग्य है।

सायणः—यस्येति वक्ष्यमाणत्वात् स इत्यवगम्यते। स महानुभावो वीर्येण स्वकीयेन वीरकर्मणा पूर्वोक्त रूपेण स्तवते स्तूयते सर्वैः। कर्मणि व्यत्ययेन शप्। वीर्येण स्तूयमानत्वे दृष्टान्तः। मृगो न सिंहादिरिव। यथास्वविरोधिनो मृगयिता सिंहो भीमो भीतिजनकः कुचरः कुत्सितहिंसादिकर्ता दुर्गम-प्रदेशगन्ता व गिरिष्ठाः पर्वताद्युन्नतप्रदेशस्थायी सर्वैः स्तूयते। मृगः मार्ष्टेर्गतिकर्मणः। भीमो बिभ्यत्यस्मात्। भीष्मोऽप्ये-तस्मादेव। कुचरः ति चरतिकर्म कुत्सितम्। गिरिः पर्वतः समुद्गीर्णो भवति पर्ववान् पर्वतः पर्व पुनः पृणातेः प्रीणातेर्वा। तद्वदयमपि मृगः अन्वेष्टा शत्रूणां भीमः भयनकः सर्वेषां भीत्यपादानभूतः। कुषु सर्वासु भूमिषु लोकत्रये सञ्चारी। यद्वा गिरी मन्त्रादि रूपायां वाचि सर्वदा वर्तमानः। किञ्चयस्य विष्णोरुरुषु विस्तीर्णेषु त्रिसंख्यकेषु विक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वा सर्वाणि भूतजातानि आश्रित्य निवसन्ति स विष्णुः स्तूयते।

व्याकरणम्—स्तवते=स्तु धातु से कर्म में प्रत्यय करने पर यक् के स्थान में व्यत्यय से शप् हुआ। गिरिस्था=गिरि+स्था क्विप्। मृगः=मार्ष्टि गच्छतीति मृगः मृज्+कः।

विशेषः—'प्रतद्विष्णुः' इस पद में 'तत्' पद का अर्थ सायण ने स्पष्ट नहीं किया है। 'स्तवते' का अर्थ 'स्तूयते' माना है—पीटर्सन को यह नापसन्द है किन्तु पीटर्सन का आशय बेकार है क्योंकि 'स्तवते' का अर्थ कर्म प्रत्यय में ही करना चाहिए विष्णु स्वयं अपने कर्मों की प्रशंसा करता है। या 'Vishnu Praises, makes lond boast of this' यह अर्थ अस्वारसिक है। 'वीर्येण' को भी पीटर्सन ने 'mightly' इस अर्थ में प्रयुक्त मान कर क्रियाविशेषण माना है। ग्रासमान ने 'प्रस्तवते' का कर्म 'तत्' को माना है तथा "Under takes this glorious deed" यह अर्थ किया है। 'वीर्येण' का अर्थ भी 'might' किया है। 'mighty deeds' नहीं।

संहिता-पाठः

३. प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म
गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम्
एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥

पद-पाठः

प्र। विष्णवे। शूषम्। एतु। मन्म।
गिरिऽक्षिते। उरुऽगायाय। वृष्णे।
यः। इदम्। दीर्घम्। प्रऽयतम्। सधऽस्थम्।
एकः। विऽममे। त्रिऽभिः। इत्। पदेभिः ॥

संस्कृतव्याख्या:—यः = विष्णुः, इदम् = दृश्यमानम्, दीर्घम्=अतिविस्तृतम्, प्रयतम्=नियतम् पवित्रं नियमस्थितं वा, सधस्थम् =सहस्थानं लोकत्रयम्, एकः इत्=एक एवाद्वितीयः

सन्, त्रिभिः पदेभिः=त्रिसंख्याकैः पदैः, विममे=विशेषेण निर्मितवान्। 'तस्मै' गिरिक्षिते=वाचि गिरिवदुन्नतप्रदेशे वा तिष्ठते, उरुगायाय = बहुभिर्गीयमानाय, वृष्णे = कामानां वर्षयित्रे, विष्णवे=सर्वव्यापकाय, शूषम्=अस्मत्कृत्यादिजन्यं बलं महत्त्वम्, मन्म=स्तुत्यं, स्तोत्रैः मननीयम् (विष्णुम्) एतु=प्राप्नोतु।

विष्णवे=सर्वव्यापक के लिए, शूषम्=बल (हमारे कर्मों से उत्पन्न जो बल), मन्म=मननीय स्तुति योग्य है, (वह बल) हमें प्र एतु=विशेष रूप से प्राप्त हो। अर्थात् स्तुति के द्वारा हम लोग विष्णु के समान विशेष बल को प्राप्त करें। यः=जो कि विष्णु, गिरिक्षिते=वाणी में निवास करता है, अर्थात् स्तुति की वाणी में निवास करता है, अथवा उन्नत प्रदेश में रहता है, तथा उरुगायाय=बहुतों से गीयमान है। (वृष्णे) वृषन्=हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला, तथा यः=जो विष्णु, इदम्=इस दीर्घम्=विस्तृत, प्रयतम्=पवित्र, या नियत= (नियम में बन्धे हुए), सधस्थम्=तीनों लोकों को, एक, इत्=अकेला ही, त्रिभिः=तीन, पदेभिः पैरों से, विममे=विशेष रूप से अन्तर्गत करता है, या कर चुका है।

सायणः—विष्णवे सर्वव्यापकाय शूषमस्मत् कृत्यादिजन्यं महद् बलं मन्म मननीयं शूषं बलं वा विष्णुमेतु प्राप्नोतु। कर्मणः सम्प्रदानत्वात् चतुर्थी। कीदृशाय। गिरिक्षिते वाचि तिष्ठते गिरिवदुन्नतप्रदेशे वा तिष्ठते। उरुगायाय बहुभिर्गीयमानाय वृष्णे वर्षित्रे कामानाम् एवं महानुभावं शूषं प्राप्नोतु। कोऽस्य विशेषः—यो विष्णुरिदं प्रसिद्धं दृश्यमानं दीर्घमतिविस्तृतं प्रयतं नियतं सधस्थं सहस्थानं लोकत्रयं एक इत् एक एव अद्वितीयः सन् त्रिभिः पदेभिः पादैर्विममे विशेषेण निर्मितवान्।

व्याकरणम्—'शूष' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर 'शूष' शब्द की सिद्धि होती है। गिरिक्षिते=गिरौ गिरि वा क्षियतीति गिरिक्षित् तस्मै। 'क्षि' निवासे धातु से क्विप् व तुगागम। वृष्णे=वृष् धातु से कनिन् चतुर्थी के एकवचन का रूप है।

विशेषः—प्रबल प्रतिपक्षी को देख कर शत्रु का बल सूख जाता है इसलिए बल का नाम 'शूष' है।

'शूषम्' की सिद्धि राथ ने 'श्वस्' धातु से मानी है। तथा इसे विशेषण भी माना है और Piping sounding अर्थ किया है।

'वृषन्' शब्द यद्यपि अनेकों बार प्रयुक्त है तथापि स्पष्ट नहीं है। तथा वीर्य सेक्ता या बलवान् अर्थ में प्रयुक्त होता है। धीरे अर्थ परिवर्तन होता गया तथा Fertilising यह अर्थ भी होने लगा।

संहिता-पाठः

४. यस्य॒ त्री पू॒र्णा मधु॑ना प॒दान्य॒,
अक्षी॑यमाणा स्व॒धया॒ मद॑न्ति।
य उ॑ त्रि॒धातु॑ पृ॒थि॒वीमु॒त द्याम्,
एको॑ दा॒धार॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑॥

पद-पाठः

यस्य॑। त्री। पू॒र्णा। मधु॑ना। प॒दानि॑।
अक्षी॑यमाणा। स्व॒धया॑। मद॑न्ति।
यः। ऊँ इति॑। त्रि॒ऽधातु॑। पृ॒थि॒वीम्। उ॒त। द्याम्।
एकः॑ दा॒धार॑। भुव॑नानि। विश्वा॑॥४॥

संस्कृतव्याख्या:—यस्य=विष्णोः, मधुना=मधुरेण रूपेण यद्वा माधुर्येण पूर्णा=पूर्णानि त्री=त्रीणि, पदानि=पादप्रक्षेपणानि,

अक्षीयमाणा=अक्षीयमाणा नि स्वधया=अन्नेन, मदन्ति=माद-यन्ति, (तदाश्रितजनान् य उ=यं एव, पृथिवीम्=भूमिम्, द्याम् उत=अन्तरिक्षं च, विश्वा भुवनानि=सर्वाणि भूतजातानि चतुर्दशलोकान् वा, त्रिधातु=पृथिव्यप्तेजोरूपधातु त्रयं विशिष्य दाधार=धृतवान् ।

हिन्दी-व्याख्या—यस्य=जिस विष्णु के, मधुना=मधुर, दिव्य अमृत से, पूर्णा=पूर्ण त्री=तीन, पदानि=चरण विन्यास, अक्षीयमाणा=क्षीण न होते हुए, संकुचित न होते हुए, स्वधया=अन्न के द्वारा, मदन्ति=आश्रितों को सुख पहुँचाते हैं, और यः=जो, उ=केवल विष्णु, पृथिवीं=विस्तीर्ण पृथिवी-लोक को, द्याम् = द्युलोक को, अन्तरिक्षलोक को, एकः=अकेला ही, विश्वा भुवनानि=चौदह लोकों को, त्रिधातु=पृथ्वी, जल, तेज इन तीन धारण कराने वाले पदार्थों से युक्त बना कर, दाधार=धारण किये हुए है ।

विशेष :—मैक्डानल ने 'त्रिधातु' पद का अर्थ त्रिगुणित (बुद्धिमान्) है, यह किया है ।

सायण :—यस्य विष्णोः मधुना मधुरेण दिव्येनामृतेन पूर्णा पूर्णानि त्रीणि पदानि पादप्रक्षेपणानि अक्षीयमाणा अक्षीयमाणानि स्वधया अन्नेन मदन्ति मादयन्ति तदाश्रितजनान् । य उ य एव पृथिवीं प्रख्यातां भूमिं द्यामुत द्योतनात्मकमन्तरिक्षं च विश्वा भुवनानि सर्वाणि भूतजातानि चतुर्दश लोकाँश्च । यद्वा—पृथिवीशब्देन अधोवर्तीन्यतल वितलादि सप्तभुवनानि-उपात्तानि । द्युशब्देन तदवान्तररूपाणि भूरादिसप्तभुवनानि । एवं चतुर्दश लोकान् विश्वा भुवनानि सर्वाण्यापि तत्रत्यानि भूतजातानि । त्रिधातु त्रयाणां धातूनां समाहारस्त्रि-

धातु। पृथिव्यप्तेजोरूप धातुत्रयविशिष्टं यथा भवति तथा। दाधार धृतवान्। तुजादित्वादभ्यासदीर्घत्वम्। उत्पादितवानित्यर्थः। छान्दोग्य उपनिषदि (४-२-३,३-३) त्रिवृत् करणात् सृष्टिरुत्पादिता।

व्याकरणम्—'त्री' जस् को लोप व पद को दीर्घत्व। 'त्रिधातु' में समाहार है।

विशेषः—मन्त्रार्थ में राथ ने ठीक ही लिखा है कि—

'All brings in the world enjoy the sweetness of his highest foot step, that is heaven from vishnu flows the comfort and enjoyment which are found the three fold world.

'स्वधयामदन्ति' का अर्थ are made glad with food या rejoice in है। 'स्वधा' शब्द का अर्थ वेद में अनेक प्रयोगों के अनुसार राथ ने accustomed place, home, comfort, contentment, sweet drink (सुधा) oblation आदि अर्थ किये हैं।

देखिए—ऋग्वेद ४-३३-६, ६-१३-५, ६-२-८, ८-३२-६, १०-१२९-५, और ६-८६-१० आदि—

संहिता-पाठः

५. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां
नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था
विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥

पद-पाठः

तत् अस्य । प्रियम् । अभि । पार्थः । अश्याम् ।
नरः । यत्र । देवऽयवः । मदन्ति ।
उरुऽक्रमस्य । सः । हि बन्धुः । इत्था ।
विष्णोः । पदे । परमे । मध्वः । उत्सः ।

संस्कृतव्याख्याः—अस्य=विष्णोः, प्रियम्=प्रियभूतम् । तत्=प्रसिद्धम्, पाथः=अन्तरिक्षं ब्रह्मलोकमित्यर्थः, अश्याम्=व्याप्नुयाम । यत्र=यत्रस्थाने, देवयवः=देवं विष्णुं प्राप्तुमिच्छन्तः, नरः, मदन्ति=तृप्तिमनुभवन्ति (तदश्याम्) । (पुनश्च) उरुक्रमस्य=अत्यधिकं जगदाक्रममाणस्य, विष्णोः=व्यापकस्य, परमे=उत्कृष्टे, पदे=स्थाने, मध्वः=मधुरस्य, उत्सः=निष्यन्दो वर्तते, (तदश्यामिति सर्वत्रान्वयः,) इत्था=उक्तप्रकारेण, स हि विष्णुः सर्वेषां बन्धुः=हितकरः । अस्तीति शेषः ।

हिन्दीव्याख्याः—अस्य=इस महान् विष्णु के, प्रियम्=सर्वसेव्य अतएव प्रिय, पाथः=अन्तरिक्षलोक को अर्थात् ब्रह्मलोक को, अभि अश्याम=व्याप्त करूँ, प्राप्त होऊँ, यत्र=जिस ब्रह्मलोक में, देवयवः=विष्णु के दर्शन के इच्छुक, अर्थात् यज्ञादि के द्वारा विष्णु को प्राप्त करने की इच्छा वाले, नरः=मनुष्य, मदन्ति=तृप्ति का अनुभव करते हैं, या प्राप्त करते हैं (उस ब्रह्मलोक को मैं प्राप्त करूँ) उरुक्रमस्य=अत्यधिक रूप में तीनों लोकों को प्राप्त करने वाले उस विष्णु व्यापक परमेश्वर के, परमे=उत्कृष्ट, केवल सुखात्मक, पदे=स्थान पर, स हि=वही ब्रह्मलोक, मध्वः=मीठे अमृत का, उत्सः=झरना है, अर्थात् ब्रह्मलोक में भूख-प्यास, जरा-मरण और पुनरावृत्ति का भय नहीं रहता । वहाँ संकल्पमात्र से अमृत की नदियों की उत्पत्ति होती है । इत्था=इस प्रकार, स हि बन्धुः=वह सब शुभ कर्मों के करने वालों का हितकारी है ।

सायणः—अस्य महतो विष्णोः प्रियं प्रियभूतं तत् सर्वैः सेव्यत्वेन प्रसिद्धं पाथः अन्तरिक्षं (नि. ६–७) अविनश्वरं ब्रह्मलोकमित्यर्थः। अभि अश्यां व्याप्नुयामित्यर्थः। तदेवविशेष्यते यत्रस्थाने देवयवः देवं द्योतनस्वभावं विष्णुमात्मने इच्छन्तः यज्ञदानादिभिः प्राप्तुमिच्छन्तो नरामदन्ति तृप्तिमनुभवन्ति तदश्यामित्यर्थः। पुनरपि तदपि विशेष्यते—उरुक्रमस्य सर्वं जगद् आक्रममाणस्य विष्णोर्व्यापनशीलस्य परेश्वरस्य परेमे उत्कृष्टे पदे स्थाने मध्वः मधुरस्य उत्सः निष्यन्दो भवति। तदश्याम्- यत्र क्षुत्तृष्णा मरण जरामरण पुनरावृत्त्यादिभयं-नास्ति। इत्था इत्थमुक्तप्रकारेण स हि बन्धुः स खलु सर्वेषां बन्धु भूतः, तस्यपदं प्राप्तवतां न पुनरावृत्तिः। न पुनरावर्तते इति श्रुतेः। हि शब्दः प्रसिद्धौ।

व्याकरणम्—देवयुः=देव उपपद यु धातु से क्विप् प्रत्यय। इत्था='इत्थम्' की विभक्ति का लोप व दीर्घ।

विशेषः—सायण ने ऋग्वेद के ७–४७–३ मन्त्र में 'पाथः' का अर्थ स्थानं किया है। तदश्याम्=May I win there, बन्धुः=there is society of friends. पिशेल (Pischal) ने इत्था को एन्था (प्रावृत्त) के समानार्थक माना है।

संहिता-पाठः

६. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै,
यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः
परमं पदमव भाति भूरि॥

पद-पाठः

ता । वाम् । वास्तूनि । उश्मसि । गमध्यै ।
यत्र । गावः । भूरिऽश्टङ्गाः । अयासः ।
अत्र । अह । तत् । उरुऽगायस्य वृष्णः ।
परमम् । पदम् । अव । भाति । भूरि ॥

संस्कृतव्याख्या :— हे पत्नीयजमानौ, यत्र = येषु वास्तुषु, गावः=रश्मयः, भूरिश्टृङ्गाः= अत्यन्तोन्नत्युपेताः, अयासः= अतिविस्तृताः अत्यन्त प्रकाशयुक्ता वा सन्ति अत्राह = अत्र द्युलोके, उरुगायस्य = बहुभिः स्तुत्यस्य, वृष्णः = कामानां वर्षितुर्विष्णोः, परमम् = निरतिशयम्, पदम् = स्थानम्, भूरि = अतिप्रभूतम्, अव भाति = स्वमहिम्ना स्फुरति। वाम् = युष्मदर्थम्, ता = तानि वास्तूनि = सुखनिवासयोग्यानि स्थानानि, गमध्यै = युवयोर्गमनाय, उश्मसि = कामयामहे । तदर्थं विष्णुं प्रार्थयामः।

हे यजमान और हे उसकी पत्नी ! वाम = तुम दोनों के लिए, ता = उन, वास्तूनि = निवास योग्य स्थानों को, गमध्यै = जाने के योग्य, उश्मसि = चाहते हैं अर्थात् तुम दोनों के लिए उन स्थानों की प्राप्ति के लिये हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं। यत्र = जहां पर, भूरिश्टृङ्गाः = अनेक प्रकार से फैलने वाली, गावः = किरणें अयासः = निवास करती हैं। अत्र यहीं पर, अह = निश्चय करके, उरुगायस्य = महात्माओं से स्तुति योग्य, वृष्णः इच्छाओं की पूर्ति करने वाले विष्णु भगवान् का परमं पदं = सर्वोत्कृष्ट स्थान अन्तरिक्षलोक, भूरि = अत्यधिक रूप से, अवभाति = प्रकाशित हो रहा है।

टिप्पणी :— इस मन्त्र में मैक्डानल के अनुसार 'गौ' शब्द बैल का वाचक है और सायण और यास्क के अनुसार 'गौ' शब्द किरण का वाचक है।

सायणः—हे पत्नीयजमानौ ! वां युष्मदर्थं ता तानि गन्तव्यत्वेन प्रसिद्धानि स्थानानि गमध्यै युवयोर्गमनाय उश्मसि कामयामहे। तानि कानीत्याह—यत्र वास्तुषु गावो रश्मयो भूरिश्रृङ्गा अत्यन्तोन्नताः बहुभिराश्रयणीया वा। अयासः अयना गन्तारः, यद्वा—यासः गन्तारः, अतादृशाः, अत्यन्त प्रकाशयुक्ता इत्यर्थः। अत्रखलु वास्त्वाधारभूते द्युलोके उरुगायस्य स्तुत्यस्य वृष्णः कामानां वर्षितुस्तत् तादृशं सर्वत्रप्रसिद्धं परमं निरतिशयं पदं स्थानं भूरि अतिप्रभूतमवभाति स्वमहिम्ना स्फुरति। यत्र गावः भूरिश्रृङ्गाः बहुश्रृङ्गा अयासोऽयनाः, 'श्रृङ्गं' श्रयतेर्वा श्रृणातेर्वा शिरसो निर्गतमितिवा। तत्र तदुरुगायस्य विष्णोर्महागतेः परमं पदं परार्धस्थमवभातिभूरि। पादः पद्यतेः (नि. २—७)।

व्याकरणम्— उश्मसि='वश्' कान्तौ 'लट्' उत्तमपुरुष 'बहुवचन', छान्दसं संप्रसारणम्।

अयासः— इण् धातोः अचि जसि 'आज्जसेरसुक्' इति असुक् 'गन्तारः इत्यर्थः वाम् = युष्मदर्थमिति बहुत्वं द्विवचनस्थाने, गमध्यै = 'गम्' धातोस्तुमुनः स्थाने 'तुमर्थे सेसेनेत्यादिना' 'शध्यै' प्रत्ययः।

गमध्यै = तुम् के अर्थ में 'अध्यै' प्रत्यय हुआ है।

वृष्णः = वृष् धातु से कनिन् प्रत्यय हुआ है।

विशेष:— 'वाम्' का अर्थ पत्नी और यजमान सायण ने किया है। किन्तु अकस्मात् इस अर्थ का करना ठीक नहीं। अतः विष्णु के साथ 'मित्रावरुण देवता का भी यह ग्रहण मानकर द्विवचन का प्रयोग किया गया है। किन्तु दूसरे देव का जो विष्णु का साथी है पता चलाना कठिन है।

'अयासः' का unwearin agile light, expert अर्थ राथ ने किया है। इसका प्रयोग मरुत् सूक्त में तथा १–६४–११, ३–५४–१३, ७–८–३, इत्यादि स्थानों पर ऋग्वेद में हुआ है।

इन्द्र सूक्त

संहिता-पाठः

१. यो जात एव प्रथमो मनस्वान् ।
देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां ।
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः जातः । एव । प्रथमः । मनस्वान् ।
देवः । देवान् । क्रतुना । परिऽअभूषत् ।
यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेताम् ।
नृम्णस्य । मह्ना । सः । जनासः । इन्द्रः ॥ १ ॥

परिचयः—इस सूक्त का गृत्समद नाम का ऋषि है और त्रिष्टुप् छन्द है। इस में तीन प्रकार की कहानियाँ हैं—

१. एक ऋषि ने तपस्या की और इन्द्र के समान महान् शक्तिशाली बन गया । आकाश और द्युलोक में उसका प्रभाव व्यप्त हो गया। उसे इन्द्र समझकर धुनि और चुमुरि नाम के दो दैत्य शस्त्र उठा कर मारने के लिए आये। ऋषि ने उनके भाव को समझकर इन्द्र की निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा पहचान बताई। यह कथा 'बृहद्देवता' के अनुसार है।

२. महाभारत के अनुसार दो कथाएँ हैं, पहली में लिखा है कि इन्द्रादि देवता पृथु राजा के यज्ञ में गये और गृत्समद नाम का ऋषि भी वहाँ पहुँचा, इन्द्र के आगमन की सूचना पाकर दैत्यगण उसे मारने की इच्छा से वहां पहुँचे, उन दैत्यों को देखकर इन्द्र गृत्समद की आकृति

बना कर यज्ञशाला से बाहर चला गया। उसकी गृत्समद की चलते समय राजा वैन्य ने बहुत पूजा की। दैत्यों ने उस असली गृत्समद को ही इन्द्र समझा और निकलते ही घेर लिया। तब गृत्समद ने उन दैत्यों को अपने और इन्द्र के भेदक चिह्न पृथक्-पृथक् बताये। यह भी कहा कि इन्द्र महान् है, मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ।

३. दूसरी कथा इस प्रकार है कि गृत्समद ऋषि के यज्ञ में इन्द्र अकेला ही पहुँचा। अकेला जानकर उसे दैत्यों ने घेर लिया। वह इन्द्र गृत्समद के रूप में यज्ञशाला से भागा, पर दैत्यों ने "इन्द्र यज्ञशाला से अभी तक नहीं निकला है और देर कर रहा है" ऐसा सोचकर वे यज्ञ-शाला में गये और देखा कि वहां एक और गृत्समद बैठा है और एक पहले ही जा चुका था तब असली गृत्समद को इन्द्र समझ लिया और उसको पकड़ा तब असली गृत्समद ने कहा कि मैं इन्द्र नहीं हूँ बल्कि इन्द्र मुझ से भिन्न है। निम्नलिखित मंत्रों द्वारा सविस्तर यह भेद वर्णित किया गया है। जिसका यह पहला मन्त्र है—

संस्कृतव्याख्या:—जनासः=हे असुराः, यो जात एव=जायमान एव सन्, प्रथमः=देवानां प्रधानभूतः। मनस्वान्=मनस्विनामग्रगण्यः। देवः=द्योतमानः, क्रतुना—वृत्रवधादि-लक्षणेन स्वकर्मणा, देवान्=सर्वान् यागदेवान्, पर्यभूषत्=रक्षकत्वेन पर्यग्रहीत। यस्य=इन्द्रस्य शूष्मात्=शरीरात् बलात्, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, अभ्यासेताम्=अबिभीताम्, नृम्णस्य=सेनालक्षणस्य बलस्य, मह्ना=महत्त्वेन युक्तः स इन्द्रः (अस्ति) नाहम् इति।

जनासः=हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, जातः=उत्पन्न होते ही, प्रथमः=देवताओं में प्रधानभूत, मनस्वान्=मनस्वियों में अग्रगण्य, देवः=द्युतिशील होता हुआ, क्रतुना=वृत्रवधादि कर्मों से, देवान्=यज्ञ के देवताओं को, पर्यभूषत्=रक्षा के द्वारा अलंकार युक्त बनाता रहा

है, या जो अन्य देवताओं को अतिक्रमण करके विद्यमान था। तथा यस्य =जिसके, शुष्मात् =शारीरिक बल से, रोदसी=द्युलोक और पृथिवी-लोक, अभ्यसेताम् =काँपते थे, डरते थे। नृम्णस्य=सेना के, मह्ना=महत्त्व से, आधिक्य से युक्त है, वह इन्द्र है, अर्थात् मैं इन्द्र नहीं हूँ।

सायणः—गृत्समदो ब्रूते। जनासः जनाः हे असुरा यो जात एव जायमान एव सन् प्रथमः देवानां प्रधानभूतः मनस्वान् मनस्विनामग्रगण्यः देवः द्योतमानः सन् क्रतुना वृत्रवधादि-लक्षणेन स्वकीयेन कर्मणा देवान् सर्वान् यागदेवान् पर्यभूषत् रक्षकत्वेन पर्यग्रहीत्। भूष अलंकारे भूवादिः। लङि रूपम्। यद्वा। सर्वानन्यान्देवान्पर्यभूषत् पर्यभवत्। अत्यक्रामत्। अस्मिन् पक्षे भवतेर्व्यत्ययेन क्सः। श्र्युकः कितीतीट् प्रतिषेधः। यस्येन्द्रस्य शुष्मात् शरीरात् बलात् रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभ्यसेतामबिभीताम्। भ्यस भये। अनुदात्तेत्। भ्यस भय-वेपनयोरिति नैरुक्ताः (Nir. iii, 21) अभ्यसेतामवेपेतां वा। तथा च मन्त्रान्तरम्। इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही इति (RV. i, 80,11) नृम्णस्य सेनालक्षणस्य बलस्य मह्ना। महत्त्वेन युक्तः स इन्द्रो नाहमिति। अत्र निरुक्तम्। यो जात एव प्रथमो मनस्वी देवो देवान्क्रतुना कर्मणा पर्यभवत्पर्यगृह्णा-त्पर्यरक्षदत्यक्रामादिति वा। यस्य बलात् द्यावापृथिव्यावप्य-बिभीतां नृम्णस्य मह्ना बलस्य महत्त्वेन स जनास इन्द्र इत्यृषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्तेति (Nir. X, 70)

व्याकरणम्—पर्यभूषत् ='भूष' अलंकारे, भौवादि, लङि रूपम्। यद्वा—(अत्यक्रामत् इत्यर्थे) भवतेर्व्यत्ययेन क्सः 'श्र्युकः किति' इतीट् प्रतिषेधः। शुष्मात् ='शुष' धातोर्मनिनि 'शुष्म' इति रूपम्। मह्ना ='मह' धातोः इ प्रत्यये महि शब्दात् तृतीयैकवचने महिना, छान्दस इकारलोपः नृम्णस्य = नृ + 'म्ना' अभ्यासे)+क = नृम्णम्। नृणां मानमावृत्तिर्यत्र

तन्नृम्णं प्रधनमित्यर्थः ।

विशेषः—'विममे' का अर्थ निर्माण नहीं, किन्तु परिच्छेद करना, या अधिष्ठित करना है। 'यो' के बाद 'अस्वभायत्' के अकार को पूर्वरूप छान्दसत्वात् नहीं होता। अथर्ववेद में तो ऐसे स्थानों पर अकार को लुप्त कर दिया जाता है। 'त्रेधा' को छन्दः पूर्ति के लिए 'त्रेयधा' इस प्रकार पढ़ना चाहिए। 'उरुगाय' का अर्थ दूरगन्ता 'Far goer' व महान् कीर्ति वाला है।

संहिता-पाठः

२. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्
यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो
यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । अदृंहत् ।
यः । पर्वतान् । प्रऽकुपितान् । अरम्णात् ।
यः । अन्तरिक्षम् । विऽममे । वरीयः ।
यः । द्याम् । अस्तभ्नात् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

संस्कृतव्याख्याः—हे जनासः, यः=इन्द्रः, व्यथमानाम् = चलन्तीम्, पृथिवीम् =महीम्, अदृंहत् = शर्करादिभिर्दृढामकरोत्, यश्च, प्रकुपितान्=इतस्ततः चलितान् सपक्षान्, पर्वतान्, अरम्णात् =नियमितवान्, यश्च, वरीयः = उरुतमम्, अन्तरिक्षम्, विममे=विस्तीर्णं चकार। यश्च, द्याम्= दिवम्, अस्तभ्नात् = तस्तम्भ (निरुद्धामकरोत्) स (एव) इन्द्रः नाहमिति ।

सायण:— हे जनाः, यः इन्द्रः, व्यथमानां चलन्तीं पृथिवी-मदृंहत् शर्कराभिर्दृढामकरोत्। दृहं 'दृहि वृद्धौ'। यश्च प्रकु-पितान् इतस्ततश्चलितान् पक्षयुक्तान् पर्वतानरम्णात् नियमितवान् स्वे-स्वे स्थाने स्थापितवान्। अरम्णात् रमु क्रीडायाम्। अन्तर्भावितण्यर्थस्य व्यत्ययेन श्ना प्रत्ययः। यश्च वरीयः उरुतममन्तरिक्षं विममे निर्ममे विस्तीर्णं चकारेत्यर्थः। यश्च द्यां दिवमस्तभ्नात् तस्तम्भ निरुद्धामकरोत् 'स्तम्भु रोधने' इति सौत्रो धातुः। स एवेन्द्रो नाहमिति।

जनासः=हे मनुष्यो! यः=जो, व्यथमानाम्=हिलती हुई, पृथिवीम्=पृथिवी को, अदृंहत्=स्थिर कर चुका है अर्थात् जिसने पृथिवी और पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों को स्थैर्य और धैर्य प्रदान किया है, तथा जो प्रकुपितान्=यथेच्छ घूमने वाले, पर्वतान्=पंखयुक्त पहाड़ों को, अरम्णात्=नियमित कर देता है, अपने-अपने स्थानों पर स्थापित कर देता है, एवं यः=जो, वरीयः=विस्तृत, अन्तरिक्षम्=आकाश को, विममे=विस्तीर्ण रूप से निर्माण करता है, तथा य=जो, द्याम्=द्युलोक को, अस्तभ्नात्=थामे हुए है, अथवा धारण किये हुए है वह इन्द्र है (मैं नहीं हूँ)।

व्याकरणम्—अरम्णात्='रमु' क्रीडायाम्। अन्तर्भावितण्यर्थस्य व्यत्ययेन 'श्ना' प्रत्यय। लङि एकवचनम्। वरीयः=उरु शब्द से ईयसुन प्रत्यय। अस्तभ्नात्=स्तम्भु रोधने लोट् प्रथम पुरुष एकवचन, श्ना प्रत्यय।

विशेषः—पहाड़ों के पंख थे, वे जहाँ चाहते वहाँ उड़ कर बैठ जाते थे इस प्रकार भूलोक पर 'त्राहि त्राहि' मच रही थी, इन्द्र ने पंख काट दिये और वे मेघ रूप में परिवर्तित हो गए। अतएव मेघ पहाड़ों की ओर उड़ कर जाते हैं। 'मैत्रायणी संहिता (१–१०–१३) 'कुप्'

धातु का वेद में बहुत्र प्रयोग है। जिसका अर्थ गति है। तथा इसका लाक्षणिक अर्थ 'क्रोध' या इच्छा' होता है। 'अरम्णात् का अर्थ 'He fixed fast' है। किन्तु इसका आजकल 'to rejoice' के अर्थ में प्रयोग होता है। अर्थात् 'to be in a state of rest' यह प्रायोगिक अर्थ है।

संहिता-पाठः

३. यो ह॒त्वाहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॑न्
यो गा उ॒दाज॑दप॒धा व॒लस्य॑।
यो अश्म॑नोर॒न्तर॒ग्निं ज॒जान॑
सं॒वृक्स॒मत्सु॑ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑॥

पद-पाठः

यः। ह॒त्वा। अहि॑म्। अरि॑णात्। स॒प्त। सिन्धू॑न्।
यः। गाः। उ॒त्ऽआज॑त्। अ॒प॒ऽधा। व॒लस्य॑।
यः। अश्म॑नो। अ॒न्तः। अ॒ग्निम्। ज॒जान॑।
स॒म्ऽवृक्। स॒मत्ऽसु॑। सः। ज॒ना॒सः॒। इन्द्रः॑॥

संस्कृतव्याख्याः—यः, अहिम्=मेघम्। हत्वा=हननं कृत्वा, सप्त=सर्पणशीलाः, सिन्धून=स्यन्दनशीला अपः, अरिणात्=प्रैरयत्, यद्वा गङ्गायमुनाद्याः सप्तनदीः अरिणात्। यश्च, वलस्य=वलनामकस्यासुरस्य, अपधा=निरुद्धाः, गाः, उदाजत्=निरगमयत्। यश्च, अश्मनोः=मृदुमेघयोः, अन्तः=मध्ये, अग्निम्=वैद्युतम् वह्निम्, जजान=उत्पादयामास, यश्च समत्सु=संग्रामेषु, संवृक्=हिंसकः (विजेता) अस्ति, स इन्द्रः, नाहमिति।

सायणः—यः अहिं मेघं हत्वा मेघहननं कृत्वा सप्त सर्पणशीलाः सिन्धून् स्यन्दनशीला अपः अरिणात् प्रैरयत् । यद्वा । सप्त-गङ्गायमुनाद्या मुख्या नदीररिणात् । 'रीङ् स्त्रवणे' क्रयादिः । यश्च वलस्य वलनामकस्यासुरस्य अपधातत्कर्तृकान्निरुद्धा गा उदाजत् निरगमयत् । अपधा । अपपूर्वात् दृ धातेरातश्चोपसर्ग इति भावे अङ् प्रत्ययः । सुपां सुलुगिति पञ्चम्या आकारः । यश्च अश्मनोः । अश्नुते व्याप्नोति अन्तरिक्षमिश्मामेघः । अत्यन्तमृदुरूपयोर्मेघयोरन्तर्मध्येवैद्युतमग्निं जजानः उत्पादयामास यश्च समत्सु संभक्षयन्ति । योद्धृणामायूंषीति समदः संग्रामाः तेषु संवृक् भवति वृणक्तेर्हिंसार्थस्य क्विपिरूपम् । स इन्द्रो नाहमिति ।

जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जिस इन्द्र ने, अहिम्=वृत्रासुर को, हत्वा=विधारक वायु (जल रोकने वाली वायु), को रोक कर अरिणात्=मेघों को जल बरसाने वाला बनाया और (जल के रोकने वाले पर्वतों को दूर कर), जिस ने सिन्धून्=नदियों को, सप्त=बहने वाली सर्पणशील, गतिशील बनाया, तथा यः=जिसने, वलस्य= वल नामक दैत्य के द्वारा, अपधा=गुफा में वन्द की गई, गाः=गौओं को, उदाजत्=बाहर निकाला, अर्थात् बन्धन से मुक्त किया, तथा यः=जिस ने, अश्मनोः=दो मेघों के, अन्तः=मध्य में, अग्निम्=विजली नाम की अग्नि को, जजान=उत्पन्न किया । तथा जिसने समतसु=युद्धों में, सं-वृक् =शत्रुओं का अच्छी तरह विनाश किया । वही इन्द्र है (मैं नहीं हूँ) ।

व्याकरणम्—अरिणात्='रीङ्' स्रवणे, क्रयादिः, लङ् । अपधा=अपपूर्वाद्द धातेः 'आतश्चोपसर्गे' इति भावे 'अङ्' प्रत्ययः । 'सुपां सुलुगिति' पञ्चम्या आकारः । संवृक्=वृणक्तेर्हिंसार्थस्य क्विपि रूपम् ।

विशेष:—पीटर्सन ने सायण की 'सप्तसिन्धून्' की व्याख्या को

दोषयुक्त ठहराया है तथा मैक्समूलर ने जो व्याख्या "India—What can it teach us" में पृ० १२२ पर की है उसे प्रामाणिक कहा है।

"अश्मनोरन्तः" की 'between two clouds' है 'संवृक्' और 'अपधा' ये दोनों शब्द अन्यत्र वेद में प्रयुक्त नहीं हैं।

संहिता-पाठः

४. येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि,
यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददू,
अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

येन। इमा। विश्वा। च्यवना। कृतानि।
यः। दासम्। वर्णम्। अधरम्। गुहा। अकरित्यकः।
श्वघ्नोऽइव। यः। जिगीवान्। लक्षम्। आदत्।
अर्यः पुष्टानि। सः। जनासः। इन्द्रः॥

सायणः—येन इन्द्रेण इमा इमानि विश्वा विश्वानि च्यवना नश्वराणि भुवनानि कृतानि स्थिरीकृतानि। यश्च दासं वर्णं शूद्रादिकं यद्वा दासमुपक्षपयितारमधरं निकृष्टमसुरं गुहा गुहायां गूढ़ स्थाने नरके वा अकः अकार्षीत्। करोतेर्लुङि मन्त्रे घसेत्यादिना च्लेर्लुकि रूपम् लक्षं लक्ष्यं जिगीवान्। 'जि जये'। क्वसौ सन् लिटोर्जेरित्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम्। दीर्घश्छान्दसः। जितवान् योऽर्योऽरेः। षष्ठ्येकवचने छान्दसो यणादेशः। शत्रोः सम्बन्धीनि पुष्टानि समृद्धानि आदत् आदत्ते। तत्र दृष्टान्तः।

श्वघ्नीव श्वभिर्मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः। यथा व्याधो जिघृक्षन्तं मृगं परिगृह्णाति तद्वत्।

संस्कृतव्याख्या:—येन = इन्द्रेण, इमा=इमानि, विश्वा=सम्पूर्णानि, च्यवना=नश्वराणि भुवनानि, कृतानि=स्थिरीकृतानि, यश्च, दासं वर्णम्=शूद्रादिकम् (उपक्षपयितारम् वा), अधरम्=निकृष्टमसुरम्, गुहा=गुहायां गूढस्थाने नरके वा अकः=अकार्षीत्, लक्षम्=लक्ष्यम्, जिगीवान्=जितवान् यः, अर्यः=अरेः, पुष्टानि=समृद्धानि, श्वघ्नीव=व्याध इव, आदत्=आदत्ते, (तत्र दृष्टान्तः)।

व्याकरणम्—अकः=करोतेर्लुङि 'मन्त्रे घस' इत्यादिना च्लेर्लुकि रूपम्। जिगीवान्='जि' जये क्वसौ, 'सन्लिटोर्जे' इति अभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् दीर्घश्छान्दसः। अर्यः=अरेः षष्ठ्येकवचनं छान्दसो यणादेशः।

जनासः=हे मनुष्यो! येन=जिस इन्द्र ने, च्यवना=विनाशशील, विश्वा=संसार को, कृतानि=स्थिर किया, तथा यः=जिसने, दासं वर्णम्=शूद्रादि वर्णों को, या दासम्=रसों को नाश करने वाले, अधरम्=निकृष्ट, वर्णम्=कीर्तिशाली असुर को, गुहा=नरक में, गूढ़ स्थान में, अकः=स्थापित किया, तथा यः=जो इन्द्र, अर्यः=शत्रु के, पुष्टानि=धनों को, जिगीवान्=जीत चुका है। और जीतने के बाद जैसे श्वघ्नी=व्याध, लक्षम्=बाण के लक्ष्यभूत मृग आदि को आदत्=ग्रहण करता है, वैसे ही जो शत्रुधनों को ग्रहण कर चुका है वह इन्द्र है। (मैं नहीं हूँ)।

विशेषः—'कृतानि' का अर्थ सायण ने 'स्थिरीकृतानि' किया है। ग्रासमान ने 'Who is the maker of all that moves' किया है जो कुछ ठीक जँचता है। वस्तुतः 'विश्वा' का अर्थ संसार है तथा 'च्यवना' शब्द 'स्थावर और जंगम' दोनों का उपलक्षक है। अतः

जिसने जड जंगम जगत् को बनाया यह अर्थ संगत प्रतीत होता है। 'दासं वर्णम्' का hostile colour dark skin अर्थ है। जो एक घृणा सूचक प्रयोग है। पीटर्सन कहता है यह प्रयोग उसी प्रकार घृणा प्रदर्शित करता है जैसे आज भी भारतीय 'गोरे अंग्रेजों को' कोढ़ी कहते हैं। दास और दस्यु दोनों शब्द ऋग्वेद में आर्य जाति के शत्रुओं के लिए प्रयुक्त होते आये हैं। 'श्वघ्नी' की उपमा ऋग्वेद में ४-२०-३, १-९२-१०, ८-४५-३४, १०-४३-५ में भी प्रयुक्त है। तथा अर्थों में लाक्षणिक अर्थ का भी ग्रहण है।

संहिता-पाठः

५. यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम्
उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति
श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यम्। स्म। पृच्छन्ति। कुह। सः। इति। घोरम्।
उत। ईम्। आहुः। न। एषः। अस्ति।
इति एनम्।
सः। अर्यः। पुष्टीः। विजःऽइव। आ। मिनाति।
श्रत्। अस्मै। धत्त। सः। जनासः। इन्द्रः॥

संस्कृतव्याख्याः—हे जनाः, घोरम्=शत्रूणां घातकम्, यम्=इन्द्रम् (जनाः) पृच्छन्ति स्म, कुह=कुत्र, स इति। एनम्=इन्द्रम्, आहुः। एषः—इन्द्रः, न अस्ति इति 'ईम्' इति पादपूरणे, सः=इन्द्रः, विज इव=उद्वेजक एव (इवशब्द एवार्थे) सन्, अर्यः=अरेः, पुष्टीः=पोषकानि गवाश्वादीनि

धनानि, आमिनाति=सर्वतो हिनस्ति, (तस्मात्) श्रदस्मै= इन्द्राय, धत्त=अस्तीति विश्वासं कुरुत । सः=पूर्वोक्तमहिमोपेतः, इन्द्रः अस्ति नाहमिति ।

व्याकरणम्—अर्यः=अरिशब्दस्य षष्ठयेकवचने 'बहुलं छन्दसि' इति पूर्वरूपनिषेधाभावः ।

जनासः=हे मनुष्यो ! जिस इन्द्र के न देखने पर लोग पृच्छन्ति स्म=पूछते फिरते हैं, कि कुह सः=वह कहाँ है ? उत=और इसको, घोरम्=इन्द्र को भयानक, आहुः=कहते हैं, एनम्=इस इन्द्र को कुछ, एष=यह इन्द्र, न अस्ति=है ही नहीं, यह भी कहते हैं, स=वही इन्द्र, विज इव=(घबरा देने वाला) उद्वेजक शत्रु की तरह, अर्यः= शत्रु के, पुष्टीः=धनों को, सम्पत्तियों को (गौ, अश्व इत्यादि धनों को) आमिनाति=सब तरफ से विध्वस्त कर देता है, अस्मै=उस इन्द्र के लिए, श्रत्=श्रद्धा को, धत्त=धारण करो । यद्यपि वह इन्द्र हमें दिखाई नहीं पड़ता फिर भी "वह है" ऐसा विश्वास करो । इस प्रकार के विश्वास और श्रद्धा का केन्द्र इन्द्र ही है (मैं गृत्समद नहीं हूँ) ।

सायणः—अपश्यन्तो जना घोरं शत्रूणां घातकं यं पृच्छन्ति स्म कुह सेति स इन्द्रः कुत्र वर्तत इति । सेति । सोचि लोपे चेत्पादपूरणमिति सोर्लोपे गुणः । न क्वचिदसौ तिष्ठतीति मन्यमाना जना एनामिन्द्रमाहुः एषः इन्द्रोनास्तीति । तथा च मन्त्रे । नेन्द्रोऽस्तीति नेम उ त्व आहेति ईमितिपूरणः । स इन्द्रो विज इव । इव शब्द एवार्थे । उद्वेजक एव सन् अर्यः अरेः सम्बन्धीनि पुष्टीः पोषकाणि गवाश्वादीनि धनानि आमिनाति सर्वतो हिनस्ति । मीङ् हिंसायाम् । मीनातेर्निगम इति ह्रस्वः । तस्मात् श्रदस्मा इन्द्राय धत्तस इन्द्रोऽस्तीति विश्वासमत्र कुरुत यद्यप्यसौ विशेषतोऽस्माभिर्न दृश्यते थात-

प्यस्तीति विश्वासं कुरुत। एवं निर्धारणं महिमोपेतः स इन्द्रो नाहमिति।

विशेषः—'घोरम्' को कुछ व्याख्याकार क्रियाविशेषण भी मानते हैं। 'विज इव' को छन्द की दृष्टि से 'विजेवा' के रूप में पढ़ना चाहिए, जिससे छन्दः की अक्षर संख्या पूर्ण हो सके। 'श्रत्' शब्द लैटिन Credo से मिलता-जुलता है। तथा च 'Place your trust on him' यह वाक्यार्थ है।

संहिता-पाठः

६. यो र॒ध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒
यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मानस्य की॒रेः।
यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः
सु॒तसो॑मस्य॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑॥

पद-पाठः

यः। र॒ध्रस्य॑। चो॒दि॒ता। यः। कृ॒शस्य॑।
यः। ब्र॒ह्मणः॑। नाध॑मानस्य॑। की॒रेः।
यु॒क्तऽग्रा॑व्णः यः अ॒वि॒ता। सु॒ऽशि॒प्रः।
सु॒तऽसो॑मस्य। सः। ज॒ना॒सः॒। इन्द्रः॑॥

संस्कृतव्याख्या:—यः = इन्द्रः रध्रस्य = समृद्धस्य, चोदिता = प्रेरयिता (भवति), यश्च, कृशस्य = दरिद्रस्य च यश्च, नाधमानस्य = याचमानस्य, कीरेः = स्तोतुः। ब्रह्मणः = ब्राह्मणस्य च (धनानां प्रेरयिता), यश्च, सुशिप्रः = शोभनहनुः (सन्) युक्तग्राव्णः = अभिषवार्थमुद्यतग्राव्णः, सुतसोमस्य =

अभिषुतसोमस्य यजमानस्य, अविता=रक्षिता (भवति), स एव इन्द्रः नाहमिति ।

सायणः—यो रध्रस्य । रध हिंसासंराद्धयोः समृद्धस्य चोदिता धनानां प्रेरयिता भवति । यश्च कृशस्य दरिद्रस्य च यश्च नाधमानस्य । नाधृ णाधृ याञ्चोपतापैश्वर्याशीःषु । याच-मानस्य कीरेः । करोतेः कीर्तयतेर्वा । स्तोतुर्ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य च धनानां प्रेरयिता । यश्च सुशिप्रः शोभनहनुः सुशीर्षको वा सन् युक्त ग्राव्णः अभिषवार्थमुद्यतग्राव्णः सुतसोमस्य अभिषुतसोमस्य यजमानस्य अविता रक्षिता भवति. स एवेन्द्रो नाहमिति । ब्रह्मशब्दस्य त्वन्नपरत्वे ह्याद्युदात्तता स्यात् । यथा ब्रह्मवन्वानो आलं सुवीरमिति (RV. iii, 8,2) । अयं त्वन्तोदात्तः पठ्यत इति नान्नपरः ।

हिन्दीव्याख्याः—जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, रध्रस्य= समृद्धिशाली व्यक्ति का चोदिता=उसके लिये धन की प्रेरणा करने वाला या धन प्रदान करने वाला, है और यः=जो, कृशस्य=दरिद्र, नाधमानस्य=याचक की, और कीरेः=स्तुति करने वाले ब्रह्मणः=ब्राह्मण की भी, चोदिता=धन की इच्छा की पूर्ति करने वाला है । और सुशिप्रः=अच्छी ठोढ़ी वाला या सुन्दर मुंह वाला, यः=जो युक्त-ग्राव्णः=पीसने के लिए पत्थर उठाने वाले या चक्की चलाने वाले, सुत-सोमस्य=सोम को कूट कर उसका रस निकालने वाले यजमान का, अविता=रक्षक है । वही इन्द्र है (मैं नहीं हूँ) ।

विशेषः—मैक्डानल ने 'शुशिप्रः' शब्द का सुन्दर ओष्ठ वाला यह अर्थ किया है ।

व्याकरणम्—रध्र='रध हिंसासंराद्धयोः' से रक् प्रत्यय हुआ । कीर्त धातु से इन् प्रत्यय करने पर 'कीरि' शब्द बना, तकार का लोप छान्दस है ।

विशेषः—रध्र शब्द ४–४४–१०, १०–३८–५ में भी प्रयुक्त है। सायण ने इसका अर्थ समृद्ध तथा राथ ने सुस्त (lazy) अर्थ किया है, सैण्ट पीटर्स वर्ग की डिक्शनरी में 'अरध्र' शब्द को जिन्दावेस्तावे अरेड्र (Aredra) के समानार्थक माना है तथा रध्र स्व चोदिता का अर्थ 'he who impels the miser to be liberal' किया है। 'कीरि' शब्द small, wretched poor भी अर्थ है। 'कीरिचोदन' शब्द इस अर्थ में प्रमाण है।

संहिता-पाठः

७. यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो
यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान
यो अपां नेता स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यस्य। अश्वासः। प्रऽदिशि। यस्य। गावः।
यस्य। ग्रामाः। यस्य। विश्वे। रथासः।
यः। सूर्यम्। यः। उषसम्। जजान।
यः अपाम्। नेता। सः। जनासः। इन्द्रः॥

संस्कृतव्याख्याः—यस्य = इन्द्रस्य, प्रदिषि = प्रदेशने-ऽनुशासने, अश्वासः=अश्वाः (वर्तन्ते), यस्य (अनुशासने) गावः, यस्य (अनुशासने) ग्रामाः=जनपदाः, यस्य (आज्ञायाम्) विश्वे=सर्वे, रथासः=रथाः 'वर्तन्ते', यश्च (वृत्रं हत्वा) सूर्यम् जजान=रविं जनयामास, यश्च उषसम् (जजान) यश्च (मेघ-भेदन द्वारा) अपाम्=जलानाम् नेता=प्रेरकः, स इन्द्रः, नाहम्।

सायणः—यस्य सर्वान्तर्यामितया वर्तमानस्य प्रदिशि प्रदेशने अनुशासने अश्वासः अश्वा वर्तन्ते। यस्यानुशासने गावः यस्यानुशासने ग्रामाः। ग्रसन्तेत्रेति ग्रामा जनपदाः। यस्याज्ञायां विश्वे सर्वे रथासः रथा वर्तन्ते यश्च वृत्रं हत्वा सूर्यं जजान जनयामासः यश्चोषसम्। तथा मन्त्रः। जजान सूर्यमुषसं सुंदसा इति। यश्चमेघभेदनद्वारापां नेता प्रेरकः स इन्द्रः इत्यादि प्रसिद्धम्।

व्याकरणम्—प्र पूर्वक दिश् धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ। 'जजान' जन् लिट् अन्तर्भावितव्यर्थ है।

विशेषः—इन्द्र अर्थात् ईश्वर चर-अचर सब का स्वामी है।

हिन्दीव्याख्या :—जनासः = हे मनुष्यो ! यस्य=जिस इन्द्र के, प्रदिशि=शासन में, अश्वासः=घोड़े रहते हैं। यस्य=जिस के शासन में, गावः=गौएँ रहती हैं, यस्य=जिस के शासन में, ग्रामाः=गाँव रहते हैं, यस्य=जिस के शासन में, रथासः=रथ रहते हैं, तथा यः=जिस ने (वृत्रासुर को मार कर), सूर्यं जजान=सूर्य को रचा, तथा उषसम्=उषा को उत्पन्न किया, तथा जो अपाम् = जलों का (मेघों के विच्छेदन द्वारा), नेता=बहाने वाला है, वह इन्द्र है (मैं नहीं)।

संहिता-पाठः

८. यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते
परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा
नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति । सम्ऽयती । विह्वयेते । इति विऽह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः । समानम् । चित् । रथम् । आतस्थिऽवांसा । नाना । हवेते इति । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

संस्कृतव्याख्या :—यम्=इन्द्रम्, क्रन्दसी=रोदसी, शब्दं कुर्वाणे मानुषी दैवी च सेने वा। संयती=परस्परं संगच्छन्त्यौ, विह्वयेते=स्वरक्षार्थं विविधमाह्वयतः, परे=उत्कृष्टाः, अवरे=अधमाश्च, उभयाः=उभयविधाः, अमित्राः=शत्रवः (यमाह्वयन्ति), समानम्=इन्द्ररथसदृशम्, रथम् आतस्थिवांसा=आस्थितौ रथिनौ, (तमेवेन्द्रम्), नाना=पृथक् पृथक्, हवेते=आह्वयेते। स इन्द्रः, नाहमिति।

सायणः—यं क्रन्दसी रोदसि शब्दं कुर्वाणे मानुषी दैवी च द्वे सेने वा संयती परस्परं संगच्छन्त्यौ यमिन्द्रं विह्वयेते स्वरक्षार्थं विविधमाह्वयतः परे उत्कृष्टाः अवरे अधमाश्च उभया उभयविधा उभयमाह्वयन्ति। समानं इन्द्ररथसदृशं रथं आतस्थिवांसा आस्थितौ द्वौ रथिनौ तमेवेन्द्रं नाना पृथक् २ ह्वेते आह्वयेते। यद्वा। समानमेकरथमारूढाविन्द्राग्नी ह्वेते यज्ञार्थं यजमानैः पृथगाह्वयेते। तयोरन्यतरः स इन्द्रो नाहमिति।

व्याकरणम्—विह्वयेते=ह्वे ञ् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष द्विवचन। प्रतिमानम्=प्रति मिमीते इति प्रतिमानम् कर्ता में ल्युट् प्रत्यय। अच्युतच्युत्=अन्तर्भावितण्यर्थ च्यु धातु से क्विप् तुगागम।

हिन्दीव्याख्याः—जनासः=हे मनुष्यो! यम्=जिस इन्द्र को, क्रन्दसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक, संयती=मिल करके, विह्वयेते=अपनी

रक्षा के लिए अनेक प्रकार से आह्वान करते हैं, तथा परे=उत्कृष्ट, अवरे=निकृष्ट, अधम, उभयाः=मध्य, उत्कृष्ट और निकृष्ट मिले हैं, अमित्राः=शत्रुगण जिस को अपनी रक्षा के लिए याद करते हैं विवश होकर जिस की शरण में आते हैं। तथा समानम्=इन्द्र के सदृश, रथम्=रथ के ऊपर, आतस्थिवांसौ=बैठे हुये दोनों (रथ का स्वामी और रथ का चलाने वाला), नाना=अनेक प्रकार से, हवेते=याद करते हैं, आह्वान करते हैं, वही इन्द्र है (मैं नहीं)।

विशेषः—मैक्डानल के मत में "परे, अवरे" शब्द का अर्थ पास के और दूर के है, तथा 'उभया' दोनों प्रकार के जो (दोनों प्रकार के शत्रु एक से रथ पर चढ़े हुए हैं) यह अर्थ है, अर्थात् सायण के मतानुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट आदि का अर्थ है। मुग्धानल के अनुसार नहीं। 'इति' शब्द का प्रयोग द्विवचन को बतलाने के लिए पद पाठ में किया जाता है। यदि वह शब्द समस्त है तो उसे दो बार लिखते हैं जिस से उस की असमस्तता व्यक्त की जाय। 'क्रन्दसी' शब्द की व्याख्या में सायण, देव और मनुष्यों का युद्ध मानता है किन्तु यहाँ दो मानव सेनाओं को ही लक्षित किया गया है। 'समानं रथम्' में बैठै दो व्यक्ति ड्राइवर और योद्धा हैं।

संहिता-पाठः

९. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव
यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यस्मात् न । ऋते । विऽजयन्ते । जनासः ।
यम् । युध्यमानाः । अवसे । हवन्ते ।
यः । विश्वस्य । प्रतिऽमानम् । बभूव ।
यः । अच्युतऽच्युत् । सः जनासः । इन्द्रः ॥

संस्कृतव्याख्याः—यस्मात्, ऋते, जनासः=जनाः, न विजयन्ते=विजयं न प्राप्नुवन्ति । (अतः) युध्यमानाः=युद्धं कुर्वाणा जनाः, अवसे=स्वरक्षणाय, यम्=इन्द्रम्, हवन्ते=आह्वयन्ति, यश्च, विश्वस्य=सर्वस्य जगतः, प्रतिमानम्=प्रतिनिधिः, बभूव, यश्च, अच्युतच्युत्=अच्युतानां पर्वतानां च्यावयिता । स इन्द्र इत्यादि प्रसिद्धम् ।

सायणः—यस्मादृते जनासो जनाः न विजयन्ते विजयं न प्राप्नुवन्ति । अतः युध्यमाना युद्धं कुर्वाणा जनाः अवसे स्वरक्षणाय यमिन्द्रं हवन्ते आह्वयन्ति । यश्च विश्वस्य सर्वस्य जगतः प्रतिमानं प्रतिनिधिर्बभूव । यश्चाच्युतच्युत् अच्युत रहितानां क्षयरहितानां पर्वतादीनां च्यावयिता स इन्द्र इत्यादि प्रसिद्धम् ।

व्याकरणम्—'प्रतिमानम्' ल्युट् प्रत्यय है । अच्युत् च्युत्, च्यु धातु क्विप् प्रत्यय है ।

विशेषः—'न ऋते' को छन्दो दृष्टि से 'नारते' इस प्रकार उच्चारण करना चाहिए ।

हिन्दीव्याख्याः—जनासः=हे मनुष्यो ! यस्मात्=जिस इन्द्र के, ऋते=विना, जनासः=मनुष्य, न विजयन्ते=विजय को नहीं प्राप्त करते हैं, यं=जिस इन्द्र को, युध्यमानाः=लड़ते हुए सैनिक, अवसे=

रक्षा के लिए, ह्वयन्ते=आह्वान करते हैं। यः=जो, विश्वस्य=सम्पूर्ण जगत् का, प्रतिमानम्=प्रतिनिधि, रक्षक, बभूव=है और था, यः= जो, अच्युतच्युत्=क्षय रहित, (विनाश-रहित) पर्वतादि के प्रभावों का भी विनाश करने वाला है वह इन्द्र है (मैं नहीं)।

"प्रतिमानम्" पद का अर्थ मैक्डानल के मतानुसार (match) सदृश है अर्थात् शक्तिशाली पदार्थों के समान, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

१०. यः शश्वतो मह्येनो दधानान्
अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां
यो दस्योर्हन्ता सः जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् ।
अमन्यमानान् । शर्वा । जघान ।
यः । शर्धते । न अनुऽददाति । शृध्याम् ।
यः । दस्योः हन्ता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥

संस्कृतव्याख्याः—यः, महि=महत्, एनः=पापम्, दधानान्= धारयतः शश्वतः=बहून्, अमन्यमानान्=आत्मानमजानतः इन्द्रमपूजयतो वा । शर्वा=वज्रेण, जघान, यश्च, शर्धते= उत्साहं कुर्वते जनाय, शृध्याम्=उत्साहनीयं कर्म, नानुददाति= न प्रयच्छति, यश्च, दस्योः=उपक्षपयितुः शत्रोः, हन्ता= घातकः, स इन्द्रः इति पूर्ववत् ।

व्याकरणम्—शृध्याम्=शर्ध धातोर्यत् प्रत्यये । शर्वा=शरु शब्द तृतीया एकवचन, घि संज्ञा होने पर भी ना भाव नहीं हुआ—यण् किया गया ।

सायणः—यो महि महदेनः पापं दधानान् शश्वतो बहून-मन्यमानाम् आत्मानमजानत इन्द्रमपूजयतो वा जनान शर्वा। शृणाति शत्रूननेनेति शरुर्वज्रः तेनायुधेन जघान । हन्तेर्लिटि रूपम् । यश्च शर्धते उत्साहं कुर्वते अनात्मज्ञाय जनाय शृध्या-मुत्साहनीयं कर्म नानुददाति न प्रयच्छति । अनुपूर्वात् डुदाञ्-दानेजौहोत्यादिकः । अभ्यस्तानामादिरिति (Pan. vi, 189) तिङि चोदात्तावतीति गतेर्निघातः यश्च दस्योरुपक्षपयितु शत्रोर्हन्ता घातकः स इन्द्र इत्यादि पूर्ववत् ।

विशेषः—यहाँ भी 'महि-एनो' इस प्रकार तथा 'शरु-आ' इस प्रकार उच्चारण करके छन्दः के अक्षर की संख्या पूर्ण करनी चाहिए ।

हिन्दीव्याख्याः—जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, महि= अत्यधिक, एनः=पापों को, दधानान्=धारण करने वाले, या अमन्य-मानान्=पूजा न करने वाले या इन्द्र की सत्ता को स्वीकार न करने वाले, या उपासना न करने वाले, शश्वतः=अनेकों (मनुष्यों को), शर्वा= वज्र से, जघान=मारता है, तथा यः=जो इन्द्र,शर्धते= उत्साहशील, (अपनी इन्द्र की उपासना न करने वाले अनात्मज्ञ) के लिए, शृध्याम्=उत्साहयुक्त कर्म का फल, न अनुददाति=नहीं प्रदान करता है । तथा यः=जो इन्द्र, दस्योः= नाश करने वाले वृत्रादि शत्रुओं का, हन्ता=घातक है वह इन्द्र है (मैं नहीं) ।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'शर्वा' शब्द का अर्थ बाण है वज्र नहीं । "अमन्यमानान्" का अर्थ पापफल की प्राप्ति की आशा न

रखने वाले हैं, इन्द्र की उपासना न करने वाले यह अर्थ नहीं। "शर्धते" का अर्थ क्षमा करना है। "शृध्याम्" का अर्थ उद्दण्डता या धृष्टता है।

संहिता-पाठः

११. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः शम्बरम्। पर्वतेषु। क्षियन्तम्।
चत्वारिंश्याम्। शरदि। अनुऽअविन्दत्।
ओजायमानम्। यः अहिम्। जघान।
दानुम् शयानम्। सः। जनासः। इन्द्रः॥

सायणः—यः पर्वतेषु क्षियन्तं इन्द्रभियां बहून संवत्सरान् प्रयच्छन्नो भूत्वा पर्वतगुहासु निवसन्तं शम्बरमेतन्नामकं मायाविनमसुरं चत्वारिंश्यां शरदि चत्वारिंशे सम्वत्सरे अन्वविन्दत् अन्विष्यालभत्। लब्ध्वा च य ओजायमानं। कर्तुः क्यङ्सलोपश्च। ओजसोऽप्सरसोनित्यमिति सकार लोपः बलमाचरन्तमहिमा हन्तारं दानुं दानवं शम्बरमसुरं जघान हतवान् स इन्द्रो नाहमिति।

संस्कृतव्याख्याः—यः, पर्वतेषु, क्षियन्तम्=इन्द्रभयात्-निवसन्तम्, शम्बरम्=एतन्नामकम् असुरम्। चत्वारिंश्यां

शरदि=चत्वारिंशे संवत्सरे, अन्वविन्दत्=अन्विष्यालभत, (लब्ध्वा च) यः ओजायमानम्=बलमाचरन्तम्, अहिम्=आहन्तारम्, दानुम्=दानवम्, शयानम्=निद्रायमाणम् (असुरम्), जघान=हतवान्, स इन्द्रः नाहमिति ।

व्याकरणम्—ओजायमानम्=ओजस्+क्यङ्, "ओजसोऽप्सरसो नित्यम्" इति सकारलोपः, शानच् । ओजीयः=ओजःशब्दात् मत्वर्थीयो विनिः, तत इष्ठन्, 'विन्मतोर्लुक्' 'टेः' इति टि लोपः ।

जनासः—हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, पर्वतेषु=पहाड़ की गुफाओं में, (अनेक संवत्सरों तक भय से) क्षियन्तम्=रहने वाले,(शम्बरम्=शम्बर नामक मायावी दैत्य को, चत्वारिंश्याम्=चालीसवीं, शरदि=शरद्-ऋतु में (अर्थात् चालीसवें वर्ष में), अनु-अविन्दत्=ढूंढ कर प्राप्त किया । तथा (प्राप्त करने के बाद) यः=जिस इन्द्र ने, ओजायमानम्=पराक्रम पूर्वक लड़ते हुए, अहिम्=प्रहार (हनन) करने वाले, दानुम्=दैत्य को, शयानम्=वर्षा के या पर्वतों के झरने के जल को रोक कर लेटे हुए होने पर उस असुर को, जघान=मार डाला । वह इन्द्र है (मैं नहीं) ।

विशेष:—मैक्डानल के अनुसार "अहिम्" का अर्थ सर्प है, सायण के अनुसार मारने वाला यह अर्थ है । इस वाक्य में 'दिवोदास' की कथा है । जिसमें उसे दैत्यों के पञ्जे से मुक्त किया है । वह दैत्य 'शम्बर' या वृत्र है । वृत्र और शम्बर पर्यायवाची है ।

संहिता-पाठः

१२. यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्
अवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।

यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्
द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥

पद-पाठः

यः । सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् ।
अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् ।
यः रौहिणम् । अस्फुरत् । वज्रऽबाहु ।
द्याम् । आऽरोहन्तम् । सः । जनासः । इन्द्रः ॥१२॥

संस्कृतव्याख्याः—यः, सप्तरश्मिः=सप्तपर्जन्या रश्मयो यस्यासौ, वृषभः=वर्षकः, तुविष्मान्=वृद्धिमान्,सप्त= सर्पणस्वभावान्, सिन्धून्=अपः, सर्तवे=सरणाय, अवासृजत्= अवसृष्टवान्, यद्वा गङ्गाद्याः सप्तमुख्या नदीरसृजत् । यश्च वज्रबाहुः सन्, द्याम्=दिवम्, आरोहन्तम्=उद्गच्छन्तम्, रौहिणम्=असुरम्, अस्फुरत्=जघान । शेषं पूर्ववत् ।

व्याकरणम्—तुविष्मान्=‘तु’ गतौ ‘असुच्’ प्रत्ययः, ततो मतुप्, इडागमश्च । जनासः=हे मनुष्यो ! यः=जो इन्द्र, सप्तरश्मिः= (बहु.) सात प्रकार के बादलों को ही किरणों के रूप में रखता है । अर्थात्=सात प्रकार के पर्जन्यों का नियन्ता है (उन सात प्रकार के बादलों के नाम निम्नलिखित हैं—(१). वराहवः (२) स्वतपसः (३) विद्युत्महसः (४) धूपयः (५) श्वापयः (६) गृहमेधाः (७) अशिमि विद्विषः) ये सात प्रकार के मेघ ‘पृथिवीमभिवर्षन्ति वृष्टिभिः’ (तैत्तरीय अरण्यक १।६।४-५), तथा जो इन्द्रवृषभः=जल बरसाने वाला, तुविष्मान्=वृद्धिवाला या बलवाला होता हुआ सप्त=बहने के स्वभाव वाले, सिन्धून्=जलों को, सर्तवे=बहने के लिए, अवासृजत्=प्रवृत्त

करता है (या सात मुख्य गंगा आदि नदियों को जल से पूर्ण कर देता है, और यः जो इन्द्र, वज्रबाहुः=वज्र को हाथ में पकड़ कर, द्याम्=द्युलोक में, आरोहन्तम्=चढ़ते हुए, रौहिणम्=रोहिण नाम के असुर को, अस्फुरत्=मारता है। वह इन्द्र है (मैं नहीं हूँ)।

सायणः—यः सप्तरश्मिः सप्तसंख्याका पर्जन्या रश्मयो यस्य। ते च रश्मयो वराहव स्वतपसो विद्युन्महसोधूपयः श्वापयो गृहमेधाश्चेतीति ये चेमेशिमिविद्विषः पर्जन्या सप्त पृथिविमभिवर्षन्ति वृष्टिभिरिति तैत्तिरियारण्यके ह्याम्नाताः। वृषभो वर्षकस्तुविष्मान् वृद्धिमान्बलवान्वा सप्त सपर्ण-स्वभावान् सिन्धूनपः सर्तव सरणाय अवासृजत् अवसृष्टवान्। यद्वा गङ्गाद्याः सप्त मुख्या नदीरसृजत्। यश्च वज्रबाहुः। सन् द्यां दिवमारोहन्तं रौहिणमसुरं अस्फुरत् जघान। स्फुर स्फुरणे तुदादि।

विशेषः—'सर्तवे' सर्तुम् के अर्थ में वैदिक प्रयोग है। 'रौहिण' भी वृत्र की ही संज्ञा है।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'सप्तरश्मिः' का अर्थ सात लगाम वाला 'वृषभः' का बैल, 'सप्त' का सात संख्या 'सिन्धून्' का केवल नदी है। अन्य शब्दों का अर्थ सायण के समान है।

संहिता-पाठः

१३. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते
शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्
यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

द्यावा॑ । चि॒त् । अ॒स्मै॒ । पृ॒थि॒वी इति॑ । न॒मे॒ते इति॑ ।
शुष्मा॑त् । चि॒त् । अ॒स्य॒ । पर्व॑ताः भ॒य॒न्ते॒ ।
यः । सो॒म॒ऽपाः । नि॒ऽचि॒तः । वज्र॑ऽबाहुः ।
यः । वज्र॑ऽहस्तः । सः । ज॒ना॒सः॒ । इन्द्रः॑ ॥

संस्कृतव्याख्या :—अस्मै=इन्द्राय, द्यावापृथिवी= रोदसी, नमेते=स्वयमेव, प्रह्वीभवतः, चित्=अपि च, अस्य =इन्द्रस्य, शुष्मात्=बलात्, पर्वताः=गिरयः, भयन्ते=बिभ्यति । यः, सोमपा=सोमस्य पाता, निचितः=दृढाङ्गः, वज्रबाहुः= वज्रसदृशबाहुः, यश्च वज्रहस्तः=वज्रयुक्तः । स इन्द्र इत्यादि पूर्ववत् ।

हिन्दीव्याख्या :—जनासः=हे मनुष्योः ! वही इन्द्र है, अस्मै= जिस इन्द्र के लिए, द्यावा=द्युलोक, चित्=और पृथिवी=पृथिवीलोक, नमेते=स्वयं प्रणाम करने के लिए झुक जाते हैं । तथा अस्य=इस इन्द्र के शुष्मात्=बल से, पर्वतः=पहाड़, चित्=भी, भयन्ते=डरते हैं । तथा यः=जो इन्द्र, सोमपाः=सोम का पान करने वाला, निचितः=अन्य देवताओं से घिरा हुआ या अन्य देवताओं से अधिक दृढ़ शरीर वाला है, और वज्रबाहुः=वज्र के समान दृढ़ बाहुवाला, वज्रहस्तः=अपने हाथ में वज्र को धारण किये हुए है, वही इन्द्र है, (मैं नहीं)।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'निचित' पद का अर्थ=जाना गया है। 'सोमपानिचितः' एक ही शब्द है तथा इस का, जिस इन्द्र को सोम पान करने वाला है इस रूप में सब जानते हैं, यह अर्थ है, तथा 'वज्रबाहुः' और 'वज्रहस्तः' इन दोनों शब्दों का भी अर्थ एकसा ही है।

व्याकरणम्—'भयन्ते' 'बिभ्यति' की जगह वैदिक प्रयोग है। 'सोमपाः' पा धातु क्विप् प्रत्यय है।

सायण:—अस्मै इन्द्राय द्यावा पृथिवी। इतरेतरापेक्षया द्विवचनं प्र मित्रयोर्वरुणयोरितिवत्। नमेते स्वयमेवप्रह्वीभवतः। णमु प्रह्वत्वे कर्मकर्तरि न दुहस्नुनमां यक् चिणाविति यकः प्रतिषेधः। चिदपि च अस्येन्द्रस्य शुष्माद्बलात् पर्वता भयन्ते बिभ्यन्ति। यः सोमपाः सोमस्य पाता निचितः सर्वैः। यद्वा। अन्येभ्योऽपि दृढ़ाङ्गः। वज्रबाहुः वज्रसदृशबाहुः। यश्च-वज्रहस्तः वज्रयुक्तः स इन्द्र इत्यादि प्रसिद्धम्।

विशेष:—यहां इन्द्र का मानवीकरण किया गया है।

संहिता-पाठः

१४. यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥

पद-पाठः

यः। सुन्वन्तम्। अवति। यः। पचन्तम्।
यः शंसन्तम्। यः। शशमानम्। ऊती।
यस्य। ब्रह्म। वर्धनम्। यस्य। सोमः।
यस्य। इदम्। राधः। सः जनासः। इन्द्रः॥

संस्कृतव्याख्याः—यः, सुन्वन्तम्=सोमाभिषवं कुर्वन्तम् (यजमानम्) अवति=रक्षति। यश्च, (पुरोडाशादि)

पचन्तम्, यश्च, ऊती=ऊतये स्वरक्षायै (शस्त्राणि) शंसन्तम्, यश्च शशमानम्=स्तोत्रं कुर्वाणम्, अवतीति सर्वत्रान्वयः। ब्रह्म=परिवृढं स्तोत्रम्, यस्य वर्धनम् =यस्य वृद्धिकरं भवति। (तथा) यस्य, सोमः, यस्य च (अस्मदीयं राधः=पुरोडाशादि-लक्षणमन्नम् वृद्धिकरं भवतीति सर्वत्रान्वयः स इन्द्रः, इति पूर्ववत्।

सायण:—यः सुन्वन्तं सोमाभिषवं कुर्वन्तं यजमानमवति रक्षति। यश्च पुरोडशादीनि हवींषि पचन्तं यश्च ऊती ऊतये। सुपां सुलुगिति (Pan. VII, 1, 39) चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः। स्वरक्षायै शस्त्राणि शंसन्तं यश्च शशमान भवति। स्तोत्रं कुर्वाणं रक्षति। ब्रह्म परिवृढं स्तोत्रं यस्य वर्धनं वृद्धिकरं भवति। तथा यस्य सोमो वृद्धिहेतुर्भवति। यस्य चेदमस्म-दीयंराधः पुरोडाशादिलक्षणमन्नं वृद्धिकरं भवति स इन्द्र इत्यादि प्रसिद्धम।

व्याकरणम्—'सुन्वन्तम्' और 'शसन्तम्' में शन् प्रत्यय है। ऊती ='सुपां सुलुगिति' ऊतिशब्दोत्तरचतुर्थ्याः पूर्वसवर्णदीर्घः।

जनासः=हे मनुष्यो! यः=जो इन्द्र, सुन्वन्तम्=सोम का रस निकालने वाले (यजमान की), अवति=रक्षा करता है। तथा जो पचन्तम्=पुरोडाशादि हवियों को पकाने वाले (यजमान की), और शंसन्तम्=अपनी रक्षा के लिए शस्त्र नाम के मन्त्रों को, ऊती=अपनी रक्षा के लिए उच्चारण करने वाले (यजमान की), शशमानम्=विशेषतया शान्ति रखने वाले या स्तोत्र मन्त्रों का उच्चारण करने वाले (यजमान की), रक्षा करता है। यस्य=जिस इन्द्र का, ब्रह्म=शक्ति-शाली स्तोत्र नामक मन्त्रगण, वर्धनम्=वृद्धि करने वाला है। तथा यस्य=जिस इन्द्र का इदम्=हम लोगों से दिया गया पुरोडाशरूपी अन्न, राधः=समृद्धि करने वाला होता है, वह इन्द्र है (मैं नहीं)।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'शशमान' शब्द का अर्थ है जिस ने यज्ञ को सम्पन्न किया है (Who has prepared the sacrifice.)

'शशमानम्' का अर्थ to work, to labour, या 'to be active' है। तथा लक्षणया 'to be tired' या to rest हो जाता है।

संहिता-पाठः

१५. यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्
वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः
सुवीरासो विदथमावदेम ॥

पद-पाठः

यः। सुन्वते। पचते। दुध्रः। आ। चित्।
वाजम्। दर्दर्षि। सः। किल। असि। सत्यः।
वयम्। ते। इन्द्र। विश्वह। प्रियासः।
सुऽवीरासः। विदथम्। आ। वदेम ॥

सायण:— इदानीमृषिः साक्षात् कृतमिन्द्रं प्रति प्रब्रूते। हे इन्द्र यो दुध्रो दुर्धरः सन् सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते पुरोडाषादि हवींषि पचते यजमानाय वाजमन्नं बलं वा दर्दर्षि भृश प्रापयसि स तादृशस्त्वं सत्यो यथार्थभूतोऽसि। न पुनर्नास्तीति बुद्धियोग्योऽसि। किलेति प्रसिद्धौ। ते तव प्रियासः सुवीरासः कल्याण पुत्र पौत्राः सन्तो वयं विश्वह सर्वेष्वहः सु विद्रथं स्तोत्रम् आवदेम ब्रूयाम।

व्याकरणम् – दुध्रः=दुर् उपसर्ग पूर्वक धृ धातु से क प्रत्यय, उपसर्ग गत रेफ का छान्दस लोप। 'विश्वह' का 'विश्वानि अहानि' यह विग्रह है, तथा 'उ' प्रत्यय है। 'अहन्' शब्द का पूर्व अकार लुप्त हो जाता है छान्दसत्वात्।

संस्कृतव्याख्या :— (इदानीं साक्षात्कृतमिन्द्रं ब्रूते ऋषि: हे इन्द्र, य:, दुध्र:=दुर्धर: सन्, सुन्वते=सोमाभिषवं कुर्वते, (पुरोडाशादि हवींषि), पचते, (यजमानाय), वाजम्=अन्नं बलं वा, आदर्दर्षि=भृशं प्रापयसि, स: तादृशस्त्वम् । सत्य: =यथार्थभूत:, असि, किल=प्रसिद्धत्वेनेत्यर्थ:, ते=तव, प्रियास: प्रियकारिण:, सुवीरास:=प्रियपुत्रपौत्रा: सन्त:, वयम् विश्वह=सर्वेष्वह:सु, विदथम्=स्तोत्रम्, आ वदेम=भृशं ब्रूयाम।

य:=जो इन्द्र, दुध्र:=दुर्धर प्रभाव वाला या असह्य शक्तिशाली है, और सुन्वते=सोम का अभिषवण करने वाले, चित्=और, पचते=हवियों को पकाने वाले (यजमान के लिए), वाजम् =बल को या अन्न को, आदर्दर्षि=प्रदान करता है। स:=वही तू, सत्य:= वास्तविक रूप में, किल=इन्द्र नाम से प्रसिद्ध है। असि=यह ही तू है। अर्थात् तेरे विषय में न होने की बुद्धि कभी नहीं उत्पन्न होती। इन्द्र=हे इन्द्र, ते=तेरे, प्रियास:=प्रिय भक्त बनते हुये, सुवीरास:= सुखदायक पुत्र-पौत्रों से युक्त, वयम्=हम लोग, विश्वह=सब दिनों में, विदथम्=तेरी स्तुति को, आवदेम=अच्छे प्रकार गाया करें। (इस प्रकार गृत्समद ऋषि ने अपने सामने खड़े हुए, प्रकट हुए इन्द्र से ये वाक्य कहे हैं)।

विशेष :—मैकूडानल के मत में 'दुध्र:' का अर्थ अतिभयंकर है (Most fierce) है। तथा 'वाजम्' का अर्थ दैत्यों का लूटा हुआ धन (Booty) है। 'आदर्दर्षि का अर्थ देवताओं को जबरदस्ती देता है। यही अर्थों में भेद है।

सोम के 'सवन' और 'पाक' के बाद उसका दान और फिर सेवन यह सिद्ध करता है कि हमें "केवलाघो भवति केवलादी" नहीं होना चाहिए।

उषस् सूक्त

संहिता-पाठः

१. उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः
स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु
व्रतं चरसि विश्ववारे ॥

पद-पाठः

उषः वाजेन वाजिनि प्रऽचेताः
स्तोमम् जुषस्व गृणतः मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंऽधिः
अनु व्रतम् चरसि विश्वऽवारे ॥ १ ॥

परिचयः—इस सूक्त का विश्वमित्र ऋषि है। त्रिष्टुप् छन्द है। उषा देवता है।

सायणः—वाजेन वाजिनि अन्नेन अन्नवति । मघोनि धनवति हे उषः प्रचेताः प्रकृष्ट ज्ञानवती सती गृणतः तव स्तोत्रं कुर्वतः स्तोतुः स्तोमं स्तोत्रं जुषस्व सेवस्व । यद्वा । वाजेन हविर्लक्षणेनान्नेन सह स्तोमं जुषस्वेति सम्बन्धः विश्ववारे विश्वैः सर्वैर्वरणीये हे उषो देवि पुराणी पुरातनी युवतिः तरुणीत्युपमा । तद्वच्छोभना । सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषेतिवत् । पुरन्धिः पुरु । बहुधीः स्तोत्र लक्षणं कर्म यस्याः सा । बहुस्तोत्रवती पुरुधिर्बहुधीरिति यास्कः । पुरन्धिः शोभमाना वा । एवं विध गुणोपेता त्वमनु व्रतं यज्ञकर्माभिलक्ष्य चरसि यष्टव्यतया वर्त्तते ।

व्याख्या:—वाजेन=अन्न से वाजिनि=अन्नवाली तथा मघोनि! हे धन वाली! उषः=हे उषा तू प्रचेताः=प्रकृष्टज्ञानवाली होती हुई गृणतः=स्तुति करने वाले स्तोता के स्तोमम्=स्तोत्र को जुषस्व=स्वीकृत करो। अथवा अन्न के साथ साथ स्तोत्र को भी अङ्गीकृत करो। हे विश्ववारे=संसार से चाही गई, वरणीय देवि—दिव्यगुणवाली उषे! (आकारान्त मान कर यह प्रयोग है) पुराणी=पुरातन अनादिकाल से तुम युवतिः=तरुणी ही बनी रहती हो। तथा तुम पुरन्धिः—अत्यधिक स्तुति की पात्र भूत हो, या शोभित लगती हो। अतः तुम हमारे व्रतम्=यज्ञादिकर्म की अनु=लक्ष्यभूत हो कर चरसि=वर्तमान हो। अर्थात् अनेक गुणगण युक्त उषा का हम यज्ञों द्वारा यजन करते हैं।

व्याकरणम्—पुरन्धिः=पुरं उपपद धा धातु से कि प्रत्यय है। अथवा पुरुधीर्यस्याः सा पुरन्धिः इस व्युत्पत्ति के अनुसार पुरु के स्थान में 'पृसोदरादित्वात्'' 'पुरम्' आदेश हो कर बहुव्रीहि समास व ह्रस्व हुआ है। मघोनि! में मघ शब्द से मत्वर्थीय वनिप् प्रत्यय किया गया है—'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् प्रत्यय होता है। 'श्वयुवमघोनाम्' इत्यादि सूत्र से सम्प्रसारण के बाद गुण किया गया है। सम्बोधनान्तरूप है।

विशेषः—'वाजेन वाजिनी' का मैक्समूलर ने wealthy by wealh or booty अर्थ किया है। वाज शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे Swiftness, race, prize of race, gain, treasure, food, oblation, strength, strife, contest, friendly or warlik race, and what is won in a race, in war booty treasure. इन में से कोई भी अर्थ यहां लिया जा सकता है जो प्रकृतोपयोगी हो।

'पुरन्धिः' का अर्थ Sustainer of many है। 'विश्ववारे' का अर्थ Possessed of all good things or riches है।

संहिता-पाठः

२. उषो देव्यमर्त्या वि भाहि
चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा ।
हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥

पद-पाठः

उषः । देवि । अमर्त्या । वि । भाहि ।
चन्द्रऽरथा । सूनृताः । ईरयन्ती ।
आ । त्वा । वहन्तु । सुऽयमासः । अश्वाः ।
हिरण्यवर्णाम् पृथुऽपाजसः ये ॥२॥

सायणः—हे उषो देवि अमर्त्या मरणधर्मरहिता चन्द्ररथा सुवर्णमयरथोपेता सूनृताः प्रियसत्यरूपा वा च ईरयन्ती उच्चारयन्ती । तादृशी त्वं वि भाहि सूर्यकिरणसंबन्धाद्विशेषेणां दीप्यस्व । पृथुपाजसः प्रभूतबलयुक्ता अरुणवर्णा येऽश्वा विद्यन्ते सुयमासः सुष्ठु नियन्तुं शक्या रथे योजितास्तेऽश्वा हिरण्यवर्णा त्वा-त्वामावहन्तु ।

व्याख्या—हे उषः=उषा देवि !=दिव्यगुण वाली तुम अमर्त्या=मरण-धर्म-रहित, चन्द्ररथा=सुवर्ण या चाँदी के रथ में अवस्थित हुई, एवं सूनृताः=प्रिय, मिष्ट, इष्ट व सत्य वाणी को ईरयन्ती=उच्चारण करती हुई, विभाहि=सूर्य-किरणों के सम्बन्ध से पर्याप्त रूप में प्रकाशित बनो । तथा ये=जो तुम्हारे, पृथुपाजसः=अति बलशाली, सुयमासः=अच्छी प्रकार वशवर्ती या अच्छी तरह रथ में जोते हुए अरुण वर्ण अश्वाः=घोड़े हैं वे

हिरण्यवर्णाम्=सोने के समान दीप्ति वाली त्वा=तुम्हें आवहन्तु=हमारे सम्मुख लावें, अर्थात् हम प्रतिदिन उषा दर्शन करते रहें।

व्याकरणम्—सुयमासः=सु उपसर्ग उपपद होने पर यम् धातु से खल् प्रत्यय किया है। शेष स्पष्ट है।

विशेषः—सूनृतत्व का उषा विषयक वर्णन 'सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती' इत्यादि ऋग्वेद के १–११३–१२ में वर्णन मिलता है। 'सूनृता' शब्द सु+उपपद ऋत शब्द से बना है। मध्य नुडागम व उकार को दीर्घ औणादिक है। किन्तु म्योर और प्रो. आफ्रेट Aufrecht इसे सु+नृत्+अ से बना मानते हैं तथा उनके मत में 'सूनृता' का अर्थ movable, to be in motion, brisk, alert आदि अर्थ हैं। एवं च Lively, Voices स्पष्ट अर्थ निकलता है। अथवा Leader of joyful vocies (of birds) यह अर्थ निकलता है, क्योंकि प्रातः चिड़ियां बसेरा करती हैं वह चह चहाती हैं। पर मेरी समझ में यह अर्थ सु+नृत शब्द के अवयवों से नहीं निकलपाता खैंचातानी है।

संहिता-पाठः

३. उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व॥

पद-पाठः

उषः प्रतीचि भुवनानि विश्वा ऊर्ध्वा तिष्ठसि अमृतस्य केतुः। समानम् अर्थम् चरणीयमाना चक्रम्ऽइव नव्यसि आ ववृत्स्व॥३॥

सायणः—हे उषो देवि विश्वा सर्वाणि भुवनानि प्रतीची। प्रति आभिमुख्येन अञ्चति प्राप्नोतीति प्रतीची। अमृतस्थ

मरणधर्मरहितस्य सूर्यस्य केतुः प्रज्ञापयित्रीति त्वमूर्ध्वा नभस्यून्नता तिष्ठसि। नव्यसि पुनः पुनर्जायमानतया नवतरे हे उषो देवि अर्थम्। अर्यते गम्यतेऽस्मिन्नित्यर्थो मार्गः। समानमेकं मार्गमुदयान्प्राचीनकाललक्षणं चरणीयमानां चरितुमिच्छन्ती त्वमाववृत्स्व पुनस्तस्मिन्मार्ग आवृता भव। तत्र दृष्टान्तः। चक्रमिव यथा नभसि चरितुः सूर्यस्य रथाङ्गं पुनः पुनरावर्त्तते तद्वत्।

व्याख्या :—हे उषः !=उषा देवि ! विश्वा=सारे भुवनानि=भुवनों के प्रतीची=अभिमुख जाती हुई अमृतस्य=सूर्यदेव की केतुः=बोधन कराने वाली तुम ऊर्ध्वा=आकाश के उन्नत प्रदेश में तिष्ठसि=स्थित रहती है। एवं हे नव्यसि !=नवीनतर उषे ! तुम समानम्=एक पूर्वदिशारूपी अर्थम्=मार्ग पर चरणीयमाना=गमन करती हुई चक्रमिव=सूर्य के पहिये के चक्र की तरह आववृत्स्व=आवृत्त होओ।

व्याकरणम्—प्रतीची शब्द में 'अञ्चतेश्चोपसंख्यानम्' इस वार्तिक से ङीप् प्रत्यय है। 'अर्थम्' अर्यते गम्यते इत्यर्थो मार्गः। ऋ गतौ से स्थन् प्रत्यय है। चरणीयमाना=चरन्ति यत्र तत्र चरणं मार्गः। चरणं इच्छति इस अर्थ में क्यच्, आत्मनेपद, शानच्। टाप्। 'केतुः' में चाय् धातु के स्थान में 'की' आदेश तुन् प्रत्यय। 'नव्यसि' में नव शब्द से ईयसुन प्रत्यय, ईकार लोप छान्दस किया है। 'आ वृत्स्व' में 'वृतु वर्तने' धातु से 'बहुलं छन्दसि' सूत्र से शप् के स्थान में श्लु प्रत्यय, आत्मनेपद, लोट् मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेषः—'प्रतीची' का अर्थ 'in the face of all creatures' 'समानमर्थं चरणीयमाना का अर्थ' Pressing forward to the same mark i. e. as in all farmer days. इस मन्त्र की तुलना

ऋग्वेद के निम्न मन्त्र से की जा सकती है:—

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥
(ऋक् १,११३,३)

इसका यह अर्थ है कि रात्रि और उषा नाम की दो बहिनें एक ही मार्ग से चलती हैं, उस मार्ग का छोर नहीं मिलता। वे भगवान् की प्रेरणा प्राप्त कर बारी-बारी से आती और जाती हैं। वे न कभी रुकती हैं, न आराम ही करती हैं, न झगड़ती हैं। उनके विचार परस्पर के प्रति सहानुभूति-पूर्ण एक से हैं। एवं उनका रूप (आकृति) परस्पर भिन्न है।

संहिता-पाठः

४. अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥

पद-पाठः

अव। स्यूमऽइव। चिन्वती। मघोनी। उषाः। याति। स्वसरस्य पत्नी। स्वः। जनन्ती। सुऽभगा। सुऽदंसाः। आ। अन्तात्। दिवः पप्रथे। आ। पृथिव्याः ॥४॥

सायणः—येयमुषाः स्यूमेव वस्त्रमिव विस्तृतं तमः अव-चिन्वती अवचयमपक्षयं प्रापयन्ती मघोनी धनवती। स्वसरस्य सुष्ठु अस्यति क्षिपति तम इति स्वसरः सूर्यो वासरो वा तस्य। पत्नी सती याति गच्छति। स्वः-स्वकीयं तेजः जनन्ती जनयन्ती सुभगा सुधना सौभाग्य युक्ता वा सुदंसाः शोभनाग्नि होत्रकर्मा

सेयमुषा दिव द्युलोकस्य आ अन्तात् पृथिव्याश्च आ अन्तात् अवसानात्पप्रथे प्रथते प्रकाशत इत्यर्थः ।

व्याख्याः—यह मघोनी=धन वाली (धिनोतीतिधनम्) प्रसन्नता या महत्व प्रदान करने वाली यह उषाः=उषा स्यूमेव=वस्त्र के समान आच्छादित करने वाले अन्धकार को अवचिन्वती=अवचय या अपचय अर्थात् विनाश को प्राप्त कराती हुई स्वसरस्य=सूर्य की दिन की पत्नी=भार्या के समान बनी हुई याति=जाती है। स्वः=अपने तेज को जनन्ती=उत्पादन करती हुई सुभगा=सुधन या भाग्य वाली एवं सुदंसाः=सुन्दर यज्ञादि कर्म कराने वाली (उषा) दिवः=द्युलोक के आ अन्तात्=अन्तिम (आखिरी) किनारे से लेकर पृथिव्याः=पृथिवी के आ (अन्तात्)=उस छोर तक प्रपथे=विस्तृत या प्रकाशित हुआ करती है।

व्याकरणम्—'स्यूम' में षिवु धातु से 'अविसिविसि शुषिभ्यः कित्'। इस औणादिक सूत्र से कित् मन् प्रत्यय हुआ है। वकार को ऊठ् आदेश, यण्, सुलुक्। 'जनन्ती' में जन जनने धातु से णिच्, शन्, ङीप्। यहाँ 'छन्दस्युभयथा' से णि का लोप होता है। 'स्वसर' में 'सु' उपपद असु क्षेपणेधातु से अरक् प्रत्यय होता है। "सुष्ठु अस्यातितम इति स्वसरः सूर्यो वासरो वा" यह व्युत्पत्ति है।

विशेषः—'स्यूम' शब्द का अर्थ 'Casting aside, as it were, her garment,' है, Sayana says, the darkness she dispels. ऋग्वेद के "स्यूमना वा च उदियर्ति वह्निः" १।११३।१७वें मन्त्र में राथ ने स्यूमन् को Hymen नामक ग्रीकदेवता के समान माना है। 'वाचः' द्वितीया बहुवचन एवं 'स्यूमना' तृतीयान्तपद है। इसी प्रकार 'स्यूम गभस्ति' स्यूमरश्मि' आदि शब्द भी वेद में प्रयुक्त हैं जहाँ 'स्यूम' का अर्थ 'स्यूत' अविच्छिन्नतया वर्तमान, सुखकारी आदि अर्थ किये गये

हैं। अतः स्यूम' का अर्थ यहाँ 'Reins' लगाम भी लिया जा सकता है। यहाँ राथ ने 'The mistress of the house bestirs herself, drawing back the strap that closes the door. यह अर्थ किया है। ग्रासमान ने 'अवस्यूमेव चिन्वती' का 'unloosening her girdle' अर्थ किया है। Ludwig ने 'shaking down the reins' in order to urge on her horses, or throwing reins away altogether in order to alight" यह अर्थ किया है।

पीटर्सन कहता है कि:—'स्वसरस्य पत्नी' का सायण कृत अर्थ प्रामाणिक नहीं। अतः यहाँ "Queen of the world" अर्थ करना चाहिए। क्योंकि ऋग्वेद के 'वयो न स्वसराण्यच्छा' २।१६।२ में स्वसर का अर्थ घौंसला किया गया है। इसी प्रकार २।३४।५ में भी अर्थ किया है। अतः सायण के अर्थों में परस्पर विरोध है। स्वयं सरन्ति मन्त्रते स्वसराः कुलायाः" यह व्युत्पत्ति भी वहीं की है। निरुक्त में 'स्वसर' शब्द दिन का पर्यायवाची है, अतः यहाँ 'queen of the day' भी अर्थ हो सकता है। 'स्वर्जनन्ती' का अर्थ पीटर्सन ने 'Bringing heaven to life' किया है। इसी प्रकार 'सुदंसाः' का अर्थ 'Doing wonderful and glorious deed' अर्थ किया है। उनका कथन है कि यह धातु जिन्दावस्ता (Zend) में भी मिलती है वहाँ उस का to show या to demonstrate अर्थ है। कहीं-कहीं 'दंस' का अर्थ रूप भी है, अर्थात् 'सुन्दर रूप वाली' यह अर्थ भी हो सकता है।

संहिता-पाठः

५. अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥

पद-पाठः

अच्छ । वः । देवीम् । उषसम् । विऽभातीम् । प्र । वः । भरध्वम् । नमसा । सुऽवृक्तिम् । ऊर्ध्वम् । मधुधा । दिवि । पाजः । अश्रेत् । प्र । रोचना । रुरुचे । रण्वऽसंदृक् ॥५॥

सायण:— हे स्तोतारो वः युष्मान्नश्च अभिलक्ष्य विभातीं शोभमाना मुषसं देवीं प्रति वो युष्माकं सम्बन्धिना नमसा नमस्कारेण सह सुवृक्ति शोभनां स्तुतिं प्र भरध्वं यूयं कुरुत। मधुधा मधुराणि स्तुति लक्षणानि वाक्यानि दधातीति मधु सोमः तं धारयतीति वा। यद्वा मधुधा आदित्य धात्री। यद्वा अवग्रहाभावादव्युत्पन्नावयवमखण्डमिदमुषोनाम्। सेयमुषाः दिवि नभसि ऊर्ध्वं ऊर्ध्वाभिमुखं पाजः तेजः अश्रत् श्रयति। तथा रोचना रोचनशीला रण्वसंदृक् रमणीय दर्शना उषाः प्र रुरुचे प्रकर्षेण दीप्यते। यद्वा रोचना लोकान्प्र रुरुचे प्रकर्षेण स्वतेजमा दीपयति।

व्याख्या:— हे स्तोतारः=हे स्तोताओ वः=तुम्हारे और हमारे सम्मुख, अच्छ=स्वच्छ रूप से विभातीम्=शोभमान, उपसम्= उषा नाम की, देवीम्=देवी के प्रति, वः=तुम्हारे द्वारा किये गये, नमसा=नमस्कार के साथ, सुवृक्तिम्=उत्तम शोभा वाली स्तुति को, प्रभरध्वम्=आपलोग कीजिए, जिस से मधुधा=स्तुतियों का, अथवा सोमका, या आदित्य का धारण करने वाली यह उषा, दिवि = आकाश में ऊर्ध्वम् = द्युलोक व्यापी, पाजः = तेज को, अश्रेत् = धारण करे तथा रोचना = चमकने वाली, रण्वसंदृक् = रमणीय दर्शनवाली उषा, प्ररुरुचे=अधिक प्रकाशित हो अथवा रोचना = प्रकाशित होने वाले लोकों को प्ररुरुचे = अपने तेज से प्रकाशित करे।

व्याकरणम् — 'सुवृक्तिम्' में सु पूर्वक वृजी वर्जने धातु से क्तिन् प्रत्यय होता है, सुष्टुतया वर्ज्यते आवर्ज्यते जनः यया सा सुवृक्तिः स्तुतिरित्यर्थः 'मधुधा' में क्विप् प्रत्यय है। 'अश्रेत्' श्रिञ् धातु के लङ् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है, शप् प्रत्यय को श्लु हो जाता है। रण्वसंदृक् में गत्यर्थक रवि धातु से अच् प्रत्यय करने पर रण्व बनता है, इदित्वात् नुमागम होता है, जो वस्तु उपगम्य हो उसे रण्व कहते हैं। संदृक् सम पूर्वक दृश धातु है, अच्छ=अच्छं के अर्थ में क्रियाविशेषण है।

विशेष :— इस मंत्र में वः का दो बार प्रयोग हुआ है, पहला वः द्वितीया का बहुवचन है और द्वितीय वः षष्ठी का तथा द्वितीय वः का सम्बन्ध नमसा के साथ सायण ने किया है। किन्तु (Delbruck) डेलब्रुक, लुडविग, और ग्रासमान वः का सम्बन्ध सुवृक्तिम् के साथ करते हैं। तथा अच्छ पद का देवीम् के साथ सम्बन्ध मानते हैं।

सुवृक्तिम् शब्द के विषय में पीटर्सन ने लिखा है कि इसका अर्थ साफ करना और काटना (cleaning and trimming) है, पर यह सब दूर की उड़ान है और बेकार है, किन्तु इसका लाक्षणिक प्रयोग माना जावे तो carefully trimmed, pure and holy hymns of praise यह अर्थ लिया जा सकता है। पाजो अश्रेत् का पीटर्सन ने 'Enters into light' the light, as it were, meeting and joining itself to the Dawn.

संहिता-पाठः

६. ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥

पद-पाठः

ऋतऽव॑री । दि॒वः । अ॒र्कैः । अ॒बो॒धि॒ । आ । रे॒वती॑ । रोद॑सी॒ । इति॑ । चि॒त्रम् । अ॒स्था॒त् । आ॒ऽय॒तीम् । अग्ने॑ । उ॒षस॑म् । वि॒ऽभा॒तीम् वा॒मम् । ए॒षि॒ । द्रवि॑णम् । भिक्ष॑माणः ॥६॥

सायण :—ऋतावरी सत्यवती येयमुषाः दिवः द्युलोकादर्कैस्तेजोभिरबोधि सर्वैर्ज्ञायते । ततो रेवती धनवती सेयं रोदसी द्यावा पृथिव्यौ चित्रं नानाविधरूपयुक्तं यथा भवति तथा अस्थात् सर्वतो व्याप्य तिष्ठति । हे अग्ने आयतीं त्वदभिमुखमागच्छन्तीं विभातीं भासमानामुषसमुषोदेवीं भिक्षमाणे हवींषियाचमानास्त्वं वामं वननीयं द्रविणमग्निहोत्रादि लक्षणं धनमेषि । प्राप्नोषि ।

व्याख्या :—ऋतावरी=सत्यवती अर्थात् पदार्थों की यथार्थता प्रकाशित करने वाली यह उषा, दिवः=द्युलोक से आने वाले, अर्कैः=अपने तेजों से, अबोधिः=सब प्राणियों द्वारा जान ली जाती है एवं रेवती=धनवती या प्रीणन करने वाली यह उषा, रोदसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक में, चित्रम्=नाना रूपों से युक्त होकर, अस्थात्=व्याप्त होकर स्थित होती है । हे अग्ने हे प्रज्वलित अग्नि देवता तुम, आयतीं=तुम्हारी ओर आने वाली (अर्थात् प्रातःसवन और उषा का सम्बन्ध नित्य है) विभातीम्=प्रकाशमान्, उषसम्=उषा देवी से, भिक्षमाणः=अपने लिये हवि की याचना करते हुए तुम अग्निदेव, वामम्=वननीय, संभजनीय या सुन्दर, द्रविणम्=अग्निहोत्रादि रूप धन को एषि=प्राप्त करते हो ।

व्याकरणम्—'ऋतावरी' शब्द में ऋत शब्द से वनिप् प्रत्यय है और 'मनोरच' सूत्र से नकार के स्थान में रेफ आदेश होता है । ऋन्नेभ्यो

ङीप् से ङीप् प्रत्यय होता है। 'अर्क' शब्द का लक्षणया तेज अर्थ किया गया है। अभिधा शक्ति से इसका सूर्य अर्थ है। 'रेवती' में रयि शब्द से मतुप् प्रत्यय किया गया है। 'रयेर्मतौ बहुलम्' से यकार को सम्प्रसारण पूर्वरूप और गुण हो जाता है। मतुप् के मकार को 'छन्दसीरः' ८।२।१५ से मकार को वकार होता है तथा उगितश्च से ङीप् प्रत्यय किया गया है। 'आयतीम्' में आङ् पूर्वक इण् गतौ धातु से शतृ प्रत्यय करने पर ङीप् प्रत्यय किया जाता है।

विशेषः—इस मन्त्र पर पीटर्सन ने विशेष व्याख्या नहीं की है।

संहिता-पाठः

७. ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश। मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥

पद-पाठः

ऋतस्य। बुध्ने। उषसाम्। इषण्यन्। वृषा। मही। इति। रोदसी इति। आ। विवेश। मही। मित्रस्य। वरुणस्य। माया। चन्द्राऽइव। भानुम्। वि। दधे। पुरुत्रा ॥७॥

सायणः—वृषा वृष्टिद्वारा प्रेरकः आदित्यः ऋतस्य अग्निहोत्रादि 'कर्मकरणे सत्य भूतस्य अह्नः बुध्ने मूले उषसामिषण्यन् प्रेरणं कुर्वन् मही महत्यौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ आ विवेश सर्वतः प्रविष्टवान्। यद्वा वृषा वर्षिता इषण्यन् सर्वतो गच्छनुषसां सम्बन्धी रश्मि समूहः रोदसी द्यावापृथिव्यौ विष्टवानि योजनीयम्। ततः उषाः मही महती मित्रस्य वरुणस्य मित्र

वरुणयोर्माया प्रभारूपा सती चन्द्रेव सवर्णानीव भानुं स्वप्रभां पुरुत्रा बहुषु देशेषु विदधे विदधाति सर्वत्र प्रसारयति ।

वृषा=वृष्टि करने वाला आदित्य, ऋतस्य=अग्निहोत्रादि कर्मों के करने के ज्ञापक सत्यभूत, दिन के, बुध्ने=मूल में उषसां=उषाओं की, इषणयन्=प्रेरित करता हुआ, मही=महान्, रोदसी=द्युलोक और पृथ्वी-लोक में, आविवेश=व्यापक रूप से प्रविष्ट हुआ अथवा, वृषा= इच्छाओं की पूर्ति करने वाला, इषणयन्=सर्वत्रगामी उषा सम्बन्धी रश्मिसमूह द्युलोक और पृथ्वीलोक में प्रविष्ट हुआ । तदनन्तर वही उषा मही=महान् मित्रस्य=मित्र देवता की, वरुणस्य=वरुण देवता की, अथवा मित्रावरुण नाम के एक देवता की, माया=प्रभा रूप बनती हुई, चन्द्राइव=सोने की तरह, पीत आभा वाली, भानुम्=अपनी कान्ति को, पुरुत्रा=बहुत से स्थानों में विदधेः=करती है अर्थात् सर्वत्र फैला देती है ।

व्याकरणम्—बुध्न=बुध् धातु से नङ् प्रत्यय । इषणयन्= इच्छतीति इषन् । इषन्तमात्मन् इच्छति इषणयति इषणयतीति इषणयन्— शतृप्रत्यान्त इष् धातु से क्यच् प्रत्यय किया गया है । मही=महत् शब्द से ङीप् प्रत्यय अन्त्य उपधा सहित तकार का लोप अर्थात् अत् का लोप छान्दस है । पुरुत्रा--पुरु शब्द से 'देवं मनुष्य' ५।४।५६ से त्र प्रत्यय किया गया है ।

विशेषः—ऋतस्य बुध्ने इस वाक्य की जो सायण ने व्याख्या की है वह काल्पनिक है । मैक्समूलर ने इस वाक्य का अर्थ निम्नलिखित किया है—

The hero in depth of the Heaven, yearning for the downs, has entered the great sky and the earth.

किन्तु ग्रासमैन ने रोदसी का अर्थ on holy ground किया है जब कि लुडविग ने 'on the ground of the holy rite' किया है। Roth ने १।१०।१११ मन्त्र में बुध्न शब्द का अर्थ मध्य और अन्त किया है। ऋतस्य बुध्ने शब्द ऋतस्य सदनं या ऋतस्य योनिम् आदि वेद वाक्यों से भिन्न नहीं किया जा सकता। पीटर्सन कहता है कि सायण की व्याख्या यदि ठीक है जैसा कि मैं मानता हूँ तो वृषा शब्द का अर्थ सूर्य है और मन्त्र में सूर्य का द्युलोक और पृथ्वीलोक में प्रवेश वर्णित है वह उपासक जो प्रातःकाल उषा की ओर मुंह करके खड़ा होता है तो वहीं उसको सूर्य का दर्शन होता है अतएव उषा सूर्य के लिये बुध्न मूल स्थान या नीव के समान मानी गई है।

उषसां इषण्यन् इस वाक्य का Roth ने urging on the dawns अर्थ किया है जब कि मैक्समूलर ने yearning for the dawns किया है। उषसां यह यद्यपि षष्ठ्यन्त पद दिखाई पड़ता है तथापि यह तृतीयान्त पद है और यह रूप प्राचीन और अप्रयुक्त है। लुडविग का यह कथन पूर्णतया स्वीकार्य नहीं। पिशैल (Pischel) ने उषसां को द्वितीयान्त पद माना है। यह दोनों पाश्चात्य विद्वानों के कथन युक्ति और प्रमाण शून्य हैं केवल कल्पना पर आधारित हैं। वृषा शब्द का अर्थ यद्यपि मैक्समूलर ने Strong bull of dawns किया है और यह वृष सूर्य ही है किन्तु यहां वृषा पद से इन्द्र का ग्रहण किया गया है ऐसा मैक्समूलर का मत है। वे लिखते हैं कि--

"The hero who yearns for the dawns is generally Indra : here, however, considering that Agni is mentioned in the preceding verse, it is more likely that this god, as

the light of the morning, may have been meant by the poet."

महीमित्रस्य वरुणस्य माया यह सायण के अनुसार उषा का वर्णन है किन्तु ग्रासमैन (grassmann) इसे सूर्य का विशेषण मानता है और उसने चन्द्रेव का अर्थ Like the fair one किया है अर्थात् सूर्य एक सुन्दर स्त्री के समान दिखाई पड़ता है जो कि स्त्री उषा नाम की है। डैलब्रुक ने चन्द्रेव की चन्द्रमिव यह व्याख्या की है और इसे वैदिक प्रयोग माना है।

मं० ४ सूक्त ५४

सविता सूक्त

संहिता-पाठः

१. अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न
इदानीमह्न उपवाच्यो नृभिः ।
वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः
श्रेष्ठं नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥

पद-पाठः

अभूत् । देवः । सविता । वन्द्यः । नु । नः । इदानीम् ।
अह्नः । उपवाच्यः । नृभिः । वि । यः । रत्ना । भजति ।
मानवेभ्यः । श्रेष्ठम् । नः । अत्र । द्रविणम् । यथा । दधत् ॥४॥

परिचय :—इस सूक्त का वामदेव ऋषि है आदि की ५ ऋचाओं का जगती छन्द है, षष्ठ ऋचा का त्रिष्टुप् छन्द है, सविता शब्द षुञ्

अभिप्रवे या षूङ् प्राणि गर्भ विमोचने से बनता है। इसमें इसका अर्थ उत्पन्न करना प्रकट करना आहुति देना इत्यादि अनेक अर्थ हैं। कभी-कभी इसका अर्थ अनुज्ञा या अधिकार सम्पन्न करना होता है। प्रसवित् शब्द भी इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त है।

सायण :—स सविता देवः आभूत प्रादुरासीत्। असौ नु क्षिप्रमेव नोऽस्माकं वन्द्यः वन्दनीयो भवति। इदानीं यागकाले अह्नस्तृतीये सवने नृभिरस्मदीयैर्होतृभिः उपवाच्यः स्तुत्यो भवति। यः देवो मानवेभ्यः मनोरपत्येभ्यः यजमानेभ्यस्तेषामर्थाय रत्ना रमणीयानि धनानि विभजति। स देवः श्रेष्ठं प्रशस्यं द्रविणं गवादिलक्षणं धनं नः अस्मभ्यम् अत्रास्मिन् कर्मणि यथादधत् दद्यादित्यर्थः। तथा वन्द्य उपवाच्यश्चाभूदिति।

व्याख्याः—वह सविता=संसार को कर्म में प्रेरित करने वाला, देवः=द्योतनशील सूर्य, नु=शीघ्र ही, नः=हमारा, वन्द्यः=वन्दनीय है। इदानीम्=इस यागकाल में, अह्नः=दिन के (तृतीय सवन के समय) नृभिः=हमारे होताओं द्वारा, उपवाच्यः=स्तुत्य है। यः=जो सूर्य मानवेभ्यः=यजमानादि उपासक पुरुषों के लिए, रत्ना=रमणीय धनों को, विभजति=वितीर्ण—करता है, वह सूर्य अत्र=इस यज्ञ कर्म के समय, श्रेष्ठं=उत्तम द्रविणम्=गवादि स्वरूप धन को, यथा=जिस तरीके से, दधत्=धारण करावे या देवे उस प्रकार स्तुत्य है।

व्याकरणम्—उपवाच्य=वुव् को वच् आदेश 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् उपधावृद्धि।

विशेषः—सूर्य और सविता में अवयवार्थ को लेकर अन्तर है तथा एक एक मास का एक एक सूर्य माना जाता है, इस अधिकार को लेकर भी अन्तर है। अह्नः का इदानीम् के साथ सम्बन्ध है तथा इस से सुत्याकाल का ग्रहण किया जाता है। और इस के लिए तृतीय सवन उचित माना गया है।

संहिता-पाठः

२. देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्यो-
ऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम्।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषे-
ऽनूचीन जीविता मानुषेभ्यः ॥

पद-पाठः

देवेभ्यः । हि । प्रथमम् । यज्ञियेभ्यः ।
अमृतऽत्वम् । सुवसि । भागम् । उतऽतमम् ।
आत् । इत् । दामानम् । सवितः । वि । ऊर्णुषे ।
अनूचीना । जीविता । मानुषेभ्यः ॥२॥

सायण:— प्रथमं देवेभ्यो हि। हि शब्दः प्रसिद्धौ। देवेभ्यः यज्ञियेभ्यः यज्ञार्हेभ्यः अमृतत्वं तत्साधनमुत्तममुत्कृष्टतमं भागं सोमादिलक्षणं सुवसि अनुजानासि। अदित् अनन्तरमेव दामानं हविषां दामारं हे सवितः वि ऊर्णुषे प्रकाशयति। मानुषेभ्यः यजमानेभ्यः जीविता जीवितानि अनूचीना अनुक्रमयुक्तानि। पितृपुत्रपौत्रा इत्यनुक्रमः। ईदृशानि जीवितानि पश्चाद्व्यूर्णूषे।

व्याख्या:—हे सवितः=हे सूर्यदेव तुम, यज्ञियेभ्यः=यज्ञ भागार्ह देवेभ्यः=देवताओं के लिए हि=निश्चय से अथवा यह प्रसिद्ध है कि, अमृतत्वम्=अमरता के साधन भूत, उत्तमम्=उत्कृष्टतमम् भागम्=सोमादि रूप यज्ञ भाग को सुवसि=प्रदान करते हो। आदित्=अनन्तर ही, दामानम्=हवि प्रदान करने वाले यजमान को वि, ऊर्णुषे=प्रकाशित करते हो एवं मानुषेभ्यः=यजमानों के लिए, अनुचीना=अनुक्रमयुक्त,

जीविता=पितृपुत्रपौत्रादि जीवधारियों को (व्यूर्णुषे) बाद में जीवन प्रदान करते हो।

व्याकरणम्—यज्ञियेभ्यः यज्ञ शब्द से "यज्ञर्त्विग्भ्यां" से घञ् प्रत्ययः। दामानम्=दा, मनिन् 'अन्येभ्योऽपि' इत्यादि सूत्र।

भागम्=भज् भाव में घञ् प्रत्यय।

अनूचीना=अन्वग् भवा अनूचीना अनु+अञ्च्+ख।

विशेष:—पीटर्सन के मत में दामानं भागं का विशेषण है और इसका अर्थ है, खण्ड खण्ड किया गया है। दामन शब्द 'दो अवखण्डने' और 'दा दाने' दोनों से बनता है। पीटर्सन यह भी कहता है कि दामानं का अर्थ दानं करना चाहिए, जैसा ८,२१,१६ मन्त्र में किया गया है। इस प्रकार इसका अर्थ होगा कि तुम अपने दान को संसार के लिए प्रकाशित करते हो।

संहिता-पाठः

३. अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने
दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च
त्वं नो अत्र सुवतादनागसः॥

पद-पाठः

अचित्ती। यत्। चकृम। दैव्ये। जने।
दीनैः। दक्षैः। प्रऽभूती। पुरुषत्वता।
देवेषु। च। सवितः। मानुषेषु। च।
त्वम्। नः। अत्र। सुवतात्। अनागसः॥३॥

सायण :—हे सवितः वयमचित्ती अप्रज्ञया दैव्ये जने त्वयि दीनैः दुर्बलैः पुत्रादिभिः ऋत्विग्भिर्वा तथा दक्षैः प्रवृद्धैर्वा तैः प्रभूती प्रभूत्या ऐश्वयमदेनेति यावत्। पुरुषत्वता पुरुषवत्तया च यदागश्चकृम । न केवलं त्वय्येव कृतमपि तु देवेष्वन्येषु मानुषेषु चाज्ञानादिभिर्यच्चकृम नः कृतवतोऽस्मान् त्वमत्र अस्मिन् कर्मणि अनागसः अपापान् सुवतात् अनुजानीहि ।

अर्थ—हे सवितः=सूर्यदेवता वयम्=हम लोगों ने अचित्ती=अज्ञान से दैव्ये=दिव्य गुण युक्त जने=जन्मधारण करने वाले आपके विषय में दीनैः=दुर्बल पुत्रादि या ऋत्विजों से तथा दक्षैः=चतुरता के मदों से प्रभूती=ऐश्वर्य मद से पुरुषत्वता=पौरुष के मद से यत्=जो (पाप) चकृम=कर चुके हैं इसी प्रकार देवेषु=अन्य देवों के विषय में तथा मानुषेषु=अन्य मनुष्यों के विषय में उक्त अज्ञानादि कारणों से जो अपराध किया है उसके विषय में नः=हम अपराधियों को त्वं=आप अत्र=इस यज्ञ कर्म के समय, अनागसः=पाप रहित अर्थात् अपराधों को क्षमा करके पाप फल से मुक्त, सुवतात्=बना दीजिये।

व्याकरणम्—अचित्ती, प्रभूती—"सुपांसुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडा०" से पूर्वसवर्ण हुआ।

सुवतात् षुञ् अभिषवे विकरण व्यत्यय के स्थान में शप्।

विशेषः—दैव्ये जने यह कथन मनुष्य और देवता दोनों के लिये है। अतएव आगे चल कर मानुषेषु यह लिखना संगत है। दीनैः यह दक्षैः का विशेषण है ऐसा पीटर्सन मानता है इसके अनुसार दक्ष का अर्थ है बुद्धि अतः अपनी दुर्बल बुद्धि से, (with feeble wit) यह अर्थ है। "शिष्यं पापं गुरुं व्रजेत्" इस न्याय के अनुसार पुत्र का पाप

पिता को और पुरोहित का पाप यजमान को प्राप्त होता है उन पापों से ही यहाँ मुक्ति की प्रार्थना है। अतएव इस वाक्य का अर्थ अंग्रेजी में निम्न प्रकार है। Whatever we have done against the folk of the gods, as weak ones out of ignorance; or as strong ones out of insolance.

'पुरुषत्वता' यह शब्द ५।४८।५ में एक मन्त्र में और आया है। अन्यत्र इस का प्रयोग नहीं मिला।

संहिता-पाठः

४. न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा
विश्वं भुवनं धारयिष्यन्ति।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्व-
र्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत्॥

पद-पाठः

न। प्रऽमिये। सवितुः। दैव्यस्य। तत्। यथा। विश्वम्। भुवनम्। धारयिष्यति। यत्। पृथिव्याः। वरिमन्। आ। सुऽअङ्गुरिः। वर्ष्मन्। दिवः। सुवति। सत्यम्। अस्य। तत्॥४॥

सायणः—सवितुः दैव्यस्य देवस्य तत्कर्म न प्रमिये न प्रमीयेत प्रहिंस्येत। हिंसार्ह न भवतीत्यर्थः। यद्वा दैव्यस्येति व्यधिकरणे षष्ठी। सा च कर्मार्थी। दैव्यं कर्मेत्यर्थः कथमहिंस्यमित्यत आह। यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति धारयति। विश्वधारण-रूपं यत्कर्मास्ति तन्न प्रमिये। तथा स्वङ्गुरिः शोभनाङ्गुल्यु-पलक्षितहस्तो यद् यः पृथिव्या वरिमन्। आ चार्थे। भूम्य

उरुत्वे च सुवति प्रेरयति । तथा दिवः द्युलोकस्य वर्ष्मन् उरुत्वे च सुवति । अस्य देवस्य तदुक्तं कर्म सत्यमबाध्यमिति ।

अर्थ—सवितुः=सर्वोत्पादक दैव्यस्य=दिव्यगुणों से युक्त सूर्य का तत् =वह जगत् धारणरूपी कर्म न=नहीं प्रमिये=नाश योग्य नहीं है अथवा दैव्यस्य का अर्थ दिव्य कर्म है (प्रथमा अर्थ में षष्ठी की गई है या व्यधिकरण में षष्ठी है) यथा=जिस प्रकार के कर्मों द्वारा (वह सूर्य) विश्वं=सारे भुवनं=भूमण्डल को धारयिष्यति=धारण करता है । एवं यत् =जिस कर्म करने के लिये स्वङ्गुरिः=शोभन अङ्गुलियुक्त हाथों वाला (सूर्य) पृथिव्याः=भूमण्डल भर के (प्राणियों के) वरिमन्= श्रेष्ठता के लिये अर्थात् अभ्युदय के लिये सुवति=प्रेरणा देता है आ= और दिवः=द्युलोक के वर्ष्मन्=निवासी शरीरधारियों के लिये (सुवति) प्रेरणा देता है अस्य=इस सूर्य का तत्=उपर्युक्त कर्म सत्यम्= तीनों कालों में अबाध्य रूप से हो रहा है अतएव तथ्य भूत है ।

व्याकरणम्—प्रमिये=प्र पूर्वक मीञ् हिंसायाम् से कृत्यार्थे तवैकेन से केन प्रत्यय और धातु को इयङ् आदेश ।

वरिमन् उरु+इमनिच् +वर आदेश प्रियस्थिरस्फिरो (६–४–१५७) या वर शब्द से इमनिच् तरबर्थ में ।

सुवति=षू 'प्रेरणे' तुदादिगण लट् लकार एकवचन ।

विशेषः—वर्ष्मन् इसका अर्थ ऊँचाई या उच्च प्रदेश भी अर्थ होता है जैसा सायण ने (१०–६३–४) के मन्त्र में वर्ष्माणम् का समुच्छ्रित-देशं अर्थ किया है । सुवति का कर्म यत् शब्द है और इसका तत् के साथ सम्बन्ध है ग्रासमान ने यथा का अर्थ by which किया है अर्थात् सूर्य के कामों में कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिए । जिन कारणों से कि वह सारे संसार की रक्षा करता है डेलब्रुक ने यथा का अर्थ

so that किया। सत्यमस्यतत्—यह कहने का ढंग वेद का अपना है और इसका surely that work is his।

संहिता-पाठः

५. इन्द्रज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः
क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर
एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते॥

पद-पाठः

इन्द्रऽज्येष्ठान्। बृहत्ऽभ्यः। पर्वतेभ्यः। क्षयान्।
एभ्यः। सुवसि। पस्त्यऽवतः। यथाऽयथा।
पतयन्तः। विऽयेमिरे। एव। एव। तस्थुः।
सवितरिति। सवाय। ते। ॥५॥

सायणः—हे सवितः! इन्द्रज्येष्ठान् इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्तस्त्वमेव इन्द्रो वा ज्येष्ठः न्यायान् पूज्यो येषां ते तादृशाः। तानस्मान् बृहद्भ्यः महद्भ्यः पर्वतेभ्योऽप्यधिकान्सुवसि प्रेरयसि। किं च एभ्यः यजमानेभ्यः पस्त्यावतः गृहवतः क्षयान्निवासान् ग्रामनगरादीन् सुवसि प्रेरयसि। यथायथा पतयन्तः गच्छन्तः प्राणिनस्त्वया वियेमिरे विनियम्यन्ते त्वया ते तव सवाय अनुज्ञायै एवैव एवमेव नियमनमनतिक्रम्य तस्थुः तिष्ठन्ति।

अर्थ—हे सवितः=हे सूर्य इन्द्रज्येष्ठान्=परमैश्वर्ययुक्त तुम ही जिनके ज्येष्ठ हो अथवा इन्द्र जिनका पूज्य है ऐसे हम लोगों को बृहद्भ्यः=महान् पर्वतेभ्यः=पहाड़ों से भी अधिक उच्चतर रूप में सुवसि=प्रेरणा देते हो तथा एभ्यः=इन यजमानों के लिये पस्त्यावतः=

गृह वाले अर्थात् विस्तृत Spacious) त्त्यान=घरों को या ग्रामों अथवा नगरों को (सुवसि) देते हो यथा यथा=जितना ही पतयन्तः=जीवन यापन करने वाले प्राणी तुमसे वियेमिरे=नियम में रखे जाते हैं उतना ही वे ते=तुम्हारे सवाय=आदेश पालन के लिये एव एव=एवमेव बिना किसी नियमातिक्रमण के तस्थुः=अनुशासन में स्थित रहते हैं ।

व्याकरणम्—सुवसि=षूङ् प्राणि प्रसवे आत्मनेपद की जगह छान्दस परस्मैपद मध्यम पुरुष एकवचन । पस्त्यावतः पस्त शब्द से मतुप् प्रत्यय किया गया है, छान्दस दीर्घ हुआ । पतयन्तः=स्वार्थिक णिच् प्रत्यान्त से शतृ प्रत्यय हुआ है । वियेमिरे, तस्थुः ये दोनों रूप यम् और स्था धातु के लिट् लकार के प्रथम पुरुष बहुवचन के हैं ।

विशेषः—इस मन्त्र के सम्बन्ध में अनेक अशंकायें हैं यद्यपि सायण की व्याख्या नैपुण्य (ingenious) पूर्ण है तथापि हृदयङ्गम नहीं सायण के मत में सुमति क्रिया का प्रथम चरण में पर्वतेभ्यः के बाद और पस्त्यावतः के बाद अन्वय किया गया है इन्द्रजेष्ठान शब्द का अर्थ इन्द्र के नेतृत्व वाले (Indra-hed) किया है तथा अधिकान् शब्द का अध्यहार करना पड़ता है । जिसका अन्वय 'पर्वतेभ्यः अधिकान्' इस प्रकार किया गया है परन्तु पीटर्सन के मत में "अधिकान्" विशेषण 'त्त्यान्' का है इस प्रकार यह वाक्य रचना दोषपूर्ण (anacoluthic) है तथा इस वाक्यांश का अर्थ यह हुआ कि तुम हमारे लिए निवास स्थान प्रदान करते हो जोकि अभ्रंकष है और जिनके भाग (Compartment) बहुत बड़े-बड़े हैं । अतः सिद्ध है कि यह पूरा वाक्यांश ऋत्विक् (Priest) या यजमान (Peteren) को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है । आर्य जाति का यह विश्वास है कि देवगण पहाड़ों पर रहते हैं जैसा कि

'गिरिष्ठा' और 'गिरिक्षिते' इत्यादि विशेषणों से स्पष्ट है उस ही भाव को लेकर इस वाक्य की रचना की गयी है। (Pischel) पिशल ने 'पतयन्तो वियेमिरे' का They sprad out their wings while they flew) यह अर्थ किया है जिसका आशय यह है कि पहाड़ों के कभी पंख थे वे उन्हें उड़ते समय फैलाते थे ऐसी ही पौराणिक गाथा भी है।

संहिता-पाठः

६. ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो,
दिवे दिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावा पृथिवी सिन्धु-
रद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥

पद-पाठः

ये । ते । त्रिः । अहन् । सवितरिति । सवासः ।
दिवेऽदिवे । सौभगम् । आऽसुवन्ति ।
इन्द्रः । द्यावापृथिवी । इति । सिन्धुः ।
अत्ऽभिः। आदित्यैः । नः । अदितिः । शर्म । यंसत् ॥६॥

सायण :—ये यजमानाः, हे सवितस्ते त्वदर्थं सवासः सवाः सोमाः। द्वितीयार्थे प्रथमा। सोमान्। यद्वा सवासः सवनानि प्रातरादीनि प्रति त्रिरहन् अभिषुण्वन्ति। न केवलमेकस्मिन्नेवाह्नि सवनत्रयेषु अपि तु दिविदिवे प्रतिदिनं सौभगं सौभाग्य जनकमासुवन्ति अभिषुण्वन्ति । तेभ्यो नोऽस्मभ्यमिन्द्रः शर्म यंसत् यच्छतु । द्यावापृथिव्यौ च 'अद्भिर्विशिष्टा सिन्धुः सिन्ध्वभिमानिदेवता आदित्यैः सहितादितिश्च शर्म यंसत् ॥

व्याख्याः—हे सवितः=हे सूर्य ये=जो यजमान ते=तेरे लिए सवासः=यज्ञों को या प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन एवं सायं सवन नामक तीन सवनों (स्नानों) को अहन्=दिन में त्रिः=तीन बार

आसुवन्ति=अभिषवण करते हैं तथा सौभगम्=सौभाग्य, या अभ्युदय की कामना से दिवे दिवे=प्रतिदिन भी आसुवन्ति=अभिषव (अवभृथ-स्नान) या सोमरस का निष्पादन करते हैं ऐसे नः=हम यजमानों (worshippers) के लिए इन्द्रः=इन्द्र देवता, द्यावा पृथिवी=द्युलोक और पृथिवी लोक वर्ती देवगण या स्वयं द्युलोक या पृथिवीलोक अद्भिः= जलों से युक्त सिन्धुः=समुद्राभिमानी देवता या नदियों का अभिमानी देवता एवं आदित्यै=अपने पुत्रों अर्थात् (अदिति के पुत्रों) आदित्यों वरुण, यम, रुद्र आदि देवगणों के साथ अदितिः=देवमाता या अखण्डित दिव्यशक्ति शर्म=कल्याण या दिव्य सुख यंसत्=प्रदान करे।

व्याकरणम्—त्रिः=त्रि शब्द से 'बार-बार' अर्थ में सुच् प्रत्यय हुआ है। अहन्=अहन् शब्द की सप्तमी का एकवचन है विभक्ति का लुक् 'सुपां सुलुक्' सूत्र से किया गया है। सवासः यह देखने में प्रथमा का बहुवचन है किन्तु इसका अर्थ 'सवान्' द्वितीया बहुवचन में होता है व्यत्यय से द्वितीया बहुवचन के स्थान में प्रथमा बहुवचन हुआ है। सौभगम्=सुभग शब्द से भाव अर्थ में अण् प्रत्यय किया गया है— यद्यपि 'सौभाग्यवत्ता' स्त्री जाति में आशंसित है तथापि भग शब्द के ऐश्वर्य वाची होने से सौभगत्व पुरुषों में भी संभव है। आसुवन्ति- यहाँ विकरण श्नु प्रत्यय की जगह पर व्यत्यय से 'शप्' किया गया है। यंसत्=यह 'यम्' धातु का लेट् लकार का रूप है 'सिब्बहुलं लेटि' से सिप् का आगम होता है—'तिप्' प्रत्यय के इकार का लोप छान्दस है। 'यम्' के स्थान में 'यच्छ' आदेश होता है अतः इस धातु का अर्थ यहाँ 'देना' किया गया है।

विशेष:—'सवासः' को द्वितीयार्थ में प्रथमा मानने की अपेक्षा यदि 'में' की आकांक्षा पूर्ति के लिये 'ते' का अध्यहार कर लिया जावे तो 'ते सवासः'=वे यज्ञ या वे अभिषवण का सौभगं आसुवन्ति' सौभाग्य को उत्पन्न करते हैं यह अर्थ सुसंङ्गत होगा यह पीटर्जन का मत है। इस 'ते' को 'शर्म यंसत्' का भी 'इन्द्रः' आदि की तरह कर्तृपद माना जा सकता है।

मं० ५ सूक्त ८३

पर्जन्य

संहिता-पाठः

१. अच्छा॑ वद त॒वसं॑ गी॒र्भिरा॒भिः
स्तु॒हि प॒र्जन्यं॒ नम॒सा वि॑वास ।
कनि॑क्रदद्वृष॒भो जी॒रदा॑नू
रेतो॑ दधा॒त्योष॑धीषु॒ गर्भ॑म् ॥

पद-पाठः

अच्छ॑ । व॒द । त॒वस॑म् । गीः॒ऽभिः आ॒भिः ।
स्तु॒हि । प॒र्जन्य॑म् । नम॑सा । आ । वि॒वा॒स॒ ।
कनि॑क्रदत् । वृ॒ष॒भः । जी॒रऽदा॑नुः ।
रेतः॑ । द॒धा॒ति॒ । ओष॑धीषु । गर्भ॑म् ॥

परिचय :—इस सूक्त का भूमि का पुत्र अत्रि ऋषि है। पर्जन्य देवता है। १, ५, ६, ७, ८ व १०वें मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है। २, ३, ४ में जगती व ६वें मन्त्र में अनुष्टुप् छन्द है।

विशेषः—वर्षा चाहने वाले व्यक्ति को उपवास रख कर गीले कपड़े पहिन कर इस सूक्त का ११ वार पाठ, यज्ञ व ब्राह्मण भोजन करना कराना चाहिए।

सायणः—हे स्तोतस्तवसं बलवन्तं पर्जन्यमच्छाभिप्राप्यवद प्रार्थय। पर्जन्य शब्दो यास्केन बहुधा निरुक्तः। पर्जन्य-स्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्य परोजेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता रसानामिति—आभिर्गीर्भिस्तुतिवाग्भिः स्तुहि नमसा अन्नेन हविर्लक्षणेन आविवास सर्वतः परिचरः। यः पर्जन्यः

वृषभः अपां वर्षिता. जीरदानुः क्षिप्रदानः कनिक्रदत् गर्जन्-शब्दं कुर्वन्नोषधीषु गर्भं गर्भस्थानीयं रेतः उदकं दधति स्थापयति तम् स्तुहि ।

संस्कृतव्याख्याः—हे स्तोतः, तवसम्=बलवन्तम् पर्जन्यम्, अच्छा=अभिप्राप्य, वद=प्रार्थय, आभि=एताभिः, गीर्भिः=स्तुतिवाग्भिः, स्तुहि=नुहि, नमसा=अन्नेन (हविर्लक्षणेन) । आ विवास=सर्वतः परिचर, (यः पर्जन्यः), वृषभः=अपां वर्षिता, जीरदानुः=क्षिप्रदानः, कनिक्रदत्=गर्जनशब्दं कुर्वन् , ओषधीषु=क्षेत्ररूढासु , गर्भम्=गर्भस्थानीयं, रेतः=उदकम् दधाति =स्थापयति ।

हिन्दीव्याख्याः—(हे स्तोता तू)तवसम् = बलवान् , पर्जन्यम् = मेघ के, अच्छा = अभिमुख जा कर, वद = प्रार्थना कर । आभिः = इन, गीर्भिः = स्तुतियों से, स्तुहि = स्तुति कर । नमसा = हवि रूपी अन्न से, आविवास=चारों ओर से उस पर्जन्य की सेवा कर । जो पर्जन्य वृषभः= जलों का बरसाने वाला, जीरदानुः = जल्दी (जल का) दान देने वाला, कनिक्रदत्=गर्जन शब्द को करता हुआ, ओषधीषु=ओषधियों में, वनस्पतियों में, गर्भम्=गर्भ के समान मध्यवर्ती, रेतः=जल को, दधाति =स्थापित करता है । उस की स्तुति करो ।

मैक्डानल के मत में 'नमसा' का अर्थ नमस्कार (obeisance) है । 'कनिक्रदत्'=डकारता हुआ (bellowing) (साँड) अर्थ किया है । 'गर्भम्' बीज (seed) अर्थ किया है । 'रेतः' वीर्य के कीटाणु (germs) किया है ।

व्याकरणम् —पर्जन्यः = पृणान् जनयतीति पर्जन्यः, अविवासः = आविवासय, एयन्त, लोट् मध्यम पुरुष, एकवचन, णि लोप । कनिक्रदत्=

अतिशयेन क्रन्दन्तीति लट् को शतृ आदेश, उपधा को नीक् आगम। वृषभः=वृष् धातु से कभच् प्रत्यय औणादिक हुआ है। 'जीरदानु' में जीव् धातु से 'रदानुक्' प्रत्यय हुआ है।

विशेष :—"विवास" इस शब्द का अर्थ निघण्टु के अनुसार परिचरण या "worship" है। इस धातु का प्रयोग प्रायः 'आङ् पूर्वक ही होता है किन्तु ६।५१।८ में विवास का अर्थ वर्जन भी है। राथ ने विवास का Seek to win, seek to bring, to homage, to entice किया है 'जीरदानु' शब्द का अर्थ quick-dropping है।

संहिता-पाठः

२. वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो
विश्वं बिभाय भुवनं महावधात्।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो
यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः॥

पद-पाठः

वि। वृक्षान्। हन्ति। उत। हन्ति। रक्षसः।
विश्वम् बिभाय। भुवनम्। महाऽवधात्।
उत। अनागाः। ईषते। वृष्ण्यऽवतः।
यत्। पर्जन्यः। स्तनयन्। हन्ति। दुःकृतः॥

यणः—अयं मन्त्रो निरुक्ते व्याख्यातः। तदेवात्र लिख्यते। विहन्ति वृक्षान् विहन्ति च रक्षांसि सर्वाणि चास्माद् भूतानि बिभ्यति महावधात् महान् ह्ययस्य वध। अप्यनपराधो भीतः पलायते वर्षकर्मवतो यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः पापकृत इति।

संस्कृतव्याख्याः—पर्जन्यः=मेघः, वृक्षान्=पादपान्, विहन्ति =विनाशयति करका पातेन। उत्त=अपि च रक्षसः=सर्वाणि रक्षांसि च विहन्ति, अस्माद् हेतोः विश्वं=सर्वं भुवनं=जगत् विभाय=अभैषीत्, विभेति वा। महावधात्=अविचारित विनाशात् (हेतोः) अनागाः=निरपराधोऽपि उत=च मीनः सन् पलायते। यत्=यच्च पर्जन्यः वृष्ण्यावतः=वृषलवत् पापकर्म कारिणः पुंसः ईषते=ईष्टे, शास्ति। किञ्च स्तनयः=भर्त्सयन्निव गर्जनेन दुष्कृतः=पापकृतः हन्ति=मारयति।

हिन्दीव्याख्याः—(यह पर्जन्य) वृक्षान्=पेड़ों को, विहन्ति=ओले बरसा कर नष्ट करता है, उत=और, रक्षसः=हानिकारक जन्तुओं को भी नष्ट करता है, विश्वम्=सारा, भुवनम्=संसार अर्थात् प्राणिमात्र, महा-वधात्=पर्जन्य के द्वारा की गई अतिवृष्टि से या वर्षा के बिल्कुल न पड़ने से हुई अनावृष्टि से, बिभाय=डरता है, उत=और, अनागाः=पक्षपात शून्य या पापरहित यह मेघ, वृष्ण्यावतः=पापियों का, ईषते=शासन करता है, यत्=जो कि, पर्जन्यः=मेघ, स्तनयन्=गर्जन करता हुआ, दुष्कृतः= अनावृष्टि से उत्पन्न दुःखों को, हन्ति=नष्ट कर देता है।

व्याकरणम्—वृष्ण्यावतः=वृषणं पापं इच्छतीति वृष्ण्यः, पकाराकार लोपः यकाराकारस्य च दीर्घश्छान्दसः।

अनागाः=आगस् शब्देन नञ् समासः।

विशेषः—महावध वज्र के द्वारा किया गया वध कहलाता है। 'वृष्ण्यावान्' का अर्थ बलवान् है। 'दुष्कृतः' शब्द का अर्थ दुष्कर्म-कारी है। यहां पर यह अर्थ ठीक नहीं बैठता न नवम मन्त्र में किया गया इस शब्द का प्रयोग ही ठीक बैठता है, किन्तु क्रान्तदर्शी कवि ने

केवल विद्युत्पात करने के कारण मेघों को दुष्कृत् कहा है। डाक्टर बूलर ने मेघाभिमानी दैत्यों को लक्ष्य करके दुष्कृत् शब्द का प्रयोग किया है।

संहिता-पाठः

३. रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्न्
आविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते
यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१ नभः ॥

पद-पाठः

रथीऽइव । कशया । अश्वान् । अभिऽक्षिपन् ।
आविः । दूतान् । कृणुते । वर्ष्यान् । अह ।
दूरात् । सिंहस्य । स्तनथाः । उत् । ईरते ।
यत् । पर्जन्यः । कृणुते । वर्ष्यम् । नभः ॥

सायणः—रथीव=रथस्वामीव। स यथा कशया अश्वानभिक्षिपन् दूतान् भटानाविष्करोति तद्वदसौ पर्जन्योऽपि कशयाश्वानभिक्षिपन्नभिप्रेरयन् वर्ष्यान् वर्षकान् दूतान् दूतवद् वृष्टिप्रेरकान् मेघान् मरुतो वा आविः कृणुते प्रकटयति। अहेति पूर्णः। एवं सति सिंहस्य। सहतेर्हिंसते वा शब्दकर्मणः सिंहशब्दः। अवर्षणेनाभिभवितुः शब्दयितुर्वा मेघस्य स्तनथा गर्जन् शब्दा पूरात् उत ईरते उदगच्छन्ति। कदा। यत् यदा पर्जन्यो नभोऽन्तरिक्षं वर्ष्यं वर्षोपेतं कृणुते करोति तदा।

संस्कृतव्याख्या:—रथीव=रथस्वामीव, कशया अश्वान् (इव) अभिक्षिपन्, दूतान्=भटान्, आविष्करोति, तद्वदसौ पर्जन्योऽपि, मेघान्, अभिप्रेरयन् वर्ष्यान्=वर्षकान्, दूतान्=दूत-

वत्, आविः कृणुते=प्रकटयति, अह इति पूरणः, (एवं सति) सिंहस्य = अवर्षणेनाभिभवितुः मेघस्य, स्तनथाः=गर्जनशब्दाः, दूरात् उदीरते=उद्गच्छन्ति, (कदा) यत् =यदा, पर्जन्यः, नभः= अन्तरिक्षम् ,वर्ष्यम् =वर्षोपेतम्, कृणुते=करोति ।

हिन्दीव्याख्या :—रथीव=सारथि के समान, कशया=चाबुक से, अश्वान्=घोड़ों को, अभिक्षिपन्=प्रेरणा देता हुआ, भगाता हुआ यह प ंन्य, अह=निश्चय करके, वर्ष्यान्=वृष्टि करने वाले, दूतान्= योद्धा जैसे मेघों को, आविः कृणुते=आकाश में चारों ओर प्रकट करता है । सिंहस्य=सिंह के समान गर्जन करने वाले मेघ के, स्तनथाः= गर्जने के शब्द, दूरात्=दूर से, उदीरते=सुनाई पड़ते हैं । यत् =जब कि, पर्जन्य = मेघ, नभ=आकाश को, वर्ष्यम् = वर्षायुक्त, कृणुते = बनाता है ।

व्याकरणम्—'कृणुते' यहाँ छान्दस विकरण प्रत्यय का व्यत्यय किया गया है । 'स्तनथा' स्तन शब्द से 'थन्' प्रत्यय करने पर स्तनथ' बनता है । जिसका यह प्रथमा का बहुवचन है ।

विशेषः—इस मन्त्र में मेघ का मानवीकरण किया गया है और उसे एक वीर पुरुष के रूप में चित्रित किया है ।

संहिता-पाठः

४. प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत
उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते
यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥

पद-पाठः

प्र । वाताः । वान्ति । पतयन्ति । विऽद्युतः ।
उत् । ओषधीः । जिहते । पिन्वते । स्वः रिति स्वः ।
इरा । विश्वस्मै । भुवनाय । जायते ।
यत् । पर्जन्यः । पृथिवीम् । रेतसा । अवति ॥

संस्कृतव्याख्याः—प्र वान्ति वाताः (वृष्टचर्थम्), पतयन्ति=गच्छन्ति, समन्तात् संचरन्ति, विद्युतः, ओषधीः=ओषधयः, उत् जिहते=उद्गच्छन्ति प्रवर्धन्ते, स्वः=अन्तरिक्षम्, पिन्वते=क्षरति, इरा=भूमिः, विश्वस्मै=सर्वस्मै, भुवनाय=सर्वजगद्धिताय, जायते=समर्था भवति, कदा इत्याह यत्=यदा, पर्जन्यः=देवः, पृथिवीम्, रेतसा=उदकेन, अवति=रक्षति ।

सायणः—प्रवान्ति वाता वृष्टचर्थं पतयन्ति गच्छन्ति समन्तात् संचरन्ति विद्युतः ओषधीः ओषधयः उत् जिहते उद्गच्छन्ति प्रवर्धन्ते स्वरन्तरिक्षं पिन्वते क्षरति । इरा भूमिर्विश्वस्मै सर्वस्मै भुवनाय सर्वजगद्धिताय जायते समर्था भवति । कदैवमिति । यत यदा पर्जन्यो देवः पृथिवीं रेतसा उदकेन अवति रक्षति अभिगच्छति वा तदैव भवति ।

हिन्दीव्याख्याः—वाताः=हवाएँ, प्रवान्ति=वर्षा के लिए चलने लगती हैं, विद्युतः=बिजलियाँ, पतयन्ति=गिरती हैं, चमकती हैं, ओषधीः=वनस्पतियाँ, उज्जिहते=अंकुरित होने लगती हैं या बढ़ना शुरू कर देती हैं । स्वः=अन्तरिक्षलोक, अर्थात् आकाश, पिन्वते=जल की बूँदें टपकाने लगता है । इरा=पृथिवी, विश्वस्मै=सारे, भुवनाय=संसार के लिए अर्थात् संसार के कल्याण के लिए, जायते=समर्थ हो जाती है,

यत्=जब कि पर्जन्यः=मेघ, पृथिवीं=भूलोक को, रेतसा=अपने जल से, अवति=रक्षा करता है अर्थात् सींचता है।

मैक्डानल के मत में 'पिन्वते' का अर्थ टपकना नहीं किन्तु पूर्ण जो जाना (over flows) है। अवति का अर्थ रक्षा करना नहीं किन्तु 'अंकुरयति' उत्पत्ति के लिए पृथ्वी को प्रेरणा करना (quicken) किया है।

व्याकरणम्—'पतयन्ति'=स्वार्थ में णिच् प्रत्यय होता है। जिहते= ओहाङ् गतौ लट् प्रथम पुरुष बहुवचन।

विशेषः—'इरा' शब्द ५।६३।६ में अन्न' अर्थ सायण ने किया है। ५।६६।२ में 'इरा क्षीर लक्षणा तद्वत्यः' यह व्याख्या की है। 'इरा' शब्द से इच्छा शब्द नितान्त भिन्न है। इस सूक्त के २।३।४ मन्त्रों में 'यत्पर्जन्यः' शब्द का प्रयोग है, वही मानो इन मन्त्रों की टेक है।

संहिता-पाठः

५. यस्य॑ व्र॒ते पृ॑थि॒वी नन्न॑मीति॒
यस्य॑ व्र॒ते श॒फव॒ज्जर्भु॑रीति।
यस्य॑ व्र॒ते ओष॑धीर्वि॒श्वरू॑पाः
स नः॑ पर्जन्य॒ महि॒ शर्म॑ यच्छ॥

पद-पाठः

यस्य॑। व्र॒ते। पृ॒थि॒वी। नन्न॑मीति।
यस्य॑ व्र॒ते। श॒फऽव॑त्। जर्भु॑रीति।
यस्य॑। व्र॒ते। ओष॑धीः। वि॒श्वऽरू॑पाः।
सः। न॒ः। प॒र्जन्य॒। महि॑। शर्म॑। य॒च्छ॒॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—यस्य=पर्जनस्य, व्रते=कर्मणि, पृथिवी, तन्नमीति=अत्यर्थं नमति, यस्य व्रते, शफवत्=पादोपेतं

गवादिकम्, जर्भुरीति=भ्रियते, पूर्यते गच्छति वा यस्य व्रते, ओषधीः=ओषध्यः, विश्वरूपाः=भवन्ति, पर्जन्य! सः त्वम्, नः=अस्मभ्यम्, महि शर्म=महत् सुखम्, यच्छ=प्रयच्छ।

यस्य=जिस मेघ के, व्रते=कर्म के लिए, पृथिवि=भूलोक, नन्नमीति=अत्यधिक झुक जाता है, यस्य=जिस मेघ के, व्रते=बरसाने रूपी कर्म के लिये, शफवत्=खुर के परिमाण से युक्त स्थान की तरह सारी पृथिवी, जर्भुरीति=जल से पूर्ण हो जाती है, यस्य=जिस मेघ के, व्रते=पानी बरसाने की, विश्वरूपाः=पानी बरसाने वाली, ओषधीः=वनस्पतियाँ, अंकुरित हो जाती हैं, सः=ऐसे, हे पर्जन्य=हे मेघो, तुम नः=हमारे लिए, महि=अत्यधिक, शर्म=सुख को, यच्छ=प्रदान करो।

मैक्डानल ने 'व्रते' का अर्थ=(ordinance) किया है। 'शफवत्' जर्भुरीति, इस वाक्य का खुर वाले प्राणी कूदने लगते हैं (hoofed animals leap about) किया है। 'शर्म' का अर्थ खुख नहीं किया किन्तु आश्रय (shelter) किया है।

सायणः—यस्य पर्जन्यस्य व्रते कर्मणी पृथिवी नन्नमीति अत्यर्थं नमति सर्वेषामधो भवति। यस्य व्रते शफवत् पादोपेतं (शफवत् शफवत्या?) गवादिकं जर्भुरीति भृयते पूर्यते गच्छतीति वा यस्य व्रते कर्मणि ओषधीरोषध्योः विश्वरूपा नानारूपा भवन्ति हे पर्जन्य! स महांस्त्वं नोऽस्मभ्यं महि शर्म महत्सुखं यच्छ प्रयच्छ।

व्याकरणम्—'नं नमीति' नम् यङ् लुगन्त, लट्, एकवचन। जर्भुरीति, भृञ् भरणे यङ् लुगन्त, लट्, एकवचन। 'जर्भुरीति' की जगह भकार में उकारागम छान्दस है।

विशेष:—सायण ने 'जर्भुरीति' भुर् धातु से निष्पन्न माना है। ५।६।७ में 'भुरन्ते' का अर्थ सायण ने 'इच्छन्ति' किया है। यह शब्द ऋग्वेद में २।२।५, ५।५४।११ १०।६२।१ में पाया जाता है। १।१६३।११ में 'जर्भुराणा' यह प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ 'पूर्यमाण' किया गया है। इसकी सिद्धि 'भुरण धारण पोषणयोः," धातु से भी की जाती है। जिस का वर्णन सायण ने १।११७।११वें मन्त्र की व्याख्या में किया है।

'भुरण्यु' शब्द शीघ्रवाची है, निघण्टु १।१५ में ऐसा ही लिखा है। तथा यह शब्द प्रथम मण्डल के १।६८, १ व १२१ व ५ में तथा ४।६२।७ में १०।४६।७ व १२३, व ६ में पाया जाता है। इन सब स्थलों पर प्रायः 'भुरति' क्रिया का अर्थ गतिपरक ही किया गया है। 'महि' शब्द 'महत्' वाची है।

संहिता-पाठः

६. दि॒वो नो॑ वृ॒ष्टिं म॑रुतो ररीध्वं॒
प्र पि॑न्वत॒ वृष्णो॒ अश्व॑स्य॒ धाराः॑।
अ॒र्वाङे॒तेन॑ स्तनयि॒त्नुनेह्य॒
अ॒पो नि॑षि॒ञ्चन्नसु॑रः पि॒ता नः॑ ॥

पद-पाठः

दि॒वः । न॒ः । वृ॒ष्टिम् । म॒रु॒तः । र॒री॒ध्व॒म् ।
प्र । पि॒न्व॒त॒ । वृष्णः॑ । अश्व॑स्य । धारा॑ः ॥
अ॒र्वाङ् । ए॒तेन॑ । स्त॒न॒यि॒त्नुना॑ । आ । इ॒हि॒ ।
अ॒पः । नि॒ऽसि॒ञ्चन् । असु॑रः । पि॒ता । न॒ः ॥

सायणः—हे मरुतः ! यूयं दिवोऽन्तरिक्षसकाशाद् नोऽस्मदर्थं वृष्टिं ररीध्वं दत्तः। वृष्णः वर्षकस्य अश्वस्य व्यापकस्य मेघस्य सम्बन्धिन्यो धाराः उदकधारा प्र पिन्वत प्रक्षरतः। हे पर्जन्य ! त्वमेतेन स्तनयित्नुना गर्जता मेघेन सह अर्वाङ् अस्मादभिमुखमा इहि आगच्छ। किं कुर्वन्। अपः अम्भांसि निषिञ्चन् स देवः असुर उद्कानां निरसितापि सन् नोऽस्माकं पिता पालकश्च।

संस्कृतव्याख्या :— हे मरुतः ! यूयम्, दिवः=अन्तरिक्ष-सकाशात्, नः=अस्मदर्थम्, वृष्टिम्, ररीध्वम्=दत्त, वृष्णः=वर्षकस्य, अश्वस्य=व्यापकस्य मेघस्य, धाराः=उदकधारा, प्र पिन्वत=प्रक्षरत, हे पर्जन्य ! त्वम्, एतेन स्तनयित्नुना=गर्जता मेघेन सह, अर्वाङ्=अस्मदभिमुखम्, एहि=आगच्छ, किं कुर्वन्, अपः=अम्भांसि, निषिञ्चन्, असुरः=उदकानां निरसितामपि, नः=अस्माकम्, पिता–पालकः (अस्ति)।

हि० व्या०— मरुतः=हे मरुद्गणो ! दिवः=अन्तरिक्ष से, नः हमारे लिये, वृष्टिम्=वर्षा को, ररीध्वम्=प्रदान करो, वृष्णः=वर्षा करने वाले, अश्वस्य=व्यापक मेघ की, धाराः=धाराओं को, प्रपिन्वत=गिराओ, टपकाओ। हे पर्जन्य ! तू इस, स्तनयित्नुना=गर्जते हुए मेघ के साथ, अर्वाङ्=हमारे सम्मुख, एहि=आ, और तू, अपः=जल को, निषिंचन्=सींचता हुआ, असुरः=जलों का विखेरने वाला या उनको प्रेरणा करने वाला होता हुआ, नः=हम लोगों का, पिता पालक है।

मैक्डानल ने 'अश्वस्य' का अर्थ घोड़ा (stallion) किया है। 'अर्वाङ्' का अर्थ (higher) ऊँचा किया है।

व्याकरणम्—'ररीध्वम्'—रीङ् गतौ से यङ् लुक् विधिलिङ् मध्यम पुरुष बहुवचन, उपधा के ईकार को अकार आदेश। 'स्तनयित्नुनाः 'स्तन्' णिच्, इत्नुच्।

संहिता-पाठः

७. अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा
उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं
समा भवन्तूद्वतो निपादाः॥

पद-पाठः

अभि। क्रन्द। स्तनय। गर्भम्। आ। धाः।
उदन्ऽवता। परि। दीय। रथेन।
दृतिम्। सु। कर्ष। विऽसितम्। न्यञ्चम्।
समाः। भवन्तु। उत्ऽवतः। निऽपादाः॥

सायणः—अभि भूम्यभिमुखं क्रन्द शब्दय। तदेव पुनरुच्यते दार्ढ्याय। स्तनय गर्ज। गर्भं गर्भस्थानीयमुदकमोषधीषु आधाः आधेहि। तदर्थमुदन्वता उदकवता रथेन परिदीय परितो गच्छ। दृतिं दृतिवदुदकधारकं मेघं विषितं विशेषेण सितं बद्धं न्यञ्चं न्यक् अधोमुखं सु सुष्ठु कर्ष आकर्ष वृष्ट्यर्थम्। यद्वा विषितं विमुक्तबन्धनमेवं कर्ष। एवं कृते उदवतः ऊर्ध्ववन्तं उन्नत-प्रदेशा निपादाः न्यग्भूतपादाः निकृष्टपादा वा निम्नोन्नतप्रदेशाः समा एकस्था भवन्तु उदकपूर्णा भवन्त्वित्यर्थः।

संस्कृतव्याख्या:—अभि=भूम्यभिमुखम्, क्रन्द=शब्दय, स्तनय=गर्ज, गर्भम्=गर्भस्थानीयमुदकम्, आ धाः=(ओषधीषु)

आधेहि, (तदर्थम्) उदन्वता=उदकवता, रथेन, परिदीय=परितो गच्छ, दृतिम्=दृतिवदुदकधारकं मेघम्, विषितम=विशेषेण सितं बद्धम्, न्यञ्चम्=अधोमुखम्, सु कर्ष=सुष्ठु आकर्षय (वृष्टयर्थम्), (एवं सति) उद्वतः=ऊर्ध्ववन्तः उन्नतप्रदेशाः, निपादाः=न्यग्भूत-पादाः, समाः=एकस्थाः, भवन्तु=उदकपूर्णा भवन्तु।

हिन्दीव्याख्याः—हे पर्जन्य ! अभि=पृथिवी के सामने, क्रन्द=गर्जन करो, और स्तनय=बार-बार गर्जन करो। गर्भम्=अपने मध्य स्थित तुम जल को, आधाः=ओषधियों को स्थापित करो, उदन्वता=जल वाले, रथेन=रथ से, परिदीय=सब तरफ गमन करो, दृतिम्=मशक के समान जल को धारण करने वाले मेघ को, जो विसितम्=अच्छे प्रकार बंधा हुआ है उसे, सु=अच्छे प्रकार, कर्ष=हे मरुद्गणों खींचो या विषितम्=अच्छे प्रकार बन्धन से रहित मेघ को बना कर वर्षा के लिए प्रेरित करो, तथा न्यञ्चम्=नीचे को, जल देने के लिए मेघ को प्रेरित करके, उद्वतः=उन्नत स्थानों को पानी भर जाने से, निपादाः=नीचा स्थान बना कर सब पृथिवी स्थल, समाः=एक से, अर्थात् जलपूर्ण, भवन्तु=हो जावें।

मैक्डानल के मत में 'निपादाः' का अर्थ (Valleys) खाईयाँ घाटियाँ है।

व्याकरणम्—'उदन्वता' उदक मतुप्, उदक को उदन् आदेश।

विशेषः—'निपादाः' 'नि' पद्+अण्। यह शब्द बहुत कम प्रयुक्त है। इस मन्त्र में मेघों को मशक से उपमित किया है, तथा उन्नत व अवनत प्रदेशों को समता यहाँ जलसंभृत समतया दृश्यमान जगत् से की गई है।

संहिता-पाठः

८. महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च
स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि
सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥

पद-पाठः

महान्तम् । कोशम् । उत् । अच । नि । सिञ्च ।
स्यन्दन्ताम् । कुल्याः । विऽसिताः । पुरस्तात् ।
घृतेन । द्यावापृथिवी इति । वि । उन्धि ।
सुऽप्रपानम् । भवतु । अघ्न्याभ्यः ॥

सायणः—हे पर्जय ! त्वं महान्तं प्रवृद्धं कोशं कोशस्थानीयं मेघमुत् अच । उद्गच्छ उद्गमय वा । तथा कृत्वा निषिञ्च नीच्चैः क्षारय । कुल्याः नद्यो विषिता विष्यूताः सत्यः स्यन्दन्तां प्रवहन्तु पुरस्तात्पूर्वाभिमुखम् । प्रायेण नद्यः प्राच्य स्यन्दन्ते । घृतेन उदकेन द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं च वि उन्धि=क्लेदयात्यात्यधिकम् । अघ्न्याभ्यः=गोभ्यः सुप्रपाणं सुष्ठु प्रकर्षेण पातव्यमुदकं भवतु ।

संस्कृतव्याख्या:—हे पर्जन्य ! त्वम्, महान्तम्=प्रवृद्धम्, कोशम् कोशस्थानीयं मेघम्, उदच=उद्गमय, निषिञ्च=नीचैः क्षारय, कुल्याः=नद्यः, विषिताः=विष्यूताः, स्यन्दन्ताम्=प्रवहन्तु, पुरस्तात् = पूर्वाभिमुखम्, घृतेन = उदकेन, द्यावापृथिवी=दिवं

पृथिवीं च, व्युन्धि=क्लेदय (अत्यधिकम्) अघ्न्याभ्यः = गोभ्यः, सुप्रपाणम्=सुष्ठु प्रकर्षेण पातव्यम्, भवतु।

हिन्दीव्याख्याः—हे पर्जन्य! तू महान्तम् =बढ़े हुए, कोशम्= कोश के समान सुरक्षित जल-समुदाय वाले मेघ को, उदच=जल बरसाने के लिए आकाश में उठा दे, तथा निषिञ्च=मेघ से जल को नीचे गिरा दे, कुल्याः=नदियाँ विषिताः=अच्छी प्रकार से भरी हुई, पुरस्तात् =पूर्व की ओर, स्यन्दन्ताम् =बहें, अर्थात् नदियों में खूब जल बढ़े। घृतेन=जल से, द्यावापृथिवी-द्युलोक और पृथिवीलोक को, वि-उन्धि (व्युन्धि)=विशेषतया गीला करो, तथा इस प्रकार अघ्न्याभ्यः=गौ आदि पशुओं के लिए, सुप्रपाणम् =अच्छे प्रकार पीने योग्य जल, भवतु= हो जावे।

व्याकरणम्—'अच' अञ्चु गतौ लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन नकारलोप छान्दस है। 'उन्धि' उन्दी 'क्लेदने' लोट् मध्यमपुरुष एकवचन।

विशेषः—मैक्डानल ने 'कोश' का अर्थ डोल (bucket) किया है तथा 'घृतेन' का अर्थ लोकप्रसिद्ध घी ही अर्थ कर दिया है। 'व्युन्धि' का तथा अघ्न्याभ्यः' का उच्चारण 'वि-उन्धि' तथा 'अघ्नि-आभ्यः इस प्रकार होगा।

संहिता-पाठः

९. यत्पर्जन्य कनिक्रदत्
स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते
यत्किं च पृथिव्यामधि॥

पद-पाठः

यत् । पर्जन्य । कनिक्रदत् ।
स्तनयन् । हंसि । दुःऽकृतः ।
प्रति । इदम् । विश्वम् । मोदते ।
यत् । किम् । च । पृथिव्याम् । अधि ॥

सायणः--हे पर्जन्य ! यत् यदा त्वं कनिक्रदत् अत्यर्थं शब्दयन् स्तनयन् दुष्कृतः पापकृतो मेघान् हंसि विदारयसि तदानीमिदं विश्वं जगत् प्रतिमोदते । विश्वंविशेष्यते । यत्किञ्च पृथिव्यामधि भूम्यामधि यत्चराचरं विश्वं मोदते । हृष्यति । वृष्टेः सर्वजगत-प्रीतिकारणत्वं प्रसिद्धम् ।

संस्कृतव्याख्या :—हे पर्जन्य ! यत्=यदा त्वम्, कनिक्रदत=अत्यर्थं शब्दयन् , स्तनयन् , दुष्कृतः=पापकृतो मेघान हंसि=विदारयसि, (तदानीम्), इदम् विश्वम्, प्रति मोदते, यत्कि च, पृथिव्यामधि=भूम्यामधिष्ठितम्, (तत्सर्वं मोदते इत्यर्थः) ।

हे पर्जन्य ! =हे मेघ !, यत्=जब, तू कनिक्रदत्=अत्यधिक गरजता हुआ, स्तनयन्=बिजली कड़काता हुआ, दुष्कृतः=जल न बरसाने से पापी मेघों को, हंसि=मारता है, विदीर्ण करता है, तब इदम्=यह, विश्वम्=सारा संसार, प्रतिमोदते=अत्यन्त प्रसन्न होता है, तथा यत् किंच =जो कुछ, अधि=पृथिव्याम्=पृथिवीलोक पर स्थित चराचर जगत् है, वह भी प्रतिमोदते=प्रसन्न होता है ।

व्याकरणम्—'कनिक्रदत्' इसका दूसरा रूप 'कनिक्रत्' बनता है । इसकी सिद्धि की जा चुकी है । देखिये इस ही सूक्त का १म मन्त्र ।

विशेषः—इस मन्त्र की विशेषता मन्त्र दो की व्याख्या में वर्णित की जा चुकी है।

संहिता-पाठः

१०. अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कम्
उत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥

पद-पाठः

अवर्षीः । वर्षम् । उत् । ऊं । इति । सु । गृभाय ।
अकः । धन्वानि । अतिऽएतवै । ऊं इति ।
अजीजनः । ओषधीः । भोजनाय । कम् ।
उत । प्रऽजाभ्यः । अविदः । मनीषाम् ॥१०॥

सायणः—इयमति वृष्टि विमोचनी । हे पर्जन्य ! त्वमवर्षीः वृष्टवानसि वर्षमुत् उ+पु+गृभाय उत्कृष्टं सु सुष्ठु गृभाय गृहाण परिहरेत्यर्थः । धन्वानि निरुदकप्रदेशान् अकः जलवतः कृतवानसि । किमर्थम् । अत्येतवा । उ अतिक्रम्यगन्तुम् । ओषधीरजीजन उत्पादय किमर्थम् ? भोजनाय धनाय भोगाय वा । कमित्ययं शिशिरं जीवनाय कमितिवत् पादपूरणः उत् अपि च प्रजाभ्य सकाशाद् मनीषां स्तुतिमविदः प्राप्तवानसि । इति ॥

संस्कृतव्याख्या:—हे पर्जन्य ! त्वम, अवर्षीः=वृष्टवानसि, वर्षमुदु षू गृभाय=उत्कृष्टं सुष्ठु गृहाण, धन्वानि=निरुदकप्रदेशान्, अकः=जलवतः कृतवानसि । किमर्थमित्याह— अत्येतवा उ=अतिक्रम्य गन्तुम्, तानि जलानि नावादिनापार्याणीति शेषम्।

ओषधीः, अजीजनः=उदपादयः, (किमर्थम्) भोजनाय=धनाय भोगाय वा, कम् = (पादपूरणः), उत=अपि च, प्रजाभ्यः सकाशात्, मनीषाम्=स्तुतिम्, अविदः=प्राप्तवानसि ।

हिन्दी व्याख्याः—यह ऋचा अतिवृष्टि को दूर करने वाली है। हे पर्जन्य ! तू वर्षम्=वृष्टि को, अवर्षीः=बरसा चुका है, अब इस वृष्टि को उत्=अच्छी तरह, उ=निश्चय से, सु=दृढ़ता के साथ, गृभाय= ग्रहण कर, रोक ले, धन्वानि=मरु प्रदेशों को, तू ने अकः=जल (कर दिया) वाला बना दिया है और उन्हें अत्येतवै=जाकर अतिक्रमण करने योग्य, उ=भी बना दिया है, अर्थात् मरुस्थलों में भी जल के कारण प्राणी यात्रा के लिए निकलने लगे हैं, तथा ओषधीः=ओषधियों को भोजनाय=भोग के लिए, अजीजनः=उत्पन्न किया है, इसी कारण से प्रजाभ्यः=प्राणियों से, मनीषाम् = स्तुति को, उत=भी, अविदः=प्राप्त कर चुके हो। यहाँ 'कम्' शब्द केवल पादपूर्ति के लिए है, अतः निरर्थक है।

मैक्डानल ने 'मनीषाम्' का अर्थ मन्त्र (hymn) किया है।

व्याकरणम्—'गृभाय' में 'छन्दसि शायजपि' इस सूत्र में शानच् की जगह शायच् प्रत्यय हुआ। 'अविदः विद् लृ लाभे—लङ्, मध्यम पुरुष, एकवचन।

विशेष:—'अकः धन्वान्यत्येतवा उ' यह वर्णन उस नदी के दल-दल का प्रतीत होता है जिन के पार उतरने में कठिनता होती है। 'ओषधि' शब्द अन्न तथा अन्य भोज्य वस्तु वाची है।

'मनीषाम्' पद का अर्थ सायण ने स्तुति किया है। बूलर ने भी यही माना है। किन्तु म्योर ने 'कामना' अर्थ मानते हुए 'And thou hest fulfilled the desires of living creatures' किया है।

पूषासूक्त

संहिता-पाठः

१. वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये।
धिये पूषन्नयुज्महि ॥

पद-पाठः

वयम्। ऊँ इति। त्वा। पथः। पते। रथम्। न। वाजऽसातये।
धिये। पूषन्। अयुज्महि ॥१॥

सायणः— हे पथस्पते मार्गस्य पालयितः पूषन् धिये कार्मार्थं वाजसातये अन्नस्य लाभाय च वयं रथं न युद्धे रथमिव त्वा त्वामयुज्महि युञ्ज्महि अस्मदभिमुखं कुर्मः। उ इति पूरकः ॥

पूषा क्या है

यहां पूषा शब्द का अर्थ 'सूर्य' प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'पुष्णाति स्वा श्रितान् इति पूषा' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो व्यक्ति ग्रामाधिपति या जनपदाधिपति होते हुए अपनी प्रजा के गोधन या अश्वादिधन की पुष्टि करता है—वह व्यक्ति 'पूषा है' इस दृष्टि से सारे सूक्त का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

परिचय:— इस सूक्त का भरद्वाज ऋषि है। पूषा देवता है। 'यां पूषन्' इत्यादि आठवें मन्त्र में अनुष्टुप् छन्द है, शेष मन्त्रों में गायत्री छन्द है।

पदार्थ:—हे पथस्पते! मार्ग रक्षक। पूषन्=हे पूषा नामक देवता! धिये=कर्म सम्पादन के लिए, वाजसातये=अन्न लाभ के लिए, वयम्=

हम लोग, रथं न=(रणाङ्गण में) रथ की तरह, त्वा=तुझे, अयुज्महि= प्रयुक्त करते हैं, अभिमुख करते हैं, 'वयम्' के बाद आया 'उ' केवल पाद पूरणार्थक है।

व्याकरणम् — 'अयुज्महि' यह प्रयोग 'अयुञ्ज्महि' के स्थान पर हुआ है अतएव सायण ने 'अयुञ्ज्महि' को लिखकर इसकी व्याख्या की है।

विशेष: — पथस्पते ! यह हे पूषन' इस सम्बोधन का विशेषण है, इसी प्रकार 'वसो सखे' इत्यादि प्रयोग भी होते हैं। 'पथस्पते' पादमध्य गत है अतः वह अपना स्वर जैसा होना चाहिऐ नहीं रखता। अर्थात् पादादि में होता तो आद्युदात्त होता पर वैसा यहां नहीं हो सकता।

संहिता-पाठः

२. अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्।
वामं गृहपतिं नय ॥

पद-पाठः

अभि। नः। नर्यम्। वसु। वीरम्। प्रयतऽदक्षिणम्।
वामम्। गृहऽपतिम्। नय ॥ २ ॥

सायणः—हे पूषन् नर्यं नृभ्यो हितं वसु धनमभि प्राप्तुं वीरं दारिद्रयस्य विशेषेण ईरयितारं गमयितारं प्रयतदक्षिणं पूर्वमन्येभ्योऽपि दत्तधनम्। यद्वा प्रयतं शुद्धं दक्षिणं धनं यस्य तादृशम्। वामं वननीयमं। एवं विधं गृहपतिं गृहस्थं नोस्मान्नय प्रापय।

पदार्थः—हे पूषन्=पूषा देवता, नर्यम्=मनुष्यों के लिए हितकारी, वसु=धन को, अभि=अभिप्राप्त करने के लिए या अभिमुख करने के लिए,

वीरम्=दारिद्रय को भगा देने वाले (इरयिता), प्रयत दक्षिणम्= इससे पूर्व अन्यों को भी धन देने वाले या शुद्ध धन (दक्षिण) वाले, वामम्= भजनीय, आश्रयणीय, गृहपतिम्=गृहस्थ के समीप, नः=हमें, नय=पहुंचा दीजिए।

व्याकरणम्—नयम् 'नर' शब्द से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय किया गया है। 'वामम्' में 'मन्' धातु से 'मन्' प्रत्यय करने पर दीर्घ और न लोप होने पर यह प्रयोग बनता है।

विशेषः—ग्रासमान ने 'नर्यं वसु' का "Wealth such as becomes a man" अर्थ किया है। तथा 'वीरम्' का 'प्रयतदक्षिणम्' यह विशेषण है और "Bring riches and a liberal patron to us" यह अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

३. अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय।
पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥

पद-पाठः

अदित्सन्तं। चित्। आघृणे। पूषन्। दानाय। चोदय।
पणेः। चित्। वि। म्रद। मनः ॥३॥

सायणः—हे आघृणे आगतदीप्ते पूषन् अदित्सन्तं चित् दातुमनिच्छन्तमपि पुरुषं दानाय अस्मद्दानार्थं चोदय प्रेरय। पणेश्चित् वणिजोऽपि वार्धुषिकस्य लुब्धस्यापि मनः हृदयं विमुदा दानार्थं मृदूकुरु।

पदार्थ:—हे आघृणे! =दीप्ति वाले! पूषन्। अदित्सन्तश्चित्= दान न देने की इच्छा वाले मनुष्य को, दानाय=हमें दान देने के लिए,

चोदय=प्रेरित कीजिए। पणेः=वणिक् का या लोभी का या वाधुषिक (सूदखोर) का चित्=भी मनः=मन को विम्रद=दान देने के लिए मृदु बना दो।

व्याकरणम् —म्रद=मृदु शब्द से णिच् प्रत्यय करने पर म्रदयति रूप बनता है। णिच् का भी लोप कर देने पर मध्यम पुरुष लोट् का एकवचन है। या 'म्रद मर्दने' भ्वादिगणी का यह प्रयोग है अर्थ और आत्मनेपद छान्दसत्वात् बदल गये है।

विशेष :—'आघृणे' का अर्थ Glowing है। यह विशेषण एक मात्र सूर्य के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। 'म्रद' धातु का प्रयोग केवल यहाँ तथा एक जगह शतपथ ब्राह्मण में मिलता है, अन्यत्र नहीं।

संहिता-पाठः

४. वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि।
साधन्तामुग्र नो धियः॥

पद-पाठः

वि। पथः। वाजऽसातये। चिनुहि। वि। मृधः। जहि।
साधन्ताम्। उग्र। नः। धियः॥४॥

सायणः—हे उग्र उद्गूर्णबल पूषन् पथः मार्गान् वाजसातये अन्नलाभाय वि चिनुहि शोधितान्कुरुः। यैः पथिभिर्गता धनं लभेमहि तादृशान्पथः पृथक्कुर्वित्यर्थः। मृधः बाधकान्तस्करादींश्च वि जहि बाधस्व। तथा नोऽस्माकं धियः कर्माणि अन्नलाभार्थं क्रियमाणानि साधन्तां सिध्यन्तु सफलानि भवन्तुः।

व्याख्याः—हे उग्र! उद्गूर्ण बल वाले पूषा। नः=हमारे, वाजसातये=अन्न लाभ के लिये, पथः=मार्गों को, विचिनुहि=विशेषतया परिमार्जित या

निर्दिष्ट कीजिये। जिन मार्गों से जाने पर हमें आध्यात्मकारी त्रिविध संपत्ति का लाभ हो, उन मार्गों को स्पष्ट कीजिये एवं, मृधः=बाधक तस्करादि को उन मार्गों से, विजहि=भगा दीजिये एवं (नः) हमारी, धियः= कर्मों को अर्थात् उक्त सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये क्रियमाण कर्मों को, साधन्ताम्= सफल बना दीजिये।

व्याकरणः—"वाजसातये" वाज उपपद षण धातु से क्तिन् प्रत्यय नकार को अकारादेश। "मृधः"=मृध हिंसायां से क्विप् प्रत्यय द्वितीया बहुवचन।

विशेषः—१/६०/४ के मन्त्र 'वि नः पथः सुविताय चियन्तु'। इस मन्त्र का अर्थ करते हुये सायण ने "हमारे मार्गों को अशोभन मार्गों से पृथक् कीजिये यह अर्थ किया है तदनुसार इस वाक्य का यह अर्थ है कि "Make the roads clear by putting aside every thing lying in our way". यही अर्थ राथ अभिप्रेत है अर्थात् सायण और राथ दोनों का एक ही मत है।

संहिता-पाठः

५. परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥

पद-पाठः

परि। तृन्धि। पणीनाम्। आरया। हृदया। कवे।
अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय ॥५॥

सायणः—हे कवे प्राज्ञपूषन् पणीनां वणिजां लुब्धानां हृदया हृदयानि कठिनानि आरया सूक्ष्मलोहाग्रो दण्डः प्रतोद इत्यारेति चाख्यायते। तया परि तृन्धि परिविध्य हृद्गतं

काठिन्यमपनयेत्यर्थः। अथ अनन्तरं ईमेनान् पणीन्स्मभ्यं रन्धय वशीकुरु।

व्याख्याः--हे कवे! = प्राज्ञपूषन्—पणीनाम्=लोभी व्यापारियों के, हृदय=कठिन हृदयों को, आरया=नुकीले (तेज)लोहे के दण्ड से, परितृन्धि= बींध दे अर्थात् अपनी उग्रदण्डता से उनके हृदयों की कठोरता को दूर कर दे। अथ=तथा, ईम्=इनको (इन व्यापरियों को), रन्धय=हमारे प्रति कोमल भाव से व्यापार करने के लिये प्रेरित कर।

व्याकरणम्—तृन्धि--हिंसार्थक तृह् धातु लोट् मध्यपुरुष एक-वचन। आरा=ऋ गतौ घञ् टाप्। आरा, प्रतोद और शूल तीनों पर्यायवाची शब्द हैं।

विशेषः—इस विषय में पीटर्सन ने कुछ नहीं लिखा केवल यही लिखा है कि आरा शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के इसी मन्त्र में पाया जाता है। मेरी सम्मति में इस मन्त्र में ईम् शब्द का प्रयोग भी विचारणीय है क्योंकि निरुक्तकार ने वेद में प्रयुक्त कम्, ईम्, इत्, उ इन शब्दों को अनर्थक बतलाया है। तदनुसार ईम् का अर्थ 'इनको' करना सायण की अनवधानता है तथा इस शब्द के विना भी वाक्यर्थ वही होता है जो चाहिये। पाँचवें, छठे और सातवें मन्त्र के अन्त में 'अथेमस्यभ्यं रन्धय' यह तीनों मन्त्रों की टेक। (Burthen या Burden है।

संहिता-पाठः

६. वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्।
अथेमस्मभ्यं रन्धय॥

पद-पाठः

वि। पूषन्। आरया। तुद। पणेः। इच्छ। हृदि। प्रियम्। अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥६॥

सायणः—हे पूषन् आरया प्रतोदेन पणेर्वणिजो हृदयं वि तुद विविध्य। तस्य पणेर्हृदि हृदये प्रियमस्मभ्यमनुकूलं धनमिच्छ दातव्यमितीच्छां जनय। अथ अनन्तरमस्मभ्यमीमेनान् रन्धय वशीकुरु

व्याख्या:—हे पूषन्! आरया=नुकीले शूल से, पणेः=व्यापारी के हृदय को, वितुद्=बींध तथा उस व्यापारी के हृदि=हृदय में हम को प्रियम्=प्रिय धनादि को हमें देने के लिये इच्छ=प्रेरणा दे। (अथ ईम् इत्यादि का अर्थ पूर्ववत् है)।

व्याकरणः—स्पष्टम्।

संहिता-पाठः

७. आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे।
अथेमस्मभ्यं रन्धय॥

पद-पाठः

आ। रिख। किकिरा। कृणु। पणीनाम्। हृदया। कवे।
अथ। ईम्। अस्मभ्यम्। रन्धय॥७॥

सायणः—हे कवे! प्राज्ञ! पूषन् पणीनां वणिजां हृदया हृदयानि आ रिख आलिख। आलिख्य च किकिरा कीर्णानि प्रशिथिलानि कृणु कुरु मृदूनि कुर्वित्यर्थः। अन्यद् गतम्।

हे कवे! हे प्राज्ञ पूषन् पणीनाम्=बनियों के हृदया=हृदयों को, आरिख=हमारे अनुकूल बना तथा उनके हृदयों को किकिरा=शिथिलता की ओर कृणु=ले चल। अवशिष्ट मन्त्रांश की व्याख्या की जा चुकी है।

व्याकरणम्—किकिरा कृ विक्षेपे धातु से यङ् लुगन्त अच् प्रत्यय। अभ्यास को श्चुत्व छान्दस होने से नहीं होता।

विशेषः—र और ल में भेद होने से जैसे अंगुलि तथा अंगुरि दोनों शब्द साधु हैं उसी प्रकार लिख् धातु का अर्थ लिख् है ऐसा ही लैटिन में Luc-eo यह प्रयोग चमकने के अर्थ में पाया जाता है जो कि रुच् 'दीप्तौ' का अपभ्रंश है।

राथ के मत में 'किकरा' ध्वनि का अनुकरण है जबकि कोई चीज काटी जाती है तब किर-किर ध्वनि होती है। हृदयों का लेखन करते समय यह ध्वनि होना स्वाभाविक है।

संहिता-पाठः

८. यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥

पद-पाठः

याम् । पूषन् । ब्रह्मऽचोदनीम् । आराम् । बिभर्षि । आघृणे ।
तया । समस्य । हृदयम् । आ । रिख । किकिरा । कृणु ॥८॥

सायणः—हे आघृणे आगतदीप्ते पूषन् ब्रह्मचोदनीं ब्रह्मणः अन्नस्य प्रेरयित्रीं यामारां बिभर्षि हस्ते धारयसि तया समस्य सर्वस्य लुब्धजनस्य हृदयमारिख आलिख किकिरा किकिराणि कीर्णानि प्रशिथिलानि च कृणु कुरु।

व्याख्याः—हे आघृणे !=दीप्तिवाले पूषन् तुम, याम्=जिस, ब्रह्मचोदनीम् =अन्नों का उत्पादन करने वाले, आराम्=लोहदण्ड को बिभर्षि=हाथ में धारण करते हो, तया=उस दण्ड से, समस्य=सम्पूर्ण मुनाफाखोर व्यापारियों के, हृदयम्=हृदय को, आरिख=छेद दे, तथा किकिरा=विकीर्ण, शिथिल कृणु बना दे।

व्याकरणम्—ब्रह्मचोदनीम् ब्रह्म उपपद् चुद् प्रेरणे धातु से णिच् करने पर ल्युट् किया गया है।

विशेषः—ब्रह्मचोदन शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में केवल इसी मन्त्र में किया गया है। यजुर्वेद के चौथे अध्याय के तीसरे मन्त्र में महीधर ने इस शब्द का अर्थ urging on the Brahman.

संहिता-पाठः

९. या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशसाधनी।
तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥

पद-पाठः

या। ते। अष्ट्रा। गोऽओपशा। आघृणे। पशुऽसाधनी।
तस्याः। ते। सुम्नम्। ईमहे ॥९॥

सायणः—हे आघृणे आगतदीप्ते पूषन् ते त्वदीया या अष्ट्रा आरा गोओपशा। उपशेरत इत्योपशाः। गाव ओपशा यस्यास्तादृशी। अतएव पशुसाधनी पशूनां साधयित्री भवति ते त्वदीयायाः तस्याः संबन्धि सुम्नं सुखमीमहे याचामहे।

व्याख्याः—हे आघृणे=दीप्ति वाले पूषा, ते=तुम्हारी, या=जो, गोऽओपशा=गौओं को हमारे समीप पहुँचाने वाली, अर्थात् गोधन को बढ़ाने वाली, अतएव, पशुऽसाधनी=पशुओं को सम्हालने वाली अर्थात् पशुओं की हिंसा या मृत्यु को हटाने वाली, अष्ट्रा=लोहे की बनी हुई शोलाकार आरा नाम की शक्ति है, ते=तुम्हारी, तस्याः=उस शक्ति के द्वारा सम्पादित, सुम्नम्=सुख को, ईमहे=हम चाहते हैं।

व्याकरणम्—'अष्ट्रा' अशू व्याप्तौ धातु से त्रन् प्रत्यय किया गया है। 'गोऽओपशा' इस शब्द में गो, आ, उप पूर्वक शीङ् स्वप्ने धातु से 'ड' प्रत्यय किया गया है।

विशेषः—'गोऽओपशा' शब्द केवल इस मन्त्र में प्रयुक्त है। किन्तु 'ओपश' शब्द ऋग्वेद के १।१७३।६ में तथा ८।१४।५ में एवं

६।७१।१ में और १०।८५।८ में प्रयुक्त है। वहाँ पर आङ् और उप इन दो उपसर्गों के उपपद होने पर शीङ् धातु से इसकी सिद्धि की गई है। तथा ओपश का अर्थ शृङ्ग, परस्पर समीप रहने वाले पृथ्वी और अन्तरिक्ष लोक, आत्मा में रहने वाला वीर्य विशेष और आकाश अर्थ किया गया है। इन भिन्न-भिन्न अर्थों के करने से यह स्पष्ट है कि सायण यौगिक व्युत्पत्ति के द्वारा अनेक अर्थ मानते हैं और इसका उन्हें कोई स्पष्ट निश्चित अर्थ प्रतीत नहीं हो रहा है। रौथ ने ओपश का अर्थ सिर पर बांधे जाने वाला 'भूषण' अर्थ किया है और अप पूर्वक पश धातु से इसकी सिद्धि की है और लिखा है कि—

'It is an epithet of the goad would appear to mean furnished with a leather tuft or ornament.'

म्योर ने इस शब्द का अर्थ 'furnished with leathern thongs' किया है। इस प्रकार पीटर्सन के मत में गोऽओपशा का अर्थ गौ के चमड़े से बनी मूठ वाली तीक्ष्ण लोहे की पशुओं को वश में करने वाली डण्डी अर्थ है। मैक्समूलर ने भी Vedic Hymns भाग एक पृष्ठ २३२ पर ऐसा ही अर्थ स्वीकार किया है।

संहिता-पाठः

१०. उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।
नृवत्कृणुहि वीतये॥

पद-पाठः

उत। नः। गोऽसनिम्। धियम्। अश्वऽसाम्। वाजऽसाम्। उत। नृऽवत्। कृणुहि। वीतये॥१०॥

सायणः—उत अपि च हे पूषन् गोषणिं गवां सनित्रीमश्वसामश्वानां सनित्रीं वाजसां वाजानामन्नानां सनित्रीमुत अपि

च नृवत् नृवतीं यद्वा नृणां वनित्रीं दात्रीमेवं भूतां धियं बुद्धि कर्म वा नोऽस्माकं वीतये खादनायोपभोगार्थं कृणुहि कुरु ।

व्याख्या:—हे पूषन्! उत=और, गोऽसनिम्=गौओं को प्राप्त कराने वाली, अश्वऽसाम्=अश्वों को प्राप्त कराने वाली, उत=और, वाजऽसाम्=अन्नों को प्राप्त कराने वाली, एवं नृऽवत्=मानवीय परिवार बढ़ाने वाली, धियम्=बुद्धि को या कर्म को, नः=हमारे, वीतये=उपभोग के लिए, कृणुहि=बना दीजिए।

व्याकरणम्—'गोऽसनि' शब्द में षण् धातु से इन् प्रत्यय है। 'अश्वऽसाम्' आदि में षण् धातु से 'ड' प्रत्यय किया गया है। 'नृऽवत्' में नृ शब्द से मतुप् प्रत्यय है। 'वीति' शब्द में वी धातु से क्तिन् प्रत्यय है।

विशेष:—म्योर ने नृऽवत् शब्द को क्रिया विशेषण मानते हुये, Richly या abundantly अर्थ किया है पीटर्सन और लुडविग इस शब्द का after the manner of the men अर्थ करते हैं।

—:०:—

मं० ७ **सू० ५४**

वास्तोष्पति सूक्त

संहिता-पाठः

१. वास्तो॑ष्पते॒ प्रति॑ जानीह्य॒स्मान्त्स्वा॑वे॒शो अ॑नमी॒वो भ॑वा नः ।
यत्त्वेम॑हे॒ प्रति॒ तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥

पद-पाठः

वास्तो॑ः । प॒ते॒ । प्रति॑ । जा॒नी॒हि॒ । अ॒स्मान् । सु॒ऽआ॒वे॒शः । अ॒न॒मी॒वः । भ॒व॒ । न॒ः । यत् । त्वा॒ । ईम॑हे । प्रति॑ । तत् । न॒ । जु॒षस्व॒ । शम् । न॒ः । भ॒व॒ । द्वि॒ऽपदे॑ । शम् । चतु॑ःऽपदे ॥१॥

परिचय :—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है। त्रिष्टुप् छन्द है। वास्तोष्पति देवता है। गृह निर्माण में विनियोग है।

सायण :—हे वास्तोष्पते गृहस्य पालयितर्देव त्वमस्मान् त्वदीयान् स्तोतॄनिति प्रति जानीहि प्रबुध्यस्व। तदनन्तरं नोऽस्माकं स्वावेशः शोभन निवेशः अनमीवः अरोगकृच्च भव। किंच वयं त्वा त्वां यद्धनमीमहे याचामहे तद्धनं नोऽस्मभ्यं प्रति जुषस्व प्रयच्छ। अपि च नोऽस्माकं द्विपदे पुत्रपौत्रादिजनाय शं सुखकरो भव चतुष्पदे गवाश्वादि पशवे च सुख करो भव।

व्याख्या :—हे वास्तोष्पते ! हे गृह के रक्षक देव ! तुम अस्मान्=अपने भक्त या स्तोता हम लोगों को, प्रतिजानीहि=पहिचान लो। तथा नः=हम लोगों के लिए, सु-आवेशः=सुन्दर भवन प्रदाता और अनमीवः=रोग नाशक, भव=बन जाइये। किञ्च हम लोग, त्वा=तुम से, यत्=जो धन, ईमहे=चाहते हैं तत्=उस धन को, नः=हमारे लिए, प्रति जुषस्व=प्रतिपादन या प्रदान कीजिए। एवं नः=हमारे, द्विपदे= पुत्र पौत्रादि के लिए, शम्=सुखकारी भव=बनिए, इसी प्रकार हमारे, चतुष्पदे=गौ या अश्वादि पशुओं के लिए भी, शम्=सुख-प्रद हूजिए।

व्याकरणम्:—स्वावेशः, तथा अनमीवः इन दोनों पदों में बहुव्रीहि समास है। शोभनः आवेशः यस्मादित्यादि विग्रह है। 'द्विपदे' में 'पाद' को 'पद्' आदेश हुआ है बहुव्रीहिसमास है। 'वास्तोष्पते' में वस् धातु से तुण् प्रत्यय से 'वास्तु' बना तथा 'पति' शब्द से समास, विभक्ति का लुगभाव, तथा 'षष्ठ्याः पतिपुत्र०' सूत्र से विसर्गों को सकार होता है।

विशेष :—ऋग्वेद में वास्तोष्पति शब्द का सात बार प्रयोग हुआ है। तथा केवल तीन मन्त्रों वाले एक सूक्त में इसका वर्णन मिलता है। गृह्यसूत्रों में गृहप्रवेश से पूर्व वास्तोष्पति से अपने पापों की क्षमा याचना का वर्णन है। यह अग्नि या वरुण के समान कोई बड़ा

देवता नहीं किन्तु साधारण श्रेणी का देवता है। जिसका प्राकृतिक भवन, वृक्ष, या पर्वतादि पर आधिपत्य माना जाता है।

'स्वावेशः' का Siebenzig Lieder में Bless the entrence make it free from sickness अर्थ किया है तथा ग्रासमान ने 'Give us good entrence' अर्थ किया है। राथ ने 'Easy of access' अर्थ किया है। इन में कौन ठीक है यह पाठक स्वयं विचारें।

"स्वावेशा" शब्द स्त्री लिङ्ग में :—

स्वस्ति रिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥
(ऋक् १०-६३-१६)

इस मन्त्र में भी प्रयुक्त है। यहाँ पीटर्सन ने 'स्वस्ति' को ही देवता माना है, पर सायण ने 'पृथिवी' शब्द का अध्याहार का 'कल्याण कारिणी पृथिवी' हमारी रक्षा करे यह अर्थ किया है। किन्तु निरुक्तकार ने 'स्वावेशा' पद अपनी व्याख्या में साफ छोड़ दिया है।

'अनमीवो भवानः' का 'Keep sickness far from us' यह अर्थ है। 'शम्' पद की मैक्समूलर ने जो व्याख्या की है वह निम्नलिखित है।

Sam, (शम्) which I have here [1,165,4] translated by sweet, is a difficult word to render. It is used as a substantive, as an adjective and as an adverb, and in several instances it must remain doubtful whether it was meant for one or the orther, The adverbial character is almost always, if not always, applicable, though in Enlish there is no adverb of such general import as S'am, and we must there for render it differently, although we are able so perceive that in the mind of the poet it might still have been conceived as an adverb,

in the sense of 'well'. I shall arrange the principal passage in which Śam occurs according to the verbs with which it is construed.

'शम्' का भू धातु के साथ प्रयोग :—

'भवा नः सोम शं हृदे' (ऋक् ८।७६।७)

Be thou, Soma, well (Pleasant) to our heart.

इस मन्त्र में 'शम्' विशेषण रूप से प्रयुक्त हुआ है।

शं नः भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे। (ऋक् ६-७४-१)

May Soma and Rudra be well (kind) to our men and cattle.

इस मन्त्र में 'शम्' क्रियाविशेषण रूप से प्रयुक्त हुआ है, यहाँ इस शब्द का health या blessing अर्थ है।

संहिता-पाठः

२. वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि
गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव
पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥

पद-पाठः

वास्तोः। पते। प्रऽतरणः। नः। एधि।
गयऽस्फानः। गोभिः। अश्वेभिः। इन्दो। इति।
अजरासः। ते। सख्ये। स्याम। पिताऽइव।
पुत्रान्। प्रति। नः। जुषस्व ॥२॥

सायणः—हे वास्तोष्पते गृहस्य पालयितर्देवत्वं नोऽस्माकं प्रतरणः प्रवर्धकः गयस्फानः अस्मदीयस्य धनस्य प्रवर्धकः एधि

भव। हे इन्दो सोमवदाह्लादक ते त्वया सह सख्ये सति वयं गोभिः पशुभिः-अश्वेभिरश्वैश्च सहिता अजरासः जरारहिताः स्याम भवेम। पितेव पुत्रान् यथा पिता पुत्रान् रक्षकत्वेन सेवते तथा त्वमपि नोऽस्मान् प्रति जुषस्व सेवस्व।

व्याख्याः—हे वास्तोष्पते ! =गृह के पालक देव। आप नः= हमारे, प्रतरणः=बढ़ाने वाले तथा, गयस्फानः=हमारे धन के बढ़ाने वाले, एधि=बन जाइए। हे इन्दो ! =चन्द्र के समान आह्लादक गृह देवता, ते=तुम्हारे या तुम्हारी या तुम्हारे साथ, सख्ये=मित्रता को प्राप्त करने पर हम गोभिः=गौओं और अश्वेभिः=घोड़ों आदि पशुओं के सहित, अजरासः=जरारहित, स्याम=बन जावें। तथा आप, पुत्रान्=पुत्रों के, प्रति=लिए, पितेव=पिता की तरह, नः=हमारे प्रति, जुषस्व= व्यवहार कीजिए।

व्याकरणम्ः—गयस्फानः=गय पूर्वक स्फायी धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर यकार लोप छान्दस है। शेष स्पष्ट है।

विशेषः—निघण्टु के अनुसार 'गय' शब्द गृह (३-४) धन (२-१०) अपत्य (२-२) इतने अर्थों में प्रयुक्त होता है। ग्रासमान 'गय' शब्द को 'गि' धातु से बना हुआ मानता है। यह 'गि' धातु ही आगे चल कर 'जिजये' बन गई एवं इसका अर्थ है वे वस्तुएँ जो एक मनुष्य के अधिकार में रहती हैं। 'इन्दु' शब्द ईदि धातु से बना है तथा यह रात्रि में मकानों की पहरेदारी (watching) कार्य करता है। इसे रात्रि का Guardian भी इसीलिए माना गया है। 'वास्तोष्पति' का 'इन्दो' यह सम्बोधन भी इस ही भाव को ले कर दिया गया है। उक्त व्याख्या राथ और पीटर्सन दोनों का अभिमत है।

संहिता-पाठः

३. वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते
सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

पद-पाठः

वास्तोः । पते । शग्मया । सम्ऽसदा । ते ।
सक्षीमहि । रण्वया । गातुऽमत्या ।
पाहि । क्षेमे । उत । योगे वरम् । नः ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा नः ॥३॥

सायणः—हे वास्तोष्पते देव शग्मया सुखकर्या रण्वया रमणीयया गातुमत्या धनवत्या ते त्वया देयया संसदा स्थानेन सक्षीमहि वयं संगच्छेमहि । त्वमपि क्षेमे प्राप्तस्य रक्षणे उत अपि च योगे अप्राप्तस्य प्रापणे वरं वरणीयं नोस्मदीयं धनं पाहि रक्ष । हे वास्तोष्पते यूयं त्वं नोऽस्मान् सदा सर्वदा स्वस्तिभिः कल्याणैः पात पाहि ।

व्याख्या:—हे वास्तोष्पते=गृहपालक अधिपते । शग्मया=सुख-दात्री, रण्वया=रमणीय, गातुमत्या=धन वाली ते=तुम्हारे द्वारा, प्रदेय संसदा=गृहरूपी स्थान से हम लोग, सक्षीमहि=संगति प्राप्त करें । एवं तुम भी क्षेमे=प्राप्त धन या वस्तुओं की रक्षा करने में, उत=तथा (अपि च) योगे=अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति करने में साधनभूत, वरम् = वरणीय या अभीष्ट धन की, पाहि=रक्षा कीजिए । तथा यूयम् =आप, नः=हमारी, स्वस्तिभिः=कल्याण प्रदान के द्वारा, पात=रक्षा कीजिए ।

व्याकरणम्—'शग्मया' में शं उपपद गम् धातु से 'क' प्रत्यय और उपधालोप एवं 'शम्' के मकार का लोप छान्दस होता है। 'सचीमहि' में षच् 'समवाये धातु, लिङ् लकार, सीयुट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन है।

विशेषः—'शग्म' शब्द का ऋग्वेद में लगभग १० (दस) बार प्रयोग हुआ है। १–१३०–१०, १–१४३–८, ५–४३–११, ६–४१–२, ६–७५–८, ७–६०–५, ७–९७–६, ८–२–२७, १०–३१–५, १०–४०–५ इत्यादि। राथ ने इस शब्द को शक्लृ धातु से निष्पन्न माना है। 'मघवन् शग्धि तव तन्न ऊतिभिः' (८–२४–११) मन्त्र में सायण ने भी शक् धातु मानी है ७–६७–६ मन्त्र में सायण ने 'शग्मासः' की व्याख्या 'सुखकराः शक्ता वा' यह की है, अतः राथ का कथन भी ठीक है। 'गातुमत्या' का अर्थ राथ ने Roomy convenient किया है तथा ग्रासमान ने 'having a good issue' किया है। 'क्षेमे उतयोगे' का राथ ने Possession of acquired property, preservation of one's means, wealth, safety, prosperity. अर्थ किया है। ग्रासमान ने "in work and enjoyment" अर्थ किया है, तथा लुड्विग ने "at rest and at work" अर्थ माना है, पर मेरी समझ में वस्तुतः यह Phrase है तथा इसका सायण कृत अर्थ ही ठीक है।

—:०:—

मं० ७ सू० ८३

इन्द्रावरुण सूक्त

संहिता-पाठः

१. युवां नरा पश्यमानास आप्यं
प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च
सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥

पद-पाठः

युवाम् । नरा । पश्यमानासः । आप्यम्
प्राचा । गव्यन्तः । पृथुऽपर्शवः । ययुः ।
दासा । च । वृत्रा । हतम् । आर्याणि । च ।
सुऽदासम् । इन्द्रावरुणा । अवसा । अवतम् ॥१॥

सायणः—हे नरा नेताराविन्द्रावरुणौ युवां । षष्ठ्यर्थे द्वितीया। युवयोः आप्यं बन्धुभावं पश्यमानासः पश्यन्तः युष्मद्बान्धवलाभार्थिनः गव्यन्तः गाः आत्मन इच्छन्तः यजमानाः पृथुपर्शवः पृथुर्विस्तीर्णः पर्शुः पार्श्वास्थि येषां ते तथोक्ताः। विस्तीर्णाश्वपर्शुहस्ताः सन्तः प्राचा प्राचीनं ययुः । बर्हिराहरणार्थं गच्छन्ति । पर्श्वादिना बर्हिराच्छिद्यते । तथा च तैत्तिरीयकम् । अश्वपर्श्वा बर्हिरच्छैतीति ।। हे इन्द्रावरुणौ युवां दासा दासानि उपक्षयित्री (तॄ)णि च वृत्रा वृत्राणि आवरकाणि शत्रुजातानि आर्याणि च कर्मानुष्ठानपराणि च शत्रुजातानिहतं हिंस्तम् । अपि च सुदासम् अस्मद्याज्यमेतत्संज्ञं राजानमवसा रक्षणेन सार्द्धमवतमागच्छतम् ।

शब्दार्थः—वसिष्ठ ऋषि कहते हैं कि:—हे नरा! =नेता! इन्द्रावरुणौ! युवाम् =तुम दोनों का, आप्यम् =बन्धुत्व, पश्यमानासः=देखने वाले, एवं तुम्हारे परिचय से लाभ उठाने की कामना वाले व्यक्ति, गव्यन्तः=गौओं की प्राप्ति की इच्छा से, पृथुपर्शवः=विस्तीर्ण पार्श्वास्थि को धारण करने वाले अर्थात् अश्व की पार्श्वास्थि का परशु हाथ में लिए हुए यजमान, प्राचा=पूर्व दिशा की ओर, ययुः=कुशा के आहरणार्थ जा रहे हैं। तथा हे! इद्रावरुणौ! तुम दोनों दासा=रस के शोषक और वृत्रा=सत्प्रवृत्तियों के रोधक या आवरक हानि कारक शत्रुओं को, च= और, आर्याणि=उत्तम कर्मानुष्ठान में लगे शत्रुगण को, हतम् =मार डालो। एवं सुदासम् =इस नाम के मेरे यज्ञ सम्पादक यजमान राजा की, अवसा=अपने रक्षा के साधनों के सहित, अवितम्=सहायता के लिए रक्षार्थ पहुँचिए, पधारिए।

व्याकरणम्—'पश्यमानासः' दृश् धातु से शतृ की जगह शानच् हुआ है। 'आप्यम्' अपांभावः आप्यम्—स्नेह इति यावत्। 'हतम्'—लोट् मध्यम पुरुष द्विवचन, 'अवतम्' गत्यर्थ अव् धातु के मध्यम पुरुष का द्विवचन है—रक्षणार्थक का नहीं।

टिप्पणीः—डा० लुड्विग 'युवाम्' को षष्ठयर्थ में द्वितीयान्त नहीं मानता—वह दोनों को दृश् धातु का कर्म मानता है—अतः "looking you and your kindness" अर्थ करता है। पीटर्सन ,प्राचा' को तृतीयान्त मान कर 'प्राचीनेन ऋजुना मार्गेण' यह अर्थ करता है। 'गव्यन्तः' गो शब्द से 'सुप आत्मनः क्यच्' से इच्छार्थक क्यच् प्रत्यय किया गया है 'वान्तो यि प्रत्यये' से अव् आदेश होता है, 'desirous of having cattle' यह इस का अर्थ है। ऋग्वेद ४-१-१५ व ३-३१-९ में भी ये प्रयोग पाये जाते हैं। 'पृथुपर्शु' का अर्थ सायण ने

अश्वपर्शु किया है जिस के द्वारा यज्ञ की घास काटी जाती थी, किन्तु लुडविग का कथन है कि ऋग्वेद के समय में 'अश्वपर्शु' नामक अस्त्र प्रचलित नहीं था—महाभारत के समय प्रचलित हुआ है अतः 'पृथु' और 'पर्शु' का परस्पर विशेषण विशेष्यभाव नहीं, अतः 'पृथु' और 'पर्शु' स्वतन्त्र रूप से 'ययुः' क्रिया से अन्वित होते हैं, तथा 'पृथु' नामक व्यक्ति और 'पार्श्वचर' दोनों गौओं की कामना से तुम्हारे पास पहुँचे यह अर्थ है। 'पृथु पर्शवः' इतरेतरयोग द्वन्द्व समास है।

विशेषः—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है। जगती छन्द है। इन्द्रा-वरुण देवता है। इस सूक्त की कथा ऐतिहासिक है यह सायण का मत है। मेरा नहीं, मेरी दृष्टि से इन्द्र और वरुण रयि और प्राण हैं। वरुण-रयि है—इन्द्र प्राण हैं। सायणानुसार यह कथा प्रसिद्ध है कि सुदास नामक राजा ने जो कि तृत्सुओं का अधिपति था—षड्यन्त्रकारी (Confederate) राजपुत्रों के विरुद्ध जहाद बोल दिया, वसिष्ठ ऋषि, सुदास् के कुल पुरोहित थे, उनकी प्रेरणा से इन्द्र और वरुण ने स्वयं मदाखलत की और सुदास् के लिए इन दोनों देवताओं ने मदद करने का वचन दिया, या गारण्टी (Vouchsafe) की अभयदान दिया और सुदास् विजयी हुआ। सुदास् शब्द यौगिक अर्थ को लेकर सुष्ठु दासयति दस्यति व प्राणान् (इन्द्रियाणि) इति सुदास् (सुदासः वा) इस निर्वचन से आत्मा का वाचक है। यही भाव ८म मन्त्र में अत्यन्त स्पष्ट हो गया है। दसराजा (दाशराज) दस इन्द्रियां हैं, यहाँ यह आध्यात्मिक संकेत भी समझना चाहिए। इस में इन्द्र वरुण के प्रति सुदास् द्वारा कृतज्ञता प्रदर्शित की गई है—इन्द्र और वरुण का समास करने पर मध्य में 'आकार' सन्निविष्ट हो जाता है।

संहिता-पाठः

२. यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो
यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम्
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा
न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥

पद-पाठः

यत्र । नरः । सम्ऽअयन्ते । कृतऽध्वजः ।
यस्मिन् । आजा । भवति । किम् । चन । प्रियम् ।
यत्र । भयन्ते । भुवना । स्वःऽदृशः । तत्र । नः
इन्द्रावरुणा । अधि । वोचतम् ॥२॥

सायणः—यत्र यस्मिन् संग्रामे नरः मनुष्याः कृतध्वजः उच्छ्रितध्वजाः समयन्ते युद्धार्थं संगच्छन्ते । यस्मिश्चाजा आजौ युद्धे । चनेति निपातद्वय समुदायो विभज्य योजनीयः । किं च किमपि प्रियमनुकूलं न भवति । अपि तु सर्वं दुष्करं भवति । यत्र च युद्धे भुवनानि भूतजातानि स्वर्दृशः शरीरपातादूर्ध्वम् स्वर्गस्य द्रष्टारो वीराश्च भयन्ते विभ्यति । तत्र तादृशे संग्रामे हे इन्द्रावरुणौ नोऽस्मानधि वोचतम् अस्मत्पक्षपातवचनौ-भवतम् ।

पदार्थ :— यत्र=जिस संग्राम में, नरः=मनुष्य, कृत ध्वजः=झण्डा उठाए हुए, समयन्ते=युद्धार्थ भिड़ते हैं, एवं यस्मिन्=जिस, आजा=युद्ध में, किञ्च=कुछ भी, प्रियम्=अनुकूल कार्य, न=नहीं, भवति= होता है। तथा यत्र=जिस युद्ध में, भुवना=सब भूत और भौतिक जीव स्वर्दृशः—रण में देह पातानन्तर स्वर्ग के द्रष्टा वीरमनुष्य भी, भयन्ते=डर खाते हैं।

तत्र= उस संग्राम में हे इन्द्रावरुणा ! हे इन्द्र एवं वरुण ! नः=हमारे लिए या हमारे उद्देश्य से, अधिवोचतम्=अधिक से अधिक हमारे पक्ष के समर्थन के लिए युक्ति युक्त प्रमाण उपस्थित कीजिए या हमारे पक्ष का समर्थन करते हुए ही बोलिए ।

व्याकरणम्—'कृतध्वज' यहाँ 'जस् के स्थान में 'सु' का प्रयोग किया गया है । या 'धृ' और अज् दो धातुओं से बना है—जैसे 'धृषज्' और 'समज्' बनते है । पीटर्सन यही मानता है । 'आ जा' में 'ङि' के स्थान में 'डा' प्रत्यय किया गया है । 'भुवना' में भी 'डा' प्रत्यय हुआ है । 'वोचतम्' में 'बहुलं छन्दसि' से अडभाव हुआ है ।

टि०—'यस्मिन्नाजा भवति किंचन प्रियम्' का लुड विग ने "In the fight where nothing is pleasent' अर्थ किया है जब कि ग्रासमान ने 'where all that is dear is at state' अर्थ किया है । यहां 'चन' को 'च' और 'न' के रूप में प्रयुक्त माना है—तथा इसका अर्थ 'In deed and no' अर्थ किया है' संयुक्त 'चन' का affirmatively प्रयोग किया गयां है । मैक्समूलर सायण के अर्थ को स्वीकार करते हैं तथा 'In which struggle there is nothing good what so ever यह अर्थ किया है । 'स्वर्' शब्द brightness, the light of the fire, the sun, इन अर्थों में आया है ।

संहिता-पाठः

३. सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रा-
वरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वा-
गवसा हवनश्रुता गतम् ॥

पद-पाठः

सम् । भूम्याः । अन्ताः । ध्वसिराः । अदृक्षत । इन्द्रावरुणा । दिवि घोषः आ । अरुहत् । अस्थुः । जनानाम् । उप । माम् । अरातयः । अर्वाक् । अवसा । हवन्ऽश्रुत । आ गतम् ॥ ३ ॥

सायणः—हे रुद्रावरुणौ भूम्या अन्ताः पर्यन्ताः ध्वसिराः सैनिकैर्ध्वस्ता समदृक्षत संदृश्यन्ते । तथा दिवि द्युलोके घोषः सैनिकानां शब्दश्चारुहत् आरूढोऽभूत् । जनानामस्मदीयानां भटानाम् अरातयः शत्रवः मामुपास्थुः उपस्थिताः । एवं प्रवर्तमानेऽस्मिन् युद्धे हे हवनश्रुता आह्वानशीलाविन्द्रावरुणौ अर्वागस्मदभिमुखम् अवसा रक्षणेन सह आ गतमागच्छतम् ।

पदार्थः—हे इन्द्रावरुणौ ! भूम्याः=पृथिवी के, अन्ताः=किनारे, ध्वसिराः=सैनिकों द्वारा विध्वस्त किये हुये, समदृक्षत=दिखाई पड़ते हैं तथा दिवि=द्यौलोक में, घोषः=सैनिकों का सिंहनाद, आ अरुहत्=चढ़ गया, जनानाम्=हमारे योद्धाओं के, रातयः=शत्रु, माम्=मेरे, उपास्थुः= समीप आये हैं, इस प्रकार इस युद्ध में, हवनऽश्रुता= हे ! हमारे आह्वान को श्रवण करने वाले इन्द्र और वरुण तुम दोनों, अर्वाक्=हमारे सम्मुख, अवसा=रक्षा के उद्देश्य से आगतम्=आइये, दर्शन दीजिए ।

व्यकरणम्—ध्वसिरा में ध्वंस् धातु से किरच् प्रत्यय किया गया है जो औणादिक है, 'हवनऽश्रुता' में हवन उपपद 'श्रु' धातु से क्विप् प्रत्यय किया गया है, और प्रथम के द्विवचन में छान्दस डा आदेश हुआ है ।

विशेषः—सायण ने 'जनानाम्' का अर्थ 'हमारे योद्धा' किया है, यह ठीक नहीं, किन्तु 'सुदास के शत्रुओं के' यह अर्थ करना ठीक है,

क्योंकि इसका अराति के साथ अन्वय होता है। सुदास के शत्रुओं के शत्रु, सुदास के मित्र हुये।

संहिता-पाठः

४. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं
वन्वन्ता प्र सुदासमावतम्।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि
सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥

पद-पाठः

इन्द्रावरुणा। वधनाभिः अप्रति। भेदम्।
वन्वन्ता। प्र। सुऽदासम्। आवतम्।
ब्रह्माणि। एषाम्। शृणुतम्। हवीमनि।
सत्या। तृत्सूनाम्। अभवत्। पुरःऽहितिः ॥४॥

सायणः—हे इन्द्रावरुणा इन्द्रावरुणौ वधनाभिर्वधकैरायुधैः [अप्रति] अप्रतिगतम् अप्राप्तं भेदम् एतत्संज्ञं सुदासः शत्रुं वन्वन्ता हिंसन्तौ युवां सुदासं। शुभानं ददातीति सुदाः। एतत्संज्ञं मम याज्यं राजानं प्रवातं प्रकर्षेणारक्षतम्। एषां तृत्सूनां मम याज्यानां ब्रह्माणि स्तोत्राणि शृणुतमशृणुतम्। कदा। हवीमनि। आहूयन्तेऽस्मिन्युद्धार्थं परस्परमिति हवीमा संग्रामः तस्मिन्। यस्मादेवं तस्मात् तृत्सूनामेतत्संज्ञानां मम याज्यानां पुरोहितिः मम पुरोधानं सत्या सत्फलमभवत्। तेषु यन्मम पौरोहित्यं तत्सफलं जातमित्यर्थः।

पदार्थः—हे इन्द्रावरुणा=हे इन्द्र और वरुण देवताओ! वधनाभिः=हम न साधनभूत शस्त्रों से, अप्रति=अप्राप्य अर्थात् न हन्तव्य,

भेदम्='भेद' नामक सुदास के शत्रु की, वन्वन्ता=हिंसा करते हुए, सुदासम्=इस नाम वाले मेरे यजमान राजा की, सम्-प्र-आवतम्=अच्छी तरह सब तरफ से रक्षा कीजिए। एषाम्=इन तृत्सुओं के ब्रह्माणि=स्तोत्रों को, हवीमनि=युद्ध-भूमि में, श्रृणुतम्=सुन चुके हो। वेद में लङ् की जगह लोट् प्रयोग किया गया है। एव च तृत्सूनाम्=इस नाम वाले मेरे यजमानों की, पुरोहितिः=पुरोहित बनना, सत्या=सत्य फल वाला, अभवन्=हो गया। अर्थात् तृत्सुओं का पुरोहित बनना आज सफल हो गया।

व्याकरणम्—'वधना' स्वतन्त्र स्वार्थिक णिजन्त वध् धातु से युच् प्रत्यय करने से 'वधना' बनता है। 'हवीमा' में ह्वेञ् धातु से कीम निच् प्रत्यय करने पर सम्प्रसारण-गुणादि के बाद 'हवीमन्' शब्द बनता है। 'वन्वन्ता' में हिंसार्थक 'वनु' धातु से शतृ प्रत्यय किया गया है।

विशेषः—सायण 'अप्रति' को विशेषण मानता है पर पीटर्सन इसे क्रिया विशेषण मानता है, अतएव Irresistibly यह अर्थ करता है। तृत्सुओं की पोशाक ऋक् ७-५-८ के अनुसार व ७-१८-१३ के अनुसार सफेद रंग की है। उनके बालों में शिखाग्रन्थि है तथा पट्टियाँ पड़ी हैं। वे ऋक् ७-३३-६ के अनुसार भरत या भारतवासी उनकी प्रजा है। इन्द्र ने इन्हें शत्रु सम्पत्ति के रूप में अपने अधिकार में किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि एकवचनान्त 'तृत्सु' शब्द सुदास् का पर्याय-वाचक है तथा बहुवचनान्त गोत्रवाचक है। विचार यह है कि षष्ठ्यन्त इस पद का क्या अर्थ किया जाये? क्या तृत्सु कर्तृक पौरोहित्य कर्म माना जाय (अन्य कर्तृक तृत्सु कर्मक पौरोहित्य माना जाय) समाधान यह है कि तैत्तिरीय ब्राह्मण २-७-१-२ के अनुसार तृत्सु कर्तृक पौरोहित्य अर्थ मानना ठीक है। यजमान पुरोहित का गोत्र ग्रहण कर लेते थे इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है।

संहिता-पाठः

५. इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति
माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध
स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥

पद-पाठः

इन्द्रावरुणौ । अभि । आ । तपन्ति ।
मा । अघानि । अर्यः । वनुषाम् अरातयः ।
युवम् । हि । वस्वः उभयस्य । राजथः ।
अध । स्म । नः । अवतम् । पार्ये । दिवि ॥५॥

सायणः—हे इन्द्रावरुणौ अर्यः अरेः शत्रोः सम्बन्धीनि अघानि आहन्तॄण्यायुधानि मा मामभ्या तपन्ति अभितो बाधन्ते । अपि च वनुषां हिंसकानां मध्ये आरातयः अभिगमनशीलाः शत्रवश्च मामभिपतन्ति । युवं हि युवां खलु उभयस्य पार्थिवस्य दिव्यस्य वस्वः वसुनो धनस्य राजथः ईषाथे । राजतिरैश्वर्य-कर्मा । अध स्म अतः कारणात् पार्थे तरणीये दिवि दिवसे युद्धदिने नोऽस्मानवतं रक्षतम् ।

व्याख्या:—हे इन्द्रावरुणौ !=हे इन्द्र और वरुण देवता ! अर्यः= शत्रु के, अघानि=आहनन या प्रहार के साधन भूत आयुध, मा= मुझ को, अभि, आ, तपन्ति=अभिमुख भाग से सामने की ओर से व चारों तरफ से कष्ट पहुँचाते हैं । तथा वनुषाम्=हिंसाशील व्यक्तियों में, अरातयः=सम्मुख होकर प्रहार करने वाले शत्रुगण भी (अभ्यातपन्ति) कष्ट देते हैं । युवम्=तुम दोनों, हि=निश्चय से, उभयस्य=पार्थिव व

दिव्य दोनों प्रकार के, वस्वः=धन या ऐश्वर्य के, राजथः=अधिपति हो। अध स्म=इस कारण से, पार्ये=पार जाने योग्य विजय की प्राप्ति द्वारा सफल बनाने योग्य, दिवि=दिन से अर्थात् युद्ध के दिन, नः=हमारी (हमें), अवतम्=रक्षा कीजिए।

व्याकरणम्—'अघानि' शब्द में आङ् पूर्वक हन् धातु से रक् प्रत्यय हुआ है। हन् धातु की टि का लोप, हकार को घकार और आङ् के आकार को ह्रस्व अकार छान्दस है। आ=समन्तात्, घ्नन्तीति आघानि अहन्तृणि आयुधानि' यह विग्रह है। 'युवम्' यह पद 'युवाम्' के स्थान में प्रयुक्त हुआ है। 'वस्वः' वसु शब्द की षष्ठी का एकवचन है, नुमागम को बाध कर यण् किया गया है। वनुषाम्='वन च हिंसायाम्' इस भ्वादि गण की धातु से 'उषन्' प्रत्यय कर्ता अर्थ में करने पर 'वनुष्' शब्द बनता है। वनति=हिनस्तीति 'वनुष्' 'वनुः' यह विग्रह वाक्य है।

विशेषः—'उभयस्य' का अर्थ पीटर्सन ने दोनों ओर के स्वपक्ष के तथा परपक्ष के यह अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

६. युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं
च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं
प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह॥

पद-पाठः

युवाम्। हवन्ते। उभयासः।
आजिषु। इन्द्रम्। च। वस्वः। वरुणम्।

च सातये । यत्र । राजऽभिः । दशऽभिः । निऽबाधितम् ।
प्र सुऽदासम् । आवतम् । तृत्सुऽभिः । सह ॥६॥

सायणः—उभयासः उभयविधाः सुदाः संज्ञो राजा तत्सहाय-भूतास्तृत्सवश्च एवं द्वि प्रकारा जना आजिषु संग्रामेषु इन्द्रं च वरुणं च युवां हवन्ते आह्वयन्ते। किमर्थम्। वस्वः धनस्य सातये संभजनार्थम्। यत्र येष्वाजिषु दशभिर्दशसंख्याकैः राजाभिः शत्रुभूतैः नृपैः निबाधितं नितरां हिंसितं सुदास तृत्सुभिः सह वर्तमानं आवतं युवां प्रकर्षेणारक्षतम् तेष्वाजिष्वित्यन्वयः।

व्याख्याः—उभयासः=दोनों प्रकार के अर्थात् राजा और प्रजारूपी मनुष्य (यहाँ सुदास् संज्ञक राजा और तृत्सु नामक उसके सहायक इन दोनों का ग्रहण किया गया है, यौगिक अर्थ को लेकर सुदाः शब्द का अर्थ शुभ दान-कर्ता और तृत्सु शब्द का अर्थ तीनों लोकों में दान से स्तुत्य या मन, वचन, कर्म से स्तुत्य यह अर्थ भी लिया जा सकता है)। आजिषु=संग्रामों में (संकटों में), इन्द्रम्=इन्द्र को, च=और वरुणम् =वरुण को, वश्वः=धन के, सातये=देने के, लिए या प्राप्ति के लिए, हवन्ते=आह्वान करते हैं तथा यत्र=जिस संग्राम में, दशभिः=दस, राजभिः=राजाओं से (राजन्ते अधिकुर्वन्ति आत्मनि इति राजानः इन्द्रियाणि) या इन्द्रियों से, निबाधितम्=पीडित या घिरे हुए, सुदासम्=सुदास् नामक राजा को या सात्त्विक दानशील व्यक्ति को, तृत्सुभिः=तृत्सु नामक सहायकों के साथ या मन आदि तीनों से स्तुति करने वाले भक्तों की तुम दोनों ने, आवतम्=रक्षा की। (उस संग्राम में साधन सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं इस प्रकार इस का समन्वय करना चाहिए)।

व्याकरणम्—सुदासम्=सुष्ठु ददाति इति सुदाः सु पूर्वक दा धातु से असुन् प्रत्यय है। तृत्सुः=त्रिषुः लोकेषु स्तौति इति तृत्सुः। अथवा

त्रिभिः वाङ्मनो कर्मभिः सुवति करोति स्तुतिं इति तृत्सुः । त्रि पूर्वक स्तु धातु से विच् 'पृथोदरादित्वात्' त्रि को तृ और स्तु के मध्यगत तकार का पूर्व निपात अथवा सु धातु से विच् तथा मध्य में तुगागम करने से इस शब्द की सिद्धि होती है ।

विशेषः—इस मन्त्र में सायण के अनुसार सुदास् नामक राजा और उस के अनुयायियों का दशराज नामक राजाओं से युद्ध का वर्णन है जिन्हें अगले मन्त्र में 'अयज्यु' नाम से पुकारा गया है तथापि उल्लिखित प्रकारानुसार इस मन्त्र की आध्यात्मिक व्याख्या भी की जा सकती है । पीटर्सन ने भी यहाँ सायण की तरह दशराज और सुदास् नामक राजाओं का युद्ध ही स्वीकार किया है । प्रसिद्ध 'दशराज' सूक्त में भी यही वर्णन आया है ।

संहिता-पाठः

७. दश राजानः समिता अयज्यवः
सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुति-
र्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥

पद-पाठः

दश । राजानः । सम्ऽइताः । अयज्यवः ।
सुऽदासम् । इन्द्रावरुणा । न । युयुधुः ।
सत्या । नृणाम् । अद्मऽसदाम् । उपऽस्तुतिः ।
देवाः । एषाम् । अभवन् । देवऽहूतिषु ॥७॥

सायण:—हे इन्द्रावरुणौ ! दश दशसंख्याकाः राजानः सुदासः शत्रवः समिताः परस्परं समवेताः अयज्यवः अयजमानाः

एवं भूतास्ते सुदासम् एतत्संज्ञमेकमपि राजानं न युयुधुः न संप्रजहुः । युवाभ्यामनुगृहीतं तं प्रहर्तुं न शेकुः । तदानीमद्म-सदाम् । अद्मनि अन्ने हविषि सीदन्तीत्यद्मसद ऋत्विजः । हविर्भियुक्तानां नृणां यज्ञस्य नेतॄणामृत्विजामुपस्तुतिः स्तोत्रं सत्या सफलाभूत् । अपि च एषां देवहूतिषु । देवा हूयन्त एष्विति देवहूतयो यज्ञाः । तेषु सर्वे च देवाः अभवन् । युष्मदनुग्रहात्प्रादुर्भवन्ति ।

व्याख्याः—हे इन्द्रावरुणौ ! हे इन्द्र और वरुण देवता, दश= दस संख्या वाले, समिताः=परस्पर सम्मिलित हुये, अयज्यवः=यज्ञ न करने वाले, राजानः=दाशराज्ञों ने जो कि, सुदासम्=सुदास संज्ञक राजा के ऊपर, न युयुधुः=प्रहार नहीं किया, अर्थात् तुम्हारे द्वारा रक्षित राजा पर प्रहार न कर सके । उस समय, अद्मसदाम्=हवि रूप अन्न को इन्द्रावरुण को देने के लिये उपस्थित, नृणाम्=यज्ञ के नेता ऋत्विजों की उपस्तुतिः=स्तुति, सत्या=सफल, हो गई तथा एषाम् =इन यजमानों के द्वारा किये गये, देवहूतिषु=यज्ञों में, देवाः=देवगण, अभवन्=उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् तुम्हारे अनुग्रह से यज्ञों में सन्निहित हो जाते हैं ।

व्याकरणम्—अयज्यवः=यजति इति यज्युः, यज् धातु से यु प्रत्यय, अद्मसदाम्=अद्मनि अन्ने सीदन्ति तिष्ठन्ति प्राणाः येषाम् ते अद्मसदः, अद्म उपपद् षट्लृ धातु से क्विप् प्रत्यय ।

देवहूति=देवः हूयन्ते येषु इति देव हूतयः, यज्ञाम् देव उपपद ह्वेञ् धातु से क्तिन् प्रत्यय ।

विशेषः—नृ शब्द मनुष्य का पर्यायवाची है पर धात्वर्थ को लेकर नेता का वाचक है । "अद्मसदाम्" पद का अर्थ अन्न भोजी है देवताओं का अन्न हवि है और मनुष्यों का अन्न गोधूमादि है । यहाँ

'अद्मसदाम्' का अर्थ 'देवेभ्यः अद्म आदाय सीदतां प्रतीक्षमाणानां नृणाम्' यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

८. दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम्। श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः॥

पद-पाठः

दाशऽराज्ञे। परिऽयत्ताय। विश्वतः। सुऽदासे। इन्द्रावरुणौ। अशिक्षतम्। श्वित्यञ्चः। यत्र। नमसा। कपर्दिनः। धिया। धीऽवन्तः। असपन्त। तृत्सवः॥८॥

सायणः—हे इन्द्रावरुणौ दासराज्ञे। दशशब्दस्य च्छान्दसो दीर्घः। विभक्तिव्यत्ययः। दशभी राजभिः शत्रुभूतैः विश्वतः सर्वतः परियत्ताय परिवेष्टिताय सुदासे राज्ञे अशिक्षितं बलं प्रायच्छतम्। यत्र यस्मिन्देशे श्वित्यञ्चः श्वितं श्वैत्यं नैर्मल्यमञ्चन्तो गच्छन्तः कपर्दिनः जटिलाधीवन्तः कर्मभिर्युक्तास्तृत्सवः वसिष्ठशिष्याः एतत्संज्ञा ऋत्विजः नमसा हविर्लक्षणे नान्नेनधिया स्तुत्या च असपन्त पर्यचरन्। तस्मिन्देशे युवां तस्मै राज्ञेबलं प्रायच्छतमित्यर्थः।

व्याख्या:—हे इन्द्रावरुणौ!=हे इन्द्र और वरुणदेवता, दाशराज्ञे=दस शत्रुभूत राजाओं से (यहाँ तृतीय के स्थान में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग है, तथा 'दश' शब्द के दकारोत्तरवर्ती ह्रस्वाकार को दीर्घाऽऽकार कर दिया गया है) विश्वतः=चारों तरफ से, परियत्ताय=घिरे हुए, सुदासे=सुदास् राजा को तुम दोनों ने उस जगह, अशिक्षतम्=बल प्रदान किया था। यत्र=जिस स्थान पर

शित्यञ्चः=नैर्मल्यरूप श्वेतत्व को प्राप्त करने वाले एवं, कपर्दिनः= जटाजूटधारी ऋषि कल्प, धीवन्तः=कर्मठ, तृत्सवः=वसिष्ठ ऋषि के तृत्सु संज्ञक शिष्यगण, नमसा=हविः रूप अन्न प्रदान करने के द्वारा तथा धिया=स्तुति के द्वारा तुम्हारी, असपन्त=परिचर्या कर रहे थे। अर्थात् सुदास् की परिचर्या तृत्सुओं की परिचर्या से बढ़ कर थी अतएव तुम ने उसे बलयुक्त बनाया तृत्सुओं को नहीं।

व्याकरणम्—अशिश्चितम्=शक् धातु दानार्थक है। उसका या शक्लृ शक्तौ धातु का यह रूप है स्वार्थ में सन् प्रत्यय किया गया है "०सनि मीमाघु०" इत्यादि सूत्र से इत्वादि उपधा में हुए हैं। दानार्थ मानने पर प्रकरणवश बल का अध्याहार किया जाता है। लुङ् में च्लिक्ते क्स आदेश व उपधा को इकार छान्दस है। असपन्त='षप समवाये' धातु को आत्मनेपदी बना कर लङ् लकार के प्रथम पुरुष का बहुवचनान्त रूप है। 'धी' शब्द कर्मार्थक किया गया है—'धा' धातु से ईकारान्तादेश करने पर रूप सिद्धि होती है।

संहिता-पाठः

९. वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा। हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥९॥

पद-पाठः

वृत्राणि। अन्यः। सम्ऽइथेषु। जिघ्नते। व्रतानि। अन्यः। अभि। रक्षते। सदा। हवामहे। वाम्। वृषणा। सुवृक्तिऽभिः। अस्मे इति। इन्द्रावरुणा। शर्म। यच्छतम् ॥९॥

सायण:— हे इन्द्रावरुणौ युवयोरन्य एक इन्द्रः वृत्राणि शत्रून समिथेषु संग्रामेषु जिघ्नते हन्ति। अन्य एको वरुणः सदा

सर्वदा व्रतानि कर्माणि अभिरक्षते अभितः सर्वतो रक्षति। हे वृषणा कामानां वर्षिताराविन्द्रावरुणौ तथाविधौ वां युवां सुवृक्तिभिः सुप्रवृत्ताभिः स्तुतिभिः हवामहे आह्वयामहे। आहूतौ च युवामस्मे अस्मभ्यं शर्म सुखं यच्छतं दत्तम्।

व्याख्या :—हे इन्द्रावरुणौ=हे इन्द्र वरुणो! तुम दोनों में से, अन्यः=एक इन्द्र तो, वृत्राणि=शत्रुओं को, समिथेषु=युद्ध में, जिघ्नते=मारता है। अन्य=दूसरा वरुण, सदा=सर्वदा, व्रतानि=शुभ कर्मों की, अभिरक्षते = देखभाल करता है— अर्थात् कर्मानुसार सब को फल देता है।

हे वृष्णा! =कामनाओं की पूर्ति करने वालो! ऐसे वाम्= तुम दोनों को हम, सुवृक्तिभिः= स्तुतियों से, हवामहे=आह्वान करते हैं, अर्थात् गुणगान करते हुए तुम्हें रक्षार्थ पुकारते हैं। आने पर तुम, अस्मे=हमारे लिए, शर्म=सुख, यच्छतम्=प्रदान कीजिए।

व्याकरणम्—समिथेषु=संपूर्वक 'मिथ्' धातु से अच् प्रत्यय करने पर 'संगता मेथन्ते प्रहरन्ते यत्रायं समिथः संग्रामः'। जिघ्नते=हन् धातु से यङ् लुगन्त का रूप है। आत्मने पद आर्ष है। सुवृक्तिभिः=यह शब्द पीटर्सन के मत में 'ऋच्' स्तुतौ से क्तिन् प्रत्यय करने पर 'ऋक्ति' बना कर 'सु' उपपद लगाने पर 'उवङ्' आदेश करने से बनता है जैसे 'सुविताय शंमोः' इस मन्त्र में सु+इण्+क्त करने पर 'उवङ्' आगम या 'वुक्' का उपजन करने पर 'सुवित' बनता है वैसे ही इसे भी समझो। हमारी समझ में सुपूर्वक 'वृजिर्' धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर भी बन सकता है तथा 'सुष्ठु वर्जयति आवर्जयति भक्तः भजनीयं यया स्तुत्या सा सुवृक्तिः' यह व्युत्पत्ति करनी चाहिए।

संहिता-पाठः

१०. अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा
द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो
देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥

पद-पाठः

अस्मे । इति । इन्द्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा ।
द्युम्नम् । यच्छन्तु । महि । शर्म । सऽप्रथः ।
अवध्रम् । ज्योतिः । अदितेः । ऋतऽवृधः ।
देवस्य । श्लोकम् । सवितुः । मनामहे ॥१०॥

सायणः—अस्मे अस्मभ्यम् इन्द्रादयः द्युम्नं द्योतमानं धनं यच्छन्तु । तथा महि महित् सप्रथः सर्वतः पृथु विस्तीर्णं शर्म गृहं च प्रयच्छन्तु । अपि च ऋतावृधः ऋतस्य यज्ञस्य वर्धयित्र्याः अदितेरदीनाया देवमातुः ज्योतिस्तेजश्च नोऽस्माकमवध्रम्, अहिंसकमस्तु । वयं च देवस्य ज्ञानादिगुणयुक्तस्य सवितुः सर्वस्य प्रेरकस्य श्लोकं स्तोत्रं मनामहे जानीमः । कुर्म इत्यर्थः । यद्वा देवेन सविता अस्मभ्यं देयं श्लोकं यशः मनामहे याचामहे ।

व्याख्याः—अस्मे=हमारे लिए, इन्द्रः=इन्द्र, वरुणः=वरुण, मित्रः=सूर्य, अर्यमा=यम का भी प्रेरक आदित्य, आदि देवता द्युम्नम्=द्योतक धन, यच्छन्तु=प्रदान करें । तथा महि=विशाल, सप्रथः=सब प्रकार पृथुता से भोग्य सामग्री से युक्त well furnished, शर्म=गृह भी प्रदान कीजिए । तथा ऋतावृधः=यज्ञ को बढ़ाने वाली, अदितेः=दैन्य शून्य देवमाता की जो, ज्योतिः=तेज, वैभव है वह हमारे लिए, अवध्रम्=

अहिंसक बनी रहे, अर्थात् अदिति हम पर कृपा करती रहे। तथा हम लोग, देवस्य=ज्ञानादि गुण युक्त, सवितुः=सर्व प्रेरक आदित्य के श्लोकम्=स्तोत्र का पाठ (मन्त्र-विशेषों को), मनामहे=बार २ करते रहते हैं। या 'देवस्य' और 'सवितुः' दोनों यह तृतीयार्थ में षष्ठी है—अतः सविता देव के हम, श्लोक=यश को मनामहे=चाहते हैं—माँगते हैं।

व्याकरणम्—सप्रथः ... प्रथः, अच् प्रत्ययान्त रूप है। प्रथेन सहितं सप्रथम्, वेद में ... सक की जगह पुँल्लिङ्ग व्यत्यय से कर दिया है। अवध्रम्=न वधं राति ददातीति अवध्रम्, 'वध्रा' बनाने के बाद नञ् के साथ बहुव्रीहि समास करो।

—:०:—

मं० ८ सूक्त ३०.

विश्वेदेवा सूक्त

परिचयः—इस सूक्त का वैवस्वन मनु ऋषि है। विश्वेदेव देवता है। चारों मन्त्रों में क्रमशः—गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप् नामक पृथक् २ छन्द हैं।

संहिता-पाठः

१. नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः।
विश्वे सतोमहान्त इत्॥

पद-पाठः

नहि। वः। अस्ति। अर्भकः। देवासः। न। कुमारकः॥
विश्वे। सतःऽमहान्तः। इत्॥१॥

सायणः—हे देवासः देवाः वः युष्माकं नह्यस्ति शिशुर्नास्ति। तथा न कुमारकः युष्माकं मध्ये कुमारोऽपि नास्ति किं तु सर्वे यूयं सवयसो नित्यतरुणा भवथ । एतदेव प्रतिपादयति । विश्वे सर्वे देवाः यूयं सतोमहान्त इत् । सर्वस्माद्विद्यामानात्पृथिव्यामपि ये महान्तस्ते सतोमहान्त इत्युच्यन्ते तस्माद्युष्माकमर्भकोऽपि कुमारोऽपि नास्तीत्यर्थः ।।

व्याख्या—ये=जो, देवासः=देवगण या देवता, वः=तुम सब में, अर्भकः=बालक या शिशु, न हि=नहीं, अस्मि=है । न=और न, कुमारकः=(तुम लोगों में कोई भी कुमारः=कुमारावस्था वाला है । अर्थात् तुम सब देवगण सवयाः एवं तरुण हो, विश्वे=सब, देवाः=तुम लोग अर्थात् देवतागण, सतः=सन्मार्गानुगामी सज्जन होते हुए भी, इत्= निश्चय से महान्तः=सर्वाधिक गुणशाली हो । भूलोकवर्ती पर्वतादि 'सतो महान्' कहे जाते हैं, किन्तु देवगण भी 'सतो महान्' कहलाते हैं, क्योंकि उन में न कोई सद्यः प्रसूत शिशु मृग के रूप के रूप हैं—न पौगण्ड अवस्था को अतिक्रान्त करके कुमारावस्था को ही प्राप्त हुआ व्यक्ति है ।

व्याकरणम्—अव्याकरणीयमेतत् ।

विशेषः—निर्विशेषो विशेषः ।

संहिता-पाठः

२. इति॑ स्तु॒तासो॑ असथा रिशादसो॒ ये स्थ त्रय॑श्च
त्रिं॒शच्च॑ । मनो॑र्देवा यज्ञियासः ॥

पद-पाठः

**इति॑ । स्तु॒तासः॑ । अ॒स॒थ॒ । रि॒शा॒द॒सः॒ । ये । स्थ । त्रयः॑ ।
च॒ । त्रिं॒शत् । च॒ । मनोः॑ । दे॒वाः॒ । य॒ज्ञि॒या॒सः॒ ॥२॥**

सायण :—हे रिशादसः रिशतां हिंसतामशितारः हे मनोर्यज्ञियासः मनुनामकस्य मम यज्ञार्हा हे देवाः ये यूयं त्रयश्च त्रिसंख्याकास्त्रिशच्च त्रिंशत्संख्याकाः त्रयस्त्रिंशद्देवताः स्थ भवथ अभूत, ते यूयमिति इत्थमनेन प्रकारेण स्तुतासः, असथ मया मनुना स्तुता भवथ। अस्तेर्लेटि छान्दसो लुगभावः। यद्वा असथेति कान्त्यर्थः। इत्थं स्तुता यूयं हवींषि कामयध्वम्।

व्याख्याः—हे रिशादसः=हे हिंसकों के विध्वंसक। एवं मनोः= नामक व्यक्ति के द्वारा, यज्ञियासः=पूजनीय, देवाः=हे देवगणों! ये= जो कि तुम सब संख्या में, त्रयश्च=तीन और त्रिंशत् च=तीस, स्थ=हो, या हो चुके हो, वे तुम देवगण इति=उक्त एवं वक्ष्यमाण प्रकार द्वारा स्तुतासः=मुझ मनु के द्वारा स्तुति किये गये हो, या अस् धातु का कामना अर्थ मान कर "इस प्रकार स्तुत्य होकर हवि के इच्छुक बनाए गए हो" यह अर्थ है।

व्याकरणम्—रिशादसः=रिश् और अद् दो धातुओं से असुन् प्रत्यय करने पर बना है। राथ ने तो लिखा है कि यह शब्द अज्ञात है। किन्तु भिन्न-भिन्न टीकाकारों ने इसे 'रेशयदारिन्' से बनाया है जिस का अर्थ टुकड़े-टुकड़े करना है, या 'रेशयदाशिन्' से बनाया है, तथा 'दंश-दशने' से दाशिन् बनाने के कारण काटना ही है। तथा पृषोदरादित्वान् सिद्धि मानी है। हमें तो सायण का ही पद निर्माण प्रकार रुचिकर व उचित प्रतीत होता है। 'रिश्' का प्रयोग नियम से (to pluck off या to tear into bits में प्रयोग देखा गया है। 'यज्ञिय' शब्द में 'अर्ह' अर्थ में 'घ' प्रत्यय हुआ है। 'असथ' अस् भुवि धातु से लेट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप है, धात्वकार का लोप छान्दस प्रयोग होने से नहीं हुआ है।

विशेषः—'मनोर्देवा यज्ञियासः का (Gods worshipped of man' or Manu अर्थ है, मनु मानवों का पूर्वज माना जाता है जैसा अगले मन्त्र के 'पित्र्यात् मानवात्' पद से सिद्ध है।

संहिता-पाठः

३. ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः॥

पद-पाठः

ते। नः। त्राध्वम्। ते। अवत। ते। ऊँ। इति। नः। अधि। वोचत। मा। नः। पथः। पित्र्यात्। मानवात्। अधि। दूरम्। नैष्ट। पराऽवतः॥३॥

सायणः—हे देवाः ते यूयं नोऽस्मान् त्राध्वं बाधकेभ्यो रक्षोभ्यः त्रायध्वं ते यूयंमवत धनादि प्रदानैरस्मान्नक्षत त एव देवा नोऽस्मानधि वोचत अधिकं भवन्तः कर्मकारिणो धनादिमन्तश्च भवन्त्विति यूयं ब्रूत। किं च हे देवाः मानवात् पित्र्यात्। सर्वेषां मनुः पिता। तत् आगतात् परावतः दूरात पथः मार्गात् नोस्मान् मा नैष्ट मा नयत किं तु दूरम् अधि एतद्व्यतिरिक्तः विप्रकृष्टः मार्गोस्ति तस्मादधिकमित्यर्थः। तस्मान्मार्गात् अपनयत्॥

व्याख्याः—हे देवो! ते=वे आप, नः=हमारी, त्राध्वम्=हिंसक या राक्षसों से रक्षा करो। ते=वे आप व, अवत=धनादि प्रदान से हमारी रक्षा करे। ते=वे आप, नः=हमारे लिए, अधि=आधिक्ययुक्त समृद्धियुक्त, वोचत=आशीर्वाद प्रदान करें यह कह कर कि तुम सब धनादियुक्त बन जाओ, केवल मन से नहीं। नः=हमें आप, मानवात्=मनुद्वारा प्रदर्शित अत एव पित्र्य=पितृ सम्बन्धी, पूर्वजों के द्वारा क्षुण्ण या निर्दिष्ट (क्योंकि

मनु को मानवों का पिता या जन्मदाता माना जाता है) मार्ग से जो, परावतः=दूरवर्ती मार्ग है उस पथः=मार्ग से, नः=हमें, मा= नहीं नैष्ट=ले चलिए। तथा दूरम्=दूरस्थ जो देवयानादि मार्ग है उससे भी अधि=अधिक दूर वर्ती मार्ग है उस मार्ग से भी (मा नैष्ट) न ले चलिए। (केवल मानवमार्ग द्वारा ही हमारा नयन या पथप्रदर्शन कीजिए यह भाव है)।

व्याकरणम्—अधिपूर्वक 'वच्' धातु का अर्थ सिफारिश करना, सहायता करना "to speak for" या to come to the help of अर्थ होता है। ऋग् ७-८३-२, व ८-३०-३ में स्पष्ट उल्लेख मिलता है। 'परावतः' परा शब्द से मतुप् प्रत्यय हुआ है। नैष्ट= लुङ् मध्यम पुरुष बहुवचन का रूप है। शेष स्पष्ट है।

संहिता-पाठः

४. ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत॥

पद-पाठः

ये। देवासः। इह। स्थन। विश्वे। वैश्वानराः। उत।
अस्मभ्यम्। शर्म। सऽप्रथः। गवे। अश्वाय। यच्छत॥४॥

सायणः—हे देवासः देवा उत अपि च वैश्वानराः। विश्वे सर्वे नरः कर्मनेतारोऽध्वर्य्वादयो यस्य स विश्वानरो यज्ञः तस्मिन् सोमादिहवींषि स्वीकर्तुं भवाः प्रादुर्भूताः। भावार्थेऽण् प्रत्ययः। यद्वा। विश्वानरोऽग्निः। देवानाँ तन्मुखत्वात्तस्य संबन्धिनो सर्वे ये देवा यूयम् इह अस्मिन्नस्मदीये यज्ञे स्थन हवींष्यादातुं भवथ। ततः सप्रथः। प्रथ प्रख्याने। सर्वतः प्रसिद्धं सर्वत्र पृथुतमं वा शर्म। शर्म श्रृणाति हिनस्ति दुःख-

मिति शर्म सुखम्। तदस्मभ्यं प्रयच्छंत। तथा गवेऽस्मदीयेभ्यो यज्ञसाधनभूतेभ्यो गोभ्यः अश्वाय शर्म सुखम् प्रदत्त।

व्याख्याः—ये=जो, देवासः=देवगण, उत=और, विश्वे=सम्पूर्ण, वैश्वानराः=विश्वानर अर्थात् यज्ञ में प्रादुर्भूत या विश्वानर अर्थात् अग्नि तत्सम्बन्धी, (देवासः=देवगण, देवासः पद की आवृत्ति करनी चाहिए, 'विश्वे' इस विशेष्य के बल से), इह=इस यज्ञ में, स्थन=हविः आदि लेने के लिए उपस्थित होजाइए। तदनन्तर, सप्रथः=सर्वत्र प्रसिद्ध या पृथुतम, शर्म=सुख अस्मभ्यम्=हमें तथा हमारी, गवे=यज्ञ साधन भूत गौओं को तथा अश्वाय=अश्वादि पशुओं को यच्छत=प्रदान कीजिए।

व्याकरणम्—वैश्वानरः=विश्वे अध्वर्य्वादयः नरः नेतारो यस्मिन् सोऽयंमहाः विश्वानरः, तत्र सोमादि हवींषि स्वीकर्तुं प्रादुर्भूता उपस्थिता वा देवा वैश्वानराः कथ्यन्ते। भवार्थ में अण् प्रत्यय किया गया है। अथवा विश्वानर=अग्नि (अग्निमुखा वै देवाः) विश्वानरस्य इमे वैश्वानराः—'तस्येदम्' सूत्र से अण् प्रत्यय किया गया है। शर्म=शृणाति हिनस्ति दुःखमिति शर्म सुखम्। शॄ धातु से मनिन् प्रत्यय किया गया है।

स्थन=वेद में 'थ' का 'थन' कर दिया जाता है। इस दीर्घान्त्य 'थना' बहुत कम होता है। 'तप्तनप्तनथनाश्च' यह पाणिनि का विधायक सूत्र है।

विशेषः—इस मन्त्र में वैश्वानर शब्द का अर्थ— (all assembled here' or 'all that are in the world' भी ग्रासमान ने किया—इस अवस्था में 'इह' का अर्थ संसार है।

—:०:—

यम-सूक्त (पितरः)

संहिता-पाठः

१. परेयिवांसं प्रवतो महीरनु
बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥

पद-पाठः

परेयिऽवांसम् । प्रवतः । महीः । अनु ।
बहुऽभ्यः । पन्थाम् । अनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतम् । सम्ऽगमनम् । जनानाम् ।
यमम् । राजानम् । हविषा । दुवस्य ॥

परिचयः—इस सूक्त का विवस्वान् का पुत्र यम ऋषि है, अंगिरा, पितर, भृगु और अथर्वा, लिङ्गोक्त देवता हैं, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और बृहती छन्द हैं ।

सायण:—हे मदीयान्तरात्मन् यजमान वा त्वं राजानं पितॄणां स्वामिनं यमं हविषा पुरोडाशादिना दुवस्य परिचर। कीदृशम् । प्रवतः प्रकृष्ट कर्मवतो भूलोकवर्त्तिभोगसाधनं पुण्यमनुष्ठितवतः पुरुषान्महीः तत्तद्भोगोचितभूप्रदेशविशेषा ननु परेयिवांसं क्रमेण मरणादूर्ध्वं प्रापितवन्तम् तथा बहुभ्यः स्वर्गार्थिभ्यपुण्यकृद्भ्यः पुण्यकृतार्थे पन्थां स्वर्गस्योचितं मार्गमनुपस्पशानमबाधमानम् । पापिन् एव पुरुषान् स्वर्गमार्गबाधंन नरकं

प्रापयति न तु पुण्यकृत इत्यर्थः। वैवस्वतं विवस्वतः सूर्यस्य पुत्रं जनानां पापिनां संगमनं गन्तव्यस्थानरूपम्।

संस्कृतव्याख्या :—हे मदीयान्तरात्मन्, यजमान वा त्वम्, राजानम्=पितॄणां स्वामिनम्, यमम्, हविषा=पुरोडाशादिना, दुवस्य=परिचर, कीदृशम्:— प्रवतः=प्रकृष्टकर्मवतः पुरुषान्, महीः=तत्तद्भोगोचित-भूप्रदेशान्, अनु परेयिवांसम्=मरणादूर्ध्वं प्रापितवन्तम्, (तथा), बहुभ्यः (स्वर्गार्थिभ्यः पुण्यकृद्भ्यः), पन्थाम्=स्वर्गोचितं मार्गम्, अनुपस्पशानम्, अबाधमानम्, वैवस्वतम्=सूर्यपुत्रम्, जनानां=पापिनाम्, संगमनम्=गन्तव्यस्थानम्।

हिन्दीव्याख्याः—हे मेरे अन्तरात्मा या हे यजमान! तू राजानम्=पितरों के स्वामी, यमम्=यम की, हविषा=पुरोडाश आदि के द्वारा, दुवस्य=सेवा कर, जो कि यम प्रवतः=उत्कृष्ट पुण्य कर्म करने वाले पुरुषों को, महीः=उन के भोगों के योग्य भूप्रदेशों पर, अनु=लक्ष्य करके, परेयिवांसम्=मरने के बाद पहुँचाता है तथा, बहुभ्यः=स्वर्ग चाहने वाले पुण्यकर्मशीलों को, पन्थान्=स्वर्ग योग्य मार्ग में जाने के समय, अनुपस्पशानम्=बाधा नहीं डालता, अर्थात् पापी पुरुषों को ही स्वर्ग जाने से रोकता है पुण्यात्माओं को नहीं, ऐसे वैवस्वतम्=सूर्य के पुत्रभूत, जनानाम्=पापी पुरुषों के, संगमनम्=अभिगम्य, उस यम की सेवा करो।

व्याकरणम् 'दुवस्य' में दु धातु से शप् के स्थान में 'श' तौदादिक व्यत्यय से हुआ। अपित् के ङित् होने से उवङादेश, आत्मनेपद, मध्यमपुरुष, एकवचन। 'परेयिवाँसम्' इण् गतौ क्वसु प्रत्यय। 'अनुपस्पशानम्' में अनुपूर्वक स्पश बाधने धातु से लिट् के स्थान में कानच् प्रत्यय-द्वित्व आदि। संगमनम्=संपूर्वक गम् धातु से ल्युट्। प्रवतः=प्रशब्द से मतुप् प्रत्यय, यहां 'प्र' उपसर्ग प्रकृष्टता युक्त का वाचक है।

विशेष:—'प्रवतः' को सायण ने प्रकृष्ट मनुष्य वाची माना है, पर पीटर्सन ने इसे 'महीः' का विशेषण माना है। तथा यह 'उद्वतः' और 'परावतः' इत्यादि प्रयोग समान योगक्षेम वाला है। पीटर्सन सायण की व्याख्या को 'purely fanciful' कहता हुआ मज़ाक उड़ा रहा है। 'तीर्थैं स्तरन्ति प्रवतो प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति' [अ. व. (A. V.) १८-४-७] 'संगमनं जनानाम्' Assembler of men.'

संहिता-पाठः

२. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद
नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुर्
एना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥

पद-पाठः

यमः । न । गातुम् । प्रथमः । विवेद ।
न । एषा । गव्यूतिः । अपऽभर्तवै । ऊँ इति ।
यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । पराऽईयुः ।
एना । जज्ञानाः । पथ्याः । अनु । स्वाः ॥

सायण :—प्रथमः सर्वेषाँ मुख्यः यमः नोऽस्माकं प्रजानां गातुं शुभाशुभ निमित्तं विवेद जानाति। एषा गव्यूतिर्नाप-भर्तवा उ। अतिशयज्ञानयोगाद्यमस्य न केनचिदपहर्तुमपनेतुं शक्यत इत्यर्थः। यत्र यस्मिन्मार्गे नोऽस्माकं पूर्वे पितरः परेषुः एना अनेन मार्गेण गच्छन्तो जज्ञानाः जाताः सर्वे स्वाः स्वभूताः पथ्याः स्वकर्ममार्गं प्रत्यागता अनुगच्छन्ति।

संस्कृतव्याख्याः—प्रथमः=मुख्यः, यमः, न=अस्माकम्, गातुम्=शुभाशुभनिमित्तम्, विवदे=जानाति, एषा गव्यूतिः न अपभर्त वाउ=अतिशयज्ञानयोगात् यमस्य न केनचित् अपहर्तुं शक्यते, यत्र=यस्मिन्मार्गे, नः=अस्माकम्, पूर्वे, पितरः, परेयुः, एना=अनेन मार्गेण गच्छन्तः, जज्ञानाः=जाताः (सर्वे), स्वाः=स्वभूताः, पथ्याः=गतीः अनु=अनुगच्छन्तीति।

प्रथमः=सब में मुख्य, यमः=यमराज, नः=हमारे अर्थात् प्रजा के, गातुन्=शुभ-अशुभ कर्मों को, विवेद=जानता है, एषा=यह, गव्यूतिः= ज्ञान या पद्धति, न=नहीं, ऊ=निश्चय से, अपभर्तवै=अपहरण की जा सकती है, अर्थात् यम के इस स्वाभाविक ज्ञान को कोई नहीं हटा सकता, यत्र=जिस मार्ग में, नः=हमारे, पूर्वे पितरः=पूर्वज पितृगण, परेयुः= गये हैं, एना=इस मार्ग से, जज्ञानाः=उत्पन्न होने वाले सब प्राणी, स्वाः=अपने-अपने कर्मानुसार, पथ्याः=मार्गों को, अनु=जाते हैं, अनुगमन करते हैं।

व्याकरणम्—'गातुम्' इण् गतौ से 'तुन्' प्रत्यय इण् को 'गा' आदेश छान्दस है। एति येन स गातुः=मार्ग। अपभर्तवै=अप पूर्वक हृ धातु से तुमुन् के अर्थ में 'तवै' प्रत्यय हुआ है। 'जज्ञानाः' में 'जन्' से 'कानच्' द्वित्व, उपधा लोप। इसे 'ज्ञा' धातु से भी बनाया जा सकता है, प्रत्यय 'कानच्' ही होगा।

विशेषः—"चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे' (१।७१।२) ऋग्वेद के मन्त्र में भी गातु शब्द मार्ग के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त है।

संहिता-पाठः

३. मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्
बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।

यांश्च॑ दे॒वा वा॑वृ॒धुर्ये च॑ दे॒वान्
स्वाहा॒न्ये स्व॒धया॒न्ये म॑दन्ति ॥

पद-पाठः

मात॑ली । क॒व्यैः । य॒मः । अङ्गि॑रःऽभिः ।
बृह॒स्पतिः॑ । ऋक्व॑ऽभि । व॒वृ॒धा॒नः ।
यान् । च॒ । दे॒वाः । व॒वृ॒धुः । ये । च॒ । दे॒वान् ।
स्वाहा॑ । अ॒न्ये । स्व॒धया॑ । अ॒न्ये । म॒द॒न्ति॒ ॥३॥

सायणः—मातली । मातलिरिन्द्रस्य सारथिः । तद्वानिन्द्रो मातली । स कव्यैः कव्यभाग्भिः पितृभिः सह ववृधानो वर्धमानो भवति । यमश्चाङ्गिरोभिः पितृविशेषैः सह वर्धमानो भवति । तत्र देवा इन्द्रादयो यांश्च कव्यभागान्पितृन्ववृधुर्वर्धयन्ति ये च कव्यभागादयः पितरो देवानिन्द्रादीन्वर्धयन्ति तेषां मध्ये अन्ये इन्द्रादयः स्वाहा मदन्ति स्वाहाकारेण हृष्यन्ति अन्ये पितरः स्वधया स्वधाकारेण हृष्यन्ति ।

संस्कृतव्याख्याः—मातली=इन्द्रः(मातलिरिन्द्रस्य सारथिः), कव्यैः=पितृभिः, (सह), ववृधानः=वर्धमानो भवति, यमः च, अंगिरोभिः=पितृविशेषैः (ववृधानः) (तत्र)देवाः=इन्द्रादयः, यांश्च=पितॄन्, ववृधुः=वर्धयन्ति, ये च (पितरः), देवान्=इन्द्रादीन्, (वर्धयन्ति), (तेषां मध्ये), अन्ये=इन्द्रादयः, स्वाहा मदन्ति=स्वाहाकारेण हृष्यन्ति, अन्ये=पितरः, स्वधया=स्वधाकारेण (हृष्यन्ति) ।

हि. व्या.-मातली=मातली नाम के सारथी वाला इन्द्र, कव्यैः=कव्य का पितृभोज्य पदार्थों का भोग करने वाले पितरों के साथ, वावृधानः=बढ़ता रहता है, यमः=और यमराज, अङ्गिरोभिः=अंगिरा नाम के पितरों के साथ बढ़ता है, बृहस्पतिः=बृहस्पति नामक पितर, ऋक्वभिः=

ऋचाओं से, बढ़ता है, देवाः=इन्द्रादि, यांश्च=जिन कव्य भोजन करने वाले पितरों को, वावृधुः=बढ़ाते हैं, च=और, ये=जो, पितर, देवान्= इन्द्रादि को बढ़ाते हैं उनमें, अन्ये=कुछ इन्द्रादि देवगण स्वाहा= स्वाहाकार से, मदन्ति=तृप्त होते हैं, अन्ये=कुछ पितृगण, स्वधया= स्वधाकार से, मदन्ति=तृप्त होते हैं।

व्याकरणम्—वावृधानः=वृध् धातु से कानच् प्रत्यय हुआ है। मातली—मातली शब्द से मत्वर्थीय इन् प्रत्यय।

विशेषः—अङ्गिरस् और कव्य नामक देव हैं बड़े ही पवित्र माने जाते हैं। ऋक्वन् नामक आत्माएँ बृहस्पति के चारों ओर से घेरे रहते हैं। जिससे सूर्य को मन्देह राक्षस न सता सकें।

'यांश्च देवो वावृधुर्ये च देवान्' 'That is the fathers and the gods. The relation of mutual support and nourishment, begun on earth, is continued in heaven. Suādhā a sweet drink which is offered to the manes—(प्रेतात्मा)। मैक्डानल 'वावृधानः' का अर्थ having grown strong अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

४. इमं यम प्रस्तरमा हि सीदा-
ङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्व्
एना राजन्हविषा मादयस्व ॥

पद-पाठः

इमम्। यम। प्रऽस्तरम्। आ। हि। सीद।
अङ्गिरःऽभिः। पितृऽभिः। सम्ऽविदानः।
आ त्वा। मन्त्राः। कविऽशस्ताः। वहन्तु।
एना। राजन् हविषा। मादयस्व ॥४॥

सायणः—हे यम अङ्गिरोभिः एतन्नामकैः पितृभिः संविदानः ऐकमत्यं गतः त्वमिमं प्रस्तरं विस्तीर्णं यज्ञविशेषम् आसीद आगत्योपविश । हि यस्मादेवं तस्मात्कविशस्ताः विद्वद्भिर्ऋत्विग्भिः प्रयुक्ता मन्त्रास्त्वा त्वाम् आ वहन्तु । हे राजन् एना एतेन हविषा तुष्टो मादयस्व यजमानं हर्षय ।।

संस्कृतव्याख्याः—हे यम अङ्गिरोभिः, पितृभिः, संविदानः=ऐकमत्यं गतस्त्वम्, इमम्, प्रस्तरम्=विस्तीर्णम्, (यज्ञविशेषं), आसीद=आगत्योपविश । हि=यस्मात् कविशस्ताः=विद्वद्भिर्ऋत्विग्भिः प्रयुक्ताः, मन्त्राः, त्वाम्, आवहन्तु, हे राजन्! एना=एतेन, हविषा (तुष्टः), मादयस्व=यजमानं हर्षय ।

हे यम ! अंगिरोभिः=इस नाम के पितृभिः=पितरों के साथ, संविदानः=ऐकमत्य को प्राप्त हुआ, तू इमम्=इस, प्रस्तरम्=विस्तीर्ण यज्ञ विशेष में बिछाये पर, आसीद=आकर बैठो, हि=क्योंकि, कविशस्ताः=विद्वान् ऋत्विजों से बोले गये, मंत्राः=मंत्र, त्वा=तुझ को, आवहन्तु=यहाँ बुलावें । हे राजन्, एना=इस, हविषा=हवि के द्वारा सन्तुष्ट हुआ तू, मादयस्व=यजमान को प्रसन्न बना ।

व्याकरणम्—'प्रस्तरम्' प्र स्तॄञ् धातु से अच् प्रत्यय । कविशस्ताः=कवि उपपद शंस् धातु से क्त प्रत्यय हुआ है ।

विशेषः—'अङ्गिराः' आदि पितृविशेषों की तद् गुणानुकूल संज्ञाएँ हैं । तथा यम के सहयोगी हैं ।

संहिता-पाठः

५. अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्
यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते-
ऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ।।

पद-पाठः

अङ्गिरःऽभिः । आ । गहि । यज्ञियेभिः ।
यम । वैरूपैः । इह । मादयस्व ।
विवस्वन्तम् । हुवे ! यः । पिता । ते ।
अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । आ । निऽसद्य ।

सायणः—हे यम वैरूपैः विविधरूपयुक्तैः वैरूपसामप्रियैर्वा यज्ञियेभिः यज्ञयोग्यैः अङ्गिरोभिः सह आ गहि आगच्छ। आगत्य च इह अस्मिन्यज्ञे मादयस्व यजमानं हर्षय । यो विवस्वान् ते तव पितास्ति अस्मिन् यज्ञे तं विवस्वन्तं हुवे आह्वायामि । स चास्तीर्णे बर्हिषि आ निषद्योपविश्य यजमानं हर्षयतु ।

संस्कृतव्यख्याः—हे यम ! वैरूपैः=विविधरूपयुक्तैः, यज्ञियेभिः=यज्ञयोग्यैः, अङ्गिरोभिः सह, आगहि=आगच्छ, इह=अस्मिन् यज्ञे, मादयस्व= यजमानं हर्षय, यः=विवस्वान्, ते=तव, पिता, (अस्ति), अस्मिन् यज्ञे, तं विवस्वन्तम्, हुवे=आह्वामि, स च, बर्हिषि (आस्तीर्णे), आ निषद्य=उपविश्य, (यजमानं हर्षयतु) ।

हिन्दीव्याख्या:—हे यम ! वैरूपैः=विविध रूप वाले, यज्ञियेभिः=यज्ञ योग्य, अङ्गिरोभिः=अंगिरा नामक पितरों के साथ, आगहि=आइए, और इह=इस यज्ञ में, आकार मादयस्व=यजमान को प्रसन्न कीजिये, यः=जो विवस्वान् (सूर्य), ते=तेरा, पिता=जनक रक्षक है, उस विवस्वन्तम्=सूर्य को, हुवे=यज्ञ में आह्वान करता हूँ, वह अस्मिन्, यज्ञे=इस यज्ञ में, बर्हिषि=विस्तीर्ण इस कुशा पर, आनिषद्य=बैठ कर, यजमान को प्रसन्न करें । (यहाँ पूर्व क्रिया का अध्याहार किया जाता है) ।

व्याकरणम्—'आगहि' आङ् पूर्वक गम् धातु विकरण लुक्, सिप् को 'हि' आदेश, नलोप को असिद्ध होने से 'हि' का लुक् नहीं होता।

'निषद्य' में नि पूर्वक सद् से त्वा, ल्यप्।

संहिता-पाठः

६. अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

पद-पाठः

अङ्गिरसः। नः। पितरः। नवऽग्वाः।
अथर्वाणः। भृगवः। सोम्यासः।
तेषाम्। वयम्। सुऽमतौ। यज्ञियानाम्।
अपि। भद्रे। सौमनसे। स्याम ॥

सायणः—अङ्गिरसः अङ्गिरो नामकाः अथर्वाणः अथर्वनामकाः भृगवः भृगुनामकाश्च नोऽस्माकं पितरः नवग्वा अभिनवगमनयुक्ताः तदा नूतनवत्प्रीतिजनकाः इत्यर्थः। ते च सोम्यासः सोममर्हन्तीति सोम्याः। यज्ञियानां यज्ञार्हाणां तेषां सुमतौ अनुग्रहयुक्तायां बुद्धौ वयं स्याम सर्वदा तिष्ठेम। अपि च सौमनसे भद्रे सौमनसस्य कारणे कल्याणे फले स्याम सवदा तिष्ठेम।

संस्कृतव्याख्या:—अङ्गिरसः, अथर्वाणः = अथर्वनामकाः, भृगवः=भृगुनामकाः, नः=अस्माकम्, पितरः, नवग्वाः=अभिनव-

गमनयुक्ताः, ते च, सोम्यासः=सोममर्हन्तः, यज्ञियानाम् = पूज्यानाम्, तेषाम्, सुमतौ = अनुग्रहबुद्धौ, वयं स्याम, अपि च, सौमनसे भद्रे=सौमनसस्य कारणे कल्याणे (स्याम)॥

हिन्दीव्याख्या :— अङ्गिरसः=अंगिरा नाम के, नः=हमारे पितृगण, नवग्वाः=नवीन गमन वाले, अर्थात् सदा नवीन वस्तु के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले, और सोम्यासः=चन्द्रमा के समान आह्लादक, और अथर्वाणः=अथर्वा नाम वाले, भृगवः=भृगु नाम वाले, (हमारे पितर) हैं, तेषाम् = उन, यज्ञियानाम्=यज्ञयोग्य, पितरों की, सुमतौ=अनुग्रहवाली (कृपापूर्ण) बुद्धि में वयम्=हम लोग, स्याम=रहें, अपि=और, सौमनसे=मन को प्रसन्न करने वाले, भद्रे=कल्याणकारी सुखकारी फल वाले बनें।

व्याकरणम्--'नवग्वा' नव उपपद गम् धातु से औणादि ड्वन् प्रत्यय, टि लोप। 'सौमनसे' में 'सु मनसः (कारणम्) इदं सौमनसम्', अण् प्रत्यय, प्रसन्नता के जनक यह अर्थ है।

विशेषः—राथ के मतानुसार पूर्वकाल में नवग्व और अथर्वन् नामक पवित्र ब्राह्मण तपस्वियों की जातियाँ थीं। तथा 'सोम्यासः' इस पद का जो सायण ने 'सोम' योग्य अर्थ किया है इसकी अपेक्षा सोम रस का प्रदान करने वाले offerers of soma यह अर्थ अधिक उपयुक्त है। ऋग्वेद के १-३१-१६ और ४-१७-७ के मन्त्र भी प्रमाण हैं जहाँ यही अर्थ ठीक बैठता है।

संहिता-पाठः

७. प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता
यमं पश्यासि वरुणं च देवम्॥

पद-पाठः

प्र । इहि । प्र इहि । पथिऽभिः । पूर्व्येभिः ।
यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । पराऽईयुः ।
उभा । राजाना । स्वधया । मदन्ता ।
यमम् । पश्यासि । वरुणम् । च । देवम् ॥७॥

सायणः—यत्र यस्मिन् स्थाने नोऽस्माकं पूर्वे पुरातनाः पितरः पितामहादयः परेयुः पूर्व्येभिः पूर्वस्मिन्काले भवैः॥ अनादि काल प्रवृत्तैरित्यर्थः पथिभिर्मार्गैः हे मत्पितस्तत्स्थानं प्रेहि प्रगच्छ शीघ्रं गच्छ। तत्र गत्वा च स्वधया अमृतान्नेन मदन्ता मदन्तौ तृप्यन्तौ राजाना राजनौ उभा उभौ यमं देवं द्योतमानं वरुणं च पश्यासि पश्य ॥

संस्कृतव्याख्याः—यत्र=यस्मिन स्थाने, नः=अस्माकम्, पूर्वे= पुरातनाः, पितरः, परेयुः, पूर्वेभि=पूर्वस्मिन् काले भवैः, पथिभिः मार्गैः, (तत्स्थानम्) प्रेहि, हे पितः, (गत्वा च), स्पधया= अमृतान्नेन, मदन्ता=मदन्तौ, राजाना=राजानौ, उभा=उभौ, यमं देवम्, वरुणं च, पश्यासि=पश्य ।

हिन्दीव्याख्याः—यत्र=जिस स्थान में, नः=हमारे, पूर्वे=प्राचीन, पितरः=पितामहादि, परेयुः=गये हैं, पूर्व्येभिः=पूर्वकाल में बने हुए, अर्थात् अनादि काल से चले हुए, पथिभिः=मार्गों से, प्रेहि=शीघ्र-शीघ्र जाओ, और जाकर स्वधया=अन्न से, मदन्ता=तृप्त होने वाले, राजाना= दीप्तिमान् शरीर वाले, उभा=दोनों, यमम्=यम को, वरुणम्=वरुण को, देवम्=उक्त दोनों देवों को, पश्यासि=देखो ।

व्याकरणम्—'उभा' तथा राजाना' इन दोनों पदों में विभक्तियों के स्थान में 'अ' प्रत्यय 'सुपां सुलुक्' से हुआ है ।

विशेषः—इस मन्त्र का "यन्नानः पूर्वे पितरः परेयुः" यह वाक्य इस सूक्त के द्वितीयमन्त्र के तृतीय चरण से अक्षरशः मिलता है।

संहिता-पाठः

८. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेने-
ष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि
सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः॥

पद-पाठः

सम्। गच्छस्व। पितृऽभिः। सम्। यमेन।
इष्टापूर्तेन। परमे। विऽओमन्।
हित्वाय। अवद्यम्। पुनः। अस्तम्। आ। इहि।
सम्। गच्छस्व। तन्वा। सुऽवर्चाः॥

सायणः—हे मदीयः पितः अतस्त्वं परमे उत्कृष्टे व्योमन् व्योमनि स्वर्गाख्ये स्थाने स्वभूतैः पितृभिः सह सं गच्छस्व। इष्टापूर्त्तेन श्रौतस्मार्त्तदानफलेन संगच्छस्व। तत इष्टापूर्त्तेन सहागम्य अवद्यं पापं हित्वा परित्यज्य अस्तं वियमानाख्यं गृहमेहि आगच्छ। ततः सुवर्चाः तृतीयार्थ प्रथमा। सुवर्चसा शोभनदीप्तियुक्तेन तन्वा स्वशरीरेण संगच्छस्व।

संस्कृतव्याख्याः— (हे पितः ततस्त्वम्) परमे=उत्कृष्टे, व्योमन्=स्वर्गाख्ये स्थाने, पितृभिः सह, संगच्छस्व, इष्टापूर्तेन= श्रौतस्मार्तदानफलेन, संगच्छस्व, अवद्यम्=पापम्, हित्वा, अस्तम्=गृहम्, एहि=आगच्छ, (ततः), सुवर्चाः सुवर्चोयुक्तेन, तन्वा=शरीरेण, संगच्छस्व।

हिन्दीव्याख्याः—हे मेरे पिता ! फिर तुम परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=स्वर्ग नामक स्थान में, पितृभिः=पितरों के साथ, संगच्छस्व=मिलो, इष्टापूर्तेन=यज्ञ और कूप आदि के द्वारा, संगच्छस्व=पितरों से मिलो। फिर अवद्यम्=पाप को, हित्वाय=छोड़ कर, अस्तम्=म्रियमाण नाम के घर को, एहि=जाओ, और वहाँ, सुवर्चाः सुन्दर चमक वाले, तन्वा=शरीर को, संगच्छस्व=ग्रहण करो, अर्थात् नया जन्म कर्मानुसार प्राप्त करो।

व्याकरणम्—'हित्वाय' में 'छन्दसि शायजपि' से त्वा प्रत्ययान्त ओहाक् त्यागे धातु से 'क्त्वो यक्' (७।१।४७) इस सूत्र से 'यक्' प्रत्यय और जोड़ा गया है। 'सुवर्चाः' तृतीयान्त एकवचन है पर विभक्ति का लोप हो गया है। फिर दीर्घादि हुए हैं।

विशेषः—'इष्टापूर्त' का अर्थ राथ ने केवल शब्दार्थ ले कर 'Wish and filfilling' कर डाला है जो वेद मन्त्र के साथ घोर अन्याय है और अनभिज्ञता सूचक है। किन्तु आगे चलकर राथ ही लिखता है कि—

The Lexicographers explain the word as meaning oblations (इष्ट) and good works (आपूर्त or पूर्त such as digging a tank and the lake लिखा भी है :—

वापी कूप तडागादि देवतायतनानि च ।
अन्न प्रदान मारामाः पूर्तमध्याः प्रचक्षते ॥
एकाग्नि कर्म हवनं त्रेतायां यच्चहूयते ।
अन्तर्वेद्यां च यद्दानमिष्टं, तदभिधीयते ॥
(...चन्द्र कोश ८३५)

संहिता-पाठः

९. अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒
ऽस्मा ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कमक्र॑न् ।
अहो॑भिर॒द्भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं
य॒मो द॑दात्यव॒सान॑मस्मै ॥

पद-पाठः

अप॑ । इ॒त॒ । वि । इ॒त॒ । वि । च॒ स॒र्प॒त॒ । अतः॑ ।
अ॒स्मै । ए॒तम् । पि॒तरः॑ । लो॒कम् । अ॒क्र॒न् ।
अहः॑ऽभिः । अ॒त्ऽभिः । अ॒क्तुऽभिः॑ । विऽअ॑क्तम् ।
य॒मः । द॒दा॒ति॒ । अ॒व॒ऽसान॑म् । अ॒स्मै॒ ॥९॥

सायण :—श्मशाने पूर्वं स्थिताः हे पिशाचादयः अतः अस्मान्मृतयजमानदहनस्थानादपेत अपगच्छत वीत विशेषेण गच्छत वि सर्पत च । इदं स्थानं परित्यज्य नाना भावेन दूरतरं देशं गच्छतेत्यर्थः । पितरः अस्मै मृतयजमानस्यार्थाय एतं लोकमिदं दहनस्थानं अक्रन् यमस्याज्ञया अन्वकुर्वन् । यमोऽप्यहोभिर्दिवसैः अद्भिः अभ्युक्षणोदकैः अक्तुभिः रात्रिभिर्व्यक्तं संगतम् । शुद्धि निमित्तैः कालादेकादिभिः शोधितमित्यर्थः । अवसानम् दहनस्थानम् अस्मै मृतयजमानस्यार्थाय ददाति दत्तवान् ।

संस्कृतव्याख्याः—श्मशाने पूर्वं स्थिता हे पिशाचादयः, अतः= अस्मात् (प्रमृज्यमानदहनस्थानात्) अपेत=अपगच्छत, वीत= विशेषेण गच्छत, विसर्पत=दूरं गच्छत, पितरः, अस्मै=मृतयजमानस्यार्थाय, एतं लोकम्= इदं दहनस्थानम् , अक्रन्=यमस्याज्ञयाऽन्वकुर्वन्, यमः , अपि, अहोभिः=दिवसैः अद्भिः=अभ्युक्षणोदकैः, अक्तुभिः=रात्रिभिः, व्यक्तम्=संगतम्, अवसानम्= दहनस्थानम्, अस्मै, ददाति=दत्तवान् ।

हे पिशाचो ! तुम, अतः=इस पवित्र दहन स्थान से, अपेत=हट जाओ, वीत=इधर उधर चले जाओ, विसर्पत=इस जगह को छोड़ कर दूर चले जाओ, पितरः=पितरों ने, अस्मै=इस मेरे यजमान के लिए, एतम्=इस, लोकम्=दहन स्थान को, अक्रन्=बना दिया है, यमः=

यम भी, अहोभिः=अनेक दिनों से, अद्भिः=जलों से, अक्तुभिः=रातों से, व्यक्तम्=शुद्ध किये गये, अर्थात् काल जलादि से शुद्ध किये गये अवसानम्=इस जलाने के स्थान को, अस्मै=इस मृतक यजमान के लिए, ददाति=दे चुका है।

व्याकरणम्—अक्तुभिः=अनक्ति सिञ्चति अवश्यायेन पृथ्वीमिति अक्तुः रात्रिः, अञ्जतेः क्तुः प्रत्ययः। अक्रन्, कृ लङ् विकरण लोप, यण् बहुवचन प्रथमपुरुष। अवसानम्=अवपूर्वक षोऽन्त कर्मणि ल्युट्।

विशेषः—इस वाक्य को यम के अनुचरों के प्रति सम्बोधन रूप में भी माना जा सकता है।

संहिता-पाठः

१०. अति द्रव सारमेयौ श्वानौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन् सुविदत्राँ उपेहि
यमेन ये सधमादं मदन्ति॥

पद-पाठः

अति। द्रव। सारमेयौ। श्वानौ।
चतुःऽअक्षौ। शबलौ। साधुना। पथा।
अथ। पितॄन्। सुऽविदत्रान्। उप। इहि।
यमेन। ये। सधऽमादम्। मदन्ति॥१०॥

सायणः—हे अग्ने साधुना पथा समीचीनेन मार्गेण श्वानावुभौ अतिद्रव अतिक्रम्य गच्छ। यम संबन्धिनौ यौ श्वानौ प्रेतस्य बाधकौ तौ परित्यज्य समीचीनेन मार्गेण प्रेतं नयेत्यर्थः। कीदृशौ श्वानौ। सारमेयौ। सरमा नाम काचित् प्रसिद्धा

देवशुनी । तस्याः पुत्रौ चतुरक्षौ उपरिभागे पुनरप्यक्षिद्वयं ययोस्तादृशौ । अथ शोभन मार्गेण गमनानन्तरं ये पितरो यमेन सधमादं सहर्षं मदन्ति प्राप्नुवन्ति तान्सुविदत्रान् सुष्ठ्व-भिज्ञान्पितॄन् उपेहि उपगच्छ ।।

संस्कृतव्याख्याः—हे अग्ने ! साधुना पथा=समीचीन-मार्गेण, श्वानौ=उभौ, अतिद्रव=अतिक्रम्य गच्छ, कीदृशौ श्वानौ तदाह—सारमेयौ=सरमायाः (देवन्याः) पुत्रौ, चतुरक्षौ= चतुर्नेत्रयुक्तौ, अथ=शोभनमार्गेण गमनानन्तरम्, ये=पितरः, यमेन, सधमादम्=सहर्षम्, मदन्ति=प्राप्नुवन्ति, (तान्) सुविदत्रान्=सुष्ठ्वभिज्ञान्, पितॄन्, उपेहि=उपगच्छ।

हे अग्ने ! साधुना=सुन्दर, पथा=रास्ते से, श्वानौ=दोनों कुत्तों को, अतिद्रव=बचा कर जाओ, अर्थात् प्रेत-मार्ग के बाधक कुत्तों को हटा कर सीधे रास्ते से ले चलो, जो कुत्ते सारमेयौ=सरमा कुत्ती के पुत्र हैं, शबलौ=रंगबिरंगे हैं, चतुःअक्षौ=चार आँखों वाले हैं । अथ= सुन्दर मार्ग से जाने के बाद, ये जो पितृगण, यमेन=यमराज के साथ, सधमादम्=हर्ष को प्राप्त करते हुए, मदन्ति=आनन्द लेते हैं, उन सुविदत्रान्=अच्छे ज्ञान वाले, पितॄन्=पितरों को, उपेहि= प्राप्त करो ।

व्याकरणम्—चतुरक्षौ—बहुव्रीहि समास तथा समासान्त अच् प्रत्यय । सुविदत्रान्—सुपूर्वक विद् धातु से अत्रन् प्रत्यय । सुष्ठुविदन्तीति सुविदत्रास्तान् ।

संहिता-पाठः

११. यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ
चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्
स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥

पद-पाठः

यौ । ते । श्वानौ । यम । रक्षितारौ ।
चतुःऽअक्षौ । पथिरक्षी । इति । पथिऽरक्षी । नृऽचक्षसौ ।
ताभ्याम् । एनम् । परि देहि । राजन् ।
स्वस्ति । च । अस्मै । अनमीवम् । च । धेहि ॥११॥

सायणः—हे राजन! हे यम! ते त्वदीयौ यौ श्वानौ विद्येते ताभ्यां हे राजन् यम एनं प्रेतं परिदेहि रक्षणार्थं प्रयच्छ । कीदृशौ श्वानौ । रक्षितारौ यम गृहस्य रक्षकौ चतुरक्षौ अक्षि-चतुष्टय युक्तौ पथिरक्षी मार्गस्य रक्षकौ । नृचक्षसौ मनुष्यैः ख्याप्यमानैः । श्रुतिस्मृतिपुराणाभिज्ञापुरुषाः तौ प्रख्यापयन्ति ताभ्यां श्वभ्यां दत्त्वा अस्मै प्रेतायस्वस्ति च क्षेममपि अनमीवं च रोगाभावमपि धेहि सम्पादय ॥

संस्कृतव्याख्या:—हे राजन्! यम, ते=त्वदीयौ, यौ श्वानौ, (विद्येते), ताभ्याम्, एनम् = प्रेतम्, परिदेहि=रक्षार्थं प्रयच्छ, तौ श्वानौ—रक्षितारौ=यमस्य गृहरक्षकौ, चतुरक्षौ=चतुर्नेत्रौ, पथिरक्षी=मार्गरक्षकौ, नृचक्षसौ=मनुष्यैः ख्याप्यमानौ (स्तः), ताभ्यां दत्त्वा, अस्मै=प्रेताय, स्वस्ति च=क्षेममपि, अनमीवं च= रोगाभावमपि, धेहि=सम्पादय ।

हे राजन् !, यम=यमराज ! ते=तेरे, रक्षितारौ=यम के घर के रक्षक, चतुःअक्षौ=चार आँखों वाले, पथिरक्षी=रास्ते के रक्षक, नृचक्षसौ=श्रुति और स्मृति के विद्वान् मनुष्यों द्वारा बतलाये गये, यौ=जो, श्वानौ=दो कुत्ते हैं, ताभ्याम्=उन दोनों को, एनम्=इस प्रेत मनुष्य को, परिदेहि=रक्षा के लिए सौंप दो, च=और, अस्मै=इस प्रेत के लिए, स्वस्ति=कल्याण, च=और, अनमीवम्=रोग के अभाव को, धेहि=उत्पन्न कर दीजिए।

व्याकरणम्—नृचक्षसौ=नरः मनुष्याः चक्षते प्रचक्षते यौ तौ। चक्षरसुन्। अनमीवम्=अमीवाया अभावः, अनमीवम्=अभाव अर्थ में अव्ययीभाव समास है।

विशेषः—The hounds are in the next verse called messengers of Yama going up and down among men.

संहिता-पाठः

१२. उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ
यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय
पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥

पद-पाठः

उरुऽनसौ। असुऽतृपौ। उदुम्बलौ।
यमस्य। दूतौ। चरतः। जनान्। अनु।
तौ। अस्मभ्यम्। दृशये। सूर्याय।
पुनः। दाताम्। असुम्। अद्य। इह। भद्रम् ॥१२॥

सायणः—यमस्य सम्बन्धिनौ दूतौ श्वानौ जनाँ अनु प्राणिनो लक्षिकृत्य सर्वत्र चरतः। कीदृशौ। उरुणसौ दीर्घनासिकायुक्तौ असुतृपौ परकीयान्प्राणान् स्वीकृत्य तैस्तृप्यन्तौ उदुम्बलौ उरुवलौ तावुभौ दूतौ सूर्याय दृश्ये सूर्यस्य दर्शनार्थम् अद्य दिने इह कर्मणि भद्रमसुं समीचीनं प्राणं पुनरस्मभ्यं दातामदत्ताम्।

संस्कृतव्याख्याः—यमस्य सम्बन्धिनौ, दूतौ=श्वानौ, जनाँ अनु=प्राणिनो लक्षीकृत्य, (सर्वत्र) चरतः, कीदृशौ—उरुणसौ=दीर्घनासिकायुक्तौ, असुतृपौ=परकीयैः प्राणैस्तृप्यन्तौ, उदुम्बलौ=उरुबलौ, तौ=उभौ, सूर्याय दृशये=सूर्यस्य दर्शनार्थम्, अद्य=दिने, इह=कर्मणि, भद्रम् असुम्=समीचीनं प्राणं, पुनः, अस्मभ्यम्, दाताम्।

हिन्दी व्याख्याः—यमस्य=यमराज के, दूतौ=दूत के समान दोनों कुत्ते, जनान्=मनुष्यों को, अनु=लक्षित कर के, चरतः= सब जगह घूमते हैं, जो कुत्ते उरुणसौ=बड़ी नासिका वाले, असुतृपौ=दूसरे के प्राणों से तृप्त होने वाले, उदुम्बलौ=अधिक बलवाले हैं, तौ=वे दोनों, सूर्याय दृशये=सूर्य के देखने के लिए, अर्थात् पुनर्जन्म के लिए, अद्य=आज के दिन, इह=इस कर्म में, भद्रम्=कल्याणकारी, असुम्=प्राणों को, अस्मभ्यम्=हमारे लिए, पुनः=फिर, दाताम्=प्रदान करें।

व्याकरणम्—उरुणसौ=उरू प्रवल गन्ध ग्रहण शक्ति युक्ते नासे ययोस्तौ, नासा या नासिका को नस् आदेश असुतृपौ=न+सु+तृप्+क्विप्, या असु+तृप्+क्विप्—तौ। उदुम्बलौ=उरु बलं ययोस्तौ उरु शब्द के रेफ को दकार व मुमागम छान्दस है।

संहिता-पाठः

१३. यमाय सोमं सुनुत
यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्य्
अग्निदूतो अरंकृतः ॥

पद-पाठः

यमाय । सोमम् । सुनुत ।
यमाय । जुहुत । हविः ।
यमम् । ह । यज्ञः । गच्छति ।
अग्निऽदूतः । अरम्ऽकृतः ॥१३॥

सायणः—हे ऋत्विजो यमाय यमदेवतार्थं सोमं सुनुत लतात्मकं सोममभिषुणुत । तथा यमार्थं हविर्जुहुत । अग्निर्दूतो यस्मिन्यज्ञे सोऽयमग्निदूतः । अग्नेर्दूतत्वमन्यत्राम्नातम् । अग्निर्देवानां दूत आसीदिति । अरंकृतः बहुभिर्द्रव्यैरलंकार-रूपैर्युक्तः तादृशो यज्ञो यमं ह यममेव गच्छति ।

संस्कृतव्याख्याः—हे ऋत्विजः ! यमाय=यमदेवतार्थम्, सोमं सुनुत=सोमं अभिषुणुत, हविः जुहुत, (अयम्) अग्निदूतः= अग्निदूतात्मको यज्ञः, अरंकृतः=अलंकाररूपैर्बहुभिः द्रव्यैर्युक्तः, यज्ञः, यमं ह=यममेव, गच्छति ।

हिन्दीव्याख्याः—हे ऋत्विजो ! यमाय=यम देवता के लिए, सोमम्=सोम लता को, सुनुत=कूट कर रस को निकालो, तथा यमाय=

यम के लिए, हविः=हव्य को, जुहुत=हवन करो। अग्निदूतः=अग्नि दूत वाला, यज्ञः=यह यज्ञ, अरंकृतः=अनेक द्रव्यों से सजाया गया है, और ह=निश्चय से, यमम्=यम को, हि गच्छति=प्राप्त होता है।

व्याकरणम्—सुनुत=षुञ् अभिषवे लोट् मध्यमपुरुष बहुवचन, विकरण श्नु प्रत्यय स्वादित्वात्।

संहिता-पाठः

१४. यमाय घृतवद्धविर्
जुहोत प्र च तिष्ठत।
स नो देवेष्वा यमद्
दीर्घमायुः प्र जीवसे॥

पद-पाठः

यमाय। घृतऽवत्। हविः।
जुहोत। प्र। च। तिष्ठत।
सः। नः देवेषु। आ। यमत्।
दीर्घम्। आयुः। प्र। जीवसे॥१४॥

सायणः—हे ऋत्विजो यूयं यमाय घृतवदाज्येन संयुक्तं हविः पुरोडाशादिकं जुहोत जुहुत प्र च तिष्ठत यमं यूयमुपतिष्ठध्वं च देवेषु मध्ये स यमोदेवः प्रजीवसे प्रकृष्ट जीवनार्थं नोऽस्माकं दीर्घमायुः आ यमत् प्रयच्छतु॥

संस्कृतव्याख्याः—हे ऋत्विजः! यमाय, घृतवत्=आज्येन संयुक्तम्, हविः, जुहोत, प्रतिष्ठत च=यममुपतिष्ठध्वम्, देवेषु मध्ये, स यमो देवः, प्र जीवसे=प्रकृष्टजीवनार्थम्, नः=अस्माकम्, दीर्घमायुः, आ यमत्=प्रयच्छतु।

हिन्दीव्याख्याः—हे ऋत्विजो ! यूयम्=तुम लोग, यमाय=यम के लिए, घृतवत्=घी वाले, हविः=पुरोडाशादि हव्य को, जुहोत= हवन करो। च=और, प्रतिष्ठत=तुम लोग यम की उपासना करो, देवेषु देवताओं में, सः=वह यम देवता, प्र जीवसे=दीर्घ जीवन के लिए, नः=हमें, दीर्घम्=लम्बे, आयुः=उम्र को, आ यमत्=प्रदान करें।

व्याकरणम्—प्रतिष्ठत=लोट् मध्यमपुरुष बहुवचन। आयमत्= आङ् यम् धातु से लोट् के अर्थ में लेट् लकार का प्रयोग है, 'लेटो ऽडाटौ' से अडागम हुआ है। प्रजीवसे=तुमुन् के अर्थ में 'असे' प्रत्यय 'तुमर्थे' सूत्र से हुआ है।

संहिता-पाठः

१५. यमाय मधुमत्तमं
राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः
पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥

पद-पाठः

यमाय। मधुमत्ऽतमम्।
राज्ञे। हव्यम्। जुहोतन।
इदम्। नमः ऋषिऽभ्यः। पूर्वऽजेभ्यः।
पूर्वेभ्यः। पथिकृत्ऽभ्यः ॥१५॥

सायणः—हे ऋत्विजो यमाय राज्ञे मधुमत्तममतिशयेन मधुरं हव्यं पुरोडाशादिकं हविर्जुहोतन जुहुत। पूर्वजेभ्यः सृष्टयादावुत्पन्नेभ्यः अत एव पूर्वेभ्यः अस्मत्तः पूर्वभाविभ्यः

पथिकृद्भ्यः शोभनमार्गकारिभ्यः ऋषिभ्यः इदं प्रत्यक्षं यथा भवति तथा नमोऽस्तु।

संस्कृतव्याख्या:—हे ऋत्विजः! यमाय, राज्ञे, मधुमत्तमम्=अतिमधुरम्, हव्यम् जुहोतन, पूर्वजेभ्यः=सृष्ट्यादावुत्पन्नेभ्यः, पूर्वेभ्यः=पूर्वभाविभ्यः, पथिकृद्भ्यः=शोभनमार्गकारिभ्यः, ऋषिभ्यः, इदम्=प्रत्यक्षम्, नमोस्तु।

हिन्दीव्याख्या:—हे ऋत्विजो! यमाय=यम राजा के लिए, मधुमत्तम्=अत्यन्त मधुर, हव्यम्=पुरोडाशादि हवि को, जुहोतन=प्रदान करो, पूर्वजेभ्यः=सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए, अत एव पूर्वेभ्यः=हम से पूर्व होने वाले, पथिकृद्भ्यः=सुन्दर मार्ग के बनाने वाले, ऋषिभ्यः=ऋषियों के लिए, इदम्=यह, नमस्कार या अन्न हो।

व्याकरणम्—मधुमत्तमम्=अतिशायन अर्थ में तमप् प्रत्यय है।

विशेषः—'पथिकृद्भ्यः' इस विशेषण से यम से निर्भय होने का मार्ग प्रदर्शित करने वाले विद्वानों का ग्रहण है।

संहिता-पाठः

१६. त्रिकद्रुकेभिः पतति
षळुर्वीरेकमिद्बृहत्।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि
सर्वा ता यम आहिता॥

पद-पाठः

त्रिऽकद्रुकेभिः। पतति।
षट्। उर्वीः। एकम्। इत्। बृहत्।
त्रिऽस्तुप्। गायत्री। छन्दांसि।
सर्वा। ता। यमे। आऽहिता॥१६॥

सायणः—त्रिकद्रुकेभिः। द्वितीयार्थे तृतीयैषा। त्रिकद्रुवान्। ज्योतिर्गौरायुरिति त्रयोयाग विशेषास्त्रिकद्रुका उच्यन्ते। तान्प्रत्यङ्गभावाय संरक्षणार्थं च पतति यमः प्राप्नोति षट्-संख्याका ऊर्वीः भूमिः कृताकृतप्रत्यवेक्षणाय प्राप्नोति। ताश्चोर्व्यः शाखान्तरमन्त्रे समाम्नाताः षण्मोर्वीरंहसस्पान्तु द्यौश्च पृथिवी चापश्चौषधयश्चोक्चं सूनृता चेति। एकमित् एकमेव बृहत् महत् जगत् यमश्च प्रतिपालनीयः प्राप्नोति किं च यानि त्रिष्टुब्गायत्र्यादीनि छन्दांसि सन्ति सर्वाणि तानि छन्दांसि यमे आहिता आहितानि। ऋत्विग्भिः स्तुतित्वेनावस्थितानि।

संस्कृतव्याख्या :—त्रिकद्रुकेभिः=त्रयो यागविशेषाः त्रिकद्रुकाः, तान् संरक्षणार्थम्, (द्वितीयार्थे तृ०) पतति=यमस्तान् प्राप्नोति, उर्वीः=भूमिः। (च प्राप्नोति), एकमित्=एममेव, बृहत्=महत्, (प्राप्नोति), छन्दांसि=त्रिष्टुबादीनि, ताः सर्वाः= तानि सर्वाणि, यमे, आहिता=आहितानि, (स्तुतित्वेनावस्थितानि।

हिन्दीव्याख्या :—यह यमराज त्रिकद्रुकेभिः=तीनों पर्वों वाले, अर्थात् ज्योतिः, गौः, आयुः नाम वाले यज्ञ विशेषों की रक्षा के लिए, स्वयं पतति=प्राप्त होता है, वहाँ पहुँचता है (यहाँ द्वितीया के अर्थ में तृतीया विभक्ति की गई है) षट्=छः संख्या वाली, उर्वी=भूमियों को भी (पतति=प्राप्त होता है), उन छः भूमियों के नाम (१) द्यौः (२) पृथिवी (३) आपः (४) ओषधयः (५) अर्कः और (६) सुनृता है। एकम् इत्=एक ही विस्तृत, बृहत्=इस बड़े संसार की भी रक्षा करने के लिए (पतति=वही यम पहुँचता है) और जो त्रिष्टुप् गायत्री=त्रिष्टुप् और गायत्री नाम वाले, छन्दांसि=छन्द हैं, सर्वा=सारे, ता=ये छन्द, यमे= यमराज में ही, आहिता=निहित हैं, अर्थात् ऋत्विज् लोग गायत्री आदि छन्दों से यमराज की ही स्तुति करते हैं।

'त्रिकद्रुकेभिः' का यह भी भाव है कि यह यमराज सोम के तीन पात्रों के ऊपर से है अर्थात् सोम रस के भरे हुए तीन पात्रों के समीप उसके पान करने के लिए जल्दी से पहुँचता है (it flies through the three soma vats) त्रिकद्रुक शब्द इस मंत्र को छोड़ कर अन्य मंत्रों में सप्तमी विभक्ति में (locative case) में आया है। यह शब्द सारे ऋग्वेद में कुल छः वार ही प्रयुक्त हुआ है तथा इसका सम्बन्ध सोम के साथ ही किया गया है जो कि सोम तीन दिन की मेहनत के बाद तैयार किया जाता है। यहाँ मैकूडानल लिखता है कि—(the term त्रिकद्रुक in the ritual of the Brāhmaṇas is the name of three days in a Some ceremony. The metaphor flying is applied to the flowing Soma compared with the bird.)

व्याकरणम्—त्रिकद्रुकेभिः=त्रि शब्द के तथा 'क' शब्द के उपपद होने पर द्रु शब्द से विकार अर्थ में कन् प्रत्यय करने पर 'त्रि कद्रुक' शब्द बनता है। त्रिभिः स्तोमतीति त्रिष्टुप्, क्विप् प्रत्यय है।

विशेषः—पीटर्सन ने यहाँ ग्रिफिथ को उद्धृत कर उसके अर्थ को ही मान्यता दी है वह कहता है किः—

The meaning appears to be that the Great-Unit, Yama, as All-God, 'broadens and flies the uuiverse after plentiful libations of Soma juice in the three Kadruk days, or first three days of the Abhiplava festival.

वस्तुतः यह मन्त्र उतना स्पष्ट नहीं जैसा इसका अर्थ होना चाहिए पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस मन्त्र में 'यम' वायु की ही संज्ञा है यह छन्दों को यम में आहित करने से स्पष्ट प्रतीत होता है। इस सूक्त 'चतुरक्षौ' से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम की चार आँखें समझनी चाहिए। यह श्वान' भी गतिशील लोकान्तर गामी जीवात्मा का ही एकरूप है।

मं० १० सू० ९०

पुरुषसूक्त (विराट् पुरुष)

संहिता-पाठः

१. सहस्रशीर्षा पुरुषः
सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा-
त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥

पद-पाठः

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः ।
सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् ।
सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा ।
अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥१॥

परिचयः—इस सूक्त का नारायण नाम का ऋषि है। अन्तिम छन्द त्रिष्टुप् है, शेष अनुष्टुभ् हैं। पुरुष देवता है।

सायणः—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः सोऽयं सहस्रशीर्षा सहस्रशब्दस्योपलक्षणत्वादनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः। यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तः पातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम्। एवं सहस्राक्षित्वं सहस्रपादत्वं च। स पुरुषो भूमिं ब्रह्माण्ड गोलकरूपां विश्वतः सर्वतो वृत्वा परिवेष्टय दशाङ्गुलं दशाङ्गुलं परिमितं देशमत्यतिष्ठत् अतिक्रम्य व्यवस्थितः। दशाङ्गुलमित्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वतो व्याप्यावस्थित इत्यर्थः।

संस्कृतव्याख्याः—सर्वप्राणिसमष्टिरूपो विराडाख्यो यः, पुरुषः, सहस्रशीर्षा=अनन्तशिरोभिर्युक्तः (सहस्रशब्दस्यानन्तोपलक्षणत्वात्), एवम्, सहस्राक्षः, सहस्रपात् च, सः=पुरुषः, भूमिम्=ब्रह्माण्डम्, विश्वतः=सर्वतः, वृत्वा=परिवेष्ट्य, दशाङ्गुलम्=दशाङ्गुलपरिमितदेशम्, अत्यतिष्ठत्=अतिक्रम्य व्यवस्थितः, दशाङ्गुलपदमप्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद्बहिरपि सर्वत्र व्याप्यावस्थित इत्यर्थः।

हिन्दीव्याख्याः—विराट् नाम का पुरुषः=पुरुष है, वह सहस्रशीर्षा=अनन्त सिरों वाला है, अर्थात् सब प्राणियों में व्यापक होने से प्राणियों के सिर ही उसके सिर हैं, सहस्राक्षः=इसी तरह वह अनन्त आँखों वाला, सहस्रपात्=हजारों पैरों वाला है, और सः=वह पुरुष, भूमिम्=ब्रह्माण्ड को, विश्वतः=सब तरफ से, वृत्वा=घेर कर, दशांगुलम्=केवल अंगुली परिमित स्थान को, अति अतिष्ठत्=ब्रह्मांड से बाहर व्याप्त करके स्थित है, अर्थात् वह परम पुरुष इस ब्रह्मांड के अन्दर और बाहर व्याप्त है।

व्याकरणम्—सहस्रपात्=बहुव्रीहि समास तथा 'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः' सूत्र से पाद शब्द के अन्तिम अकार का लोप हो जाता है। दशाङ्गुलम्=दशानामङ्गुलीनां समाहारः, यह विग्रह है, तदनन्तर अच् प्रत्यय हुआ है, अतः यह अकारान्त शब्द बन गया है।

विशेषः—कहीं कहीं 'वृत्वा' की जगह 'स्पृत्वा' पाठ भी मिलता है। 'दशाङ्गुल' शब्द का ऋग्वेद में अन्यत्र प्रयोग नहीं मिलता।

संहिता-पाठः

२. पुरुष एवेदं सर्वं
यद्भूतं यच्च भव्यम्।

उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒
यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥

पद-पाठः

पुरु॑षः । ए॒व । इ॒दम् । सर्व॑म् ।
यत् । भू॒तम् । यत् । च॒ । भव्य॑म् ।
उ॒त । अ॒मृ॒त॒ऽत्वस्य॑ । ईशा॑नः ।
यत् । अन्ने॑न । अ॒ति॒ऽरोह॑ति ॥२॥

सायणः—यदिदं वर्तमानं जगत् तत्सर्वं पुरुष एव। यच्च भूतमतीतं जगद्यच्च भव्यं भविष्यज्जगत्तदपि पुरुष एव। यथास्मिन्कल्पे वर्तमानाः प्राणिदेहाः सर्वेऽपि विराट् पुरुषस्यावयवाः तथैवातीतागामिनोरपि कल्पयोर्द्रष्टव्यमित्यभिप्रायः। उत अपि च अमृतत्वस्य देवत्वस्यायमीशानः स्वामी। यद्यस्मात् कारणादनेन प्राणिनां भोग्येनान्नेन निमित्तभूतेनातिरोहति स्वकीयां कारणवस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारान्नेदं तस्य वस्तुत्वमित्यर्थः।

संस्कृतव्याख्याः—इदम्=वर्तमानम् जगत्, सर्वं पुरुष एव, यत् भूतम्=अतीतम् यच्च, भव्यम्=भविष्यज्जगत्, तदपि पुरुष एवेत्यर्थः। उत=अपि च अमृतत्वस्य=देवत्वस्य, अयम् ईशानः=स्वामी, यत्=यस्मात् कारणात्, अन्नेन=प्राणिनां भोग्येनान्नेन अतिरोहति=कारणावस्थामतिक्रम्य जगदवस्थां प्राप्नोति।

यत्=जो, इदम्=यह दृश्यमान जगत् है, वह सर्वम्=सब कुछ, पुरुष एव=पुरुष ही है। अर्थात् ईश्वर चित् और अचित् में व्यापक है। यच्च=और जो, भूतम्=अतीत जगत् है, और जो भव्यम्=भविष्यत् संसार है, वह भी पुरुष ही है, अर्थात् जिस प्रकार वर्तमान

सृष्टि में रहने वाले प्राणी उस विराट् पुरुष के अंश हैं वैसे ही भूत और भविष्य सृष्टि में भी थे। उत्=और, अमृतत्वस्य=देवताओं का (यह विराट्), ईशानः=स्वामी है, यत्=जिस कारण से, अन्नेन=प्राणियों के भोग के कारण, अतिरोहति=इस दृश्यमान जगत् रूप अवस्था को (कारणावस्था को छोड़कर) वह विराट् पुरुष प्राप्त होता है।

व्याकरणम्—'भव्यम्' भू धातु से यत् प्रत्यय किया गया है। 'ईशानः' ईश् धातु से शानच्।

विशेषः—'यदन्नेनातिरोहति' का अर्थ 'whatever is nourished or increased by food' यह पीटर्सन ने किया है। अर्थात् जो भी वस्तु अन्न के द्वारा पुष्ट या उद्भूत होती है वह उसका स्वामी है। यह मन्त्र अथर्ववेद १९।६।४ से समता रखता है। भाव यह है। कि अमृत शब्द जल और सुधावाची है। जलवर्ती, स्थलवर्ती, अन्तरिक्षवर्ती प्रत्येक प्रकार का चराचर का वह स्वामी है—यह इस मन्त्र का तात्पर्य है।

संहिता-पाठः

३. एतावानस्य महिमा-
तो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि
त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥

पद-पाठः

एतावान्। अस्य। महिमा।
अतः। ज्यायान्। च पुरुषः।
पादः। अस्य। विश्वा। भूतानि।
त्रिऽपात्। अस्य। अमृतम् दिवि ॥३॥

सायणः—अतीतानागतवर्तमानरूपं जगद्यावदस्ति एतावान्सर्वोऽप्यस्य पुरुषस्य महिमा स्वकीयसामर्थ्यविशेषः । न तु तस्य वास्तवस्वरूपम् वास्तवस्तु पुरुषः अतो महिम्नोऽपि ज्यायान् अतिशयेनाधिकः एतच्चोभयं स्पष्टीक्रियते । अस्य पुरुषस्य विश्वा सर्वाणि भूतानि कालत्रयवर्तीनि प्राणिजातानि पादः चतुर्थोंऽशः । अस्य पुरुषस्यावशिष्टं त्रिपात्स्वरूपममृतं विनाशरहितं सद्दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशस्वरूपे । व्यवतिष्ठत इति शेषः । यद्यपि सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेत्याम्नानात् । प्रब्रह्मण इयत्ताभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः ॥

संस्कृतव्याख्याः—एतावान्=सर्वोऽपि, अस्य=पुरुषस्य, महिमा=सामर्थ्यविशेषः (अस्ति), वास्तवस्तु पुरुषः, अनोऽपि ज्यायान्=अतिशयेनाधिकः अस्य=पुरुषस्य, विश्वा=सर्वाणि, भूतानि=प्राणिजातानि, पादः=चतुर्थोंऽशः अस्य=पुरुषस्य, त्रिपात्=शिष्टं त्रिपदम्, अमृतम्=अविनाशि सत् दिवि=द्योतनात्मके प्रकाशस्वरूपे, व्यवतिष्ठते इति शेषः ।

भूत, भविष्यत्, वर्तमान रूप में जितना भी जगत् है वह सारा ही एतावान्=इतना बड़ा, अस्य=इस विराट् पुरुष की, महिमा=महिमा सामर्थ्य विशेष ही है (विराट् का यह संसार वास्तविक रूप नहीं। वास्तविक रूप वाला), च=और, पुरुषः=विराट्=पुरुष तो, अतः=इस सामर्थ्य से भी, ज्यायान=अत्यधिक है, इसकी ही सिद्धि करते हैं कि विश्वा=सारे, भूतानि=प्राणी, अस्य=इस पुरुष के, पादः=चौथे अंश (हिस्से) के रूप में हैं। अस्य=इस पुरुष का, त्रिपात्=शेष तीन हिस्से, अमृतम्= विनाश रहित होते हुए, दिवि=स्वप्रकाशस्वरूप रूप में स्थित हैं (यद्यपि परमात्मा का रूप नहीं जाना जा सकता और

उसके चार पैरों की कल्पना नहीं की जा सकती, पर यह जगत् परमात्मा की अपेक्षा बहुत छोटा है यह दिखाने के लिए यह कल्पना की गई है)।

व्याकरणम्—'एतावान्' एतद् शब्द से क्त व तु प्रत्यय किया गया है। 'महिमा' में महत् शब्द से अतिशयेनमहान् 'महिमन्' यह प्रत्यय बनता है। कुछ विद्वान् भाव में 'इमनिच्' प्रत्यय करते हैं। 'ज्यायान्' प्रशस्त शब्द से द्वि निर्धारण अर्थ में 'ईयसुन्' प्रत्यय, और 'ज्य च' से 'प्रशस्य' के स्थान में 'ज्य' आदेश होता है। 'त्रिपात्' त्रपादाः यस्य स 'त्रिपाद्' पाद शब्द के अन्तिम अकार का लोप 'पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः' से किया गया है।

विशेषः—इस मन्त्र का जो भाव है वही भाव अथर्ववेद के 'अर्धेन विश्वं भुवनं जजान' पदस्यार्धं क्व तद् बभूव (१०।८।७) से व १०।८।१३ से मिलता-जुलता है। दोनों में भाव साम्य है। यजुर्वेद पुरुष सूक्त के 'प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते' इस मन्त्र के अर्थ की भी इस में झलक है।

संहिता-पाठः

४. त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः
पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्
साशनानशने अभि॥

पद-पाठः

त्रिऽपात्। ऊर्ध्वः। उत्। ऐत्। पुरुषः।
पादः। अस्य। इह। अभवत्। पुनरिति।

ततः॑ विष्व॑ङ् । वि । अ॒क्रा॒म॒त् ।
सा॒श॒ना॒न॒श॒ने इति॑ । अ॒भि ॥४॥

सायणभाष्यम्—योऽयं त्रिपात्पुरुषः संसाररहितो बहुलस्वरूपः सोऽयमूर्ध्वं उदैत्। अस्मादज्ञानकार्यात्संसाराद्बहिर्भूतः अत्रत्यैर्गुणदोषैरस्पष्ट उत्कर्षेण स्थितवान् । तस्यास्य सोऽयं पादो लेशः सोऽयमिह मायायां पुनरभवत्। सृष्टिसंहाराभ्यां पुनः पुनरागच्छति। अस्यसर्वस्य जगतः परमात्मलेशत्वं भगवताप्युक्तं विशिष्टाभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगदिति। ततो मायायामागत्यानन्तरं विष्वङ् देवमनुष्यतिर्यगादिरूपेण विविधः सन् व्यक्रामत् व्याप्तवान् किं कृत्वा। साशनानशने अभिलक्ष्य भोजनादिव्यवहारोपेतं चेतनं प्राणिजातम्। अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकं। तदुभयं यथास्यात्तथा स्वयमेव विविधो भूत्वा व्याप्तवानित्यर्थः ॥

संस्कृतव्याख्याः—त्रिपात् पुरुषः, उद्धर्वमुदैत=अज्ञानरूपात् संसाराद् बहिर्भूतः स्थितवान्, अस्य पादः=लेशः, इह=मायायाम्, पुनः अभवत्=पुनः पुनरागच्छति, ततः=मायायामागमनानन्तरम् विष्वङ्=देवः मनुष्यतिर्यगादि रूपयुक्तः सन्, व्यक्रामत=व्याप्तवान्, किं कृत्वेत्याहः—साशनानशने=चेतनाचेतने (अशनानशनादिसम्बन्धेन) अभि=अभिलक्ष्येत्यर्थः।

हिन्दीव्याख्या:—यह त्रिपात्=संसार रहित तीन पैरों वाला, पुरुषः =विराट् स्वरूप परमात्मा, ऊर्ध्वः इस अज्ञान के कार्य संसार से परे है, अर्थात् संसार के गुण दोषों से नहीं छूआ जाता, अस्य=इस परमात्मा का, पादः=एक अंश, इह=इस संसार में पुनः अभवत्=सृष्टि और प्रलय के द्वारा बराबर आता जाता है। ततः=संसार रूप में उत्पन्न होने के

बाद, विष्वङ्=व्यापक, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के रूप में विविध प्रकार से बना हुआ वह विराट्, साशनाशने=साशन=खाने वाले चेतन प्राणी, अनशन=न खाने वाले चेतनता से रहित पहाड़, नदी आदि दोनों प्रकार के जगत् को, अभि=लक्षित कर के, व्यक्रामत्=व्याप्त करके स्थित है।

व्याकरणम्—'विष्वङ्' 'विषु' सर्वतः अञ्चतीति 'विष्वङ्' या 'विष्वक्' रूप बनता है 'साशनानशने' में साशन व 'अनशन' शब्दों का द्वन्द्व समास है। 'अशनेन सहितं साशनम्' चरं जगदित्यर्थः।

विशेषः—पूर्व मन्त्र में आधे ब्रह्म से सृष्टि बनी यह कहा है जब कि इस मन्त्र में ब्रह्म के चतुर्थांश से सृष्टि बनी तथा तीन हिस्से ब्रह्म शेष रहता है जो निर्गुण निष्कल व निरञ्जन है।

संहिता-पाठः

५. तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत

वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः।

स जा॒तो अत्य॑रिच्यत

प॒श्चाद्भूमि॑म॒थो पु॒रः॥

पद-पाठः

तस्मा॑त्। वि॒ऽराट्। अ॒जा॒य॒त।

वि॒ऽराजः॑। अधि॑। पुरु॑षः।

सः। जा॒तः। अति॑। अ॒रि॒च्य॒त।

प॒श्चात्। भूमि॑म्। अथो॒ इति॑। पु॒रः॥५॥

सायणभाष्यम्—विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपञ्च्यते। तस्मादादिपुरुषाद्विराड् ब्रह्माण्डदेहोऽजायत उत्पन्नः

विविधानि राजन्ते वस्तून्यत्रेति विराट्। विराजोऽधि विराड्-देहस्योपरि तमेव देहमधिकरणं कृत्वा पुरुषस्तद्देहाभिमानी कश्चित् पुमानजायत। सोऽयं सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स एव स्वकीयया मायया विराड्देहं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवरूपेण प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवतात्मा जीवोऽभवत्। एतच्चाथर्वणिका उत्तरतापनीये विस्पष्टमामनन्ति। स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययेति। स जातो विराट्पुरुषोऽत्यरिच्यत अतिरिक्तोभूत्। विराड्व्यतिरिक्तो देवतिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूवत्। पश्चादेवादिजीवभावादूर्ध्वं भूमिम्। ससर्जेति शेषः। अथो भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां पुरः ससर्ज। पूर्यन्ते सप्तभिर्धातुभिरिति पुरः शरीराणि।

संस्कृतव्याख्याः—तस्मात्=आदिपुरुषात्, विराट्=ब्रह्माण्डदेहः, अजायत=उत्पन्नः, विराजोऽधि=विराड्देहस्योपरि, पुरुषः=तद्देहाभिमानी पुमान्, जीवः (अजायत), सः, जातः=विराट् पुरुषः, अत्यरिच्यत=अतिरिक्तोऽभूत् (देवतिर्यगादिरूपोऽभूत्), पश्चात्=देवादिजीवभावादूर्द्ध्वम्, भूमिम्, (ससर्जेति) अथो=भूमिसृष्टेरनन्तरम्, पुरः=शरीराणि (ससर्ज)।

हिन्दीव्याख्याः—तस्मात्=उस आदि पुरुष से, विराट्=हिरण्यगर्भ, अजायत=उत्पन्न हुआ, विराजः=उस विराट् के देह के (ऊपर), अधि=विराट् के देह को आधार बना कर, पुरुषः=समष्टि-देहाभिमानी हिरण्यगर्भ (अजायत=उत्पन्न हुआ), सः=वह, जातः=उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष, अत्यरिच्यत=पशु पक्षी आदि शरीरों से बढ़ कर विद्यमान रहा, पश्चात्=इस प्रकार पशु पक्षी आदि के रूप में बनने के बाद, उस विराट् ने, भूमिम्=इस पृथिवीलोक को बनाया (यह क्रिया

ऊपर से अध्याहृत की जाती है), अथो=भूमि की रचना के बाद, उन प्राणियों के पुरः=शरीरों को (क्योंकि सात धातुओं से पूर्ण किये जाते हैं इसलिए शरीर पुर कहलाते हैं) बनाया।

व्याकरणम्—'विराट्' शब्द में 'क्विप्' प्रत्यय है। 'अरिच्यत' में कर्म कर्ता में यक् प्रत्यय है।

विशेषः—पीटर्सन का कथन है कि 'भूमिं पश्चात् ससर्ज' यह सायण का अन्वय ठीक नहीं किन्तु 'भूमिम्' को 'अत्यरिच्यत' का कर्म मानना ठीक है। क्योंकि सायण के अर्थ में 'ससर्ज' इस क्रिया पद का अध्याहार करना पड़ता है।

संहिता-पाठः

६. यत्पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं
ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥

पद-पाठः

यत्। पुरुषेण। हविषा।
देवाः। यज्ञम्। अतन्वत।
वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्।
ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हवि॥६॥

सायणः—यद्यदा पूर्वोक्तक्रमेणैव शरीरेषूत्पन्नेषु सत्सु देवा उत्तरसृष्टि सिद्धयर्थं बाह्यद्रव्यस्यामुत्पन्नत्वेन हविरन्तरा-संभवात्पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन संकल्प्य पुरुषेण पुरुषा-ख्येन हविषा मानसं यज्ञमतन्वत अन्वतिष्ठन् तदानीमस्य यज्ञस्य

वसन्तो वसन्तर्तुरेवाज्यमासीत् । तमेवाज्यत्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः । शरद्धविरासीत् । तामेव पुरोडाशादिहविष्ट्वेन संकल्पितवन्त इत्यर्थः । पूर्वं पुरुषस्य हविः सामान्यरूपत्वेन संकल्पः । अनन्तरं वसन्तादीनामाज्यादि विशेषरूपत्वेन संकल्प इति द्रष्टव्यम् ।

संस्कृतव्याख्याः—यत्=यदा, देवाः, (पुरुषस्वरूपमेव मनसा संकल्प्य) पुरुषेण=पुरुषाख्येन, हविषा, यज्ञम्= मानसयज्ञम् , अतन्वत=अन्वतिष्ठन् , (तदानीम्) अस्य=यज्ञस्य, वसन्तः, एव, आज्यम् आसीत् । (एवं) ग्रीष्मः, इध्मः=इन्धनम्, (आसीत्), तथा शरद्धविः (आसीत्)

यत्=जब उक्तक्रम से शरीर उत्पन्न हो चुके, तब देवाः=देवगणों ने, आगे की सृष्टि बनाने के लिए, पुरुषेण=अपने पुरुष स्वरूप, हविषा= हवि से, यज्ञम्=मानसिक यज्ञ को, अतन्वत=किया, अर्थात् देवताओं ने अपने संकल्प से आगे की सृष्टि बनाई, और तब, अस्य=इस यज्ञ का, वसन्तः=वसन्त ऋतु, आज्यम्=घी के समान बना, ग्रीष्मः=ग्रीष्म ऋतु, इध्मः=इन्धन बना, तथा शरत्=शरद् ऋतु, हविः=हवि के समान, आसीत्=बना, अर्थात् इन तीन मुख्य ऋतुओं को संकल्प से उत्पन्न किया ।

व्याकरणम्—'अतन्वत' लङ् प्रथमपुरुष का बहुवचन है। 'आज्यम्' में अञ्जू धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् प्रत्यय होता है ।

विशेषः—यहां पुरुष को अर्थात् मानवीय श्रद्धा को 'हविष्' कर्मों को यज्ञ, वसन्त को घी, ग्रीष्म को समिधा शरद् ऋतु हविः= हविर्धान (कुण्ड) बतलाया गया है। भाव यह है किः— प्रत्येक में श्रद्धा पूर्वक मनुष्य को कर्म करना चाहिए, शीतोष्णादि के कष्ट पड़ने पर संकल्पित कर्मों से विरत हो जाना कायरता है ।

संहिता-पाठः

७. तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्
पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त
साध्या ऋषयश्च ये ॥

पद-पाठः

तम् । यज्ञम् । बर्हिषि प्र । औक्षन् ।
पुरुषम् । जातम् । अग्रतः ।
तेन । देवाः । अयजन्त ।
साध्याः । ऋषयः । च । ये ॥

सायणः— यज्ञं यज्ञसाधनभूतं तं पुरुषं पशुत्वभावनया यूपे बद्धं बर्हिषि मानसे यज्ञे प्रौक्षन् प्रोक्षितवन्तः । कीदृशमित्यत्राह । अग्रतः सर्वसृष्टेः पूर्वं पुरुषं जातं पुरुषत्वेनोत्पन्नम् । एतच्च प्रागेवोक्तम् तस्मद्विराळजायत विराजो अधि पूरुष इति । तेन पुरुषरूपेण पशुना देवा अयजन्त । मानसं यागं निष्पादितवन्त इत्यर्थः । के ते देवा इत्यत्राह । साध्याः सृष्टि साधनयोग्याः प्रजपतिप्रभृतयः तदनुकूला ऋषयो मन्त्रद्रष्टारश्च ये सन्ति । ते सर्वेऽप्ययजन्तेत्यर्थः ।

संस्कृतव्याख्याः—यज्ञम्=यज्ञसाधनभूतम्, तम्=पुरुषम् बर्हिषि=मानसे यज्ञे, प्रौक्षन्=प्रोक्षितवन्तः, कीदृशमित्याहः—अग्रतः=सर्वसृष्टेः पूर्वम्, पुरुषं जातम्=पुरुषत्वेनोत्पन्नम्, तेन=पुरुषेण पशुना, देवा अयजन्त=मानसभागं निष्पादितवन्तः,

(देवास्ते) साध्याः=सृष्टिसाधनयोग्या (तथा) ऋषयः=मन्त्र-द्रष्टारः च ये सन्ति, ते सर्वेऽप्ययजन्तेत्यर्थः ।

यज्ञम् = यजनीय, तम् पुरुषम् = उस पुरुष को, बर्हिषि=मानसिक यज्ञ में, प्रौक्षन् = जल से छिड़क कर पवित्र बनाया जो कि पुरुष, अग्रतः= सृष्टि से पूर्व, पुरुषम् = पुरुष के रूप में, हिरण्यगर्भ जातम्=उत्पन्न हुआ था । तेन=उस यज्ञ पुरुष से, देवाः=देवताओं ने, साध्याः=सृष्टि के साधन में लगे हुए प्रजापति आदि ने, च=और, ये=जो ऋषयः=ऋषि हैं, उन्होंने अयजन्त=मानस यज्ञ को सम्पन्न किया, अर्थात् देवताओं ने, प्रजापतियों ने और ऋषियों ने अपने-अपने संकल्पों से सृष्टि बनाई ।

व्याकरणम्—औक्षन् =उक्ष् सेचने, लङ् लकार, बहुवचन । शेष स्पष्ट है ।

विशेष:—सायण ने साध्य पद का अर्थ सृष्टि बनाने के सामर्थ्य युक्त प्रजापति आदि किया है । पीटर्सन ने देवताओं की श्रेणी विशेष अर्थ किया है । जो कि प्राचीन देवयज्ञ के कर्त्ता कहलाते हैं ग्रिफिथ ने भी यही अर्थ माना ।

संहिता-पाठः

८. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः
संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यान्
आरण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥

पद-पाठः

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः ।
सम्ऽभृतम् । पृषत्ऽआज्यम् ।
पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् ।
आरण्यान् । ग्राम्याः । च । ये ॥

सायण:—सर्वहुतः सर्वव्यापकः पुरुषो यस्मिन्यज्ञे हूयते सोऽयं सर्वहुत्। तादृशात्तस्मात्पूर्वोक्तान्मानसाद्यज्ञात् पृषदाज्यं दधिमिश्रिताज्यम् सम्भृतं सम्पादितम्। दधिचाज्यं चेत्येवमादि भोग्यजातं सर्वं सम्पादितमित्यर्थः। तथा वायव्यान् वायुदेवताकांल्लोकप्रसिद्धानारण्यान्पशूंश्चक्रे उत्पादितवान्। आरण्या हरिणादयः। तथा ये च ग्राम्याः गवाश्वादयस्तानपि चक्रे। पशूनामन्तरिक्षद्वारावायुदेव्यत्वं यजुर्ब्राह्मणे समाम्नायते। वायवः स्थेत्याह वायुर्वा अन्तरिक्षस्याध्यक्षाः। अन्तरिक्ष देवत्याः खलु वै. पशवः वायव एवैनान्परिददाति इति।

संस्कृतव्याख्याः:—सर्वहुतः=सर्वात्मकपुरुषो हूयते यत्र सः। तस्मात्=पूर्वोक्तात् मानसात्, यज्ञात्, पृषदाज्यं=दधिमिश्रमाज्यम्, संभृतम्=संपादितम्, (तथा च) वायव्यान्=वायुदेवताकान्, आरण्यान्=वन्यान्, पशून् चक्रे, (तथा) ये च, ग्राम्याः=गवाश्वादयः, तानपि चक्रे।

सर्वहुतः=सर्वात्मक पुरुष को जिस यज्ञ में आह्वान किया गया है ऐसे, तस्मात्=उस, यज्ञात्=मानस यज्ञ से, पृषदाज्यम्=दही मिला हुआ घी, संभृतम्=बनाया गया, अर्थात् दही आदि भोग्य पदार्थों को बनाया, तथा वायव्यान्=वायु देवता वाले, और आरण्यान्=जंगल में रहने वाले हरिण आदि, पशून्=पशुओं को, च=और, ये=जो, ग्राम्याः=ग्राम में रहने वाले गौ अश्व आदि पशु हैं, तान्=उन को भी, चक्रे=बनाया।

व्याकरणम्—'सर्वहुतः' इस पद में सर्व पूर्वक 'ह्वे' धातु से कर्म में क्विप् प्रत्यय किया है। 'वायव्यान्' में वायु शब्द से यत् प्रत्यय

किया गया है। इसी प्रकार 'ग्राम्याः' में भी यत् प्रत्यय है किन्तु आरण्य शब्द में 'अरण्योरणः' इस वार्तिक से 'ण' प्रत्यय होता है।

विशेष :—प्राणी तीन प्रकार के हैं जो कि जलचर और नभश्चर होते हैं इन दोनों का वायव्य पद से ग्रहण किया गया है। वन्य और ग्राम्य प्राणियों का पृथक् कथन है।

संहिता-पाठः

९. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत
ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्
यजुस्तस्मादजायत ॥

पद-पाठः

तस्मात् । यज्ञात् । सर्वऽहुतः ।
ऋचः । सामानि । जज्ञिरे ।
छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् ।
यजुः । तस्मात् । अजायत ॥९॥

सायणः—सर्वहुतस्तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञादृचः सामानि जज्ञिरे उत्पन्नाः। तस्मात् यज्ञाच्छन्दांसि गायत्र्यादीनि जज्ञिरे। तस्माद्यज्ञाद्यजुरप्यजायत।

संस्कृतव्याख्याः—सर्वहुतः, तस्मात्=पूर्वोक्तात्, यज्ञात्, ऋचः, सामानि च, जज्ञिरे=उत्पन्नाः, तस्मात्=यज्ञात्, छन्दांसि=गायत्र्यादीनि, जज्ञिरे, तस्मात्=यज्ञात्, यजुरपि, अजायत।

हिन्दीव्याख्याः—उस सर्वहुतः=सर्वात्मक पुरुष बुलाया गया है जिस यज्ञ में ऐसे, यज्ञात्=मानसिक यज्ञ से, ऋचः=ऋग्वेद, सामानि=

सामवेद, जज्ञिरे,=उत्पन्न हुए, और तस्मात्=उस यज्ञ से, छन्दाँसि=गायत्री आदि छन्द या अथर्ववेद, जज्ञिरे=उत्पन्न हुए, तस्मात्—उस यज्ञ से, यजुः=यजुर्वेद भी, अजायत उत्पन्न हुआ।

विशेषः—यहाँ पर अथर्ववेद के ११।७।२४ के मन्त्र का और ऋग्वेद के इस मन्त्र का बहुत साम्य है (छन्दांसि) पर का अर्थ कहीं-कहीं अथर्ववेद किया गया है। जब कि यहाँ सायण ने गायत्र्यादि छन्द किया है।

संहिता-पाठः

१०. तस्मादश्वा अजायन्त
ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्
तस्माज्जाता अजावयः॥

पद-पाठः

तस्मात्। अश्वाः। अजायन्त।
ये। के। च। उभयादतः।
गावः। ह। जज्ञिरे। तस्मात्।
तस्मात्। जाताः। अजावयः॥१०॥

सायणः—तस्मात्पूर्वोक्ताद्यज्ञादश्वा अजायन्त उत्पन्नाः। तथा ये के चाश्वव्यतिरिक्ता गर्दभा अश्वतराश्चोभयादत। ऊर्ध्वाधोभागयोरुभयो दन्तयुक्ताः सन्ति तेऽप्यजायन्त। तथा तस्माद्यज्ञाद्गावश्च जज्ञिरे। किं च तस्माद्यज्ञादजावयश्च जाताः।

संस्कृतव्याख्याः—तस्मात्=पूर्वोक्तात्, अश्वाः, अजायन्त, (तथा) ये के च, गर्दभा अश्वतराश्च, उभयादतः=ऊर्ध्वाधो-

भागयोः दन्तयुक्ताः, (तेऽप्यजायन्त) (तथा) तस्मात्, गावः, जज्ञिरे, किं च तस्मात्, अजावयः च, जाताः ।

हिन्दीव्याख्या :—तस्मात्=उक्त यज्ञ से, अश्वाः=घोड़े, अजायन्त=उत्पन्न हुए, ये के च=और जो कोई घोड़ों से भिन्न, उभयादतः=दोनों ओर दांतों वाले गधे या खच्चर आदि हैं वे भी उत्पन्न हुए, तथा तस्मात्=उस यज्ञ से, गावः=गौएँ, जज्ञिरे=उत्पन्न हुईं, ह=यह बात प्रसिद्ध है, और तस्मात्=उस यज्ञ से, अजावयः=बकरियाँ और भेड़ें भी, जाताः=उत्पन्न हुईं ।

व्याकरणम्—'उभयादतः'—उभयतः दन्ता येषां ते उभयादतः दन्त को दत् आदेश और छान्दस दीर्घ हुआ ।

संहिता-पाठः

११. यत्पुरुषं व्यदधुः
कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू
का ऊरू पादा उच्येते ॥

पद-पाठः

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः ।
कतिधा । वि । अकल्पयन् ।
मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू । इति ।
कौ । ऊरू इति । पादौ । उच्येते इति ॥११॥

सायणः—प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादि सृष्टिं वक्तुं ब्रह्मवादिनां प्रश्ना उच्यन्ते । प्रजापतेः प्राणरूपा देवाः यद्यदा पुरुषं विराड्रूपं व्यदधुः संकल्पेनोत्पादितवन्तस्तदानीं कतिधा कतिभिः

प्रकारैर्व्यकल्पयन् विविधं कल्पितवन्तः । अस्य पुरुषस्य मुखं किमासीत् । कौ बाहू अभूताम् । कावूरू । कौ च पादावुच्येते । प्रथमं सामान्यरूपः प्रश्नः पश्चान्मुखं किमित्यादिना विशेष-विषयाः प्रश्नाः ।

संस्कृतव्याख्याः—यत्=यदा, पुरुषम्=विराड्रूपम्, व्यदधुः=संकल्पेनोत्पादितवन्तः, (तदानीम्), कतिधा=कतिभिः प्रकारैः, व्यकल्पयन्=विविधं कल्पितवन्तः, अस्य=पुरुषस्य, मुखम्, किम्, (आसीत्) कौ, बाहू, कौ, ऊरू, कौ, पादौ, उच्येते इति प्रश्नः।

अब ब्राह्मणादि की सृष्टि बताने के लिए कुछ प्रश्न किए जाते हैं। प्रजापति के प्राणस्वरूप देवताओं ने, यत्=जब, पुरुषम्=विराट् रूपी पुरुष को, व्यदधुः=संकल्प से उत्पन्न किया, तब कतिधा=कितने प्रकार से, व्यकल्पयन्=उसे बनाया । अस्य=और इस विराट् पुरुष का, मुखम्=मुंह, किम्=क्या था, बाहू=दो भुजाएँ, कौ=कौन-सी थीं । ऊरू=दो जंघाएँ, पादौ=और दो पैर, कौ उच्येते=कौन से कहे जाते हैं । यह प्रश्न है, इस प्रश्न में, विराट् पुरुष की जिज्ञासा प्रकट की गई है ।

व्याकरणम्—'कतिधा' कति शब्द से प्रकार अर्थ में धा प्रत्यय किया है ।

संहिता-पाठः

१२. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

पद-पाठः

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् ।
बाहू । इति । राजन्यः । कृतः ।
ऊरू । इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः ।
पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥१२॥

सायणः—इदानीं पूर्वोक्त प्रश्नानामुत्तराणि दर्शयति । अस्य प्रजापतेः ब्राह्मणः ब्राह्मणत्वजाति विशिष्टः पुरुषो मुखमासीत् । मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । योऽयं राजन्यः क्षत्रियत्वजातिमान्पुरुषः स बाहू कृतः बाहूत्वेननिष्पादितः । बाहुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । तत्तदानीमस्य प्रजापतेर्यदूरूतद्रूपोवैश्यः सम्पन्नः । ऊरुभ्यामुत्पन्न इत्यर्थः । तथास्य पद्भ्यां पादाभ्यां शूद्रः शूद्रत्व जातिमान्पुरुषोऽजायत । इयं च मुखादिभ्यो ब्राह्मणादीनामुत्पत्तिर्यजुः संहितायां सप्तमकाण्डे स मुखतस्त्रिवृतं निरमीमीतेत्यादौ विस्पष्टमाम्नाता । अतः प्रश्नोत्तरे उभे अपि तत्परतयैव योजनीये ॥

संस्कृतव्याख्याः—(उत्तरयति) अस्य=प्रजापतेः, ब्राह्मणः= ब्राह्मणत्वजातिविशिष्टः पुरुषः, मुखमासीत्=मुखादुत्पन्नः, राजन्यः=क्षत्रियजातिमान् पुरुषः, बाहूकृतः=बाहुत्वेन निष्पादितः । तत्=तदानीम्, अस्य=प्रजापतेः, यत्=यौ, ऊरू तद्रपः वैश्यः (संपन्नः) पद्भ्याम्=पादाभ्याम् । शूद्रः= शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः, अजायत ।

उक्त प्रश्नों का उत्तर देते हैं कि अस्य=इस प्रजापति का, ब्राह्मणः= ब्राह्मणत्व जातिविशिष्ट पुरुष, मुखमासीत्=मुख से उत्पन्न हुआ, और राजन्यः=क्षत्रिय जाति वाला पुरुष दो भुजाओं के समान,

कृतः=बनाया, अर्थात् क्षत्रिय बाहु से उत्पन्न हुआ, तत्=उस समय, अस्य=इस प्रजापति का, ऊरू=के समान, यत् वैश्यः=जो वैश्य जाति का पुरुष है वह बना, अर्थात् ऊरू से वैश्य जाति उत्पन्न हुई। तथा पद्भ्याम्=दोनों पैरों से, शूद्र=शूद्र जाति वाला पुरुष, अजायत=उत्पन्न हुआ।

व्याकरणम्—राजन्यः=राजन् शब्द से 'राजश्वशुराद्यत्' इस सूत्र से यत् प्रत्यय तथा 'ये चाभावकर्मणोः' से अन् को प्रकृति भाव होता है।

संहिता-पाठः

१३. चन्द्रमा मनसो जातश्
चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च
प्राणाद्वायुरजायत॥

पद-पाठः

चन्द्रमाः। मनसः। जातः।
चक्षोः। सूर्यः। अजायत।
मुखात्। इन्द्रः। च अग्निः। च।
प्राणात्। वायुः। अजायत॥१३॥

सायणः—यथा दध्याज्यादिद्रव्याणि गवादयः पशव ऋगादिवेदा ब्राह्मणादयो मनुष्याश्च तस्मादुत्पन्ना एवं चन्द्रादयो देवा अपि तस्मादेवोत्पन्ना इत्याह। प्रजापतेर्मनसः सकाशाच्चन्द्रमा जातः। चक्षोश्च चक्षुषः सूर्योऽप्यजायत। अस्य मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च देवावुत्पन्नौ। अस्य प्राणाद्वायुरजायत॥

संस्कृतव्याख्याः— (प्रजापतेः) मनसः=मनःसकाशात्, चन्द्रमाः, जातः, चक्षोः सूर्यः, अजायत, मुखात्, इन्द्रश्च, अग्निश्च, प्राणात्, वायुः अजायत।

इसी प्रकार मनसः=ब्रह्म के संकल्प से, चन्द्रमाः=चन्द्रमा, जातः=उत्पन्न हुआ। तथा चक्षोः=आंख से, सूर्यः=सूर्य भी, अजायत=उत्पन्न हुआ, मुखात्=मुख से, च=और, इन्द्रः=इन्द्र उत्पन्न हुआ, च=और, अग्निः=अग्नि भी उत्पन्न हुआ, प्राणात्=इस के प्राणवायु से, वायुः=हवा, अजायत=उत्पन्न हुई।

व्याकरणम्—स्पष्टतम है। 'चक्षोः' यह प्रयोग 'चक्षुषः' की जगह किया है।

विशेषः—प्रत्येय व्यक्ति के मन में शान्ति (चन्द्रगुण) चक्षु में प्रकाश मुख में (वाणी में) शक्ति व सन्मार्ग प्रकाशन एवं प्राण में वायु के समान पक्षपात शून्यता होनी चाहिए।

संहिता-पाठः

१४. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं
शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्
तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

पद-पाठः

नाभ्याः। आसीत्। अन्तरिक्षम्।
शीर्ष्णः। द्यौः। सम्। अवर्तत।
पत्ऽभ्याम्। भूमिः दिशः। श्रोत्रात्।
तथा। लोकान्। अकल्पयन्॥१४॥

सायणः—यथा चन्द्रादीन्प्रजापतेर्मनःप्रभृतिभ्योऽकल्पयंस्तथान्तरिक्षादींल्लोकान्प्रजापतेर्नाभ्यादिभ्यो देवा अकल्पयन् उत्पादितवन्तः । एतदेव दर्शयति। नाभ्याः प्रजापतेर्नाभेरन्तरिक्षमासीत् । शीर्ष्णः शिरसो द्यौः समवर्तत उत्पन्ना। अस्य पद्भ्यां पादाभ्यां भूमिरुत्पन्ना। अस्य श्रोत्राद्दिश उत्पन्नाः।

संस्कृतव्याख्याः—तथा=अन्तरिक्षादीन्, लोकान् (देवाः) नाभ्याः=प्रजापतेः नाभेः, अकल्पयन्, तदेव दर्शयति—नाभ्याः, अन्तरिक्षम्, आसीत्, शीर्ष्णः=शिरसः, द्यौः, समवर्तत=उत्पन्ना, पद्भ्याम्, भूमिः, श्रोत्रात् दिशः, (उत्पन्नाः) ।

(तथा) अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्ष लोक, नाभ्याः=प्रजापति की नाभि से, आसीत्=बना, शीर्ष्णः=शिर से, द्यौः=द्युलोक, समवर्तत= उत्पन्न हुआ, पद्भ्याम्=दोनों पैरों से, भूमिः=भूमि उत्पन्न हुई, श्रोत्रात्=कानों से, तथा=उसी प्रकार, दिशः=दिशाओं को, अकल्पयन्= बनाया और इस प्रकार, लोकान्=विविध लोकों की रचना की गई।

व्याकरणम्—'नाभ्याः' यह दीर्घेकारान्त नाभी शब्द का रूप है।

विशेषः—'लोकान्' शब्द का अर्थ 'खुली जगह' है। तथा इस 'लोक' शब्द से पूर्व ऋग्वेद में सर्वत्र 'उ' शब्द जुड़ता है। न इस उकार पर कोई स्वर ही लगता है। यह 'उ' 'उस' शब्द का एक अंश है। 'नामैकदेश ग्रहणे नाममात्रग्रहणम्' इस न्याय से 'उ' 'उस' का वाचक है। 'उकार' कोई स्वतन्त्र शब्द नहीं है।

संहिता-पाठः

१५. स॒प्तास्या॑सन् परि॒धय॒स्
त्रिः स॒प्त स॒मिध॑ः कृ॒ताः ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना
अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥

पद-पाठः

सप्त । अस्य । आसन् । परिऽधयः ।
त्रिः । सप्त । सम्ऽइधः । कृताः ।
देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः ।
अबध्नन् । पुरुषम् । पशुम् ॥१५॥

सायणः—अस्य सांकल्पिकयज्ञस्य गायत्र्यादीनि सप्तच्छन्दांसि परिधय आसन्। ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधयः उत्तरवेदिकास्त्रयः आदित्यश्च सप्तमः परिधिप्रतिनिधिरूपः। अत एवाम्नायते। न पुरस्तात्परिदधात्यादित्यो ह्येवोद्यन्पुरस्ताद्रक्षांस्यपहन्तीति। तत्र एत आदित्य संहिताः सप्त परिधयोत्र सप्तच्छन्दो रूपाः। तथा समिधस्त्रिः सप्तत्रिगुणित सप्तसंख्याका एकविंशतिः कृताः। द्वादशमासाः पञ्चर्तवः त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश इति श्रुताः पदार्थाः एकविंशतिदारुयुक्तेन्धनत्वेन भाविताः। यद्यः पुरुषो वैराजोऽस्ति ते पुरुषं देवाः प्रजापति प्राणेन्द्रियरूपाः यज्ञं तन्वाना मानसं यज्ञं तन्वानाः कुर्वाणाः पशुमबध्नन् विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन भावितवन्तः। एतदेवाभिप्रेत्य पूर्वत्र यत्पुरुषेण हविषेत्युक्तम्।

संस्कृतव्याख्याः—अस्य=सांकल्पिकयज्ञस्य, सप्त=गायत्र्यादीनि छन्दांसि, परिधयः=परिधिभूतानि, आसन्, (ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः, उत्तरवेदिकास्त्रयः, आदित्यश्च सप्तमः) तथा समिधः, त्रिसप्त=एकविंशतिः, कृताः, (द्वादशमासाः, पञ्चर्तवः, त्रयो लोकाः, आदित्यश्च), यत्=यः पुरुषः

वैराजोऽस्ति, (तम्) पुरुषम्, देवाः, यज्ञम्, तन्वानाः=कुर्वाणः, पशुम्, अबध्नन्=विराट्पुरुषमेव पशुत्वेन कल्पितवन्तः।

हिन्दीव्याख्याः—अस्य=इस मानस यज्ञ के, सप्त=सात छन्द, परिधयः=मर्यादाएँ, परिधियाँ, आसन्=थीं। (आहवनीय की तीन परिधियाँ, उत्तरवेदिका की तीन परिधियाँ और आदित्य, इस प्रकार सात परिधियाँ बनीं) तथा समिधः=समिधाएँ, त्रिःसप्त=२१ (इक्कीस), कृताः=बनाई। १२ महीने, ५ ऋतुएँ, भूर्भुवः स्वः नाम के ३-तीन लोक और एक आदित्य यह सब मिल कर २१ (इक्कीस) समिधाएँ हैं। यत्=जो विराट् नाम का पुरुष है, उस पुरुषम्=पुरुष को, देवाः=प्रजापति प्राण, इन्द्रियरूपी देवताओं ने, यज्ञम्=उस मानस यज्ञ को, तन्वानाः=करते हुए, पशुम्=पशु के रूप में, अबध्नन्=बाँधा, अर्थात् माना, स्वीकार किया। पशु का अर्थ पश्यति इति पशुः इस व्युत्पत्ति से चर जगत् है।

व्याकरणम्—'परिधि' में 'कि' तथा 'समिधः' में सं पूर्वक 'इन्ध्' धातु से क्विप् प्रत्यय होता है। 'तन्वानाः' में शानच् प्रत्यय है।

संहिता-पाठः

१६. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

पद-पाठः

यज्ञेन। यज्ञम्। अयजन्त। देवाः।
तानि। धर्माणि। प्रथमानि आसन्।
ते। ह। नाकम्। महिमानः। सचन्त।
यत्र। पूर्वे। साध्याः। सन्ति। देवाः।

सायणः—पूर्वं प्रपञ्चेनोक्तमर्थं संक्षिप्यात्र दर्शयति। देवाः

प्रजापतिप्राणरूपाः यज्ञेन यथोक्तेन मानसेन संकल्पेन यज्ञं यथोक्तयज्ञस्वरूपं प्रजपतिमयजन्त पूजितवन्तः। तस्मात्पूजनात्तानि प्रसिद्धानि धर्माणि जगद्रूपविकाराणां धारकाणि प्रथमानि मुख्यान्यासन्। एतावता सृष्टिप्रतिपादकसूक्तभागार्थः संग्रहीतः। अथोपासनतत्फलानुवादकभागार्थः संगृह्यते। यत्र यस्मिन्विराट् प्राप्तिरूपे नाके पूर्वे साध्याः पुरातना विराडुपास्ति साधका देवाः सन्ति तिष्ठन्ति तन्नाकं विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गं ते महिमानस्तदुपासका महात्मानः सचन्त समवयन्ति प्राप्नुवन्ति ॥

संस्कृतव्याख्याः—देवाः, यज्ञेन=पूर्वोक्तेन, यज्ञम्=यज्ञस्वरूपम्, प्रजापतिम् अयजन्तः=पूजितवन्तः (तस्मात्) तानि=प्रसिद्धानि, धर्माणि=जगद्रूपविकाराणां धारकाणि, प्रथमानि=मुख्यानि, आसन्, यत्र=यस्मिन्, पूर्वे, साध्याः=पुरातनाः साधकाः, देवाः, सन्ति=तिष्ठन्ति, तत्, नाकम्=विराट्प्राप्तिरूपं स्वर्गम्, ते महिमानः=तदुपासका महात्मानः, सचन्त=प्राप्नुवन्ति।

हिन्दीव्याख्याः—उक्त सम्पूर्ण भाव को पुनः संक्षेप में कहते हैं कि—देवाः=देवताओं ने, यज्ञेन=संकल्प से, यज्ञम्=यज्ञस्वरूप प्रजापति को, अयजन्त=पूजा। इस प्रकार पूजा करने के बाद तानि=प्रसिद्ध, धर्माणि= जगत्रूपी विकार को धारण करने वाले पञ्चतत्त्व हैं, वे प्रथमानि=प्रथम रूप से, आसन्=बने, यत्र=जिस स्वर्गलोक में, पूर्वे =प्राचीन, साध्याः=विराट् की उपासना के द्वारा सिद्धि करने वाले, देवाः=देवगण, सन्ति=रहते हैं। उस नाकम्=स्वर्ग को, ते=वे, महिमानः= उपासक महात्मा लोग, ह=निश्चय से, सचन्त=प्राप्त होते हैं।

व्याकरणम्—'धर्माणि' 'धृ धातु से 'मनिन्' प्रत्यय है।

विशेषः— कर्म (यज्ञ) के प्रतिकूल दूसरा कर्म न करो किन्तु कर्म परम्परा बढ़ाए चलो। ऐसा करने से स्वर्ग (नाक) की प्राप्ति सांसारिक महत्व (अभ्युदय) प्राप्त होगा।

मं० १० सूक्त १२१

हिरण्यगर्भ सूक्त

संहिता-पाठः

१. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य
जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

हिरण्यऽगर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य ।
जातः । पतिः । एकः । आसीत् ।
सः । दाधार । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् ।
कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥१॥

सायणः—हिरण्यगर्भः । हिरण्मयस्याण्डस्य गर्भभूतः प्रजापतिर्हिरण्यगर्भः । यद्वा हिरण्मयोऽण्डो गर्भवद्यस्योदरे वर्तते सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ इत्युच्यते । अग्रे प्रपञ्चोत्पत्तेः प्राक् समवर्त्तत । मायाध्यक्षात्सिसृक्षोः परमात्मनः समजायत । यद्यपि परमात्मैव हिरण्यगर्भस्तथापि तदुपाधिभूतानां वियदादीनां ब्रह्मण उत्पत्तेः तदुपहितोऽप्युत्पन्न इत्युच्यते । स च जातो जातमात्र एव एकोऽद्वितीयः सन् भूतस्य विकारजातस्य ब्रह्माण्डादेः सर्वस्य जगतः पतिरीश्वर आसीत् । न केवल पतिरासीदेव अपि तर्हि स हिरण्यगर्भ पृथिवीं विस्तीर्णां द्यां दिवमुत अपि च इमामस्माभिर्दृश्यमानां पुरोवर्त्तिनीं इमां भूमिम् । यद्वा पृथिवीत्यन्त-

रिक्षनाम। अन्तरिक्षं दिवं भूमिं च दाधार धारयति। कस्मै। अत्र किं शब्दोऽनिज्ञातस्वरूपत्वात्प्रजापतौ वर्त्तते। यद्वा सृष्टयर्थं कामयत इति कः। कमेर्डं प्रत्ययः। यद्वा कं सुखम्। तद्रूपत्वात् क इत्युच्यते। अथवा इन्द्रेण पृष्टः प्रजापतिर्मदीयं महत्त्वं तुभ्यं प्रदाय अहं कः कीदृशः स्यामित्युक्तवान्। स इन्द्रः प्रत्यूचे यदीदं ब्रवीष्यहं कः स्यामिति तदेव त्वं भवेति। अतः कारणात्क इति प्रजापतिराख्यायते। इन्द्रो वै वृत्तं हत्वा सर्वा विजितर्विजित्या-ब्रवीत् इत्यादिकं ब्राह्मणमत्रानुसंधेयम्। यदासौ किं शब्दस्तदा सर्वनामत्वात्स्मैभावः सिद्धः यदा तु यौगिकस्तदा व्यत्ययेनेति द्रष्टव्यम्। 'क्रियाग्रहणं कर्त्तव्यमिति' कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी। कं प्रजापतिं देवाय देवं दानादिगुणयुक्तं हविषा प्राजापत्यस्य पशोर्वपारूपेणैक कपालात्मकेन पुरोडाशेन वा विधेम वयमृत्विजः परिचरेम। विधतिः। परिचरणकर्मा।

व्याख्याः—हिरण्यगर्भः=सुवर्णमय अण्डे के गर्भ में स्थित या सुवर्णमय अण्डा (ब्रह्माण्ड) जिसके गर्भ में है, ऐसा सूत्रात्मा ब्रह्मा, अग्रे=सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व, समवर्तत=माया के अध्यक्ष परमात्मा से उत्पन्न हुआ। यद्यपि परमात्मा और हिरण्यगर्भ में कोई भेद नहीं तथापि महाभूत पञ्चकोपाधियुक्त परमात्मा ही उपाधि भेद से हिरण्यगर्भ कहा जाता है। वह जातः=उत्पन्न होते ही, एकः=अद्वितीय, भूतस्य=उत्पन्न हुए ब्रह्माण्ड का, पतिः=ईश्वर, आसीत्=था। और सः=वह पृथिवीम्=विस्तीर्ण, द्याम्=द्युलोक को अथवा पृथिवीम्=अन्तरिक्ष लोक को, द्याम्=द्युलोक को, इमाम्=इस भूलोक को, दाधार=धारण कर अवस्थित हुआ। उस देवाय=दानादि-युक्त कस्मै=सिसृक्षा की कामना वाले, या सुख स्वरूप या 'क' संज्ञक प्रजापति की हम, हविषा=पुरोडाशादि शाकल्य विशेष से, विधेम=परिचर्या, पूजा करें या कृतज्ञता प्रकट करें।

व्याकरणम्—'हिरण्यगर्भ' शब्द में हिरण्य शब्द से मयट् प्रत्यय हुआ है प्रकृति के यकार व प्रत्यय के मकार का छान्दस लोप होने पर 'हिरण्य' शब्द 'हिरण्मय' वाची है, उसका 'गर्भ' शब्द से समास होता है। 'कस्मै' यह चतुर्थी विभक्ति द्वितीया के अर्थ में 'क्रियाग्रहणं कर्तव्यम्' इस वार्तिक से होती है। अतः 'कस्मै' का अर्थ 'कम्' और 'देवाय' का 'देवम्' अर्थ है। 'क' शब्द 'कम्' धातु से 'ड' प्रत्यय करने पर बनता है। या एक बार इन्द्र ने प्रजापति से उनकी प्रजापालनादि शक्तियाँ माँगी, तो प्रजापति ने कहा कि यदि मैं सारी सामर्थ्य तुम्हें दे दूँगा तो फिर मैं 'कः' (क्या) रह जाऊँगा। इसके उत्तर में इन्द्र ने कहा कि आपने 'क' शब्द सुख से अपने लिए कहा है अतः आप 'क' नामधारी ही (सुखस्वरूप) रह जायेंगे। तब से प्रजापति का नाम 'क' ही पड़ गया इस ऐतरेय ब्राह्मण (३।२१) की कथा के अनुसार 'क' को प्रजापति का ही एक नाम समझना चाहिये।

संहिता-पाठः

२. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

पद-पाठः

यः। आत्मऽदाः। बलऽदाः। यस्य। विश्वे।
उपऽआसते। प्रऽशिषम्। यस्य।
देवाः। यस्य। छाया अमृतम्। यस्य मृत्युः।
कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥२॥

सायणः—यः प्रजापतिः आत्मदाः आत्मनां दाता। आत्मानो हि सर्वे तस्मात् परमात्मन उत्पद्यन्ते यथाग्नेः सकाशाद्वि-स्फुलिङ्गा जायन्ते तद्वत्। यद्वा आत्मनां शोधयिता। बलदाः बलस्य च दाता शोधयिता वा। यस्य च प्रशिषं प्रकृष्टं शासन-माज्ञां विश्वे सर्वे प्राणिनः उपासते प्रार्थयन्ते सेवन्ते वा। तथा देवा अपि यस्य प्रशासनमुपासते। अपि च अमृतममृतत्वम्। भावप्रधानो निर्देशः। यद्वा अमृतं। मरणं नास्त्यस्मिन्नित्यमृतं सुधा। तदपि यस्य प्रजापतेः छाया छायेव वशवर्ति भवति। मृत्युर्यमश्च प्राणापहारी छायेव भवति। तस्मै कस्मै देवायेत्यादि समानं पूर्वेण। हविषा पुरोडाशात्मनेति तु विशेषः॥

व्याख्याः—यः=जो प्रजापति, आत्मदाः=आत्माओं की शुद्धि करने वाला, बलदाः=बलों का दाता, यस्य=जिस की प्रशिषम्=आज्ञा को, विश्वे=सब प्राणी, उपासते=मानते हैं, एवं यस्य=जिसकी (आज्ञा को), देवाः=देवगण भी मानते हैं। तथा अमृतम्=अमरता, यस्य=जिस का अमृतम्=मोक्ष, छाया=छाया की तरह साथ ही साथ रहता है। एवं मृत्युः=यम भी (छाया की तरह है) कस्मै०=उस सुख स्वरूप परमात्मा के हम सब उपासक बनें और परिचर्या करें—यह अर्थ पूर्ववत् जानना चाहिए।

व्याकरणम्—'आत्मदाः' में आत्मन् पूर्वक दैव् शोधन से क्विप्। 'बलदा' में बलपूर्वक दा धातु से क्विप्। 'प्रशिषम्' प्रशास्तीति 'प्रशी,' तं प्रशिषम् यह विग्रह है। प्र पूर्वकशास् धातु से क्विप्, 'शास इदङ् हलोः' से इत्व, 'शासिवसिघसीनां च' से मूर्धन्य षकारादेश। 'अमृतम्' में न मृतं मरणं अस्मिन् इति अमृतं मोक्षः सुधा वा।

विशेषः—यह हो सकता है कि 'यस्य देवाः प्रशिषं उपासते' तथा यस्य मृत्युः प्रशिषं उपास्ते' यह अन्वय किया जाय। किन्तु "यस्येमे हिमवन्तः" ४र्थ मन्त्र के अनुसार इन्हें स्वतन्त्र वाक्य ही मानना ठीक है।

संहिता-पाठः

३. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक

इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

यः । प्राणतः । निऽमिषतः । महिऽत्वा ।

एकः । इत् । राजा । जगतः । बभूव ।

यः । ईशे । अस्य । द्विऽपदः । चतुःऽपदः ।

कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥३॥

सायणः—यो हिरण्यगर्भः प्राणतः श्वसतः निमिषतः। अक्षिपक्ष्मचलनं कुर्वतः। अत्रापि पूर्ववद्विभक्तिरुदात्ता। जगतः जङ्गमस्य प्राणिजातस्य महित्वा महत्त्वेन। माहात्म्येन एक इत् अद्वितीय एव सन् राजा बभूव ईश्वरो भवति। अस्य परिदृश्यमानस्य द्विपदः पादद्वययुक्तस्य मनुष्यादेः चतुष्पदः गवाश्वादेश्च यः प्रजापतिरीशे ईष्टे। द्वौ पादौ यस्य स द्विपात्। स्वरवर्जमेषैव चतुष्पद इत्यत्रापि प्रक्रिया। ईदृशो यः प्रजापतिः तस्मै कस्मा इत्यादि सुबोधम्। हविषा हृदयाद्यात्मनेत्ययमत्र विशेषः।

व्याख्याः—यः=जो हिरण्यगर्भ, प्राणतः=श्वास प्रश्वास लेने वाले। निमिषतः=नेत्र पद्म चलाने वाले, और जगतः=जङ्गम प्राणियों का एक इत्=अकेला ही राजा अपने महित्वा=अपने माहात्म्य से, राजा=रक्षक, बभूव=है। एवं अस्य=दृश्यमान, द्विपदः=मनुष्यों, चतुष्पदः=गवादि या अश्वादि का यः=जो प्रजापति, ईशे=रक्षण

पालनादि में समर्थ है। उस प्रजापति की हविषा=हृदय से उपासना करें यह पूर्ववत् समझें।

व्याकरणम्—'प्राणतः' व 'निमिषतः' में शतृ प्रत्यय हुआ है। 'जगतः' में गम् से क्विप् द्वित्वा चर्त्व अन्त्य मकार लोप व 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुगागम हुआ है। 'ईशे' में 'ईष्टे' के 'तकार' का लोप 'लोपस्य आत्मने पदेसु' से हुआ है। 'द्विपदः' और 'चतुष्पदः' में बहुव्रीहि समास, 'संख्यासु पूर्वस्य' से अन्त्याकार का लोप 'पादः पत्' से पाद् के स्थान में पद्भाव हुआ है। 'महित्वा' में 'तृतीया' विभक्ति के स्थान में 'सुपां सुलुक्' से आकार आदेश होता है।

विशेषः—'प्राणतः' से श्वास लेने वाले तथा 'निमिषतः' से 'शयालु' अर्थात् सुख-दुःख प्राप्ति परिहार चेष्टा में असमर्थ यानी हरकते इन्तजामी से रहित वृक्षादि का ग्रहण है। तथा 'जगत्' पद दोनों का विशेषण है। अतएव पीटर्सन लिखता है कि—'But जगतः too may be an adjective, all that breathes, and sleeps and moves.

संहिता-पाठः

४. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

पद-पाठः

यस्य। इमे। हिमऽवन्तः। महिऽत्वा। यस्य। समुद्रम्। रसया। सह। आहुः। यस्य। इमाः। प्रऽदिशः। यस्य। बाहू। इति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम॥४॥

सायणः—हिमा अस्मिन्सन्तीति हिमवान्। तेन बहुचनान्तेन सर्वे पर्वता लक्ष्यन्ते यथा छत्रिणो गच्छन्तीति। हिमवन्तो हिमवदुपलक्षिता इमे दृष्यमानाः सर्वे पर्वता यस्य प्रजापतेर्महित्वा महत्त्वं माहात्म्यमैश्वर्यमित्याहुः। तेन सृष्टत्वात्तद्रूपेणावस्थानाद्वा। तथा रसया। रसो जलम्। तद्वती रसानदी। अर्शआदित्वादच्। जातावेकवचनम्। रसाभिर्नदीभिः सह समुद्रम्। पूर्ववदेकवचनम् सर्वान् समुद्रान् यस्य महाभाग्यमित्याहुः कथयन्ति सृष्टयभिज्ञाः। यस्य चेमाः प्रदिशः प्राच्यरम्भा आग्नेय्याद्याः कोणदिश ईशितव्याः तथा बाहूवचनव्यत्ययः। बाहवो भुजाः भुजवत्प्राधान्ययुक्ताः प्रदिशश्च यस्य स्वभूताः। तस्मै कस्मै इत्यादि समानं पूर्वेण।

हिन्दी-व्याख्याः—इमे=ये, हिमवन्तः=पर्वत, यस्य=जिस प्रजापति की, महित्वा=ऐश्वर्य को, आहुः=कहते हैं तथा, रसया=नदियों के सहित, समुद्रम्=समुद्रों को, यस्य=जिस प्रजापति का ऐश्वर्यमय रूप कहा गया है। यस्य=जिस की, इमाः=ये दिशाएँ वा, प्रदिशः=उपदिशाएँ बाहू =भुजाएँ हैं। उस कस्मै देवाय हविषा विधेयम्।

व्याकरणम्—'हिमवान्' शब्द पर्वत मात्र का उपलक्षण है। 'रसा' शब्द मत्वर्थीय अच् प्रत्ययान्त व टाबन्त है 'समुद्रम्' जात्येकवचन है। 'बाहू' शब्द में बहुवचन के स्थान में द्विवचन प्रयुक्त है।

विशेषः—'रसा' नाम की एक नदी है यह पीटर्सन का कथन है। वह यह भी लिखता है कि 'प्रदिशः' पद की सायण की व्याख्या बड़ी दुःखदायिनी है। अतएव मैंने 'इमाः' का अर्थ 'दिशा' किया है। इस से यह व्याख्या स्पष्ट हो जाती है। मैक्समूलर ने तो सायण की व्याख्या के पाठ में परिवर्तन कर यह पाठ माना है कि —'यस्य चेमाः प्रदिशः प्राच्यारम्भाः आग्नेय्याद्याः कोणदिशः ईशानान्ता वा' इति। यह कल्पित पाठ ठीक सा लगता है। क्योंकि 'प्रदिश्' और 'विदिश्'

शब्द में अन्तर है, दो दिशाओं के बीच के भाग को 'विदिश्' या 'विदिशा' कहते हैं जैसा कोशकार कहते हैं कि 'दिशोर्मध्यं विदिक् स्त्रियाम्' इति। अन्त में पीटर्सन ने R. G. भाण्डारकर की कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा है कि :—

"I owe the explanation of प्रारम्भाः and the suggestion that we should write दिशश्च for प्रदिशश्च to R.G. Bhandarkar.

संहिता-पाठः

५. येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ळ्हा
येन॒ स्व॑ः स्तभि॒तं येन॒ नाक॑ः
यो अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मान॑ः
कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥

पद-पाठः

येन॑ । द्यौः । उ॒ग्रा । पृ॒थि॒वी । च । दृ॒ळ्हा ।
येन॑ । स्व॒१॒रिति॑ । स्व॑ः । स्त॒भि॒तम् । येन॑ । नाक॑ः ।
यः । अ॒न्तरि॑क्षे । रज॑सः । वि॒ऽमान॑ः ।
कस्मै॑ । दे॒वाय॑ । ह॒विषा॑ । वि॒धे॒म ॥५॥

सायणः—येन प्रजापतिना द्यौः अन्तरिक्षम् उग्रा उद्‌गूर्ण विशेषा गहन रूपा या पृथिवीं भूमिश्च दृळ्हा येन स्थिरीकृता। स्वः स्वर्गश्च येन स्तभितं स्तब्धं कृतम्। यथः अधो न पतति तथोपर्यवस्थापितमित्यर्थः। ग्रसितस्कभितस्तभितेति निपात्यते। तथा नाक आदित्यश्च येनान्तरिक्षे स्तभितः यश्चान्तिरिक्षे रजस उदकस्य विमानो निर्माता। तस्मै कस्मै इत्यादि गतम्॥

व्याख्या:—येन= जिस प्रजापति ने, द्यौः=अन्तरिक्षलोक, उग्रा= उद् गूर्ण की हुई है, उठाई हुई है तथा पृथिवी=भूलोक, को=दृढा=स्थिर किया है। अथवा 'उग्रा' को 'पृथ्वी' का विशेषण मानें तो 'गहन रूप' या 'घनीभूत' यह अर्थ होगा, तथा 'द्यौः' और 'पृथिवी' का 'दृढा' इस कृदन्त पद में अन्वय किया जायगा। स्वः=स्वर्ग लोक भी, स्तभितम् =ऊपर रोका हुआ या स्तब्ध किया है। तथा नाक =सूर्य को भी अन्तरिक्ष लोक में स्तम्भित किया हुआ है। एवं यः= जो प्रजापति अन्तरिक्षे=आकाश में रजसः =जलों का विमानः=निर्माता है। उस "कस्मै देवाय हविषा विधेम" पूर्ववत् ॥

व्याकरणम्—'स्तभितम् यह शब्द 'ग्रसित स्कभित स्तभित' इत्यादि पाणिनि सूत्र से निपातन द्वारा सिद्ध होता है। 'उग्रा 'में उद् पूर्वक गुरी उद्यमने धातु से क प्रत्यय करने पर उपधा के उपकार का व उपसर्ग के दकार का लोप करने पर टाबन्त शब्द निष्पन्न होता है। 'विमानः विविधं मानं निर्माणं यस्य सः विमनः' यह विमान शब्द की व्युत्पति है।

संहिता-पाठः

६. यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधि सूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

यम्। क्रन्दसी। इति। अवसा। तस्तभाने। इति। अभि। ऐक्षेताम्। मनसा। रेजमाने। इति। यत्र। अधि। सूरः। उतऽइतः। विऽभाति। कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥६॥

सायणः—क्रन्दितवान् रोदितवाननयोः प्रजापतिरिति क्रन्दसी द्यावापृथिव्यौ । ते अवसा रक्षणेन हेतुना लोकस्य रक्षणार्थं तस्तभाने प्रजापतिना सृष्टे लब्धस्थैर्ये सत्यौ यं प्रजापतिं मनसा बुद्ध्याभ्यैक्षेताम् आवयोर्महत्त्वमनेन इत्यभ्य पश्येताम् । ईक्ष दर्शने । लङ्यडादित्वादाद्युदात्तत्वम् । कीदृश्यौ द्यावापृथिव्यौ रेजमाने राजमाने दीप्यमाने । यत्राधि यस्मिन्नाधारभूते प्रजापतौ सूरः सूर्यः उदितः उदयं प्राप्तः सन् विभाति प्रकाशते । तस्यै कस्मा इत्यादि सुज्ञानम् ।।

व्याख्या:—क्रन्दसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक, अवसा=संसार की रक्षा के लिए, तस्तभाने=प्रजापति के द्वारा निर्माण करने के बाद स्थिरता को प्राप्त कराये गये, तथा रेजमाने=दीप्यमान होते हुए, यम्=जिस प्रजापति को, मनसा=अपनी बुद्धि से, अभ्यैक्षेताम्=देखते हैं, अर्थात् द्युलोक और पृथ्वीलोकवर्ती सारा महत्व हमें प्रजाति के द्वारा प्राप्त हुआ है, यह समझते हैं, किञ्च यत्र=जिस, अधि=आधारभूत प्रजापति के आश्रय से, सूरः=सूर्य, उदितः=उदय को प्राप्त होने के बाद, विभाति= प्रकाशित होता है और संसार को प्रकाशित करता है, उस 'तस्मैदेवाय हविषा विधेम' इस पद की व्याख्या की जा चुकी है ।

व्याकरणम्—क्रन्दसी, क्रन्द धातु से भूत अर्थ में असुन् प्रत्यय, तस्तभाने 'स्तम्भ' धातु कानच् प्रत्यय, रेजमाने 'राज' धातु शानच् प्रत्यय उपधा को एकार छान्दस होने से किया गया, अथवा 'राज' धातु से लिट् के स्थान में कानच् और 'फणाञ्च सप्तानाम्' से एत्व और अभ्यास लोप शप् और शानच् ।

विशेष—क्रन्दसी को हटा कर यदि रोदसी पाठ किया जाय तो अर्थ अत्यधिक स्पष्ट होगा, जैसे कि अथर्ववेद के ४-२-३ मन्त्र से स्पष्ट विदित हो रहा है यह मैक्समूलर का मत है ।

संहिता-पाठः

७. आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं
दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

आपः । ह । यत् । बृहतीः । विश्वम् । आयन् । गर्भम् ।
दधानाः । जनयन्तीः । अग्निम् । ततः ।
देवानाम् । सम् । अवर्तत । असुः । एकः ।
कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥७॥

सायणः—बृहतीः बृहत्यो महत्यः । अग्निम् । उपलक्षणमेतत् । अग्न्युपलक्षितं सर्वं वियदादि भूतजातं जनयन्तीः जनयन्त्यः तदर्थं गर्भं हिरण्मयाण्डस्य गर्भभूतं प्रजापतिं दधानाः धारयन्त्यः आपो ह आप एव विश्वमायन् सर्वं जगद्व्याप्नुवन् । यत् यं गर्भं दधाना आपो विश्वात्मनावस्थिताः ततो गर्भभूतात्प्रजापतेर्देवादीनां प्राणात्मको वायुरजायत । अथवा । यत् लिङ्गवचनयो व्यत्ययः । उक्तलक्षणा या आपः विश्वमावृत्यः स्थिताः ततस्ताभ्योऽद्भ्यः सकाशादेकोऽद्वितीयो असुः प्राणात्मकः प्रजापतिः समवर्तत निश्चक्राम । तस्मै कस्मा इत्यादि गतम् ।

व्याख्या:—बृहतीः=बृहत् अर्थात् महान्, और अग्निम्=अग्निपद को उपलक्षण मान कर पञ्च महाभूतों को, जनयन्तीः=जन्म देने वाले और भूतमात्र के जन्म के लिए, यत्=जिस, गर्भम्=हिरण्य गर्भ नामक प्रजापति को भी गर्भ रूप में, दधानाः=धारण करने वाले, आपः=

जलमयी भगवत् सृष्टि, ह=निश्चय से सर्गारम्भ में थी। जो, विश्वम्=सारे जगत् को, आयन्=व्याप्त किए हुए थी। ततः=उस जलमयी सृष्टि के गर्भ में स्थित प्रजापति (हिरण्यगर्भ) से, देवानाम्=देवों का (इन्द्रियों का), एकः=अद्वितीय, असुः=प्राणभूत वायु, समवर्तत=उत्पन्न हुआ। यह वायु जिस प्रजापति से उत्पन्न हुआ, उस 'कस्मै देवाय हविषा विधेम' इस पद की व्याख्या पूर्ववत् समझिए। अथवा—'यत्' पद में लिङ्ग और वचन का व्यत्यय मान कर इसे 'आपः' का विशेषण समझिए तथा "जो जल विश्व को आवृत करके स्थित थे उन से प्राणात्मक प्रजापति समुत्पन्न हुआ—उस प्रजापति के लिए" 'हविषा विधेम' यह अर्थ समझना चाहिए।

संहिता-पाठः

८. यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं
दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक
आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

यः । चित् । आपः । महिना । परिऽअपश्यत् ।
दक्षम् । दधानाः । जनयन्तीः । यज्ञम् ।
यः । देवेषु । अधि । देवः । एकः ।
आसीत् । कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥८॥

सायणः—यज्ञं यज्ञोपलक्षितं विकारजातं जनयन्तीः उत्पादयन्तीः तदर्थं दक्षं प्रपञ्चात्मना वर्धिष्णुं प्रजापतिमात्मनि दधाना धारयित्रीः। ईदृशीरापः। व्यत्ययेन प्रथमा। अपः प्रलय-कालीना महिना महिम्ना। छन्दसो मलोपः। स्वमाहात्म्येन

यश्च प्रजापतिः पर्यपश्यत् परितो दृष्टवान् । यश्च देवेष्वधि देवेषु मध्ये देवः तेषामपीश्वरः सन् एकः अद्वितीयः आसात् भवति । तस्मै कस्मा इयादि गतम् ।

व्याख्या:—यज्ञम्=जगद् रूप यज्ञ को जनयन्तीः=उत्पन्न करने वाली, एवं संसारोत्पत्ति के निमित्त कारण, दक्षम्=संसार निर्माण में दक्ष तन्नामक प्रजापति को, दधानाः=अपने में धारण करने वाली, आपः= जलों को, महिना=अपने माहात्म्य से, यः=जिस प्रजापति ने, चित्=यह निरर्थक पद वाक्य लंकार के लिए प्रयुक्त है । पर्यपश्यत्=देखा है, एवं यः=एवं जो प्रजापति, देवेषु=देवताओं में भी, अधि=अधिष्ठाता, देवः= मुख्य देव अर्थात् ईश्वर बन कर एकः=अद्वितीय ही था । उस "कस्मै देवाय हविषा विधेम" यह वाक्य व्याख्यातचर है ।

व्याकरणम्—'महिना' इस पद की व्याख्या की जा चुकी है । 'आपः' यह व्यत्यय से 'अपः' के स्थान में प्रयोग किया गया है । 'आसीत्' यह 'भवति' के स्थान में लङ् का प्रयोग छान्दस है ।

विशेषः—यहाँ जलों को सृष्टि के आरम्भ में 'निहार' रूप जलों के रूप में देखा गया है । जैसा ऋग्वेद १०।१२९।३ में लिखा है । Every thing was like a sea without a light.

ग्रासमान के मत में इस मन्त्र में प्रयुक्त "एकः" पद हटा देना चाहिए—क्योंकि मैत्रायणी शाखा में ऐसा ही पाठ मिलता है ।

संहिता-पाठः

९. मानो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या
यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।

यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै
देवाय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

मा। नः। हिंसीत्। जनिता। यः। पृथिव्याः।
यः। वा। दिवम्। सत्यऽधर्मा। जजान।
यः। च। अपः। चन्द्राः। बृहतीः। जजान।
कस्मै। देवाय। हविषा। विधेम ॥९॥

सायणः—स प्रजापतिः नोऽस्मान् मा हिंसीत् मा बाधताम्। यः पृथिव्याः भूमेर्जनिता जनयिता स्रष्टा। यो वा यश्च सत्यधर्मा सत्यमवितथं धर्मः जगतो धारणं यस्य तादृशः प्रजापतिर्दिवमन्तरिक्षोपलक्षितान्सर्वाल्लोकान् जजान जनयामास यश्च बृहतीः महतीः चन्द्राः आह्लादिनीः अपः उदकानि जजान जनयामास। तस्मै कस्मा इत्यादि गतम्।

व्याख्याः—वह प्रजापति, यः=जो, पृथिव्याः=भूलोक का, जनिता=उत्पादक है। वा=और, यः=जो प्रजापति, सत्यधर्मा=जगद् धारण कर्म में दृढ़ होकर, दिवम्=द्युलोक को, जजान=उत्पन्न करता है। च=और, यः=जो प्रजापति, बृहतीः=महान्, चन्द्राः=आह्लादक, अपः= जलों को, जजान=उत्पन्न करता है। उस कस्मै॰ इत्यादि भाग व्याख्यातचर है।

व्याकरणम्—'जनिता' इस पद में 'जनिता मन्त्रे' ६।४।५३ इस सूत्र से णिच् प्रत्यय का लोप होता है—अतः जनयिता यह प्रयोग नहीं बना। 'जजान' इस पद में णिच्, वृद्धि, 'जनीजॄष' इस सूत्र से मित् संज्ञा होने पर 'मितां ह्रस्वः' से ह्रस्व होने पर धातु संज्ञा लिट् 'अमन्त्र' ३।१।३५ इस सूत्र से आम् प्रत्यय का अभाव होने पर तिप्,

णलादेश वृद्धि होने पर 'जजान' पद सिद्ध होता है। 'चन्द्राः' में चदि धातु से अच् प्रत्यय और नुमागम हुआ है।

संहिता-पाठः

१०. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा
जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

पद-पाठः

प्रजाऽपते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा
जातानि परि ता बभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥१०॥

सायणः—हे प्रजापते त्वत् त्वत्तोऽन्यः कश्चित् एतानि इदानीं वर्तमानानि विश्वा विश्वानि सर्वाणि जातानि प्रथम-विकारभाञ्जि ता तानि सर्वाणि भूतजातानि न परिबभूव न परिगृह्णाति न व्याप्नोति। त्वमेवैतानि परिगृह्य स्रष्टुं शक्नोषीति भावः। परिपूर्वो भवतिः परिग्रहार्थः वयं च यत्कामाः यत्फलं कामयमानाः ते तुभ्यं जुहुमः हवींषि प्रयच्छामः तत्फलं नोऽस्माकमस्तु भवतु। तथा वयं च रयीणां धनानां पतय ईश्वराः स्याम भवेम।

इस मन्त्र की विशेषता

Kaegi (केगी) के मतानुसार यही एक ऐसा मन्त्र है जिस के पद-

पाठ व संहिता पाठ में कोई अन्तर नहीं है। ऋग्वेद में कुल ऐसे छः मन्त्र हैं जिन में यही विशेषता है—उन में से एक यह भी है।

व्याख्याः—प्रजापते ! हे हिरण्यगर्भ ! त्वत्=तुम से, अन्यः=भिन्न ऐसा कौन है जो, एतानि=इन विद्यमान, विश्वा=सम्पूर्ण, जातानि=उत्पन्न पदार्थों को और ता=उन सारे महाभूतों को, न=नहीं, परिबभूव=व्याप्त करके स्थित है, अर्थात् कोई नहीं, वयम्=हम लोग, यत्कामाः=जिस फल की कामना से, ते=तुम्हारे लिए जुहुमः=हवि प्रदान करते हैं, तत्=वह फल, नः=हमें, अस्तु=प्राप्त हो इस प्रकार हम लोग, रयीणाम्=धनों के या ऐश्वर्य के, पतयः=अधिपति, स्याम=बन जावें।

व्याकरणम्—विश्वा इस शब्द में शेश्छन्दसि बहुलम् ६।१।७० से शि का लोप होता है, 'ता' में विभक्ति को डादेश है 'सुपां सुलुग्' से। शेष स्पष्ट है।

—:०:—

मं० १० सूक्त १२५

वाक्-सूक्त

संहिता-पाठः

१. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पद-पाठः

अहम् । रुद्रेभिः । वसुऽभिः । चरामि । अहम् ।
आदित्यैः । उत । विश्वऽदेवैः । अहम् ।
मित्रावरुणा । उभा । बिभर्मि । अहम् ।
इन्द्राग्नी इति । अहम् । अश्विना । उभा ॥१॥

परिचयः—अम्भृण नामक महर्षि की वाक् नाम की पुत्री ब्रह्म-विद्या में निष्णात थी उसने अपना ब्रह्म या परमात्मा से तादात्म्य मान कर इस सूक्त का दर्शन किया है। वही इसकी ऋषि है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा देवता है। दूसरी को छोड़ कर शेष ऋचाओं में त्रिष्टुप् छन्द है—द्वितीय ऋचा का जगती छन्द है।

सायणः—अहं सूक्तस्य द्रष्ट्री वागाम्भृणी यद्ब्रह्म जगत्कारणं तद्रूपा भवन्ती रुद्रेभिः रुद्रैरेकादशभिः। इत्थंभावे तृतीया। तदात्मना चरामि। एवं वसुभिरित्यादौ तत्तदात्मना चरामीति योज्यम्। तथा मित्रावरुणा मित्रं च वरुणं च। उभा-उभौ-अहमेव ब्रह्मीभूता विभर्मि धारयामि। इन्द्राग्नी अप्यहमेव धारयामि। उभा उभौ अश्विना अश्विनौ अप्यहमेव धारयामि। मयि हि सर्वं जगच्छुक्तौ रजतमिवाध्यस्तं सदृश्यते। माया च जगदाकारेण विवर्तते तादृश्या मायाया आधारत्वेन असङ्ग-स्यापि ब्रह्मण उक्तस्य सर्वस्योत्पत्तिः।

व्याख्या:—अहम्=अम्भृण की पुत्री वाक् जो जगत् कारण ब्रह्म है तद्रूप बनी हुई, रुद्रेभिः=ग्यारह रुद्रों के रूप में, चरामि=विचरण करती हूँ। इसी प्रकार, वसुभिः=वसुओं के रूप में विचरती हूँ, आदित्यैः=आदित्यों के रूप में और विश्वदेवैः=विश्वेदेवों के रूप में विचरती हूँ। अहम्=मैं ब्रह्मरूप से, उभा=दोनों, मित्रावरुणा=मित्र और वरुण को, विभर्मि=धारण करती हूँ। अहम्=इन्द्राग्नी=इन्द्र और अग्नी को धारण करती हूँ। एवं उभा=दोनों, अश्विना अश्विनीकुमारों को अपने में धारण किए हुए हूँ। अर्थात् 'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति' इस गीता का मैं साक्षात्कार करती हूँ।

व्याकरणम्—'मित्रावरुणा' और 'अश्विना' इन दोनों पदों में विभक्तियों के स्थान में 'डा' प्रत्यय होता है।

संहिता-पाठः

२. अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं
त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये ३ यजमानाय सुन्वते॥

पद-पाठः

अहम्। सोमम्। आहनसम्। बिभर्मि। अहम्।
त्वष्टारम्। उत। पूषणम्। भगम्।
अहम्। दधामि। द्रविणम्। हविष्मते।
सुप्रऽअव्ये। यजमानाय। सुन्वते॥२॥

सायणः—आहनसमाहन्तव्यमभिषोतव्यं सोमं यद्वा शत्रूणामाहन्तारं दिवि वर्तमानं देवतात्मानं सोममहमेव बिभर्मि। तथा त्वष्टारमुत अपि च पूषणं भगं च अहमेव बिभर्मि। तथा हविष्मते हविर्भिर्युक्ताय सुप्राव्ये शोभनं हविर्देवानां प्रापयित्रे तर्पयित्रे। सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते। 'शतुरनुमः०' इति चतुर्थ्या उदात्तत्वम्। ईदृशाय यजमानाय द्रविणं धनं यागफलरूपमहमेव धारयामि॥

व्याख्याः—आहनसम्=आहन्तव्य कूटने पीसने व छानने योग्य या शत्रुओं के आहन्ता, सोमम्=सोम को, अहम्=मैं बिभर्मि=धारण किये हुए हूँ अर्थात् चन्द्ररूप या सोमवल्ली के रूप में मेरा ही चेतन तत्व

व्याप्त हो रहा है। मैं ही—त्वष्टारम्=त्वष्टा, विश्वकर्मा को, उत=और, पूषणम्=सूर्य को, भगम्=भगनामक देवता को या ऐश्वर्य को बिभर्मि। एवं हविष्मते=हविः प्रदान करने वाले, सुप्राव्ये=देवगणों के हवि को पहुंचाने वाले, अर्थात् तर्पण करने वाले, सुन्वते=सोम का अभिषव करने वाले, यजमानाय=यजमान के लिए, द्रविणम्=धन या यज्ञ का फल, दधामि=धारण करती हूं अर्थात् कर्म और उनके फल प्रदान की शक्ति ब्रह्मोपासना से मुझे प्राप्त हो चुकी है।

व्याकरणम्—'आहनसम्' में आङ् पूर्वक हन् धातु से असुन् प्रत्यय है। 'सुप्राव्ये' में सु+प्र पूर्वक अव् धातु से 'अवितृ स्तृ तन्त्रिभ्यः' इस उणादिसूत्र से 'ई' प्रत्यम हुआ है। शेष सरल है।

विशेषः—'आहनस् शब्द का ऋग्वेद के २-१३-१ में 'तदाहना अभवत्' तथा ५-४२-१३ में व ६-७५-५ में प्रयोग मिलता है। 'सुप्रावी' शब्द का राथ ने very attentive. zealous' भी अर्थ किया है १-६०-१ वाँ मन्त्र प्रमाण में दिया है, जहाँ यह शब्द दूत के अर्थ में प्रयुक्त है।

संहिता-पाठः

३. अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्॥

पद-पाठः

अहम्। राष्ट्री। सम्ऽगमनी। वसूनाम्।
चिकितुषी। प्रथमा। यज्ञियानाम्।
ताम्। मा। देवाः। वि। अदधुः पुरुऽत्रा।
भूरिऽस्थात्राम्। भूरि। आऽवेशयन्तीम्॥३॥

सायणः—अहं राष्ट्री ईश्वरनामैतत् । सर्वस्य जगत ईश्वरी । तथा वसूनां धनानां संगमनी संगमयित्री उपासकानाँ प्रापयित्री । चिकितुषी यत्साक्षात्कर्तव्यं परं ब्रह्म तज्ज्ञातवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती । अतएव यज्ञियानां यज्ञार्हाणाँ प्रथमा मुख्या । या एवं गुणविशिष्टाहं तां मां भूरिस्थात्रां बहु-भावेन प्रपञ्चात्मनावतिष्ठमानाम् भूरि भूरीणि बहूनि भूत-जातानि आवेशयन्तीं जीवभावेन आत्मानं प्रवेशयन्तीं ईदृशीं मां पुरुत्रा बहुषु देशेषु व्यदधुः देवा विदधति कुर्वन्ति । उक्त प्रकारेण वैश्वरूप्येणावस्थानात् यद्यत्कुर्वन्ति तत्सर्वं मामेव कुर्वन्तीत्यर्थः ।।

व्याख्याः—अहम्=मैं, राष्ट्री=जगत् की ईश्वरी हूं, वसूनाम्=धनों की, संगमनी=प्राप्ति कराने वाली हूं । चिकितुषी=ब्रह्म की जानने वाली, यज्ञियानाम्=पूज्य व्यक्तियों में, प्रथमा=मुख्य, प्रथमगणनीय हूं । ताम्=उस ऐसे गुणों वाली, मा=मुझ को, देवा=देवगण या पण्डित, भूरिस्थात्राम्=अनेक रूपों में अवस्थित, भूरि=अनेकों भूतों को, आवेशयन्तीम्=अपने में प्रवेश करने वाली (क्योंकि नौ सिद्धियाँ मुझे प्राप्त हो चुकी हैं) मुझ को, पुरुत्रा=अनेक स्थानों में, वि+अदधुः=यज्ञविधान से पूजित करते हैं । अर्थात् भिन्न भिन्न देवों की पूजा को मैं अपनी ही पूजा मानती हूं । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की मुझे सिद्धि प्राप्त है ।

व्याकरणम्—'राष्ट्री' में राष्ट्र शब्द से मत्वर्थीय इनि प्रत्यय है । 'चिकितुषी' में कित् धातु से क्वसु प्रत्यय है । 'पुरुत्रा' में त्रल् प्रत्यय है । भूरिस्थात्राम्' यह प्रयोग 'भूरिस्थात्रीम्' इस के समानार्थक है । भूरि+स्था+तृच् ङीप् के स्थान में टाप् प्रत्यय व्यत्यय से हुआ है ।

विशेषः—'चिकितुषी' पद का राथ, ग्रासमान और लुडविग ने "The first to know the gods" माना है ।

संहिता-पाठः

४. मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
य: प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति
श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥

पद-पाठः

मया । सः । अन्नम् । अत्ति । यः । विऽपश्यति ।
यः । प्राणिति । यः । ईम् । शृणोति । उक्तम् ।
अमन्तवः । माम् । ते । उप क्षियन्ति । श्रुधि ।
श्रुत । श्रद्धिऽवम् । ते । वदामि ॥४॥

सायणः—योऽन्नमत्ति स भोक्तृशक्तिरूपया मयैवान्नमत्ति। यश्च विपश्यति आलोकयतीत्यर्थः। यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासरूपं व्यापारं करोति सोऽपि मयैव। यथोक्तं शृणोति। य ईदृशीमन्तर्यामिरूपेण स्थितां मां न जानन्ति ते अमन्तवः अमन्यमाना: अजानन्त: उप क्षियन्ति उपक्षीणा: संसारेण हीना भवन्ति। माममन्तव: मद्विषयज्ञानरहिता इत्यर्थः। हे श्रुत विश्रुत सखे श्रुधि मया वक्ष्यमाणं शृणु। किं तच्छ्रोतव्यम्। श्रद्धिवम्। श्रद्धिः श्रद्धा तया युक्तम्। श्रद्धायत्नेन लभ्यमित्यर्थः। ईदृशं ब्रह्मात्माकं वस्तु ते तुभ्यं वदामि उपदिशामि।

व्याख्याः—संसार में जो भी व्यक्ति, अन्नम्=अन्न को, अत्ति=खाता है, सः=वह, मया=मुझ भोक्तृशक्ति के द्वारा ही खाता है। इसी प्रकार, यः=जो कोई, विपश्यति=देखता है, या यः=जो, प्राणिति=श्वासोच्छ्वास लेता है, या यः=जो, उक्तम्=वचन या शब्द को

शृणोति=सुनता है वह मेरी ही दर्शन, प्राणन श्रवण शक्तियों का दर्शनादि करता है। 'ईम्' शब्द पादपूरणार्थक या निरर्थक है। इस प्रकार अन्तर्यामी रूप में स्थित, माम्=मुझको नहीं जानते हैं, ते=वे, अमन्तवः=अज्ञानी, उपक्षियन्ति=संसार में सफल नहीं होते, या संसार में हीन पुरुष माने जाते हैं। हे श्रुत=हे विख्यात मित्र! श्रुधि=जो मैं कहता हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो, श्रद्धिवम्=श्रद्धा से लभ्य, या श्रद्धा योग्य (वचन) ते=तुम्हारे प्रति वदामि=उपदेश के रूप में कह रहा हूँ।

व्याकरणम्—'शृणोति' श्रु धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन। 'श्रुवः शृ च' से 'श्रु' को शृ आदेश होता है।

"अमन्तवः" में मन् धातु औणादिक तु प्रत्यय है। श्रुधि='श्रु' धातु लुट् मध्यम पुरुष एकवचन—"श्रुशृणुपृकृवृभ्यः" इस सूत्र से हि को धि आदेश होता है तथा छान्दसत्वात् विकरण का लुक होता है। श्रद्धिवम्=श्रत् शब्द की उपसर्ग संज्ञा १।४।५७ सूत्र के वार्तिक द्वारा की गई तथा धा धातु से कि प्रत्यय करने पर और मत्वार्थी वः करने पर श्रद्धुः शब्द बनता है।

विशेषः—श्रुत शब्द को लुडविग् और रौथ ने लोट् मध्यमपुरुष का बहुवचन माना है जो सायण की व्याख्या के विरुद्ध है। इतना ही नहीं प्रत्युत "श्रुतश्रद्धिवम्" को एक ही वाक्य मान कर श्रतं च तद् श्रद्धवञ्च इस प्रकार कर्मधारय समास करने के बाद इसका अर्थ जो परम्परा से श्रुत है और श्रद्धा के योग्य है यह अर्थ किया है उसके शब्द हैं "What old tradition bids believe."

संहिता-पाठः

५. अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

पद-पाठः

अहम् । एव । स्वयम् । इदम् । वदामि ।
जुष्टम् । देवेभिः । उत । मानुषेभिः ।
यम् । कामये । तम्ऽतम् । उग्रम् । कृणोमि ।
तम् । ब्रह्माणम् । तम् । ऋषिम् । तम् । सुऽमेधाम् ॥५॥

सायणः—अहं स्वयमेवेदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदामि उपदिशामि। देवेभिः देवैरिन्द्रादिभिरपि जुष्टं सेवितमुत अपि च मानुषेभिः मनुष्यैरपि जुष्टम्। ईदृग्वस्त्वात्मिकाहं यं कामये यं पुरुषं रक्षितुमहं वाञ्छामि तं तं पुरुषमुग्रं कृणोमि सर्वेभ्योऽधिकं करोमि तमेव ब्रह्माणं स्रष्टारं करोमि तमेव ऋषिमतीन्द्रियार्थदर्शिनं करोमि तमेव सुमेधां शोभनप्रज्ञं च करोमि।

व्याख्याः—अहम्=मैं, स्वयम्, एव=खुद ही' इदम्=इस ब्रह्म नाम की वस्तु को, वदामि=कह रही हूँ, कि यह ब्रह्म देवेभिः=इन्द्रादि देवताओं से, उत्=तथा, मानुषेभिः=मनुष्यों से, जुष्टम्=सेवित है, मैं यम्=जिस पुरुष को, कामये=उन्नत करना चाहती हूँ, तम्, तम्=उस पुरुष को उग्रम्=सर्वश्रेष्ठ, कृणोमि=बनाती हूँ। अर्थात् तम्=उसे, ब्रह्माणम्=या तो ब्रह्मा बना देती हूँ अथवा तम्=उसे, ऋषिम्=भूत भविष्य का द्रष्टा बना देती हूँ या तम्=उसे सुमेधाम्=उत्तम बुद्धि वाला बना देती हूँ।

व्याकरणम्—कृणोमि=विकरण व्यत्यय से नु प्रत्यय हुआ है। सुमेधा में छान्दसत्वात् ह्रस्व नहीं किया गया।

विशेष:—"ब्रह्मा" का सृष्टिकर्तृत्व गुण सरस्वती की विशेष कृपा से उसे प्राप्त हुआ है, अतः प्रत्येक महत्वशाली देव अपने महत्व के लिये वाक् या सरस्वती की कृपा दृष्टि का इच्छुक है यह भाव इस मन्त्र का है ऐसा 'म्योर' का मत है।

संहिता-पाठः

६. अहं रुद्राय धनुरा तनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं
द्यावापृथिवी आ विवेश ॥

पद-पाठः

अहम् । रुद्राय । धनुः । आ । तनोमि ।
ब्रह्मऽद्विषे । शरवे । हन्तवै । ऊं । इति ।
अहम् । जनाय । सऽमदम् । कृणोमि । अहम् ।
द्यावापृथिवी । इति । आ । विवेश ॥६॥

सायणः—पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । महादेवस्य धनुश्चापमहमातनोमि ज्यया आततं करोमि। किमर्थम् । ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्टारं शरवे शरुं हिंसकं त्रिपुरंनिवासिनमसुरं हन्तवै हन्तुं हिंसितुम् । उशब्दः पूरकः । अहमेव समदम् । समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत्संग्रामः। स्तोतृजनार्थं शत्रुभिः सह संग्राममहमेव कृणोमि करोमि। तथा द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं चान्तर्यामितया अहमेवाविवेश प्रविष्टवती।

व्याख्या:—अहम्=मैं, रुद्राय=रुद्र के, धनुः=धनुष को, ब्रह्मद्विषे=ब्राह्मणों या वेदों के द्वेषी, शरवे=तथा हिंसक त्रिपुरवासी

असुरों को, हन्तवै=मारने के लिए, आतनोमि=प्रत्यञ्चा युक्त करके चढ़ाती हूँ। उ=केवल पादपूर्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है। अहम्=मैं ही, जनाये=स्तोता पुरुषों की रक्षा के लिए, समदम्=उनके शत्रुओं के साथ संग्राम को, कृणोमि=करती हूँ। तथा अहम्=मैं ही, द्यावापृथिवी=द्युलोक तथा पृथिवी लोक में, अविवेश=व्याप्त हो रही हूँ।

व्याकरणम्—'रुद्राय' विभक्ति व्यत्यय से षष्ठयर्थ में चतुर्थी है। 'हन्तवै' तुमुन् प्रत्यय के अर्थ में 'तुमर्थे से सेन्' इत्यादि सूत्र से 'तवै' प्रत्यय हुआ है। 'शरु' शब्द में 'शॄ' हिंसायाम् धातु से 'शॄ स्वृ स्निहि' इत्यादि उणादि सूत्र से उ प्रत्यय हुआ है।

'समदम्' समान भावेन माद्यन्ति युद्धाय संनह्यन्ति शत्रवो यत्र स 'समत्' समान शब्द के उपपद होने पर मदी हर्षे धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ है।

विशेष:—'ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ' का पीटर्सन ने "That his arrow may slay all that hate God" अर्थ किया है। सायण की तहर 'ब्रह्म' शब्द का ब्राह्मण जाति अर्थ नहीं माना है।

संहिता-पाठः

७. अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्व१न्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु
विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥

पद-पाठः

अहम्। सुवे। पितरम्। अस्य। मूर्धन्। मम।
योनिः। अप्ऽसु। अन्तरिति। समुद्रे।

ततः । वि । तिष्ठे । भुवना । अनु ।
विश्वा । उत । अमूम् । द्याम् । वर्ष्मणा । उप । स्पृशामि ॥७॥

सायणः—द्यौः पितेति श्रुतेः, पिता द्यौः। पितरं दिवमहं सुवे प्रसुवे जनयामि। आत्मनः आकाशः संभूत इति श्रुतेः (T. A. VII, I)। कुत्रेति तदाह। अस्य परमात्मनः मूर्धन् मूर्धनि परमकारणभूते। तस्मिन् हि वियदादिकार्यजातं सर्वं वर्तते। तन्तुषु पट इव मम च योनिः कारणं समुद्रे। समुद्द्रवन्त्यस्माद्भूतजातानीति समुद्रः परमात्मा। तस्मिन्नप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिष्वन्तर्मध्ये यद्ब्रह्म चैतन्यं तन्मम कारणमित्यर्थः। यत ईदृग्भूताहमस्मि ततो हेतोर्विश्वा विश्वानि सर्वाणि भूतानि भूतजातान्यनुप्रविश्य। वितिष्ठे विविधं व्याप्य तिष्ठामि 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् (Pna, 1,3,22) उत अपि च अमूं द्यां विप्रकृष्टदेशेऽवस्थितं स्वर्गलोकम्। उपलक्षणमेतत्। एतदुपलक्षितं कृत्स्नं विकारजातं वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन मदीयेन देहेन उप स्पृशामि। यद्वा। अस्य भूतस्य मूर्धन्मूर्धनि उपरि अहं पितरमाकाशं सुवे। समुद्रे जलधौ अप्सु उदकेषु अन्तर्मध्ये मम योनिः कारणभूतोऽम्भृणाख्य ऋषिर्वर्तते। यद्वा समुद्रेऽन्तरिक्षेऽप्सु अम्मयेषु देवशरीषु मम कारणभूतं ब्रह्म चैतन्यं वर्तते। ततोऽहं कारणात्मिका सती सर्वाणि भुवनानि व्याप्नोमि। अन्यत्समानम्।

व्याख्या :—पितरम्=द्युलोक को, अहम्=मैं, सुवे=उत्पन्न करती हूँ। जो कि द्युलोक, अस्य=इस परमात्मा का, मूर्धन्=शिरःस्थानीय है। समुद्रे=परमात्मा में जो, अप्सु=व्याप्त होने वाली जो बुद्धि वृत्तियाँ हैं, उनके अन्तः= मध्य में अर्थात् मूलभूत जो ब्रह्म है, वह मम=मेरा, योनिः=कारण है। ततः=इस ही कारण से, विश्वा=सारे, भुवनानि=

पञ्चमहाभूतों को, अनु=अनुप्रवेश करके, वितिष्ठे=विविध रूप से व्याप्त कर स्थित हूँ। उत=और, अमूम्=इस, द्याम्=द्युलोक को, वर्ष्मणा=कारणभूत इस देह से, उपस्पृशामि=व्याप्त कर रही हूँ। अथवा—अस्य=पञ्चमहाभूतों के मूर्धन्=ऊपर व्याप्त, पितरम्=आकाश को, अहम्=मैं सुवे=जन्म देती हूँ। समुद्रे=समुद्र में रहने वाले, अप्सु=जलों में, मम=मेरा, योनिः=जन्मदाता अम्भृण नामक ऋषि निवास करता है। अथवा समुद्रे=अन्तरिक्षलोक में, अप्सु=जलमय देव शरीरों में, मम=मेरा, योनिः=कारणभूत सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म स्थित है। अतएव कारण रूप से मैं सारे भुवनों को व्याप्त कर रही हूँ।

व्याकरणम्—'वर्ष्मणा' में वृषु 'सेचने' धातु से मनिन् प्रत्यय है। वर्षति ददाति सुख-दुःखे जीवात्मने इति वर्ष्म शरीरम्।

संहिता-पाठः

८. अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
पुरो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥

पद-पाठः

अहम्। एव। वातःऽइव। प्र। वामि।
आऽरभमाणा। भुवनानि। विश्वा।
परः। दिवा। परः। एना। पृथिव्या।
एतावती। महिना। सम्। बभूव ॥८॥

सायणः—विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेणोत्पादयन्ती अहमेव परेणानधिष्ठिता स्वयमेव प्र वामि प्रवर्ते। वात इव। यथा वातः परेणाप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत् उक्तं सर्वं निगमयति। परो दिवा। पर इति सकारान्तं परस्तादित्यर्थे वर्तते यथाध

इत्यधस्तादर्थे । तद्योगे च तृतीया सर्वत्र दृश्यते । दिवा आकाशस्य परस्तात् । एना पृथिव्या । 'द्वितीयाटौः स्वेन' इतीदम एनादेशः । अस्याः पृथिव्या परः परस्तात् । द्यावापृथिव्योरुपादानमुपलक्षणम् । एतदुपलक्षितात्सर्वस्माद्विकारजातात्परस्ताद्वर्तमाना सङ्गोदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपाहं महिना महिम्ना एतावती सं बभूव । एतच्छब्देनोक्तं सर्वं परामृश्यते । सर्वजगदात्मनाहं .संभूतास्मि महिना-इत्यत्र महच्छन्दादिमनिचिः टेरिति टि लोपः । छान्दसो मकार लोपः ।

व्याख्याः—अहम्=मैं, एव=ही, विश्वा=सारे, भुवनानि=महाभूतों को, अरभमाणा=उत्पन्न करती हुई, वातइव=वायु की तरह, प्रवामि=प्रवृत्त होती हूँ, दिवा=आकाश के, परः=ऊपर और एना=इस, पृथिव्याः=पृथ्वी के, परः=ऊपर उत्कृष्ट रूप से विद्यमान होती हुई अर्थात् द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों को जन्म देती हुई, महिना=महत्व से, एतावती=इतनी बड़ी अर्थात् अपरिमेय, संबभूव=बन गई है।

व्याकरणम्—आरभमाणाः=आङ् पूर्वक रभ् धातु से शानच् प्रत्यय और टाप, परः=सकारान्त परस् शब्द है और परस्तात् के अर्थ में प्रयुक्त है उत्कृष्ट होना अर्थ है, एना=इदं शब्द की पञ्चमी का एक वचन है इदं के स्थान में एन आदेश होता है। महिना में महत् शब्द से इमनिच् प्रत्यय है टी का लोप होने पर छान्दसत्वात् मकार का लोप होता है।

विशेषः—इस सूक्त में वाक् ने जो अपना विभूतिमत्व प्रदर्शित किया है वह ब्रह्म के साथ अभेद बुद्धि मानकर किया गया है यह सायण का मत है । किन्तु इन मन्त्रों को ईश्वरोपासना से मुझ में लोक लोकान्तर बनाने की, महाभूतों के उत्पन्न करने की, तथा रुद्र आदि के समान संहार करने की शक्ति प्राप्त हो गई है । इस रूप में यदि लगाया जाय तो ठीक होगा—ऐसा अर्थ करने में मन्त्रों का स्वारस्य व ईश्वर का

ऐश्वर्य भी अक्षुण्ण बना रहता है। अणिमा आदि सिद्धियों के प्राप्त होने महाभूतों का वशित्व आ जाता है यह सिद्धान्त योगशास्त्रानुमोदित है—महा कवि भवभूति ने भी लिखा है कि:—

लौकिकानां हि साधूनामर्थंवागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।।इति।।

इसी प्रकार "तद्धैतद्दषिर्वामदेवः प्रतिपेदे, अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति" (बृहदारण्यक १।४।१०) यह कथन भी "शास्त्रदृष्टयातूपदेशोवामदेव वत्। ब्रह्मसूत्र १-१-३०। के अनुसार है, यह मन्त्र द्रष्टा ऋषि ने अपने जन्म-जन्मान्तरों का स्मरण किया है। यह ज्ञान योग की महिमा है। ब्रह्मात्मवाद नहीं। यही शास्त्र तात्पर्य है।

—:०:—

म०. १० सू० १६८

वात सूक्त

संहिता-पाठः

१. वार्तस्य॒ नु म॑हि॒मानं॒ रथ॑स्य रु॒जन्नै॑ति स्त॒नय॑न्नस्य॒ घोष॑ः।
दि॒वि॒स्पृग्या॑त्यरु॒णानि॑ कृ॒ण्वन्नु॒तो ए॑ति पृ॒थि॒व्या रे॒णुमस्य॑न् ।।

पद-पाठः

वार्तस्य। नु। म॒हि॒मान॑म्। रथ॑स्य। रु॒जन्। ए॒ति।
स्त॒नय॑न्। अ॒स्य॒। घोष॑ः। दि॒वि॒ऽस्पृक्। या॒ति। अ॒रु॒णानि॑।
कृ॒ण्वन्। उ॒तो। इति॑। ए॒ति। पृ॒थि॒व्या। रे॒णुम् अस्य॑न् ।।१।।

परिचयः—इस सूक्त का अनिल ऋषि है। त्रिष्टुप् छन्द है। वायु देवता है।

सायणः—वातस्य वायोः रथस्य रंहणशीलस्य महिमानं माहात्म्यं तु क्षिप्रं प्रब्रवीमि अस्य वायोर्घोषः शब्दः स्तनयन् गिरिगह्वरादिषु विविधं शब्दमुत्पादयन् रुजन् सर्वं स्थावर जङ्गम-जातं भञ्जन् एति गच्छति । स च वायुः दिविस्पृक् दिवमाकाशं स्पृशन् व्याप्नुवन् अरुणानि अरुणवर्णानि दिगन्तराणि कृण्वन् कुर्वन् याति प्राप्नोति । उतो अपि च पृथिव्या रेणुं पांसुमस्यन् गृहीत्वा सर्वत्र विक्षिपन् एति गच्छति । अत एव चारुणानि कृण्वन्नित्युक्तम् ।

व्याख्या:—रथस्य=रंहणशील, गतिशील, वातस्य=वायु की, महिमानम्=महिमा को, नु=शीघ्रतया (वर्णन करता हूँ) अस्य=इस वायु का, घोषः=शब्द, स्तनयन्=गिरि गह्वरों में विविध प्रकार की ध्वनी को उत्पन्न करता हुआ, एवं रुजन्=स्थावर वृक्षादि का भङ्ग करता हुआ, एति=आ रहा है। वह वायु, दिविस्पृक्=आकाश को व्याप्त करता हुआ, दिगन्तरों को, अरुणानि=लाल रंग का या विकृत वर्ण का, कृणवन्=बनाता हुआ, याति=वह रहा है, उत, उ=और पृथिव्याः=पृथिवी की, रेणुम्=धूल को, अस्यन्=सर्वत्र फैलाता हुआ, एति=जा रहा है दिगन्तरों में फैल रहा है, इसी लिये धूल के वात्याचक्र में प्रविष्ट होने से दिग् दिगन्तर अरुण हो रहे हैं ।

व्याकरणम्—यहां रुजन्, स्तनयन्, कृणवन् और अस्यन, इत्यादि सारे पद शतृ प्रत्ययान्त हैं । दिविस्पृक् में क्विन् प्रत्यय है ।

विशेषः—पीटर्सन 'रथ' शब्द को रूढि मानकर 'अस्य' इस पद से रथ का परामर्श करता है, जो कि हमारी बुद्धि से असंगत है सायण का अर्थ ही ठीक है 'अरुणानि' को सायण ने दिगन्तरों का विशेषण माना है। 'दिगन्तर' पद अध्याहृत होता है। पीटर्सन ने इसे आकाश का विशेषण मानकर 'Reddening the sky' अर्थ किया है । लुडविग ने

भी लिखा है कि :—

"The red Sky at sunset is perhaps what is meant"

संहिता-पाठः

२. सं प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा एनं
गच्छन्ति समनं न योषाः ताभिः।
सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य
विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥

पद-पाठः

सम् । प्र । ईरते । अनु । वातस्य । विऽस्थाः ।
आ । एनम् । गच्छन्ति । समनम् । न योषाः ।
ताभिः । सऽयुक् । सऽरथम् । देवः । ईयते ।
अस्य । विश्वस्य । भुवनस्य । राजा ॥२॥

सायणः—विष्ठाः विशेषेणावस्थिताः पर्वताद्याः वातस्य वायोः अनुगुणं सं प्रेरते संप्रगच्छन्ति। यदभिमुखो वायुर्वर्तते तदभिमुखाः प्रकम्पन्त इत्यर्थः। समनं न संग्राममिव एनं वायुं योषाः अश्वयोषितः आगच्छन्ति। ताभिर्वडवाभिः सयुक् स्वयमेव युज्यमानः सरथं समानमेकं रथमारूह्य देवो दीप्यमानो वायुः ईयते गच्छति। ईङ् गतौ। अस्य विश्वस्य भुवनस्य द्वितीयविकारभाजो भूतजातस्य राजा स्वामी भवति।

व्याख्या:—विष्ठाः=पर्वत वृक्ष आदि, वातस्य=वायु के अनुकूल, संप्रेरते=गति प्राप्त करते हैं। जिस ओर की वायु बहती है उस ओर ही झुक जाते हैं। समनम्=संग्राम भूमि के, न=तुल्य, एनम्=इस वायु के प्रति, योषाः=वड़वायें, (घोड़ों की स्त्रियां) आगच्छन्ति=आ

जाती हैं अर्थात् घोडियों की तेज गति के समान वायु बहने लगता है, ताभिः=उन वडवाओं से, सयुक्=सहयोग वाला (वायु) सरथम्=समान रथ पर (समान रंहणशीलता पर) आरूढ़ होकर, देवाः=दीप्त होता हुआ (वायु) ईयते=बहता है वह अस्य=इस विश्वस्य सम्पूर्ण, भुवनस्य=भूत मात्र का राजा स्वामी बन जाता है।

व्याकरणम्—'विष्ठाः' इस शब्द में बहुव्रीहि समास और अन् प्रत्यय है। सयुक् शब्द में भी बहुव्रीहि समास है और युज् धातु से क्विन् प्रत्यय है। ईयते में ईङ् गतौ धातु दिवादिगणी है।

विशेषः—'वातस्य विष्ठाः' इस वाक्य को लुडविग् ने अनु का कर्म माना है तथा अगले मन्त्र में वर्णित आपः को अनुकृष्ट करके उसे कर्ता माना है और यह अर्थ किया है कि वायु की गति के पीछे जल भी अनुगमन करते हैं। अनुगमन करना संप्रेरते का अर्थ है। इस अर्थ के करने में जो विष्ठाः का मार्ग अर्थ किया है उस अर्थ के करने में कोई प्रमाण नहीं। रौथ ने विष्ठाः का अर्थ The winds of all sorts किया है तथा ग्रासमान ने The wings of the wind किया है। ऐसी अवस्था में सायण का अर्थ भी कुछ ठीक नहीं लगता क्योंकि विष्ठाः शब्द का पर्वतादि के अर्थ में अन्यत्र प्रयोग नहीं हुआ है। रौथ ने विष्ठाः का अर्थ Different kinds किया है जैसा कि तैत्तरीय ब्राह्मण के ३-७-५-३ में प्रयोग मिलता है कि 'देवानां विष्ठां अनुयोग तस्थे'। आश्वलायन श्रौतसूत्र में भी 'त्रिवृन्नोविष्ठया' यह प्रयोग १२–२ में मिलता है।

'समनम्' यह शब्द सम् पूर्वक अन प्राणने से बना है। पीटर्सन और राथ "They (waters) go to him (वाले) as women to an assembly" इस 'समनं न योषाः' वाक्य का यह अर्थ करते हैं। हमें यह अर्थ ठीक सा लगता है पर अनुकर्षण करना ही इस पक्ष में

महान् दूषण है। इसी प्रकार समन शब्द traffic, और business अर्थों में भी प्रयुक्त है जैसे 'वि या सृजति समनं व्यर्थिनः' ऋक् १-४८-६ में प्रयुक्त हुआ है, इसका अर्थ है "who sends out the merchants to their business".

'सयुक्' का अर्थ 'Joined with' है। यह शब्द 'संगत' अर्थ में ३-३०-११ में प्रयुक्त है। वहाँ सयुजः=संगतान् यह सायण ने व्याख्या की है। १०-१२४-६ में सयुजम्=सखायम्—अर्थ भी किया है।

संहिता-पाठः

३. अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव॥

पद-पाठः

अन्तरिक्षे। पथिऽभिः। ईयमानः। न। नि। विशते। कतमत्। च न। अहः। इति। अपाम्। सखा। प्रथमऽजाः। ऋतऽवा। क्व। स्वित्। जातः। कुतः। आ। बभूव॥३॥

सायण:—अन्तरिक्षे नभसि विद्यमानैः पथिभिः मार्गैः ईयमानो गच्छन् वायुः कतमच्चनाहः एकमपि दिनं न नि विशते नोपविशति, किं तु सर्वदैव गच्छति। नेर्विश इत्यात्मनेपदम्। अपि च अपामुदकानां सखा। वायुर्वै वृष्ट्या ईशत इति श्रुतेः प्रथमजाः सर्वेभ्यः प्राणिभ्यपूर्वोत्पन्न एव ऋतावा सत्यवान् एवं भूतो वायुः क्वः स्वित् कुत्र खलु देशे जातः उत्पन्नः कुतः कस्माच्च देशान्निष्क्रम्य आ बभूव इदं सर्वं जगद्व्याप्नोत्। सर्वदा सर्वत्र वर्तमानत्वादस्योत्पत्तिर्व्याप्तिप्रकारश्च न केनापि ज्ञातुं शक्यते इत्यर्थः।

व्याख्या :—अन्तरिक्षे=आकाश में विद्यमान, पथिभिः=मार्गों से, ईयमानः=चलता हुआ वायु, कतमच्चन=किसी भी, अहः=दिन, न निर्विशते=नहीं ठहरता है सर्वदा चलता ही रहता है। तथा अपाम्=जलों का, सखा=मित्रभूत वायु, प्रथमजाः=सब प्राणियों से प्रथम उत्पन्न, ऋतावा=सत्यभूत वायु, क्व स्वित्=किस स्थान में, जातः=उत्पन्न हुआ है, और कुतः=किस देश से निकल कर, आ बभूव=इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर बैठा है। यह वायु सर्वदा सर्वत्र विद्यमान है अतः इसकी उत्पत्ति और व्याप्ति का प्रकार कोई नहीं जान सकता।

व्याकरणम्—'ईयमानः' में ईङ् गतौ दिवादि गणीय से शानच् प्रत्यय किया है। 'प्रथमजाः' में जन् धातु से 'ड' प्रत्यय है। 'ऋतावा' में ऋत शब्द से मतुप् प्रत्यय है।

विशेषः—राथ ने 'कतमच्चन+अहः' इस प्रकार दो पद नहीं माने किन्तु 'अह' की जगह 'अहम्' पाठ मानकर 'कतमच्चनाहम्' को और भी अधिक 'Never' 'Never' के अर्थ में प्रयुक्त माना है।

संहिता-पाठः

४. आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो
यथावशं चरति देव एषः।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं
तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥

पद-पाठः

आत्मा । देवानाम् । भुवनस्य । गर्भः ।
यथाऽवशम् । चरति । देवः । एषः ।
घोषाः । इत् । अस्य । शृण्विरे न रूपम् ।
तस्मै । वाताय । हविषा । विधेम ॥४॥

सायणः—अयं वायुः देवानामिन्द्रादीनामप्यात्मा जीवरूपेण तेष्ववस्थानात् । भुवनस्यापि भूतजातस्य गर्भः गर्भवत्प्राणरूपेणान्तर्वर्तमान एष ईदृशो देवो यथावशं यथाकामं यथेच्छं चरति वर्तते । अनिवारितगतिः सन् क्वचिच्छीघ्रं गच्छति क्वचिच्छनैर्गच्छति कुतश्चिच्छरीरान्निष्क्रामति अन्यच्च शरीरं प्रविशतीत्येवं यथेच्छं वर्तते इत्यर्थः । अस्य वायोः आगच्छतो घोषा इत् शब्दा एव शृण्विरे श्रूयन्ते । रूपं स्वरूपं तु न दृश्यते । नारूपत्वात् । अदृग्विषयत्वेन शब्देनैवानुमीयते इत्यर्थः तस्मै वाताय वायवे हविषा चरुपुरोडाशादिलक्षणेन विधेम परिचरेम ।

व्याख्याः—यह वायु देवानाम्=इन्द्रियों का भी, आत्मा=आत्मा है क्योंकि वायु ही जीव रूप से अवस्थित है । भुवनस्य=भूत मात्र का, गर्भः=गर्भ के समान प्राण रूप से उनके अन्दर विद्यमान है । एष=यह, देवः=दिव्य शक्ति वाला वायु, यथावशम्=यथेच्छ, चरित=कार्य करता है । अर्थात् अबाधित गति से कहीं शीघ्र और कहीं मन्द गति करता है । किसी शरीर से निकल कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है, इस प्रकार यथेच्छ व्यापार करता है । अस्य=इस वायु के आते हुए, घोषाः = केवल शब्द, इत्=ही, शृण्विरे=सुनाई पड़ते हैं । तथा इसका, रूपम्=स्वरूप, आकृति न=नहीं दिखाई देती, क्योंकि वायु रूप रहित है, अतः चक्षु से दृश्य नहीं, अतएव इसका शब्द से अनुमान किया जाता है । तस्मै=उस, वाताय=वायु की, हविषा=चरु या पुरोडाशादि प्रदान करके, विधेम=परिचर्या करें ।

विशेषः—पीटर्सन आदि सब पाश्चात्य लेखक इसके अर्थ को सायणानुकूल ही मानते हैं ।

—:o:—

मक्डानल टीका सहित–

ऋक्सूक्त संग्रह:

मं० १ सू० १

अग्निसूक्तम्

संहिता-पाठः

१. अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥

पद-पाठः

अग्निम् । ईळे । पुरःऽहितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् ।
होतारम् । रत्नऽधातमम् ॥१॥

परिचय—इस सूक्त का विश्वामित्र ऋषि है, अग्नि देवता और गायत्री छन्द है ।

संस्कृतव्याख्याः — यज्ञस्य = क्रियमाणदेवताद्याराधन-कर्मणः पुरोहितम्—पुरोहितवदभीष्टसंपादकम् । यद्वा यज्ञस्य पूर्व-भागे आहवनीयरूपेण संस्थितम् । अग्निर्वै देवानां होता—इति-श्रुतेः । देवं दानादिगुणयुक्तम् । होतारम्—होतृनामकमाह्वातारं वा देवानाम् । ऋत्विजम्=देवानामृत्विग्भूतम् । रत्नधातमम्=यागफलरूपाणां रत्नानाँ अतिशयेन धारयितारं पोषयितारं वा । अग्निम्=तन्नामकं देवम् । ईडे=स्तौमि । यद्वा—यज्ञस्येति पदं 'देव' मित्यनेनान्वेति—यज्ञस्य प्रकाशकमित्यर्थः ।

व्याकरणम्—ईडे=ईड स्तुतौ, लटि उत्तमपुरुषैकवचने रूपम्। उकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसम्प्रदायप्राप्तः तदुक्तम्—

अज्मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचाः जगु।
अज्मध्यस्थढकारस्य ळ्हकारं च यथाक्रमम्॥ इति,

अग्निम्=एतिधातोरुत्पन्नादयनशब्दादकारमादाय, दहतेर्दग्धशब्दाद् गकारं गृहीत्वा यद्वा अनक्तिधातोः ककारं गकारे परिवर्त्य, नयतेर्नीः ह्रस्वो भूत्वा परो भवति। इत्थं धातुत्रयेण निष्पद्यतेऽग्निशब्दः। यद्वा—अगि धातोर्निं प्रत्यये न लोपेऽग्निशब्दः सिध्यति।

पुरोहितम्=पुर उपपदाद् दधातेः क्त प्रत्यये कृते धातो हिरादेशः।

रत्नधातमम्=रत्नोपपदधाधातोः क्विपि निष्पन्नाद् रत्नधा शब्दात्तमप् प्रत्ययः।

यज्ञस्येत्यत्र यजधातोर्नङ् प्रत्यये षष्ठ्यन्तं रूपम्।

अग्निम्=मैं (विश्वामित्र) अग्नि नाम के देवता की इळे=स्तुति करता हूँ। जो अग्नि यज्ञस्य=यज्ञ का पुरोहितम्=पुरोहित है, (अर्थात्—जैसे राजा का पुरोहित राजा के अभीष्ट की पूर्ति करता है वैसे ही अग्नि यज्ञ के द्वारा यजमान की कामनाओं की पूर्ति करता है) तथा, देवम्=वह अग्नि दानादि गुणयुक्त है, एवं, होतारम्=जो अग्नि देवताओं का होता है, क्योंकि लिखा है (अग्निर्वै देवानां होता इति) तथा रत्नधातमम्=यज्ञ, के फलस्वरूप रत्नों का अत्यधिक धारण करने वाला, देने वाला या पोषण करने वाला है।

विशेष:—मैक्डानल के मत में "ईळे" का अर्थ 'महत्व गान करता हूँ' (Magnify) है, यास्क के मत में "ईळे" का अर्थ "प्रार्थना करता हूँ" है।

संहिता-पाठः

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिर्, ईड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥

पद-पाठः

अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत ।
सः । देवान् । आ । इह । वक्षति ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—(अयम्) अग्निः, पूर्वेभिः=पुरातनैर्भृग्वङ्गिरः प्रभृतिभिः, ऋषिभिः, ईड्यः=स्तुत्यः, नूतनैः उत=इदानीन्तनैरस्माभिरपि (स्तुत्य इत्यर्थः), सः=अग्निः, (स्तुतः सन्), इह=अत्र (यज्ञे), देवान्=हविर्भुजः, आवक्षति=आवहतु ।

उतशब्दो यद्यपि विकल्पार्थे प्रसिद्धस्तथापि निपातत्वेनानेकार्थत्वादौचित्येनात्र समुच्चयार्थः ।

व्याकरणम्—पूर्वेभिः=पूर्वशब्दाद्भिसि, बहुलंछन्दसीत्यनेनैसादेशाभावः ।

वक्षति=वहधातोर्लोडर्थे छान्दसो लृट्, तस्य स्य प्रत्ययगतस्य यकारस्य लोपः । यद्वा—लेटि 'सिब्बहुलम्' इत्यनेन सिप् प्रत्ययेऽडागमे निष्पन्नम् ।

ईड्यः=ईड् स्तुतौ धातोर्यत् प्रत्यये निष्पन्नः ।

अग्निः=यह अग्नि, पूर्वेभिः=प्राचीन भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियों के द्वारा ईड्यः=स्तुति किया गया है, उत=और, नूतनैः=नवीन, विश्वामित्र आदि ऋषियों से भी स्तुति किया जाता है । सः=वही अग्निः, देवान्=देवताओं को, इह=इस यज्ञ में, आवक्षति=प्राप्त करावे । 'वक्षति' यह लेट् लकार का प्रयोग है ।

संहिता-पाठः

३. अग्निना रयिमश्नवत्, पोषमेव दिवेदिवे
यशसं वीरवत्तमम् ॥

पद-पाठः

अग्निना । रयिम् । अश्नवत् । पोषम् । एव । दिवेऽदिवे ।
यशसम् । वीरवत्ऽतमम् ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—(योऽयं स्तुत्योऽग्निस्तेन) अग्निना=निमित्तभूतेन, (यजमानः) रयिम्=धनम्, अश्नवत्=प्राप्नोति। (यच्च धनम्) दिवे दिवे=प्रतिदिनम्, पोषम्=पुष्यमाणतया वर्धमानम् (न तु कदाचित् क्षीयमाणम्), यशसम्=दानादिना यशोयुक्तम्, वीरवत्तमम्=अतिशयेन पुत्रभृत्यादिवीर-पुरुषोपेतम्। तुष्टोऽग्निरुक्तरूपं धनं ददातीत्यर्थः।

व्याकरणम्—अश्नवत्=अश्नोतेर्लेटि, व्यत्ययेन तिपि, इकार-लोपे, अडागमे निष्पत्तिः।

दिवे-दिवे=दिवशब्दात् सप्तम्याः 'सुपां सुलुगित्यादिना' 'शे' भावे नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वे निष्पन्नम्।

यशसम्=यशोऽस्यास्तीति विग्रहे यशः शब्दात् मत्वर्थीयः अच् प्रत्ययः।

जो अग्नि-होता के द्वारा स्तुति किया गया है उस अग्निना=अग्नि से, दिवेदिवे=प्रतिदिन, पोषमेव=बढ़ते हुए ही (कभी क्षीण न होने वाले), यशसम्=यशस्वी, वीरवत्तमम्=पुत्र, भृत्य आदि वीर पुरुषों से अत्यधिक युक्त, रयिम्=धन को, अश्नवत्=प्राप्त करता रहूँ।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'पोषम्' पद का अर्थ 'कीर्तिकारक'

या प्रकाशकारक है, पुष्टि कारक नहीं, क्योंकि इसकी व्याख्या (glorious) शब्द के द्वारा की गई है।

संहिता-पाठः

४. अग्ने यं यज्ञमध्वरं, विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति ॥

पद-पाठः

अग्ने। यम्। यज्ञम्। अध्वरम्। विश्वतः। परिऽभूः। असि।
सः। इत्। देवेषु। गच्छति ॥४॥

संस्कृतव्याख्याः— (हे) अग्ने! (त्वम्) अध्वरम्=हिंसा-रहितम्, अध्वरम्=हिंसारहितम्, यज्ञम्, विश्वतः=सर्वासु दिक्षु, परिभूः=परितः प्राप्तवान्, असि, स इत्=स एव यज्ञः, देवेषु (तृप्ति प्रणेतुं स्वर्गे) गच्छति। प्राच्यादि-चतुर्दिक्षु यज्ञेऽऽहवनी-यमार्जालीयगार्हपत्यग्नीध्रीयस्थानेषु वह्निः स्थाप्यते।

व्याकरणम्— अध्वरम्=न विद्यते ध्वरोऽस्येति। विश्वतः=विश्वशब्दात् सप्तम्यर्थे तसिल् प्रत्ययः।

हे अग्ने तू, यम्=जिस, अध्वरम्=हिंसारहित (क्योंकि अग्नि के द्वारा रक्षित यज्ञ को राक्षसादि हिंसित नहीं कर सकते) यज्ञम्=यज्ञ को, विश्वतः=सब दिशाओं में, परिभूरसि=प्राप्त हो रहा है। स इत्=वही यज्ञ, देवेषु गच्छति=देवताओं की तृप्ति करने के लिए प्राप्त होता है अर्थात् यह अग्नि प्राची दिशा में आहवनीय अग्नि के द्वारा, प्रतीची में गार्हपत्य के द्वारा और दक्षिण में मार्जालीय अग्नि के द्वारा और उत्तर में आग्नीध्रीय नामक अग्नियों के द्वारा देवताओं को तृप्त करता है।

विशेषः—मैक्डानल के मत में यज्ञ का अर्थ (worship) और अध्वरम् का (sacrifice) है।

संहिता-पाठः

५. अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत् ॥

पद-पाठः

अग्निः । होता । कविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवःऽतमः ।
देवः । देवेभिः । आ । गमत् ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—(अयम्) देवः=देवस्वरूपः, होता=होमनिष्पादकः, कविक्रतुः=क्रान्तप्रज्ञः क्रान्तकर्मा वा, सत्य=अनृतरहितः (अवश्यंफलदाता), चित्रश्रवस्तमः=अतिशयेन विविधकीर्तियुक्तः, देवेभिः=हविर्भोजिभिरन्यैर्देवैः सह, आगमत्=अस्मिन् यज्ञे समागच्छतु।

व्याकरणम्—चित्रश्रवस्तमः=श्रूयत इति श्रवः कीर्तिः। चित्रोपपदात् श्रवस् शब्दात् तमप्।

आ+गमत्=आगच्छत्वित्यर्थे लोडन्तस्य गमे छत्वाभावः। उकार लोपश्छान्दसः, एवं च आ गमदिति रूपं लोटि प्रथमपुरुषैकवचने। सत्यः=सत्सु साधुः सत्यः। सत्यादशपथे ५।४।६६ इति सूत्रेण निपातनात्।

यह अग्निः=अग्नि देवता जो, होता=होम को निष्पन्न करने वाला कविक्रतुः=अतीत अनागत यज्ञादि कर्मों का जानने वाला, सत्यः=मिथ्या से शून्य अर्थात् निश्चय रूप से फल देने वाला, चित्रश्रवस्तमः=विचित्र अनेक प्रकार की कीर्तिवाला, देवः=स्वयं प्रकाशमान् या प्रकाशशील, होता हुआ, देवेभिः=हवि के भोक्ता देवगणों के साथ, आगमत्=इस यज्ञ में पधारे। 'लोट्' लकार का प्रयोग है।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'होता' शब्द का अर्थ आह्वान करने वाला (invoker) है।

संहिता-पाठः

६. यदङ्ग दाशुषे त्वम्, अग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥

पद-पाठः

यत्। अङ्ग। दाशुषे। त्वम्। अग्ने। भद्रम्। करिष्यसि।
तव। इत्। तत्। सत्यम्। अङ्गिरः ॥६॥

संस्कृतव्याख्या:—अङ्ग, इत्यभिमुखीकरणार्थे, हे अग्ने, त्वम् (पूर्वोक्तगुणविशिष्ट), दाशुषे=हविर्दत्तवते यजमानाय, यद् भद्रम्=कल्याणम् (वित्तगृहप्रजापशुरूपम्) करिष्यसि, तत् (भद्रम्) तव इत्=तवैव। हे अङ्गिरः, एतत सत्यम् (नत्वत्र कश्चिद् विसंवादोऽस्ति)।

व्याकरणम्—दाशुषे=दाशृ (दाने) धातोः 'दाश्वानित्यादिना' ६।१।१२ क्वसु प्रत्ययः। भद्रम्=भदि (कल्याणे) धातोर्निपातनाद् र प्रत्ययः।

अङ्गिरः='अङ्गिरा अङ्गारा' 'इति यास्कः' येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन्निति (ऐतरेय ब्रा०) तस्मादङ्गिरो नामकमुनिकारणत्वादङ्गाररूपस्याग्नेऽरङ्गिरस्त्वम्। गत्यर्थकादगिधातोरौणादिकः इरच् प्रत्ययः।

अङ्ग=हे अग्ने=अग्नि देवता, त्वम्=तू, दाशुषे=हवि का दान करने वाले (यजमान के लिए), यत्=जो, भद्रं=धन, गृह, प्रजा, पशु आदि रूप कल्याण, करिष्यसि=करेगा, तत्=वह कल्याण, तव=तेरे, इत्=ही (सुख का कारण है। क्योंकि यजमान धनयुक्त होकर बड़े-बड़े

यज्ञों को करके अग्नि की ही पूजा या प्रसन्नता करता है) अतः हे अङ्गिरः=अङ्गार रूपी अग्निदेवता अथवा अङ्गिरा नामक मुनि के जन्म देने वाले अग्नि! यह सब, सत्यम्=सच ही है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है।

संहिता-पाठः

७. उप त्वाग्ने दिवेदिवे, दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥

पद-पाठः

उप। त्वा। अग्ने। दिवेऽदिवे। दोषाऽवस्तः। धिया। वयम्।
नमः। भरन्तः। आ। इमसि॥७॥

संस्कृतव्याख्या:—हे अग्ने! वयम्=अनुष्ठातारः, दिवे-दिवे=प्रतिदिनम्, दोषावस्तः=रात्रिन्दिवम्, धिया=बुद्ध्या, नमः=नमस्कारम् भरन्तः=सम्पादयन्त-, उप त्वा=तव समीपम्, एमसि=आगच्छामः।

व्याकरणम्—दोषावस्तः=दोषा (रात्रिः) वस्तर् (दिनम्), दोषा च वस्तश्चेत्यनयोः समाहारः दोषावस्तः।

भरन्तः=भृ, धातोः शपि, शतृप्रत्यये निष्पत्तिः। एमसि='इदन्तोमसि' इति मसः इकारोऽन्ते उपसृष्टः।

हे अग्ने=हे अग्नि देवता, वयम्=हम यज्ञ करने वाले, दिवेदिवे=प्रतिदिन, दोषावस्तः=रात और दिन, धिया=एकाग्र बुद्धि से, नमो-भरन्तः=नमस्कार करते हुए, त्वा=तुझ को, उप एमसि=प्राप्त करें, अर्थात् तेरी शरण में जायें।

विशेषः—मैक्डानल के मत में "दोषावस्तः" पद सम्बोधन है। सायण के समान सप्तम्यन्त पद नहीं, तथा इसका अर्थ अन्धकार के दूर

करने वाले या निराशा के हटाने वाले (O ! illuminer of gloom है।

संहिता-पाठः

८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।
वर्धमानं स्वे दमे ॥

पद-पाठः

राजन्तम् । अध्वराणाम् । गोपाम् । ऋतस्य । दीदिविम् ।
वर्धमानम् । स्वे । दमे ।

संस्कृतव्याख्याः—पूर्वमन्त्रे 'उप त्वा एमसि' इति यदुक्तं तत्र 'त्वा' इत्यस्य विशेषणमन्यद् वक्ति । कीदृशं त्वाम्—राजन्तम्=देदीप्यमानम्, अध्वराणाम्=हिंसारहितानां यज्ञानाम्, गोपाम्=रक्षकम्, ऋतस्य=सत्यस्य (कर्मफलस्य), दीदिविम्=पौनः पुन्येन द्योतकम्, स्वे दमे=स्वकीये गृहे (यज्ञशालायाम्) वर्धमानम् (हविर्भिरितिशेषः) ।

व्याकरणम्—दीदिविम्=दिव् धातोर्यङ्लुङ्न्तात् क्विप्रत्यये दीदिविम् इति रूपम् ।

(पूर्व मन्त्र में अग्नि को प्राप्त करें यह कहा गया है। इस मन्त्र में प्राप्तव्य अग्नि के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है) हे अग्ने तू राजन्तम्=प्रकाशमान है, अध्वराणाम्=यज्ञों का, गोपाम्=रक्षक है, ऋतस्य=अवश्य भोगे जाने वाले कर्मफलों का, दीदिविम्=अत्यधिक प्रकाशक है, क्योंकि अग्नि में दी जाने वाली आहुति को देखकर शास्त्रों में सिद्ध किये गए कर्मों का फल याद आ जाता है, तथा तू स्वे, दमे=अपने स्थानों पर, वर्धमानम्=बढ़ रहा है या लपटें ले रहा है। अग्नि

का यह स्थान एकमात्र यज्ञवेदी ही है। इन द्वितीयान्त पदों का पूर्व-मन्त्रगत 'एमसि' के साथ अन्वय होता है।

विशेषः—मैक्डानल ने 'अध्वराणाम्' पद का सम्बन्ध सायण की तरह 'गोपाम्' के साथ नहीं किया, किन्तु 'राजन्तम्' के साथ किया है तथा यज्ञों का शासन करने वाला (ruling over sacrifice) यह अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

९. स नः पितेव सूनवे, ऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥

पद-पाठः

सः। नः। पिताऽइव। सूनवे। अग्ने। सुऽउपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—हे अग्ने,! सः=पूर्वोक्तगुणयुक्तस्त्वम्, नः=अस्मदर्थम्, सूपायनः=शोभनप्राप्तियुक्तः भव। (तथा) नः=अस्माकम्, स्वस्तये=विनाशराहित्यार्थम्, सचस्व=समवेतो भव। (तत्रोभयत्र दृष्टान्तं ददाति) पितेवेति, यथा पुत्रार्थं पिता सुप्रापः प्रायेण समवेतो भवति—तद्वत्।

व्याकरणम्—सचस्वा=षच् धातोर्लोटि रूपम्। ऋचि तू नू—इति दीर्घः।

हे अग्ने! तू नः=हमारे लिए, सूपायन=शुभागमन वाला भव=बन तथा नः=हमारे, स्वस्तये=हानि को दूर करने के लिए, सचस्व=हमारे साथ संगति कर, जिस प्रकार सूनवे=पुत्र के लिए, पिताइव=पिता शुभ कामना करने वाला और कल्याण करने वाला होता है वैसे तू भी हमारे लिए हमारा हितकारी बन।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'सचस्व' का अर्थ साथ रहना (abide-with) है।

मरुत् सूक्त

संहिता-पाठः

१. प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो
यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे
मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥

पद-पाठः

प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न । सप्तयः ।
यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुऽदंससः ।
रोदसी । इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे ।
मदन्ति । वीराः । विदथेषु । घृष्वयः ॥१॥

परिचयः—इस सूक्त का गौतम ऋषि है, मरुत् देवता है। पाचवें और बारहवें मन्त्र में त्रिष्टुप् छन्द है, शेष मन्त्रों में जगती छन्द है।

संस्कृतव्याख्याः—ये मरुतः=मरुद्गणाः, यामन्=यामनि गमने निमित्तभूते सति, प्रशुम्भन्ते=प्रकर्षेण स्वीयान्यङ्गानि-अलङ्कुर्वन्ति (तदलङ्करणम्) जनयो न=जाया इव (यथा योषितः स्वकीयान्यङ्गान्यलङ्कुर्वन्ति तद्वत्)। 'पुनस्ते' सप्तयः= सर्पणशीलाः रुद्रस्य सूनवः=परमेश्वरस्य पुत्राः, सुदंससः=शोभन-कर्माणः (सन्ति), हि=यस्मात् (मरुतः), रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, वृधे=वर्धनाय (वृष्टिप्रदानादिना), चक्रिरे=कृतवन्तः, 'पुनस्ते' वीराः=विशेषेण शत्रुक्षेपणशीलाः, घृष्वयः = घर्षणशीलाः, विदथेषु=यज्ञेषु, मदन्ति=सोमपानेन हृष्यन्ति ।

व्याकरणम्—शुम्भन्ते=भौवादिकदीप्त्यर्थकात् शुम्भधातोर्लटि ।

जनयः=जायन्ते आस्वपत्यानीति जनयो जाया । इन् सर्वधातुभ्यः इति इन्प्रत्ययः । यामन्=या प्रापणे । बाहुलकात् मनिन् प्रत्ययः । सप्तम्याः लुक् । घृष्वयः=घृषु संघर्षे । क्विन् प्रत्ययान्तो निपातितः ।

ये मरुतः=जो मरुत् देवता, यामन्=जाते समय, प्र शुम्भन्ते=अपने अंगों को अच्छी तरह सजाते हैं । उसी प्रकार सजाते हैं न=(तरह) जिस प्रकार जनयः=स्त्रियाँ सजाती हैं । तथा ये मरुत् नामक देवता, सप्तयः=चलने वाले हैं, रुद्रस्य = परमेश्वर के, सूनवः=पुत्र हैं, सुदंससः=अच्छे कर्मवाले हैं, हि=क्योंकि, मरुतः=मरुत् देवताओं ने, रोदसी=द्युलोक और पृथ्वीलोक को, वृधे=वृष्टि प्रदान के द्वारा बढ़ाने के लिये, चक्रिरे=बनाया है । यही उसका सुदंसत्व है । तथा वे मरुत् वीराः=शत्रुओं को इधर उधर फैंक देने वाले, या विशेषतया प्रेरणा देने वाले और घृष्वयः=रगड़ने वाले, अर्थात् अपनी टक्कर से पहाड़ और पेड़ों को गिरा देने वाले हैं । अतः इस प्रकार के गुणों वाले मरुद्गण विदथेषु=यज्ञों में, मदन्ति=सोमपान के द्वारा प्रसन्न होते हैं ।

विशेष :—मैक्डानल के मत में 'सुदंसतः' का अर्थ आश्चर्ययुक्त कार्यों को करने के कारण आश्चर्य वाले (wondrous) है ।

संहिता-पाठः

२. त उ॒क्षि॒तासो॑ महि॒मान॑माशत
दि॒वि रु॒द्रासो॒ अधि॑ चक्रि॒रे सदः॑ ।
अर्च॑न्तो अ॒र्कं ज॒नय॑न्त इन्द्रि॒यम्
अधि॒ श्रियो॑ दधिरे॒ पृश्नि॑मातरः ॥

पद-पाठः

ते । उक्षितासः । महिमानम् । आशत ।
दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सदः ।
अर्चन्तः । अर्कम् । जनयन्तः । इन्द्रियम् ।
अधि । श्रियः दधिरे । पृश्निऽमातरः ।

संस्कृतव्याख्या:— (पूर्वोक्ताः) ते = मरुतः, उक्षितासः= अभिषिक्ताः सन्तः, महिमानम्=महत्वम्, आशत=प्राप्नुवन्। रुद्रासः=रुद्रपुत्राः ते, दिवि=द्योतमाने नभसि, सदः=सदनम्, अधिचक्रिरे=सर्वोत्कृष्टं कृतवन्तः, अर्कम्=अर्चनीयमिन्द्रम् अर्चन्तः= पूजयन्तः, इन्द्रियम्=इन्द्रस्य वीर्यम्, जनयन्तः=(प्रहर भगवो जहि वीरयस्व इति वाक्येन) उत्पादयन्तः, पृश्निमातरः=भूमेः पुत्राः (पृश्निर्नानारूपा भूमिः) ते मरुतः, श्रियः ऐश्वर्याणि, अधि दधिरे=अधिक्येनाधारयन्।

व्याकरणम्—उक्षितासः=उक्षसेचने, कर्मणि क्तः, असुक्।

पृश्निमातरः=प्राश्नुते सर्वाणि रूपाणि, इति पृश्निर्भूमिः सा माता येषां ते, 'ऋतश्छन्दसि' इति कपो निषेधः।

उक्त गुणों वाले ते=वे मरुद्गण, उक्षितासः=देवताओं द्वारा अभिषिक्त होते हुए, महिमानम्=महत्त्व को, आशत=प्राप्त हो चुके हैं, वे रुद्रासः=रुद्र के पुत्र हैं। (यहां पुत्र के लिये पितृवाचक शब्द का प्रयोग किया गया है) दिवि=प्रकाशमान आकाश में, सदः = स्थान को अधिचक्रिरे=अधिक या सर्वोत्कृष्ट बनाने में समर्थ हुए हैं। इन्द्रियम्= इन्द्र के चिह्नभूत पराक्रम को, जनयन्तः=उत्पन्न करते हुये और अर्कम्= पूजनीय इन्द्र को, अर्चन्तः=पूजते हुये, पृश्निमातरः=नाना रूपवाली

भूमि ही है माता जिन की अर्थात् भूमि के पुत्र वे मरुद्गण, श्रियः=ऐश्वर्यों को अधिदधिरे=अधिकतया धारण करने वाले हो चुके हैं। (यहां पर इन्द्र को पराक्रमी बनाने के लिये 'प्रहर भगवः, जहि वीरयस्व' इत्यादि वाक्यों को मरुद् गण बोलते हैं)।

विशेष:—मैक्डानल के मत में 'उक्षितासः' का अर्थ वीरों की वीरता को भगा देने वाले (having waxed strong) हैं तथा 'अर्कम् अर्चन्तः' का अर्थ अपना गाना गाते हुए (singing their songs) है।

संहिता-पाठः

३. गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्
त॒नूषु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः।
बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभि॒माति॑न॒मप॒
वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते घृ॒तम् ॥

पद-पाठः

गोऽमा॑तरः। यत्। शु॒भय॑न्ते। अ॒ञ्जिऽभिः॑।
त॒नूषु॑। शु॒भ्राः। द॒धि॒रे॒। वि॒रुक्म॑तः।
बाध॑न्ते। विश्व॑म्। अ॒भि॒ऽमा॒ति॑न॑म्। अप॑।
वर्त्मा॑नि। ए॒षा॒म्। अनु॑। री॒य॒ते॒। घृ॒तम् ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः— गोमातरः=गोरूपा पृथ्वीमाता येषां ते (मरुतः), अञ्जिभिः=रूपाभिव्यञ्जकैराभरणैः, यत्=यदा, शुभयन्ते=स्वकीयान्यङ्गानि शोभायुक्तानि कुर्वन्ति, (तदा) शुभ्राः=दीप्ता (मरुतः), तनुषु=स्वशरीरेषु, विरुक्मतः=विशेषेण रोचमानानलंकारान्, दधिरे=धारयन्ति। (अपि च), विश्वं=सर्वम्, अभिमातिनम्=शत्रुम्, अपबाधन्ते=हिंसन्ति।

एषाम्=मरुताम्, वर्त्मानि=मार्गान् (अनुसृत्य), घृतम्=क्षरणशील-मुदकम्, रीयते=स्रवति। (यत्र मरुतो गच्छन्ति तदनुसारेण वृष्ट्युदकमपि तत्र गच्छतीत्यर्थः)।

व्याकरणम्—अञ्जिभिः=अञ्ज् धातुः 'खनिकशि' इत्यौणादिक-सूत्रेण 'इ' प्रत्ययः।

विरुक्मतः=विशिष्टा रुक विरुक्, तद्वन्तो, मतुप्, भत्वाद्=जश्त्वा-भावः। अयस्मयादित्वेन पदत्वात्कुत्वम्।

रीयते=रीङ् स्रवणे, श्यन्।

शुभ्राः=शुभ 'दीप्तौ' इति धातोः स्फायितञ्चीति रक् प्रत्ययः।

अभिमातिनम्='मीञ्' हिंसायाम्। भावे क्तः। अभिमात शब्दादिनिः, अभिमुखीभूय हिनस्ति इति अभिमाती शत्रुः।

गोमातरः=गौ है माता जिनकी ऐसे मरुत् देवता, अञ्जिभिः=रूप को चमका देने वाले आभूषणों से, यच्छुभयन्ते=जब अपने अङ्गो को शोभित बनाते हैं, तब शुभ्राः=चमकदार वे देवता, तनूषु=अपने शरीरों पर, विरुक्मतः=चमकने वाले आभूषणों को, दधिरे=धारण करते हैं और विश्वम्=सम्पूर्ण, अभिमातिनम्=शत्रुओं को, अपबाधन्ते=मार डालते हैं, एषां=इन मरुत् देवताओं के, वर्त्मानि=मार्गों का, अनु=अनुसरण करके, घृतम्=टपकने वाला जल, रीयते=बहता है। जहां-जहां पर वायु जाता है वृष्टि का जल भी मेघों के द्वारा वहीं-वहीं उड़-उड़ कर पहुँच जाता है।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'विरुक्मत' का अर्थ चमचमाते शस्त्रों को धारण करने वालों (they put on their bodies brilliant weapons) तथा 'घृतम्' का अर्थ चिकनाहट (fatness) है।

संहिता-पाठः

४. वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः
प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा
वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥

पद-पाठः

वि । ये । भ्राजन्ते । सुऽमखासः । ऋष्टिऽभिः ।
प्रऽच्यावयन्तः । अच्युता । चित् । ओजसा ।
मनःऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ ।
वृषऽव्रातासः । पृषतीः । अयुग्ध्वम् ॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—सुमखासः=शोभनयज्ञाः ये=मरुतः, ऋष्टिभिः=आयुधैः, वि भ्राजन्ते=विशेषेण दीप्यन्ते, (ते मरुतः) अच्युताः चित्=च्यावितुमशक्यानि दृढानि (पर्वतादीन्यपि), ओजसा=बलेन प्रच्यावयन्तः,=प्रकर्षेण च्यावयितारो भवन्ति। (तथाभूताः) हे, मरुतः मनोजुवः=मनोवेगगतयः वृषव्रातासः= वृष्ट्युदकसेचनसमर्थसप्तसंघात्मकाः (यूयम्) रथेषु=आत्मीयेषु। पृषतीः=पृषत्यः (मरुद्वाहनानां संज्ञा) (श्वेतविन्दुयुक्ताः मृगीः) यत्=यदा, आ अयुग्ध्वम्=आभिमुख्येन नियुक्ता अकृढ्वम्।

व्याकरणम्—मनोजुवः=क्विब्वचीत्यादिना 'जु' धातोः क्विप्-दीर्घौ।

अयुग्ध्वम्='युजिर् योगे' लुङ् 'धि च' इति ८।२।२५ सलोपः।

सुमखासः=अच्छे यज्ञ करने वाले, जो मरुद्गण, ऋष्टिभिः=शस्त्रों से, विभ्राजन्ते=शोभायमान होते हैं, वे अच्युताः चित्=जो गिराये नहीं जा सकते ऐसे पर्वतादि को भी, ओजसा=अपने बल से प्रच्यावयन्तः=गिरा देने वाले, हे मरुतः=मरुद् गणो, मनोजुवः=मन के समान तेज गति वाले, वृषव्रातासः=वृष्टि के जल को गिराने में समर्थ सात वायुओं के संघर्ष स्वरूप तुम, रथेषु=अपने रथों में, पृषतीः=सफेद बिन्दु वाली मृगियों को, यत्=जो आ अयुग्ध्वम्=जोड़ चुकते हो तब तुम्हारे रथ की गति से पर्वतादि गिर पड़ते हैं।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'सुमखासः' का अर्थ=अच्छे योद्धा (great warriours) 'वृषव्रातासः' का अर्थ=शक्तिशाली सेना (strong hosts) है।

संहिता-पाठः

५. प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं
वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः।
उतारुषस्य विष्यन्ति धाराश्
चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥

पद-पाठः

प्र। यत्। रथेषु। पृषतीः। अयुग्ध्वम्।
वाजे। अद्रिम्। मरुतः। रंहयन्तः।
उत। अरुषस्य। वि। स्यन्ति। धाराः।
चर्मऽइव। उदऽभिः। वि। उन्दन्ति। भूम ॥

संस्कृतव्याख्याः—हे, मरुतः=मरुद्गणाः वाजे=अन्ने, अद्रिम्=मेघम्। रंहयन्तः=वर्षणार्थं प्रेरयन्तः, पृषतीः=पृषत्यो

वाहनभूताः, ताः यत्=यदा, रथेषु'प्र' अयुग्ध्वम्=रथेषु प्रायूयुजत। उत=तदानीम्, अरुषस्य=आरोचमानस्य (सूर्यस्य वैद्युताग्नेर्वा सकाशात् वृष्टयुदकधाराः) विष्यन्ति=विमुञ्चन्ति (ताः) धाराः=जलपरम्पराः, उदभिः=उदकैः चर्मेव=चर्म यथा अप्रयानेन क्लेद्यते तथा, भूम=सर्वां भूमिम्, व्युन्दन्ति=विशेषेणार्द्रां कुर्वन्ति (भवन्तः)।

व्याकरणम्—रंहयन्तः='रहि' गतौ णिच् शता च। वि+ष्यन्ति='षो'ऽन्तकर्मणि दिवादित्वात् श्यन्, 'ओतः श्यनी'त्यनेनौकारलोपः। उपसर्गात्सुनोति षत्वम्। व्युन्दन्ति='उन्दी' क्लेदने, भूम=भूमिशब्दात् सुपां सुलुगित्यादिना द्वितीयैकवचनस्य डादेशः। छान्दसं आकारस्य ह्रस्वत्वम्।

हे मरुतः=हे मरुद्गणो, यत्=जब, पृषतीः=अपने हरिणीरूप वाहनों को, रथेषु=रथों में, प्र अयुग्ध्वम्=जोड़ देते हो, वाजे=अन्न की उत्पत्ति के लिए, अद्रिम्=मेघ को, रंहयन्तः=वर्षा करने के लिए प्रेरणा देते हो, उत=उस समय, अरुषस्य=न चमकने वाले सूर्य की या बिजली की शक्ति से गिरने वाली, धाराः=जल की धाराएँ, विस्यन्ति=टपकने लगती हैं, वे धारायें, उदभिः=जलों से, चर्मेव=चमड़े की तरह, भूम=सारी पृथिवी को, वि उन्दन्ति=गीला कर देती हैं।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'वाजे' का अर्थ=तेज़ चलने वाली (हरिणी) (speeding) है, अन्न अर्थ नहीं है। अद्रिम् का अर्थ=युद्ध में पत्थर के समान दृढ़ (the stone in the conflict) है, मेघ अर्थ नहीं है। अरुषस्य=चमकदार [ruddy (steed)] (वाहनों की) धाराएँ पंक्तियाँ अर्थात् मृगी रूपी घोड़ों की पंक्तियाँ यह अर्थ है इसका यह भाव है कि वे अपने शत्रु पर अपने वाहनों को चढ़ा देते हैं। 'चर्म' का अर्थ=त्वचा (skin) है।

संहिता-पाठः

६. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो
रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं
मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥

पद-पाठः

आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः ।
रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः ।
सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः सदः कृतम् ।
मादयध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मरुतः, वः=युष्मान्, रघुष्यदः=लघु-स्यन्दमानाः वेगेन गच्छन्त इत्यर्थः । सप्तयः=सर्पणशीला अश्वाः, आ वहन्तु=अस्मद्यज्ञं प्रापयन्तु । रघुपत्वानः=शीघ्रं पतन्तः (यूयम्) बाहुभिः=स्वहस्तैः (अस्मभ्यं दातव्यं धनमाहृत्य) प्रजिगात=प्रकर्षेण गच्छत । वः=युष्माकम्, सदः=सदनम् (वेदिलक्षणं गृहम् स्थानम्) उरु=विस्तीर्णम्, कृतम्=तत्रास्तीर्णम्, (यत्) बर्हिः=कुशा, तत् आ सीदत=तस्मिन्नुपविशत । (उपविश्य च) मध्वः=मधुरस्य, अन्धसः=सोमलक्षणस्यान्नस्य (पानेन), मादयध्वम्=तृप्ता भवत ।

व्याकरणम्—रघुस्यदः='स्यन्दू' प्रस्रवणे 'क्विप् चे'ति क्विप्, नलोपः । रघुपत्वानः='पत्लृ' गतौ, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति वनिप् । मादयध्वम्='मद' तृप्तियोगे, चुरादिः आत्मनेपदम् । जिगात='गा' स्तुतौ, जुहोत्यादिगणस्य लोण्मध्यमबहुवचने रूपम् । 'तप्तनप्तनथनाश्च' इति तबादेशः, तस्य पित्वेन कित्वाभावात्, ई हल्यघोः, इति ईत्वाभावः ।

हे मरुतः=हे मरुद् गणो, आपको, रघुष्यदः=तेज गति वाले, सप्तयः=घोड़े, आवहन्तु=हमारे यज्ञ में ले आवें। तथा, रघुपत्वानः=शीघ्र गमनशील आप, बाहुभिः=अपने हाथों से हमारे लिए (दातव्य धन लाकर) प्रजिगात=शीघ्र चले जाओ। हे मरुतः=मरुद्‌गणो! वह तुम्हारा, सदः=वेदिरूपी स्थान, उरु=विस्तृत, कृतम्=बना दिया गया है। वहाँ पर बिछाये हुए, बर्हिः=कुशा के ऊपर, आसीदत=बैठिए, और बैठ कर, मध्वः=मीठे, अन्धसः=सोमरूपी अन्न के पानविशेष के पीने से, मादयध्वम्=तृप्त हूजिए।

मैक्डानल के मत में 'मादयध्वम्' सोम रस का आनन्द लेना (Rejoice) है, तृप्त करना नहीं।

संहिता-पाठः

७. तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना
नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं
वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये॥

पद-पाठः

ते। अवर्धन्त। स्वऽतवसः। महिऽत्वना।
आ। नाकम्। तस्थुः। उरु। चक्रिरे। सदः।
विष्णुः। यत्। ह। आवत्। वृषणम्। मदऽच्युतम्।
वयः। न। सीदन्। अधि। बर्हिषि प्रिये॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—ते=मरुतः, स्वतवसः=स्वाश्रयबलाः, अवर्धन्त=वृद्धि गताः, (ततः), महित्वना=महत्त्वेन, नाकम्=स्वर्गम्, आ तस्थुः=आस्थितवन्तः। सदः=सदनम् (नभोलक्षणं स्थानम्),

उरु=विस्तीर्णम्, चक्रिरे=कृतवन्तः। यत्=यदर्थम् येभ्यः मरुद्भ्यः, विष्णुः=विष्णुरेवागत्य, वृषणम्=कामाभिवर्षकम्, मदच्युतम्=हर्षस्यआसेक्तारम् (यज्ञम्), ह आवत्='आगत्य'रक्षति। (ते=मरुतः) वयो न=पक्षिण इव (शीघ्रमागत्य), बर्हिषि कुशायाम्, अधि=उपरि, प्रिये=प्रीतिकरे (नो यज्ञे) सीदन्=उपविशन्तु :

व्याकरणम्—मदच्युतम्=मदं च्योतति 'इति' 'च्युतिर्' आसेचने' क्विप्। सीदन् लिङर्थे लेटि, अडागमः। यत्=येभ्यः इत्यर्थः, सुपां सुलुगिति चतुर्थ्याः लुक्। आवत्=वर्तमाने छन्दसो लङ्। महित्वना=महित्वशब्दात् उत्तरस्य आङः व्यत्ययेन नाभावः, यद्वा आच् आदेशः, सुपां सुलुगिति नकारोपजनश्च।

ते=वे मरुद् गण, स्वतवसः=अपने बल के आश्रित हुए (अर्थात् किसी अन्य के बल की अपेक्षा न रखने वाले) अवर्धन्त=वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। और महित्वना=अपने महत्त्व से, नाकम्=स्वर्ग को, आतस्थुः=अधिकार में कर चुके हैं। तथा सदः=आकाश रूपी स्थान को अपने रहने के लिये, उरु=विस्तीर्ण, चक्रिरे=बना चुके हैं। यत्=जिन मरुतों के लिये, वृषणम्=इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, मदच्युतम्=हर्ष को देने वाले यज्ञ को, विष्णुः=भगवान् स्वयं, ह=प्रसिद्ध है कि, आवत्=रक्षा करता है, तथा जो मरुद्गण वयः=पक्षियों की, न=तरह, शीघ्रता से आते हैं, वे इस प्रिये=प्रीति देने वाले, बर्हिषि=यज्ञ में, अधिसीदन्=आकर बैठें।

मैक्डानल के मत में "मदच्युतम् वृषणम्" का अर्थ मस्त हुआ बैल (the bull reeling with intoxication) है, उसकी रक्षा विष्णु भगवान् स्वयं करते हैं।

संहिता-पाठः

८. शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः
श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो
राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥

पद-पाठः

शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः ।
श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे ।
भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः ।
राजानःऽइव । त्वेषऽसंदृशः । नरः ॥८॥

संस्कृतव्याख्याः—शूरा इव=शौर्योपेता युयुत्सवः पुरुषा इव, इत् इत्येतत्समुच्चये, युयुधयः=शत्रुभिर्युध्यमानाः, जग्मयः=शीघ्रं गच्छन्तः (मरुतः), श्रवस्यवो न=श्रवोऽन्नमात्मन इच्छन्तः पुरुषा इव, पृतनासु=संग्रामेषु, येतिरे=प्रयतन्ते। (तादृशेभ्यः) मरुद्भ्यः, विश्वा=सर्वाणि, भुवना=भूतजातानि, भयन्ते=बिभ्यति । (ये), नरः=नेतारः (मरुतः), राजान इव=नृपतय इव, त्वेषसंदृशः= दीप्तदर्शनाः (द्रष्टुमशक्याः) भवन्ति ।

व्याकरणम्—युयुधयः=युधसंप्रहारे, 'उत्सर्गश्छन्दसि' इति वचनात् क्विन् प्रत्ययः, लिड्वदभावाद् द्विर्भावादि । कित्वाद्गुणाभावः । जग्मयः= क्विन् प्रत्ययः, गमहनेत्युपधालोपः, द्विर्भावादि । श्रवस्यवः=श्रव इच्छति श्रवस्यति । "क्याच्छन्दसि" उ प्रत्ययः । भयन्ते='ञिभी' भये, 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लोरभावः । त्वेषसंदृशः='त्विष्' दीप्तौ, पचाद्यच्, दृशिर्' प्रेक्षणे, संपूर्वादस्मात्, संपदादित्वात्, भावे क्विप्, बहुव्रीहिः ।

शूरा इव=शौर्य वाले पुरुषों की तरह योद्धाओं की तरह, युयुधयः= युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों की, न=तरह, इत=और, वे जग्मयः= शीघ्र जाने वाले मरुद्गण, श्रवस्यवः=अपने लिए अन्न की या कीर्ति की इच्छा करने वाले, न=पुरुषों की तरह, पृतनासु=संग्राम में, येतिरे= वृक्ष आदि के साथ युद्ध के लिए भिड़ जाते हैं। इस प्रकार मरुद्भ्यः= मरुद्गणों से, विश्वा भुवना=सारे प्राणी, भयन्ते=डरते हैं, जो नरः=वृष्टि: आदि के ले जाने वाले मरुद्गण, राजानः इव=प्रकाशशील राजाओं की तरह, त्वेषसंदृशः=चमकदार अग्निपिण्ड के समान दमदमाते हुए अर्थात् देखने वाले की आँखों को चकाचौंध करने वाले बन जाते हैं (उन मरुद्गणों से दुनिया डरती है।)

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'श्रवस्यवः' का अर्थ=यश चाहने वाले (fame-seeking) है, अन्न चाहने वाले नहीं। 'येतिरे' का अर्थ व्यूह रूप में खड़ा करना (have arrayed) है, लड़ाई करना नहीं। त्वेष-संदृशः का अर्थ—भयानक आकृति वाले (terrible aspect) है, देदीप्यमान नहीं।

संहिता-पाठः

९. त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं
सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे-
ऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम्॥

पद-पाठः

त्वष्टा। यत्। वज्रम्। सुऽकृतम्। हिरण्ययम्।
सहस्रऽभृष्टिम्। सुऽअपाः। अवर्तयत्।
धत्ते। इन्द्रः। नरि। अपांसि। कर्तवे।
अहन्। वृत्रम्। निः। अपाम्। औब्जत्। अर्णवम्॥९॥

संस्कृतव्याख्या:—स्वपा:=शोभनकर्मा, त्वष्टा=विश्व-निर्माता, यत्=यद्रूपम्, सुकृतम्=सम्यङ्निष्पादितम्, हिरण्ययम्=सुवर्णमयम्, सहस्रभृष्टिम्, अनेकधारायुक्तम्, वज्रम्=तन्नामकं शस्त्रम्, अवर्तयत्=इन्द्रं प्रत्यगमयत् दत्तवानित्यर्थः। तद्वज्रम्, इन्द्रः। नरि=संग्रामे, अपांसि=शत्रुहननादि लक्षणानि कर्माणि, कर्तवे=कर्तुम्, धत्ते=धारयति। (तेन वज्रेण) वृत्रम्=वृष्टयु-दकस्यावरकम्, अर्णवम्=मेघम्, अहन्=अवधीत्। अपाम्=अपः, निरौब्जत्=निःशेषेणाधोमुखमपातयत्।

व्याकरणम्—हिरण्ययम्=हिरण्यशब्दान्मयट् ऋत्व्येत्यादिना निपातनात् मकारलोपः। कर्तवे=कृ धातोः 'तुमर्थे सेसेन' इति तवेन्प्रत्ययः। अपाम्=क्रियाग्रहणं कर्तव्यमित्यनेन कर्मणः सम्प्र-दानत्वात् चतुर्थ्यर्थे षष्ठी औब्जत्= 'उब्ज' आर्जवे, लङि रूपम्। अर्णवम्=अर्णसः मत्वर्थीयो वः सलोपश्च।

स्वपाः=सुन्दर कर्मों वाला, त्वष्टा=विश्व का बनाने वाला, यत्=जो, वज्रम्=वज्र को, अवर्तयत्=इन्द्र के लिए दे रहा था उस, सुकृतम्=अच्छे प्रकार बनाये गये, हिरण्ययम्=सोने के, सहस्रभृष्टिम्=हजारों धारा वाले वज्र को, इन्द्रः=इन्द्र, धत्ते=धारण करता है, जिससे वह नरि=युद्ध में, अपांसि=शत्रुहनन आदि कर्मों को, कर्तवे=करने के लिए समर्थ हो सके। इस प्रकार वज्र को धारण कर उस वज्र से, वृत्रम्=वृष्टि जल को रोकने वाले, अर्णवम्=जल से भरे हुए मेघ को, अहन्=मारा और अपाम्=उसके द्वारा रोके गये जलों को, निरौब्जत्=नीचे गिरा दिया, अर्थात् बरसा दिया।

मैक्डानल के मत में 'नरि' का अर्थ नरोचित, वीरतापूर्ण (manly) है। 'अपांसि' का अर्थ कर्म (deeds) है, सायण की तरह संग्राम और शत्रु-हनन अर्थ नहीं है।

संहिता-पाठः

१० ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा
दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो
मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥

पद-पाठः

ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । अवतम् ते । ओजसा ।
दुदृहाणम् । चित् । बिभिदुः । वि । पर्वतम् ।
धमन्तः । वाणम् । मरुतः । सुऽदानवः ।
मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ।

संस्कृत-व्याख्या:—अत्राख्यायिका, पिपासया पीडितो गोतमो मरुत उदकं ययाचे । ततो मरुतोऽदूरस्थं कूपमुद्धृत्य ऋषिसमीप अवस्थाप्य तत्र गर्तं कृत्वा गर्ते कूपमुत्सिच्य ऋषिं तर्पयांचक्रुः ॥इति॥ ते मरुतः, अवतम्=कूपम, ऊर्ध्वम्=उपरि यथा स्यत्तथा, ओजसा=स्वबलेन, नुनुदे=प्रेरितवन्तः । (कूपमृषेराश्रमं प्रतिनयन्तः मरुतो मार्गमध्ये) दादृहाणम्=प्रवृद्ध गतिनिरोधकम् पर्वतम् चित्=पर्वतवन्तं शिलोच्चयम्, विबिभिदुः=बिशेषेण बभञ्जुः । सुदानवः=शोभनदानाः ते मरुतः, वाणम्=शतसंख्याभिः तन्त्रीभिर्युक्तं वीणाविशेषम्, धमयन्तः=वादयन्तः, सोमस्य मदे =सोमपानेन हर्षे सति, रण्यानि=रमणीयानि धनानि चक्रिरे= स्तोतृभ्यः कुर्वन्ति ।

व्याकरणम्—ददृहाणम्='दृह' 'दृहि' वृद्धौ लिटः कानच् । रण्यानि=रणतेर्भावे, वार्शरण्योरुपसंख्यानम् इत्यप्, भवेच्छन्दसि, इति यत् । धमन्तः=ध्मा धातोः शतृप्रत्ययः । वाणम्=वण् धातोः

कर्मणि घञ् । यद्वा वा धातोर्ल्युटि छान्दसं णत्वम् ।

विशेष:(इस विषय में यह कहानी प्रसिद्ध है कि एक बार गौतम ऋषि प्यास से व्याकुल हुए और उन्होंने मरुद्गणों से पानी मांगा, मरुद्-गणों ने पास ही एक कुआँ खोदा और जहाँ गोतम ऋषि बैठा था वहीं पर उस कुएँ को ले जाकर और उन्हीं के समीप एक चौबच्चा बना उसमें पानी भर ऋषि को जल पिला कर तृप्त किया । यही अर्थ इस ऋचा के द्वारा कहा गया है) ।

ते मरुतः=उन मरुद् गणों ने अव=नीचे है, त=तल जिसका, इस अवतम्=अर्थात् कुएँ को, ऊर्ध्वम्=ऊपर तक पानी जिस प्रकार भर जावे इस प्रकार से, ओजसा=अपने बल से, नुनुद्रे=प्रेरणा की अर्थात् खोदा । इस प्रकार कुएँ को खोदकर उस ऋषि के आश्रम की ओर उस कुएँ को ले जाते हुए मरुद्गणों ने मार्ग में, दादृहाणम्=बढ़े हुये मार्ग को रोकने वाले, पर्वतम्=पर्व वाले पहाड़ को, चित्=भी, विबिभिदुः=तोड़ डाला, सुदानवः=अच्छा दान देने वाले, मरुतः=मरुद्गणों ने, वाणम्=सौ तार वाली एक खास वीणा को, धमन्तः=बजाते हुए, सोमस्य=सोम-पान के बाद, मदे=हर्ष के होने पर, रण्यानि=स्तुति योग्य रमणीय धन को, चक्रिरे=स्तोताओं के लिए दान दिया या उत्पन्न किया ।

मैक्डानल के मत में 'रण्यानि' का अर्थ=यशस्वी कर्म (glorious deeds) है ।

संहिता-पाठः

११. जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा-
सिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः
कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥

पद-पाठः

जिह्मम् । नुनुद्रे । अवतम् । तया । दिशा ।
असिंञ्चन् । उत्सम् । गोतमाय । तृष्णऽजे ।
आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रऽभानवः ।
कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्त । धामऽभिः ॥११॥

संस्कृतव्याख्याः— मरुतः, अवतम्=पूर्वोक्तमुद्धृतं कूपम्, तया दिशा=ऋषेर्दिशा, जिह्मम्=वक्रम्, नुनुद्रे=प्रेरितवन्तः, (ततः), तृष्णजे=तृषिताय, गोतमाय=तन्नाम्ने ऋषये, उत्सम्=जलप्रवाहम् असिञ्चन्=अवानयन्, 'ईम् पादपूरणार्थः' एनम्=ऋषिम्, चित्रभानवः=विचित्रदीप्तयः, (ते मरुतः) अवसा=रक्षणेन, आ गच्छन्ति=तत्समीपं प्राप्नुवन्ति । विप्रस्य=मेधाविनो गोतमस्य, कामम्=अभिलाषम्, धामभिः=आयुषो धारकैरुदकैः । तर्पयन्त=अतर्पयन् ।

व्याकरणम्—तृष्णजे='ञितृषा' पिपासायाम्, 'स्वपितृषोर्नजिङ्' अथवा जनेर्डप्रत्ययः । आकारस्य ह्रस्वत्वम् संज्ञात्वात् । धाम='धा' धातोर्मनिन् ।

मरुद्गणों ने खोदे हुए अवतम्=उस कुएँ को, जिह्मम् नुनुद्रे=टेढ़े रूप में बनाया । इस प्रकार के उस कुएँ को ऋषि के आश्रम में रख कर, तृष्णजे=प्यासे, गोतमाय=गौतम ऋषि के लिए, उत्सम्=जल प्रवाह को, तया दिशा=जिस ओर ऋषि बैठा था उस ओर, असिञ्चन्=पहुँचाया, अर्थात् नाली से चौबच्चे (water reservoir) में पानी भरा, ऐसा करने के बाद इस स्तुति करने वाले ऋषि के निकट, चित्रभानवः=विचित्र कान्ति वाले मरुद्गण, अवसा=रक्षा करते हुए, आगच्छन्ति=आते हैं, अर्थात् आकर बैठ गये । तथा धामभिः=आयु को धारण करने वाले जलों से, विप्रस्य=मेधावी गौतम ऋषि के, कामम्=

इच्छाओं को, तर्पयन्त=तृप्त किया। यहाँ 'ईम्'=शब्द निरर्थक है, केवल पादपूर्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

मैक्डानल के मत में 'विप्रस्य' का अर्थ=ऋषि (sage) है। 'धामभिः' का अर्थ शक्तियाँ (powers) है।

संहिता-पाठः

१२. या वः शर्म शशमानाय सन्ति
त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त
रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्॥

पद-पाठः

या। वः। शर्म। शशमानाय। सन्ति।
त्रिऽधातूनि। दाशुषे। यच्छत। अधि।
अस्मभ्यम्। तानि। मरुतः। वि। यन्त।
रयिम्। नः। धत्त। वृषणः। सुऽवीरम्॥१२॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मरुतः, वः=युष्माकम्, या=यानि, शर्म=शर्माणि सुखानि गृहाणि वा, त्रिधातूनि=पृथिव्यादिषु त्रिषु स्थानेष्ववस्थितानि, शशमानाय=युष्मान् स्तुतिभिर्भजमानाय दातुम् संपादितानि, सन्ति। (यानि च) दाशुषे=हविर्दत्तवते, अधियच्छत=अधिकं प्रयच्छथ, हे मरुतः, तानि=शर्माणि, अस्मभ्यम्=प्रार्थयितृभ्यः, वियन्त=विशेषेण प्रयच्छत। किं च हे वृषणः=कामानां वर्षितारो मरुतः। नः=अस्मभ्यम्, सुवीरम्=शोभनपुत्रादिभिर्युक्तम्। रयिम्=धनम्, धत्त=दत्त।

व्याकरणम्—शशमानाय='शश प्लुतगतौ। ताच्छीलिकः चानश्। यन्त=यमेर्लोटि। बहुलं छन्दसीति शपोः लुकि तप्तनबिति तस्य तबादेशः।

तस्य पित्वेन ङित्वाभावादनुनासिकलोपो न भवति। वृषणः=वृष् धातोः कनिन्। वा षः पूर्वस्य निगमे इति दीर्घाभावः।

मरुतः=हे मरुद्गणो! वः=तुम्हारे, या=जो, शर्म=सुखदायक घर, त्रिधातूनि=तीन स्थानों पर बने हुए हैं, वे, घर शशमानाय=तुम मरुद्गणों की स्तुति के द्वारा उपासना करने वाले व्यक्ति के लिए ही, सन्ति=बनाये गये हैं, तथा जिन घरों को, दाशुषे=हवि का दान देने वाले के लिए, अधि=अधिकतया, यच्छत=प्रदान करते हो, तानि=उन घरों को, अस्मभ्यम्=हम लोगों के लिए भी, वियन्त=विशेषतया दो, तथा हे वृषणः=इच्छाओं की पूर्ति करने वाले मरुद्गणो! नः=हम लोगों के लिए सुवीरम्=शोभन पुत्रादि, रयिम्=धन को, धत्त=दान दीजिए।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'शर्म' का अर्थ बचने के स्थान (shelters) है, घर नहीं। 'शशमानाय' का अर्थ स्पर्धा करने वाले व्यक्ति (zealous men) है, स्तुति करने वाले यजमान नहीं।

मं० १ सूक्त १६०

द्यावापृथिवी सूक्त

संहिता-पाठः

१. ते हि द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वश॑म्भुव
ऋ॒ताव॑री॒ रज॑सो धार॒यत्क॑वी।
सु॒जन्म॑नी धि॒षणे॑ अ॒न्तरी॑यते
दे॒वो दे॒वी धर्म॑णा॒ सूर्यः॒ शुचिः॑॥

पद-पाठः

ते इति॑ । हि । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । वि॒श्व॒ऽश॑म्भुवा ।
ऋ॒ताव॑री॒ इत्यृ॒तऽव॑री । रज॑सः । धा॒र॒यत्क॑वी॒ इति॑ धा॒र॒यत्ऽक॑वी ।
सु॒जन्म॑नी॒ इति॑ सु॒ऽजन्म॑नी । धि॒षणे॒ इति॑ । अ॒न्तः । ई॒य॒ते ।
दे॒वः । दे॒वी इति॑ । धर्म॑णा । सूर्यः॑ । शुचिः॑ ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—ते हि=ते खलु प्रसिद्धे, विश्वशंभुवा=विश्वस्य सुखयित्र्यौ, ऋतावरी=ऋतवत्यौ, रजसः=उदकस्य (उदकोत्पत्तौ), धारयत्कवी=उदकोत्पादनाय अप्रयत्नवत्यौ, सुजन्मनी=शोभनजन्मवत्यौ, धिषणे=धर्षणोपेते, देवी=द्योतमाने, द्यावापृथिवी=द्यावापृथिव्योः, अन्तः=मध्ये, शुचिः=शुद्धः, देवः=दीप्यमानः सूर्यः, धर्मणा प्रकाशोदकदानादिधारणेन युक्तः, ईयते=सर्वदा गच्छति ।

व्याकरणम्—धारयत्कवी=धृ 'णिच्' शतृ, धारयन्त्यौ कवी चेति-धारयत्कवी, कं=जलं अस्ति यत्र तत्, कवि, स्त्रियौ कवी, मतुबर्थे कशब्दाद् विप्रत्ययः, यथा=धृष्विरित्यत्र । ऋतावरी=ऋतशब्दात् 'छन्दसीवनिपौ०' इति वनिप्, 'वनोरच' इति ङीब्रेफौ ।

परिचयः—इस सूक्त का दीर्घतमस् ऋषि है, जगती छन्द है, द्यावापृथिवी देवता हैं ।

ते हि=उन प्रसिद्ध, द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक के, अन्तः=मध्य में, शुचिः=शुद्ध, विश्व का पवित्र करने वाला, देवः=चमकदार, दीप्तिमान्, सूर्यः=सूर्य भगवान्, धर्मणा=प्रकाशादि से युक्त हुआ, ईयते=सर्वदा गमन करता है । वे द्यावापृथिवी, विश्वशंभुवा=संसार का कल्याण करने वाली, ऋतावरी=जल वाली, रजसः=जल की उत्पत्ति में, धारयत्कवी=जल को धारण करने वाली या जल के धारण करने के लिये

यत्न करने के लिए (धारयत्=यत्न करने वाले, तथा क=जल, वि= वाले) या यह सूर्य का विशेषण है और 'धारयत्कवी' का अर्थ=कवि=ज्ञानों को, धारयत्=धारण करने वाला सूर्य। सुजन्मनी सुन्दर जन्म वाली, धिषणे=धर्षण से युक्त अपने काम में प्रगल्भता वाली, देवी=द्योतमान द्यावापृथिवी प्रतीत होती हैं।

मैक्डानल के मत में 'ऋतावरी' का अर्थ=नियम में रहने वाले (observing order) है। रजसः=वायु के, 'धारयत्कवी'=ऋषि रक्षक (pupporting the sage of the air) है। 'धर्मणा' का प्राकृतिक नियम (fixed law) अर्थ है।

संहिता-पाठः

२. उरुव्यचसा महिनी असश्चता
पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी
पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्॥

पद-पाठः

उरुऽव्यचसा। महिनी इति। असश्चता।
पिता। माता। च। भुवनानि। रक्षतः।
सुधृष्टमे इति सुऽधृष्टमे। वपुष्ये ३ इति। न रोदसी इति।
पिता। यत्। सीम्। अभि। रूपैः। अवासयत्॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—उरुव्यचसा=अतिविस्तीर्णे, महिनी= महत्यौ, असश्चता=असज्जमाने-परस्परवियुक्ते, पिता=पालयित्री (द्यौः), माता=निर्मात्री पृथिवी, च (इत्युभे) भुवनानि=भूत-जातानि, रक्षतः=पालयतः,। किं च, सुधृष्टमे=अतिशयेन

प्रगल्भे, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ, वपुष्येन=वपुषो हिते इव, (तथाहि) यत्=यस्मात्, सीम्=सर्वतः, पिता=पितृस्थानीया द्यौः, रूपैः=निरूपणसाधनैः, अभि अवासयत्=अधितिष्ठति (माता पिता च भुवनानि रक्षतः)।

व्याकरणम्—उरुव्यचसा='व्यच्' विस्तारे 'असुन्' उरुव्यचः ययोस्ते, लोके तु व्याजीकरणमर्थः। असश्चता='षस्ज' गतौ छान्दसः 'जस्य' चः तेन सश्चतिः तस्मात् शतरि द्विवचने रूपम्।

उरुव्यचसा=अधिक व्यचस वाले अर्थात् अति विस्तीर्ण, महिनी=महान्, असश्चता=परस्पर न टकराने वाले, पिता=पालन करने वाला द्युलोक, और माता=बनाने वाली पृथिवी इस प्रकार ये दोनों लोक, भुवनानि= संसार की या प्राणियों की, रक्षतः=रक्षा करते हैं। सुधृष्टमे=अत्यधिक धृष्ट प्रगल्भ, रोदसी=द्युलोक और पृथिवीलोक, वपुष्ये=शरीर के लिए हितकारी, न=पिता माता के समान प्राणियों के रक्षक हैं, यत्=क्योंकि, सीम्=सब तरफ से, पिता=पितृ-स्थानीय द्युलोक, रूपैः=जानने के साधन प्रकाशों के द्वारा या वृष्टि आदि के द्वारा, अभ्यवासयत्=अधिष्ठित हो रहा है। अतएव द्यावापृथिवी संसार के रक्षक हैं।

मैक्डानल के मत में 'असश्चता' का अर्थ=श्रान्त न होने वाले या अपरिमेय (inexhaustible) है। तथा 'वपुष्ये' आदि विशेषण किसी स्त्री के हैं जो कि दृष्टान्त के रूप में हैं। एवं='वपुष्ये' का अर्थ= सुन्दर स्त्री (fair women) 'सुधृष्टमे'=घमण्डी (most proud) है।

संहिता-पाठः

३. स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्
पुनाति धीरो भुवनानि मायया।

धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं
विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥

पद-पाठः

सः । वह्निः । पुत्रः । पित्रोः । पवित्रऽवान् ।
पुनाति । धीरः । भुवनानि । मायया ।
धेनुम् । च । पृश्निम् । वृषभम् । सुऽरेतसम् ।
विश्वाहा । शुक्रम् । पयः । अस्य । धुक्षत ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—पित्रोः=द्यावापृथिव्योः, पुत्रः=पुत्रस्थानीयः आदित्यः, पवित्रवान्=पावनरश्मिवान्, धीरः=धीमान्, स वह्निः=फलस्य धारकः, मायया=स्वप्रज्ञया, भुवनानि=भूतजातानि, पुनाति=पावयति प्रकाशयतीत्यर्थः । स एव, पृश्निम्=शुक्लवर्णम्, धेनुम्=भूमिम्, सुरेतसम्=शोभनसामर्थ्यमुदकं वा, वृषभम्=सेक्तारम्, द्युलोकं च, विश्वाहा=सर्वकालम् मायया पुनातीत्यर्थः, किं च अस्य=द्युलोकस्य द्युलोकं वा शुक्रम् पयः=दीप्तम् पयःसदृशमुदकम्, धुक्षत=दोग्धि ।

व्याकरणम्—पृश्निम्, 'पृच्छ' धातोः औणादिकः 'निङ्', धातूनामनेकार्थत्वाच्छुक्लवर्णामित्यर्थः । धुक्षत=दुहेश्छान्दसे लुङि 'शल इगुपधापनिटः क्सः' इति च्लेः क्सादेशः ।

पित्रोः—द्युलोक व पृथिवीलोक का, पुत्रः=पुत्र के समान सूर्य, पवित्रवान्=पावन किरणों से युक्त, धीरः=धीरतायुक्त, वह्निः=वहन करने वाला अर्थात् फलों का देने वाला जो सूर्य, मायया=अपनी बुद्धि से, भुवनानि=प्राणियों को, पुनाति=पवित्र या प्रकाशित करता है, सः=वही सूर्य, पृश्निम्=श्वेत रंग वाली, धेनुम्=तृप्ति करने वाली भूमि को, और सुरेतसम्=सुन्दर सामर्थ्य वाले या जल वाले, वृषभम्=पानी बरसाने

वाले द्युलोक को, विश्वाहा=सर्वदा, पुनाति=पवित्र करता है (पुनाति क्रिया का आवृत्ति के द्वारा यहाँ भी अन्वय किया जाता है), तथा अस्य=इस द्युलोक का, शुक्रम्=दीप्तियुक्त, पयः=जल, धुक्षत=दुहता है अर्थात् सूर्य आकाश के द्वारा जल बरसाता है वह सूर्य इन दोनों के पुत्र के समान है। यह द्यावापृथिवी की स्तुति है।

मैक्डानल के मत में 'मायया' का अर्थ=ज्ञान (बुद्धि) नहीं किन्तु अद्भुत शक्ति (mysterious power) है। 'पृश्निम्' का अर्थ चितकबरी (speckled) है। 'सुरेतसम्' का अर्थ=वीर्यवान् (abounding in deed) है अर्थात् मैक्डानल ने धेनु और वृषभ का अर्थ गाय और बैल ही किया है।

अब द्यावापृथिवी के उत्पादक की स्तुति निम्न मन्त्र से की जाती है।

संहिता-पाठः

४. अयं देवानामपसामपस्तमो
यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूयया-
जरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥

पद-पाठः

अयम् । देवानाम् । अपसाम् । अपःऽतमः ।
यः । जजान । रोदसीइति । विश्वऽशंभुवा ।
वि । यः । ममे । रजसीइति । सुक्रतुऽयया ।
अजरेभिः । स्कम्भनेभिः । सम् । आनृचे ॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—अयम् देवानाम्=सुराणां मध्ये, अपसाम्=तन्नामकानां मध्ये, अपस्तमः=अपां श्रेष्ठतमः, यः देव,ः विश्वशंभुवा=सर्वप्रकारेण भूतानां सुखस्य भावयित्र्यौ, रोदसी=द्यावा-पृथिव्यौ, जजान=उत्पादितवान्, (तथा) यः देवः, रजसी=रञ्जनात्मिके 'द्यावापृथिव्यौ', विममे=विशेषेण परिच्छिनत्ति, (तच्च) सुक्रतूयया=शोभनकर्मेच्छया, अजरेभिः=अजीर्णैः दृढ-तरैः, स्कम्भनेभिः=गतिप्रबन्धसाधनैः शंकुभिः, समानृचे=सम्यक्-पूजितवान् स्थापितवानित्यर्थः।

व्याकरणम्—आनृचे='ऋच' स्तुतौ। आत्मनेपदे, लिटि, रेफ-सामान्यात्, 'तस्मान्नुड् द्विहल', इत्यभ्यासस्य नुट्।

अयम्=यह देवता, देवानाम्=देवताओं में, सर्वश्रेष्ठ है और अपसाम्=कर्म करने वालों में, अपस्तमः=कर्मठतम है, यः=जो देव परमात्मा, विश्वशम्भुवा=संसार के सुखदायक, रोदसी=द्युलोक और पृथिवीलोक, को जजान=उत्पादित कर चुका है। तथा यः=जो देवता रजसी=रंजनात्मक द्यावापृथिवी को, सुक्रतूयया=अच्छे कर्म करने की इच्छा से, विममे=बनाता है विशेषतया उत्पन्न करता है। तथा अजरेभिः=जीर्ण न होने वाला दृढ़, स्कम्भनेभिः=गति के प्रतिबन्धक खूंटों से समानृचे=अच्छी तरह पूजा करता है, अर्थात् दृढ़ बना देता है।

मैकूडानल के मत में 'अजरेभिः' का अर्थ=अनादि काल से होने वाले (unaging) है, और स्कम्भनेभिः का अर्थ=सहारा (support) है।

संहिता-पाठः

५. ते नो॑ गृणा॒ने म॑हिनी॒ महि॒ श्रवः॑
क्ष॒त्रं द्या॑वापृथिवी धासथो बृ॒हत्।
येना॒भि कृ॒ष्टीस्त॒तना॑म वि॒श्वहा॑
पना॒य्य॒मोजो॑ अ॒स्मे समि॑न्वतम् ॥

पद-पाठः

ते इति॑ । नः॒ । गृ॒णा॒ने इति॑ । म॒हि॒नी॒ इति॑ । महि॑ । श्रवः॑ ।
क्ष॒त्रम् । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी इति॑ । धा॒स॒थः॒ । बृ॒हत् ।
येन॑ । अ॒भि । कृ॒ष्टीः । त॒तना॑म । वि॒श्वहा॑ ।
प॒नाय्य॑म् । ओजः॑ अ॒स्मे इति॑ । सम् । इ॒न्व॒त॒म् ॥५॥

संस्कृतव्याख्या:—हे द्यावापृथिव्यौ, गृणाने=अस्माभिः स्तूयमाने सत्यौ, महि=महत् , श्रवः=सर्वत्र प्रसिद्धमन्नं कीर्तिं वा, नः=अस्मभ्यम्, धासथः=धत्तम् । (तथा) बृहत्=अतिप्रभूतम्, क्षत्रम्=बलम् धासथः, येन=अन्नबलेन, विश्वहा=सर्वदा, कृष्टीः= प्रजाः, अभिततनाम=अभितो विस्तारयाम । 'किं च' पनाय्यम्=स्तुत्यम्, ओजः=बलम्, अस्मे=अस्मासु, 'सम्यक्' इन्वतम्=प्रवर्धयतम् ।

व्याकरणम्—ततनाम=तनोतेर्लेटि छान्दसो विकरणस्य श्लुः । 'आडुत्तमस्येत्याडागमः' । धासथः=दधातेर्लेटि, अडागमः । 'सिब्बहुलम्' इति सिप् ।

ते=वे दोनों, द्यावापृथिवी=द्युलोक और पृथिवीलोक, गृणाने=हमारे द्वारा स्तुति किये जाते हुए, महिनी=महत्त्व वाले, महि=अत्यधिक, श्रवः=अन्न या यश को, नः=हम लोगों के लिए, धासथः=धारण करते हैं, तथा बृहत्=अधिक, क्षत्रम्=बल को, धासथः=धारण करते हैं। येन=जिस बल के द्वारा, विश्वहा=सब दिन, कृष्टीः=पुत्रादि रूपी प्रजा को, अभिततनाम=चारों तरफ खूब फैलावें, तथा पनाय्यम्=प्रशंसनीय, ओजः=शरीर का बल, अस्मे=हम में, आप दोनों सम् इन्वतम्=अच्छी तरह बढ़ाइये।

मैक्डानल के मत में 'महि' का अर्थ=पर्याप्त (ample) है, 'श्रवः' का अर्थ=राज्य (dominion) है।

मं० २ सूक्त ३३

रुद्र सूक्त

संहिता-पाठः

१. आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु
मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत
प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः॥

पद-पाठः

आ। ते। पितः। मरुताम्। सुम्नम्। एतु।
मा। नः। सूर्यस्य। सम्ऽदृशः। युयोथाः
अभि। नः। वीरः। अर्वति। क्षमेत।
प्र। जायेमहि। रुद्र। प्रऽजाभिः॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मरुतां पितः=मरुत्संज्ञकानां देवाना-मुत्पादक रुद्र। ते=त्वदीयम्, सुम्नम्=(अस्मभ्यं दातव्यं) सुखम्, आ एतु=आगच्छतु, (तथा त्वम्) नः=अस्मान्, सूर्यस्य=भानोः, संदृशः=संदर्शनात्, मा युयोथाः=मा पृथक् कार्षीः। अर्वंति=शत्रौ, नः=अस्माकम्, वीरः=वीर्यवान् पुत्रादिः, अभिक्षमेत=अभिभवन्तु +यद्वा वीरस्त्वं नोऽस्मानभिक्षमेथाः। हे रुद्र, प्रजाभिः=पुत्रपौत्रा-दिभिः, प्रजायेमहि=प्रभूताः स्याम।

व्याकरणम्—युयोथाः='यु' मिश्रणामिश्रणयोः, लङि छान्दसः शपः श्लुः। 'छन्दस्युभयथा' इति आर्धधातुकत्वेन ङित्वाभावाद् गुणः।

परिचय—इस सूक्त का गृत्समद ऋषि है। त्रिष्टुप् छन्द है। रुद्र देवता है।

हे मरुतांपितः=मरुत् नामक देवताओं के जन्मदाता रुद्र, ते=तुम्हारे द्वारा हम को देने योग्य, सुम्नम्=सुख, आ एतु=प्राप्त हो, ('इदं पित्रे मरुताम्' इस मन्त्र में कही गई कथा के अनुसार रुद्र मरुद्गणों का पिता है, यह सिद्ध हो चुका है।), तथा तू नः=हमें, हम को, सूर्यस्य=सूर्य के, संदृशः=देखने से, मा युयोथाः पृथक् मत कर, अर्वंति= शत्रु के विषय में (भ्रातृव्यो वा अर्वा तै० सं० ६-३-८), नः=हमारे, वीरः=वीर्यवान् पुत्रादि, अभिक्षमेत=अभिभव में समर्थ हों, अथवा शत्रुओं में वीरः=पराक्रमी तू, नः अभिक्षमेत=हमारे अपराधों को क्षमा कर, हे रुद्र! हम लोग प्रजाभिः=सन्तानों के द्वारा प्रजायेमहि= विस्तार प्राप्त करें।

मैक्डानल के मत में 'सुम्नम्' का अर्थ—सदिच्छा (goodwill) है। 'अर्वंति' शब्द का अर्थ घोड़ा [steeds] है। इस प्रकार वीर पुरुष हमारे घोड़ों के प्रति दयालु बने, यह सारे मन्त्र का भाव है।

संहिता-पाठः

२. त्वादत्तेभी रुद्र शंतमेभिः
शतं हिमा अशीय भेषजेभि ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो
व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥

पद-पाठः

त्वाऽदत्तेभिः । रुद्र । शम्ऽतमेभिः ।
शतम् । हिमाः अशीय । भेषजभिः ।
वि । अस्मत् । द्वेषः । विऽतरम् । वि । अंहः ।
वि । अमीवाः । चातयस्व । विषूचीः ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—हे रुद्र त्वादत्तेभिः=त्वया दत्तैः शन्तमेभिः= अतिशयेन सुखकरैः,भेषजेभिः=औषधैः,शतं हिमाः=शतसंवत्सरान्, अशीय=व्याप्नुयाम्। (अपि च) अस्मत्=अस्मत्तः, द्वेषः=द्वेष्टॄन्, विचातयस्व=विनाशय, 'तथा', अहः=पापम् , वितरम्=अत्यन्तं विचातयस्व, अमीवाः=रोगान्, विषूचीः=पृथक्कृत्य विनाशय ।

व्याकरणम्—सुबोधम् ।

हे रुद्र ! त्वादत्तेभिः=तुम्हारे द्वारा दी गई, शंतमेभिः=अत्यन्त सुख देने वाली, भेषजेभिः=औषधियों से, शतम् हिमाः=सौ हेमन्त ऋतुओं को, अशीय=व्याप्त करें; अर्थात् सौ वर्ष तक जीवें, और अस्मत्=हम लोगों से, द्वेषः=द्वेष करने वालों को, विचातयस्व=नष्ट कर या पृथक् कर, विषूचीः=विषु=नाना प्रकार से, अचीः=शरीर में व्याप्त होने वाले, अमीवाः=रोगों को, विचातयस्व=दूर करो, एवं वितरम्=अत्यधिक, अंहः=पाप को भी, विचातयस्व=दूर करो ।

मैक्डानल के मत में 'शंतमेभिः' का अर्थ=प्रभाव रखने वाली लाभदायक (salutary) है। 'द्वेषः' का घृणा (hatred) है। अंहः=का कष्ट=(distress) है। 'विषूची' शब्द अमीवा का विशेषण नहीं है, किन्तु सब दिशाओं (in all directions) का अर्थ रखता है, अर्थात् 'विषूची' का अर्थ है दूर फैंकना, रोगों को सब दिशाओं में दूर फैंक दो, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

३. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि
तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति
विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३॥

पद-पाठः

श्रेष्ठः। जातस्य रुद्र। श्रिया। असि। तवःऽतमः।
तवसाम्। वज्रबाहो इति वज्रऽबाहो।
पर्षि। नः। पारम्। अंहसः। स्वस्ति।
विश्वाः। अभिऽईतीः। रपसः। युयोधि॥

संस्कृतव्याख्याः—हे रुद्र, जातस्य=उत्पन्नस्य (सर्वजगतः मध्ये)। श्रिया= ऐश्वर्येण, श्रेष्ठः=प्रशस्यतमः। असि=भवसि, (तथा) हे वज्रबाहो=आयुधहस्त, रुद्र, तवसाम्=प्रवृद्धानाँ मध्ये, तवस्तमः=अतिशयेन प्रवृद्धोऽसि, (स त्वम्) नः= अस्मान्। अंहसः=पापस्य, पारम्=तीरम्, स्वस्ति=क्षेमेण, पर्षि=पारय। (तथा) रपसः=पापस्य, विश्वाः=सर्वाः, अभीतीः=अभिगमनानि, युयोधि=पृथक् कुरु।

व्याकरणम्—युयोधि=यौतेश्छान्दसः शपः श्लुः 'वा छन्दसि' इति अपित्त्वस्य विकल्पनात् ङित्त्वाभावे, अङितश्चेति हेर्धिः ।

हे रुद्र !=हे शिव !, जातस्य=उत्पन्न हुए सारे संसार में, तू श्रिया=ऐश्वर्य से, श्रेष्ठ=प्रशस्त, असि=है, तथा हे वज्रबाहो=वज्र हाथ में रखने वाले रुद्र, तवसाम्=बल से बढ़े हुए लोगों में, तवस्तमः=अत्यधिक बलवान् हुआ तू, नः=हम लोगों को, अंहसः=पाप के, पारम्=पार को, स्वस्ति=कल्याणपूर्वक, पर्षि=पार कर दे, तथा रपसः=पाप की, विश्वाः=सारी, अभीतीः=चढ़ाइयों को, युयोधि=पृथक् कर दे ।

मैक्डानल के मत में 'श्रिया'=का अर्थ यश (glory) है । 'तवसाम्' बलवानों में बलशाली (mightiest of the mighty) है । 'रपसः' का बुराइयाँ (mischief) है ।

संहिता-पाठः

४. मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्
मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्
भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥

पद-पाठः

मा । त्वा । रुद्र । चुक्रुधाम । नमःऽभिः ।
मा । दुःऽस्तुती । वृषभ । मा । सऽहूती ।
उत् । नः । वीरान् । अर्पय । भेषजेभिः ।
भिषक्ऽतमम् । त्वा । भिषजाम् । शृणोमि ॥४॥

संस्कृतव्याख्या:—हे रुद्र, त्वा=त्वाम् । नमोभिः=नमस्कारैर्हविर्भिर्वा, मा चक्रुधाम=मा क्रोधयाम । हे वृषभ=कामानां

वर्षितः, दुष्टुती=दुःस्तुत्या, मा=मा चुक्रुधाम । (तथा) सहूती= सहूत्या विसदृशैरन्यैर्देवैः सहाह्वानेन, मा=मा क्रोधयामः । (स त्वम्) नः=अस्माकम्, वीरान् = पुत्रान् । भेषजेभिः=औषधैः, उत् अर्पय=उत्कृष्टं संयोजय, हे रुद्र, त्वा=त्वाम्, भिषजाम् = चिकित्सकानां मध्ये, भिषक्तमम् =अतिशयेन भैषज्यकर्तारम् । शृणोमि ।

व्याकरणम्—दुष्टुती=दुष् + स्तुति इत्यत्र 'सुपां सुलुगिति' दीर्घः ।

हे रुद्र ! त्वा=तुझे, नमोभिः=अनुचित प्रकार से किये गये नमस्कारों से, या दुष्ट अन्नों से, मा चुक्रुधाम=क्रोध न दिलावें, हे वृषभ= इच्छाओं के पूर्ण करने वाले रुद्र, दुष्टुती=बुरी स्तुति के द्वारा भी हम तुझे क्रुद्ध न करें, तथा सहूती=निम्न श्रेणी के देवताओं के साथ बुलाने (आह्वान) के द्वारा भी क्रुद्ध न करें, तू नः=हमारे, वीरान्=पुत्रादि को, भेषजेभिः=औषधियों से, उत् अर्पय=उत्कृष्ट रूप में बना दे । हे रुद्र ! त्वा=तुझ को, भिषजाम् = चिकित्सकों में, भिषक्तमम् = श्रेष्ठतम चिकित्सक के रूप में शृणोमि=सुनता हूँ ।

मैक्डानल ने 'वृषभ' का अर्थ बैल (bull) किया है । 'वीरान्' का वीर योधा (heroes) किया है ।

संहिता-पाठः

५. हवीमभिर्हवते यो हविर्भिर्
अव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै
बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥

पद-पाठः

हवींमऽभिः । हवंते । यः । हुविःऽभिः ।
अवं । स्तोमेभिः रुद्रम् । दिषीय ।
ऋदूदरः । सुऽहवः । मा । नः । अस्यै ।
बभ्रुः । सुऽशिप्रः । रीरधत् । मनायै ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—यः रुद्रः, हविर्भिः=चरुपुरोडाशादिभिः सहितैः, हवीमभिः=आह्वानैः । हवते=आह्वयते, (तम्) रुद्रम्=रुद्रदेवम्, स्तोमेभिः=स्तोत्रैः, अवदिषीय=अवखण्डयामि (अपगतक्रोधं करोमि) । ऋदूदरः=मृदुमध्यः, सुहवः=शोभनाह्वानः । बभ्रुः=भर्ता (बभ्रुवर्णो वा) । सुशिप्रः=शोभनहनुः, (स रुद्रः) । अस्यै मनायै=हन्मीति बुद्ध्यै नः=अस्मान्, मा रीरधत्=मा वशं नैषीत् ।

व्याकरणम्—दिषीय='दीङ्' क्षये यद्वा 'दो' अवखण्डने, व्यत्ययेनात्मनेपदम्, 'बहुलं छन्दसी'तीत्वम् । लिङि रूपम् । रीरधत्='रध्' हिंसासंराद्धयोः, अस्माण्ण्यन्ताल्लुङि चङि रूपम् ।

जो रुद्र हविर्भिः=चरु पुरोडाशादि के साथ, हवीमभिः=स्तुति रूपी आह्वानों के द्वारा, हवते=बुलाया या स्तुति किया जाता है, उस रुद्रम्=रुद्र को, स्तोमेभिः=स्तुतियों के द्वारा, अवदिषीय=खंडित करूँ, पृथक् करूँ अर्थात् क्रोध रहित बनाऊँ । ऋदूदरः=मृदु पेट वाला, सुहवः=आह्वान के योग्य, बभ्रुः=भरण-पोषण करने वाला या कपिश रंग वाला, सुशिप्रः=सुन्दर ठोढ़ी या नाक वाला वह रुद्र, अस्यै=इस, मनायै=बुद्धि के (अर्थात् मैं इस को मार डालूँ, इस प्रकार विचारने वाली रुद्र की बुद्धि के) विषयभूत, नः=हम लोगों को, मा रीरधत्=(वह रुद्र) न बनावे ।

मैक्डानल के मत में 'ऋदूदरः' का अर्थ दयालु (compassionate) है, तथा 'सुशिप्रः' का अर्थ सुन्दर होंठों वाला (fair lipped) है।

संहिता-पाठः

६. उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्
त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।
घृणीव च्छायामरपा अशीया-
विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥

पद-पाठः

उत् । मा । ममन्द । वृषभः । मरुत्वान् ।
त्वक्षीयसा । वयसा । नाधमानम् ।
घृणिऽइव । छायाम् । अरपाः । अशीय ।
आ । विवासेयम् । रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥

संस्कृतव्याख्या:—वृषभः=कामानां वर्षिता, मरुत्वान्=मरुद्भिर्युक्तो रुद्रः । नाधमानम्=याचमानम्, मा=माम्, त्वक्षीयसा=दीप्तेन, वयसा=अन्नेन, उत् ममन्द=उत्कर्षेण तर्पयतु, (अपि चाहम्) । घृणीव छायाम्='यथा सूर्यकिरणसन्तप्तः छायां प्रविशति' एवम्, रुद्रस्य, सुम्नम्=सुखम्, अरपाः=अपापः सन्, अशीय=व्याप्नुयाम् । (तदर्थं तं रुद्रम्), आविवासेयम्=परिचरेयम् ।

व्याकरणम्—त्वक्षीयसा=त्वक्ष+ईयसुन्, तृतीयैकवचने रूपम् ।

वृषभः=इच्छाओं को पूर्ण करने वाला, मरुत्वान्=मरुत् नाम वाले पुत्रों से युक्त, रुद्रः=रुद्र, नाधमानम्=प्रार्थना करने वाले या याचना

करने वाले, मा=मुझ को, त्वद्वीयसा=दीप्ति वाले, वयसा=अन्न से, उन्ममन्द=उत्कृष्ट रूप में तृप्त करे, और घृणीव=सूर्य से तप्त हुआ पुरुष, छायाम्=छाया को चाहता है वैसे ही, रुद्रस्य=रुद्र के, सुम्नम्=सुख को, अरपाः=पापरहित बना हुआ मैं, अशीय=व्याप्त करूँ, और इस सुख की प्राप्ति के लिए उस रुद्र को आविवासेयम्=परिचर्या से प्रसन्न करूँ।

मैक्डानल के मत में 'त्वद्वीयसा' का अर्थ शक्तिशाली (vigorous) है। 'वयसा' का शक्ति (force) है। अरपाः=हानिरहित, विनाश से रहित (मैं) (unscathed) है। सुम्नम्=उत्तम इच्छा (good-will) है।

संहिता-पाठः

७. क्व१ स्य ते रुद्र मृळयाकुर्
हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।
अपभर्ता रपसो दैव्यस्या-
भी नु मा वृषभ चक्षमीथाः॥

पद-पाठः

क्व। स्यः। ते। रुद्र। मृळयाकुः।
हस्तः। यः। अस्ति। भेषजः। जलाषः।
अपऽभर्ता। रपसः दैव्यस्य।
अभि। नु। मा। वृषभ। चक्षमीथाः।

संस्कृतव्याख्याः—हे रुद्र, ते=तव। मृळयाकुः=सुखयिता। स्यः,=सः, हस्तः=करः, क्व=कुत्र (वर्तते)। यः=हस्तः, भेषजः=भैषज्यकृत्, जलाषः=सर्वेषां सुखकरः, अस्ति=भवति। (तेन हस्तेन मां रक्ष) हे वृषभ=कामानाँ वर्षितः। दैव्यस्य=देवकृतस्य, रपसः=

पापस्य, अपभर्ता=विनाशयिता (भूत्वा), मा=माम्, नु=क्षिप्रम्, अभिचक्षमीथाः=अभिक्षमस्व ।

व्याकरणम्—चक्षमीथाः='क्षमूष्' सहने, लङि छान्दसः शपः श्लुः, बहुलं छन्दसीतीडागमः ।

हे रुद्र ! ते=तेरा, मृळयाकुः=सुख देने वाला, स्यः=वह, हस्तः=हाथ, क्व=कहाँ है । यः=जो हाथ, भेषजः=चिकित्सा करने वाला, जलाषः=सुखदायी (जल=जड़ता को, आ=हर तरफ से, षः=काट देने वाला), अस्ति=है । ऐसे हाथ से आप मेरी रक्षा कीजिये यह भाव है । हे वृषभ=इच्छा पूर्ण करने वाले रुद्र, दैव्यस्य=देवकृत, अर्थात् देवताओं (इन्द्रियों) के द्वारा किये गये, रपसः=पापों का, तू अपभर्ता=अपहरण करने वाला है, इसीलिए अपराधी, मा=मुझ को, नु=शीघ्र, अभिचक्षमीथाः=क्षमा कर दे ।

मैक्डानल के मत में 'मृळयाकुः' का अर्थ दयालु (merciful) है । 'जलाषः' का अर्थ ठण्डक देने वाला, शान्ति-दायक (cooling) है । 'रपसः' का अर्थ कष्ट (injury) है, पाप नहीं ।

संहिता-पाठः

८. प्र ब॒भ्रवे॑ वृष॒भाय॑ श्विती॒चे
म॒हो म॒हीं सु॑ष्टु॒तिमी॑रयामि ।
न॒म॒स्या क॑ल्मली॒किनं॒ नमो॑भिर्
गृ॒णीमसि॑ त्वे॒षं रु॒द्रस्य॒ नाम॑ ॥

पद-पाठः

प्र । ब॒भ्रवे॑ । वृ॒ष॒भाय॑ । श्वि॒ती॒चे ।
म॒हः । म॒हीम् । सु॒ऽस्तु॒तिम् । ई॒र॒या॒मि ।
न॒म॒स्य । क॒ल्म॒ली॒कि॑नम् । नमः॑ऽभिः ।
गृ॒णी॒म॒सि॒ । त्वे॒षम् । रु॒द्रस्य॑ । नाम॑ ॥८॥

संस्कृतव्याख्या:—बभ्रवे=विश्वस्य भर्त्रे बभ्रुवर्णाय वा। वृषभाय=कामनां वर्षित्रे, श्वितीचे=श्वैत्यमश्चते, रुद्राय, महो महीम्=महतोऽपि महतीम्। सुष्टुतिम्=शोभनस्तुतिम्, प्र ईरयामि =प्रकर्षेणोच्चारयामि। (हे स्तोत:) कल्मलीकिनम्=ज्वलन्तम् (रुद्रम्), नमोभिः=नमस्कारैः। नमस्य=पूजय, (वयं च) रुद्रस्य= महादेवस्य, त्वेषम्=दीप्तम्, नाम गृणीमसि=संकीर्तयामः।

व्याकरणम्—श्वितीचे='श्विता' वर्णे औणादिकः इन् प्रत्ययः, ततः श्वितिमञ्चतीति विग्रहे क्विन्। चतुर्थ्येकवचने अकारलोपे दीर्घे रूपम्। गृणीमसि='गॄ' शब्दे क्रैयादिकः, इदन्तोमसिः, प्वादीनां ह्रस्वः।

बभ्रवे=संसार का भरण करने वाले अथवा भूरे रंग वाले (brown), वृषभाय=कामनाओं को पूरा करने वाले, श्वितीचे=सफेद रंग को धारण करने वाले रुद्र के लिए, महो महीम्=बड़ी से बड़ी सुष्टुतिम्=सुन्दर स्तुति को, ईरयामि=करता हूँ। हे स्तोता तू कल्मलीकिनम्=तेजस्वी (मलों का जो कलन=अपगमन या हनन करे वह कल्मलीक=तेज हुआ उस नाम वाला, कल्मलीकी अर्थात् तेजस्वी) रुद्र को, नमोभिः=नमस्कारों के द्वारा, या हवि के द्वारा, नमस्य (लोट् मध्य०)= पूजित कर। और हम लोग रुद्रस्य=महादेव के, त्वेषम्=प्रकाशवान्, नाम=नाम को, गृणीमसि=बोलें अर्थात् नाम का कीर्तन करें।

मैक्डानल के मत में 'महो महीम्' का अर्थ—बड़ी से बड़ी स्तुति नहीं किन्तु बड़े उस रुद्र की बड़ी स्तुति है अर्थात् षष्ठी समास है। (a mighty eulogy of the mighty one) त्वेषम्=भयावह (terrible) है।

संहिता-पाठः

९. स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो
बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्
न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥

पद-पाठः

स्थिरेभिः । अङ्गैः । पुरुऽरूपः । उग्रः ।
बभ्रुः । शुक्रेभिः । पिपिशे । हिरण्यैः ।
ईशानात् । अस्य । भुवनस्य । भूरेः ।
न । वै । ऊं इति । योषत् । रुद्रात् । असुर्यम् ॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—स्थिरेभिः = स्थिरैः, अङ्गैः = अवयवैः (युक्तः), पुरुरूपः=अष्टमूर्त्यात्मकैर्बहुभी रूपैरुपेतः, उग्रः=तेजस्वी, बभ्रुः=भर्ता बभ्रुवर्णो वा (रुद्रः), शुक्रेभिः=दीप्तैः, हिरण्यैः= हिरण्मयैरलङ्कारैः, पिपिशे=दीप्यते, ईशानात्=ईश्वरात्, अस्य भुवनस्य=भूतजातस्य, भूरेः=भर्तुः, रुद्रात्=महादेवात्, असुर्यम् =बलम्, न वा उ योषत्=नैव पृथग्भवति ।

व्याकरणम्—पिपिशे='पिश्' अवयवे, कर्मणि लिट्, असुर्यम्= 'असु' क्षेपणे, असेरुरन्, असुरः क्षेप्ता, तत्र साधुः, असुर्यम्, योषत्= यौतेर्लेट्यडागमः, 'सिब्बहुलं लेटि' इति सिप् ।

हे रुद्र ! स्थिरेभिः=दृढ़, अङ्गैः=अंगों से, अवयवों से युक्त, पुरुरूपः =यजमानादि आठ प्रकार की मूर्तियों को धारण करने वाला, उग्रः=उन्नत, तेजस्वी, बभ्रुः=पोषण करने वाला, वह रुद्र, शुक्रेभिः=चमकदार, हिरण्यैः =सोने के आभूषणों से, पिपिशे=दीप्तिमान् होता है, ईशानात् = ईश्वर,

और अस्य भुवनस्य= इन भूत भौतिक पदार्थों के, भूरेः=भरण करने वाले रुद्र से, असुर्यम्=बल (जो इधर उधर फैंके वह असुर है उस फैंकने में जो साधु है वह असुर्य हुआ) क्योंकि प्रत्येक क्रिया बल के द्वारा ही होती है। न वै=कभी नहीं, उ=निश्चय से, योषत्=अलग होता है, अर्थात् वह रुद्र सदैव बलिष्ठ बना रहता है।

मैक्डानल के मत में 'भूरेः' का अर्थ बड़ा=(great) है, तथा यह पद 'भुवनस्य' का विशेषण है। 'असुर्यम्'=दिव्य साम्राज्य (divine dominion) है।

संहिता-पाठः

१०. अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वा-
र्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं
न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

पद-पाठः

अर्हन्। बिभर्षि। सायकानि। धन्व।
अर्हन्। निष्कम्। यजतम्। विश्वऽरूपम्।
अर्हन्। इदम्। दयसे। विश्वम्। अभ्वम्।
न। वै। ओजीयः। रुद्र। त्वत्। अस्ति ॥१०॥

संस्कृतव्याख्या:—हे रुद्र, त्वम्, अर्हन्=योग्यः सन्, सायकानि=शरान्, धन्व=धनुश्च, बिभर्षि=धारयसि। (तथा) अर्हन्नेव, इदं विश्वम्=सर्वम्, अभ्वम्=अतिविस्तृतं जगत्। दयसे=रक्षसि, हे रुद्र, त्वत्=त्वत्तोऽन्यत् किंचित्, ओजीयः= ओजस्वितरः, न वै अस्ति= न खलु विद्यते।

हे रुद्र ! तू अर्हन्=योग्य होता हुआ, सायकानि=बाणों को, और धन्व=धनुष को, बिभर्षि=धारण करता है तथा अर्हन्=योग्य होता हुआ ही, तू यजतम्=पूजनीय, विश्वरूपम्=अनेक रूपों से युक्त, निष्कम्=सोने के हार को धारण करता है । तथा अर्हन्=योग्य होता हुआ ही, इदम्=इस, विश्वम्=सम्पूर्ण, अभ्वम्=अति विस्तृत जगत् पर, दयसे=अपनी दया करते हो, (अभ्व पद का आ=चारों तरफ से, भू=जो उत्पन्न होवे वह अभ्व है । यहाँ आ को अ वैदिक रीति से हुआ है, अतः अभ्वः का अर्थ महान् है), हे रुद्र ! त्वत्=तुझसे, ओजीयः=बलवत्तर अधिक ओजस्वी, न वै=नहीं, अस्ति=है । इस लिए तू ही एकमात्र इस संसार की रक्षा करने में समर्थ है ।

मैक्डानल के मत में 'अभ्वम्' का अर्थ=शक्ति (force) है । 'दयसे' का अर्थ प्रयोग में लाना है । इस प्रकार तृतीय चरण का अर्थ (worthy thou wieldest all this force) है ।

संहिता-पाठः

११. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं
मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानो-
ऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥

पद-पाठः

स्तुहि । श्रुतम् । गर्तऽसदम् । युवानम् ।
मृगम् । न । भीमम् । उपऽहत्नुम् । उग्रम् ।
मृळ । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः ।
अन्यम् । ते । अस्मत् । नि । वपन्तु । सेनाः ॥११॥

संस्कृतव्याख्या:—हे स्तोतः, श्रुतम् = विख्यातम् (रुद्रम्) गर्तसदम् = रथासीनम्, युवानम् = नित्यतरुणम्, मृगम् न भीमम् = सिंहमिव भयंकरम्। उपहत्नुम् = उपहन्तारम्, उग्रम् = उग्रस्वरूपम् (रुद्रम्) स्तुहि। रुद्र त्वं, स्तवानः = अस्माभिः स्तूयमानः। जरित्रे = स्तोत्रे, मह्यम्, मृळ = सुखय। ते = त्वदीयाः, सेनाः, अस्मदन्यम् = अस्मद्व्यतिरिक्तं पुरुषम्, नि वपन्तु = निघ्नन्तु।

व्याकरणम्—जरित्रे = 'जॄ' धातोः तृच् प्रत्यये, इडागमे चतुर्थ्येकवचने रूपम्।

चलते समय यदि किसी पशु की अशुभ वाणी सुनाई पड़े तो निम्नलिखित मन्त्र को पढ़े—

हे स्तोता! तू श्रुतम् = प्रसिद्ध, रुद्र की स्तुहि = स्तुति कर, जो कि गर्तसदम् = रथ में अवस्थित, और युवानम् = नित्य तरुण है, तथा मृगम् न भीमम् = मृग अर्थात् शेर की तरह, भीमम् = भयङ्कर है। तथा उपहत्नुम् = शत्रुओं को मारने वाला है, उग्रम् जो शस्त्र उठाये हुए है, (उद्गूर्ण शस्त्र), हे रुद्र! तू, स्तवानः = हम से स्तुति किया जाता हुआ, जरित्रे = स्तुति करने वाले मुझ को, मृळ = सुखदायक बन। ते = तुम्हारी, सेनाः = सेनायें, अस्मत्, अन्यम् = हम से भिन्न पुरुषों को, निवपन्तु = नष्ट करें।

मैक्डानल के मत में 'मृगम् न भीमम् उपहत्नुम्' इस वाक्य का अर्थ भयंकर सिंह के समान मारने वाला (that slays like a dread beast) है अर्थात् 'उपहत्नुम्' इसका 'मृगम्' कर्म है स्वतन्त्र विशेषण नहीं है। 'सेनाः' शब्द का गोलियाँ (missiles) अर्थ है, प्रसिद्ध सेना नहीं।

संहिता-पाठः

१२. कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं
प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे
स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥

पद-पाठः

कुमारः । चित् । पितरम् । वन्दमानम् ।
प्रति । ननाम । रुद्र । उपऽयन्तम् ।
भूरेः । दातारम् । सत्ऽपतिम् । गृणीषे ।
स्तुतः । त्वम् । भेषजा । रासि अस्मे इति ॥१२॥

संस्कृतव्याख्याः—वन्दमानम्=आशीर्वचनं ददानम्, पितरम्, कुमारश्चित् =यथाकुमारः, तथा, हे रुद्र, उपयन्तम्=अस्मत्समीपमागच्छन्तं त्वाम् । प्रति ननाम=प्रति नतोऽस्मि । अपि च, भूरेः=बहुनो धनस्य, दातारम् , सत्पतिम् =सतां पालयितारम् । एवं भूतं त्वाम् गृणीषे=स्तौमि, स्तुतश्च, त्वम्, अस्मे=अस्मभ्यम् । भेषजा=भेषजानि । रासि=देहि ।

व्याकरणम्—साधारणम् ।

वन्दमानम् =हे सौम्य ! 'तू आयुष्मान् बन' इस प्रकार आशंसा या आशीर्वचनों का कथन करने वाले, पितरम् =पिता को, कुमारः= बालक, चित् =जैसे, प्रणाम करता है वैसे ही हे रुद्र, उपयन्तम् =हमारे समीप आने वाले तुझ को, मैं ननाम=प्रणाभ करता हूँ। तथा भूरेः= बहुत सारे धन के, दातारम् देने वाले, सत्पतिम् =सज्जनों के पालन करने वाले तेरी, गृणीषे=स्तुति करता हूँ (यहाँ मध्यम पुरुष का व्यत्यय है),

स्तुतः=स्तुति किया गया, तू अस्मे=हमारे लिए, भेषजा=औषधियाँ, रासि=प्रदान करता है।

मैक्डानल ने 'सत्पतिम्' का अर्थ=सच्चा मालिक (the true lord किया है 'सज्जनों का रक्षक' नहीं।

संहिता-पाठः

१३. या वो भेषजा मरुतः शुचीनि
या शंतमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्
ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि॥

पद-पाठः

या। वः। भेषजा। मरुतः। शुचीनि।
या। शम्ऽतमा। वृषणः। या। मयःऽभु।
यानि। मनुः। अवृणीत। पिता। नः।
ता। शम्। च। योः। च। रुद्रस्य। वश्मि॥१३॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मरुतः, वः=युष्माकम्, या=यानि, भेषजा=औषधानि, शुचीनि=शुद्धानि, हे वृषणः=कामानां वर्षितारः, या=यानि च (भेषजानि), शंतमा=अतिशयेन सुखकराणि, या=यानि च (भेषजानि), मयोभु=मयसः (सुखस्य) भावयितॄणि, (तथा च) नः मनुः=अस्मत्पिता मनुः, यानि (भेषजानि), अवृणीत=वृतवान्, ता=तानि, रुद्रस्य=महादेवस्य (संबन्धि)। शं च योश्च=उपशमनं, भयानाँ पृथक्करणं च, तदुभयम्। वश्मि=कामये।

व्याकरणम्—मयोभु=मयस् + भू + क्विप् ।

हे मरुतः=हे रुद्र के पुत्रो! वः=तुम्हारे, या=जो, भेषजा=हमारे आरोग्य को देने वाली औषधियाँ, शुचीनि=पवित्र व निर्मल हैं, हे वृषणः इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हे मरुद्गणो, या=जो औषध है, शंतमा=अत्यधिक सुखदायक, और जो मयोभु=सुख के देने वाली, और यानि=जिन दवाओं को, नः=हमारा, पिता=पितृतुल्य, मनुः= मनु नामक ऋषि को मन दान करके, अवृणीत=वरण कर चुका है, ता=उन औषधियों को, रुद्रस्य=महादेव के, संबन्ध से, शं च=रोगों को शान्ति करने वाली, और योश्च=दूर हटाने या प्रत्यक्षयोग्य रोगों को दूर करने योग्य, इस प्रकार दोनों प्रकार की औषधियों को वश्मि= चाहता हूँ।

मैक्डानल के मत में 'मयोभु' का अर्थ आरोग्यदायक (wholesome) है। तथा 'यो' पद का अर्थ ईश्वर की तरह कृपा करने वाली रुद्र की blessing है ।

संहिता-पाठः

१४. परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः
परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व
मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥

पद-पाठः

परि । नः । हेतिः । रुद्रस्य । वृज्याः ।
परि । त्वेषस्य । दुःऽमतिः । मही । गात् ।
अव । स्थिरा । मघवत्ऽभ्यः । तनुष्व ।
मीढ्वः । तोकाय । तनयाय । मृळ ॥१४॥

संस्कृतव्याख्या:— रुद्रस्य=महादेवस्य, हेतिः=आयुधम्, नः=अस्मान्, परिवृज्या=परिवर्जतु, (तथा) त्वेषस्य=दीप्तस्य (रुद्रस्य), मही=महती, दुर्मतिः=दुःखकारिणी बुद्धिश्च परिगात्=अस्मान् वर्जयित्वा अन्यत्र गच्छतु। हे मीढ्वः=सेचनसमर्थ, स्थिरा=स्थिराणि। (तव धनूंषि) मघवद्भ्यः=हविर्लक्षणधनयुक्तेभ्यः यजमानेभ्यः। अवतनुष्व=अवततज्यानि कुरु। तथा, तोकाय=अस्मत् पुत्राय। तनयाय=तत्पुत्राय च। मृळ=सुखं कुरु।

व्याकरणम्—तोकाय='तुच्' धातोर्घञ् ततः चतुर्थ्येकवचने रूपम्। मीढ्वः='मिह' धातोर्वसु प्रत्यये, हस्य ढत्वे, इकारस्य दीर्घे, रूपम्।

रुद्रस्य=महादेव के, हेतिः=शस्त्र, नः=हमें, परिवृज्याः=छोड़ दें, तथा त्वेषस्य=दीप्ति वाले, रुद्रस्य=रुद्र की, महि=बहुत बड़ी, दुर्मतिः=दुःखकारिणी, मही=बुद्धि, परिगात्=हमें छोड़ कर और हट जावे, अर्थात् हम रुद्र की (bad books) में न रहें। हे मीढ्वः=सेचन समर्थ रुद्र, स्थिरा=स्थिर, दृढ़ अपने धनुषों को, मघवद्भ्यः=हविरूपी धन वाले यजमानों को लक्ष्य करके, अवतनुष्व=विस्तृत मत कर, उस धनुष को तथा तोकाय=हमारे पुत्रों के लिए, तनयाय=पुत्र के पुत्रों के लिए, मृळ सुखदायक बना।

मैक्डानल के मत में 'त्वेषस्य' का अर्थ=भयंकर (terrible one) है। 'मीढ्वः' का अर्थ=उदार (bounteous) है, सेचन—समर्थ नहीं।

संहिता-पाठः

१५. एवा बभ्रो वृषभ चेकितान
यथा देव न हृणीषे न हंसि।

हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि
बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

पद-पाठः

एव । बभ्रो इति । वृषभ । चेकितान ।
यथा । देव । न । हृणीषे । न । हंसि ।
हवनऽश्रुत् । नः रुद्र । इह । बोधि ।
बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥१५॥

संस्कृतव्याख्याः—हे बभ्रो=जगतो भर्तः । वृषभ=कामानां वर्षितः, चेकितान=सर्वं जानन् । हे देव=द्योतमान रुद्र, यथा=येन प्रकारेण, न हृणीषे=न क्रुध्यसि, न च हंसि=न मारयसि, एवं, हवनश्रुत्=आह्वानं शृण्वन् । नः=अस्मान्, हे रुद्र=महादेव, इह=अस्मिन् देशे । बोधि=बुध्यस्व, विदथे=यज्ञे गृहे वा, सुवीराः =शोभनपुत्राः सन्तः । बृहत्=प्रौढम्, त्वदीयं स्तोत्रम् । वदेम=उच्चारयाम ।

व्याकरणम्—चेकितान, 'कित' धातोः कानच्, द्वित्वम्, गुणे रूपम् ।

हे बभ्रो !=जगत् के पालन करने वाले, वृषभ=हे इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, चेकितान=हे सब कुछ जानने वाले, देव=द्युतिमान् रुद्र, यथा=जिस प्रकार से, न हृणीषे=तुम क्रुद्ध नहीं होओ, और न हंसि=और न मारो ही, एव=इस प्रकार हे हवनश्रुत्=हे हमारे आह्वान के सुनने वाले, रुद्र ! नः=हमें, इह=इस स्थान पर रहने वालों को,

वोधि=जान लो अर्थात् हमारा ध्यान रखो, विदथे=यज्ञ में अथवा घर में, सुवीराः=शोभन पुत्रों वाले हम, बृहत्=अत्यधिक (तुम्हारे स्तोत्र को) वदेम=बोलें, पढ़ें, पाठ करें।

मैक्डानल के मत में 'चेकितान' शब्द का अर्थ=महायशस्वी (far-famed) है। 'इह' शब्द का विदथे' के साथ अन्वय है, तथा 'इह' शब्द का अर्थ इस दिव्य स्तुति के समय में (at devine worship) है।

मं० ३ सू० ५९

मित्र सूक्त

संहिता-पाठः

१. मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो
मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम्।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥

पद-पाठः

मित्रः। जनान्। यातयति। ब्रुवाणः।
मित्रः। दाधार। पृथिवीम्। उत। द्याम्।
मित्रः। कृष्टीः। अनिऽमिषा। अभि। चष्टे।
मित्राय। हव्यम्। घृतऽवत्। जुहोत ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—ब्रुवाणः=स्तूयमानः, मित्रः=सूर्यः, जनान्=कृषकादीन्, यातयति=कर्मसु योजयते। (तथा) मित्र एव, पृथिवी-

मुत द्याम्=पृथ्वीं द्यामपि, दाधार=धारयति (वृष्टिद्वारा), एवम्, मित्रः, अनिमिषा=अनुग्रहदृष्टया, कृष्टीः=कर्मवतो मनुष्यान्, अभि चष्टे=सर्वतः पश्यति। अतः, हे ऋत्विजः, घृतवत्=उपस्तरणाभिघारणयुक्तम्, हव्यम्=पुरोडाशादिकम्, तस्मै, मित्राय=सूर्यदेवाय, जुहोत=प्रयच्छत।

व्याकरणम्—यातयति—'यती' प्रयत्ने, ण्यन्तस्य लटि रूपम्। दाधार='तुजादीनामि'ति अभ्यासस्य दीर्घः।

इस सूक्त का मित्र देवता है। विश्वामित्र ऋषि है। १–५ त्रिष्टुप् और ६–९ गायत्री छन्द हैं।

मित्रः=मित्र अर्थात् सूर्य, ब्रुवाणः=स्तूयमान होता हुआ, जनान्=कृषक मनुष्यों को, यातयति=अपने कर्मों में लगाता है। जो मित्रः=सूर्य, पृथिवीं=पृथिवीलोक को, उत=और, द्याम्=द्युलोक को, दाधार=धारण करता है। वही मित्रः=सूर्य, अनिमिषा=निमेषरहित, सावधान अनुग्रहपूर्ण दृष्टि से, कृष्टीः=कृषि कर्म में लगे हुए मनुष्यों को, अभिचष्टे=सब तरफ से देखता है, उस मित्राय=सूर्य के लिए (हे ऋत्विजो, तुम), घृतवत्=अभिघारण (गर्म करने) के योग्य, हव्यम्=हवनीय पुरोडाशादि द्रव्य को, जुहोत=अर्पित करो।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'ब्रुवाणः' पद का अर्थ=बोलता हुआ (सूर्य) अर्थ है, न कि स्तुति किया जाता हुआ, तथा 'कृष्टीः' का केवल कृषि करने वाले मनुष्य ही नहीं किन्तु मनुष्यमात्र अर्थ है।

संहिता-पाठः

२. प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्
यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन।

न हन्यते न जीयते त्वोतो
नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥

पद-पाठः

प्र । सः मित्र । मर्तः । अस्तु । प्रयस्वान् ।
यः । ते । आदित्य । शिक्षति । व्रतेन ।
न । हन्यते । न । जीयते । त्वाऽऊतः ।
न । एनम् । अंहः । अश्नोति । अन्तितः । न । दूरात् ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः--हे आदित्य ! व्रतेन=यज्ञेन युक्तः, यः=मनुष्यः, ते=तुभ्यम्, शिक्षति=अन्नं ददाति, हे मित्र, स मर्तः=मनुष्यः, प्रयस्वान्,=अन्नवान्, प्र अस्तु=प्रभवतु, त्वोतः=त्वया रक्षितः, (सः केनापि), न हन्यते=न बाध्यते, न जीयते=नाभिभूयते । एनम्=हविर्दत्तवन्तं पुरुषम्, अंहः=पापम् । अन्तितः=समीपात् । न अश्नोति=न प्राप्नोति । दूरात् (अपि) न (प्राप्नोति) ।

व्याकरणम्—शिक्षति=शिक्षतिर्दानकर्मा, व्यत्ययेन परस्मैपदम् ।

मित्र=हे मित्र ! यः जो, व्रतेन=यज्ञ से युक्त हुआ, मर्तः=मनुष्य, ते=तेरे लिए, शिक्षति=हवि प्रदान करता है, (हे) आदित्य=हे सूर्य, सः=वह मनुष्य, प्रयस्वान्=अन्न वाला, प्र अस्तु=बने, त्वा=तेरे द्वारा, ऊतः=रक्षा किया गया, (वह मनुष्य किसी से) भी, न हन्यते=कष्ट को प्राप्त नहीं कराया जाता, न जीयते=नहीं पराजित किया जाता । एनम्=इस प्रकार के मनुष्य को, अंहः=पाप, अन्तितः=समीप से, और दूरात्=दूर से, (दोनों रीतियों से) न अश्नोति=नहीं प्राप्त होता ।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'प्रयस्वान्' पद का अर्थ मुख्य (Pre-eminent) है। 'शिक्षति' का अर्थ नमस्कार (obeisance) है। तथा 'व्रतेन' का अर्थ सूर्य की आज्ञा या (ordinance) है।

संहिता-पाठः

३. अनमीवास इळ्या मदन्तो
मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो
वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥

पद-पाठः

अनमीवासः । इळया । मदन्तः ।
मितऽज्ञवः । वरिमन् । आ । पृथिव्याः ।
आदित्यस्य । व्रतम् । उपऽक्षियन्तः ।
वयम् । मित्रस्य । सुऽमतौ । स्याम ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मित्र ! अनमीवासः=रोगरहिताः, इळया=अन्नेन । मदन्तः=माद्यन्तः, पृथिव्याः, वरिमन्=विस्तीर्णे प्रदेशे । मितज्ञवः=मितजानुकाः, आ=सर्वत्र गच्छन्तः, आदित्यस्य= सूर्यस्य सम्बन्धि, व्रतम्=कर्म, उपक्षियन्तः=तस्य कर्मणः समीपे निवसन्तः, वयम्, मित्रस्य=आदित्यस्य, सुमतौ=अनुग्रहबुद्ध्याम् । स्याम=वर्तेमहि ।

व्याकरणम्—मदन्तः='मदी' हर्षे, शतरि, व्यत्ययेन शप् । वरिमन्= 'उरु' शब्दात् पृथ्वादित्वादिमनिच् 'प्रियस्थिर०' इत्यादिना वरादेशः । सुपामिति सप्तम्या लुक् ।

हे मित्र=हे सूर्य ! अनमीवासः=रोगरहित, इळया=अन्न से, मदन्तः= प्रसन्न रहने वाले, पृथिव्याः=भूलोक के, वरिमन्=विस्तीर्ण प्रदेश में, मितज्ञवः=परिमित जानुवाले, अर्थात् परिमित गति या शक्ति वाले, और आ=यथेष्ट रूप में सर्वत्र गति करने वाले हम लोग, आदित्यस्य= सूर्यसम्बन्धी, व्रतम्=कर्म के, उपक्षियन्तः=समीप रहते हुए, अर्थात्= सूर्य की प्रसन्नता करने वाले कर्मों को करते हुए, मित्रस्य=सूर्य की, सुमतौ=अनुग्रह बुद्धि के पात्र, स्याम=बने रहें, अर्थात् सूर्य की कृपा के पात्र बनें ।

मैक्डानल मितज्ञवः=दृढ़ जानु वाले, अर्थात् दृढ जंघा वाले (firm-kneed) यह अर्थ करता है ।

संहिता-पाठः

४. अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो
राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या-
पि भद्रे सौमनसे स्याम ॥

पद-पाठः

अयम् । मित्रः । नमस्यः । सुऽशेवः ।
राजा । सुऽक्षत्रः । अजनिष्ट । वेधाः ।
तस्य । वयम् । सुऽमतौ । यज्ञियस्य ।
अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—अयम्, मित्रः=सूर्यः, नमस्यः=नमस्करणीयः, सुशेवः=शोभनसुखः सुखेन सेव्य इत्यर्थः, राजा= प्रकाशकः स्वामी, सुक्षमः=शोभनबलोपेतः, वेधाः=जगतो

विधाता, अजनिष्ट=प्रादुरभूत्, तस्य=एवं गुणोपेतस्य, यज्ञियस्य=यज्ञार्हस्य सूर्यस्य, सुमतौ=शोभनायाँ बुद्धौ, भद्रे=कल्याणकारिणि, सौमनसे=सौमनस्ये, अपि, (यजमानाः) वयम् स्याम=भवेम ।

व्याकरणम्—नमस्यः=नमसि साधुर्नमस्यः, तत्र साधुः इति यत् ।

अयम्=यह, जिसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है, ऐसा मित्रः= सूर्य, नमस्यः=नमस्कार के योग्य, सुशेवः=अच्छे प्रकार सेव्य या अच्छा सुख देने वाला, राजा=सारे जगत् का प्रकाश देने के कारण रक्षक, सुक्षत्रः=उत्तम बलवाला, वेधाः=संसार का बनाने वाला, अजनिष्ट=सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुआ, तस्य=उस, इस प्रकार के, यज्ञियस्य=पूजा के योग्य, सूर्यस्य=सूर्य भगवान् की, सुमतौ=उत्तम बुद्धि में, भद्रे=कल्याण करने वाले, सौमनसे=प्रसन्न मन में वयम्=हम यजमानगण, स्याम=बने रहें, अर्थात् वह सूर्य हमेशा हमारा ध्यान रखे और हम अपने कर्मों से अपने मन को प्रसन्न करते रहें ।

मैक्डानल के अनुसार 'सौमनसे' का अर्थ उत्तम प्रभाव व शान है (good graces), 'सुशेवः' का अर्थ कृपालु या अनुकूल (propitious) है ।

संहिता-पाठः

५. म॒हाँ आ॑दि॒त्यो नम॑सोप॒सद्यो॑
या॒तय॑ज्जनो गृ॒ण॒ते सु॒शेवः॑ ।
तस्मा॑ ए॒तत्पन्य॑तमाय॒ जुष्ट॑म्
अ॒ग्नौ मि॒त्राय॑ ह॒विरा जु॑होत ॥

पद-पाठः

महान् । आदित्यः । नमसा । उपऽसद्यः ।
यातयत्ऽजनः । गृणते । सुऽशेवः ।
तस्मै । एतत् । पन्यऽतमाय । जुष्टम् ।
अग्नौ । मित्राय । हविः । आ । जुहोत ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—(अयम्) आदित्यः=सूर्यः, महान् (अस्ति) अत एव, नमसा=नमस्कारेण, उपसद्यः=उपसदनीयः, यातयज्जनः =स्वकर्मणि प्रवर्तनीया जना येन तथोक्तः, गृणते=स्तुतिं कुर्वते जनाय, सुशेवः (भवति), तस्मै, पन्यतमाय=स्तुत्यतमाय, मित्राय=सूर्याय, जुष्टम्=प्रातिविषयम्, एतत् हविः, अग्नौ, आ जुहोत=जुहुत ।

व्याकरणम्—यातयज्जनः='यती' प्रयत्ने इत्यस्य णयन्तस्य शतरि रूपम् । पन्यतमाय=पनतेरघ्न्यादित्वात् यत् ।

यह आदित्यः=सूर्य भगवान्, महान्=महान् है, =अतएव नमसा= नमस्कार के द्वारा, उपसद्यः=पहुँचने योग्य है। यातयज्जनः=मनुष्यों को प्रातःकाल ही अपने-अपने कर्मों में ही प्रवृत्त करने वाला यह सूर्य, गृणते=स्तुति करने वाले मनुष्य के लिए, सुशेवः=सुन्दर सुखदायक होता है, तस्मै=उस, पन्यतमाय=अत्यधिक स्तुत्य, मित्राय=सूर्य के लिए, जुष्टम्=आनन्ददायक, एतत्=इस, हविः=हव्य को, अग्नौ=अग्नि में, आ जुहोत=अच्छी तरह समर्पित करो ।

विशेषः—मैक्डानल के अनुसार 'जुष्टम्' का अर्थ स्वीकरणीय (acceptable) है, जब कि सायण के मत में प्रीतिदायक है ।

संहिता-पाठः

६. मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि ।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥

पद-पाठः

मित्रस्य । चर्षणिऽधृतः । अवः । देवस्य । सानसि ।
द्युम्नम् । चित्रश्रवःऽतमम् ॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—चर्षणीधृतः = वृष्टिप्रदानेन धारकस्य, मित्रस्य देवस्य (सम्बन्धि) अवः=अन्नम्, सानसि=सर्वैः संभजनीयम्, द्युम्नम् = धनम् (तदीयं), चित्रश्रवस्तमम् = अतिशयेन चायनीयकीर्तियुक्तम् (अस्ति)।

व्याकरणम्—न पृथक् प्रयत्नापेक्षम् ।

चर्षणीधृतः=मनुष्यों को वृष्टि से अन्न उत्पादन के द्वारा धारण करने वाले, उस मित्रस्य=सूर्य का, जो कि सूर्य देवस्य=देवता है उसके द्वारा प्रदान किया गया, अवः=अन्न, सानसि=सब सूर्योपासकों द्वारा समान रूप से भोग्य है, तथा द्युम्नम्=धन भी, चित्रश्रवस्तमम्=अधिकतया विचित्र कीर्ति से युक्त है।

मैक्डानल के मत में 'सानसि' का अर्थ लाभदायक (brings gain), तथा 'अवः' का अर्थ कृपा या अनुकूलता (favour) है। इस प्रकार 'सानसि' क्रियापद है, पर सायण के मत में सुबन्त पद है।

संहिता-पाठः

७. अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥

पद-पाठः

अभि । यः । महिना । दिवम् । मित्रः । बभूव । सऽप्रथाः ।
अभि । श्रवःऽभिः । पृथिवीम् ॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—यः=मित्रः, महिना=स्वमहिम्ना, दिवम् = अन्तरिक्षम्, अभि बभूव=अभिभवति । (सः). सप्रथाः=प्रसिद्ध-कीर्तिसहितः, श्रवोभिः=वृष्टिद्वारोत्पादितैरन्नैः, पृथिवीम् अपि= भूलोकमपि, (अभिभवतीत्यर्थः) (बह्वन्नयुक्तां करोति) ।

व्याकरणम्—सप्रथाः 'प्रथ' प्रख्याने 'असुन्', 'वोपसर्जनस्य' इति सहस्य सभावः ।

यः=जो सूर्य, महिना=अपनी महिमा से, दिवम् =अन्तरिक्षलोक को, अभि बभूव=अपने अधिकार में रखता है । वह सूर्य, सप्रथाः = कीर्तियुक्त है, तथा श्रवोभिः=वृष्टि के द्वारा उत्पादित अन्नों से, पृथिवीम्= पृथिवीलोक का, अभि=अभिभव करता है, अर्थात् पृथ्वी को अन्न से भर देता है ।

मैकूडानल के मत में 'श्रवोभिः' का अर्थ कीर्ति (glories) है ।

संहिता-पाठः

८. मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे ।
स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥

पद-पाठः

मित्राय । पञ्च । येमिरे । जनाः । अभिष्टिऽशवसे ।
सः । देवान् । विश्वान् । बिभर्ति ॥८॥

संस्कृतव्याख्याः—पञ्च जनाः=निषादयुक्ताश्चत्वारो वर्णाः

अभिष्टिशवसे = शत्रूणामभिगन्तृबलयुक्ताय, मित्राय = सूर्याय, येमिरे=हवींष्युद्यच्छन्ति, सः=तादृशो मित्रः, विश्वान् =देवान् = सर्वान्, सुरान्, बिभर्ति=धारयति।

व्याकरणम्—अभिष्टिशवसे=इषेः 'मन्त्रे वृष०' इत्यादिना क्तिन् शकन्ध्वादित्वादभेः पररूपम्।

पञ्च जनाः=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद संज्ञक पांच प्रकार के मनुष्य, अभिष्टिशवसे=शत्रुओं के सामने मुकाबला करने वाले बल के सहित, मित्राय=सूर्य के लिए, येमिरे=हवि प्रदान करते हैं। सः=वह सूर्य, विश्वान् =सारे, देवान् =स्तुति करने वालों को, बिभर्ति=धारण किये हुए है, या रक्षा करता है।

मैक्डानल के मत में 'अभिष्टिशवसे' का अर्थ सहायता करने में दृढ़ (strong to help) है।

संहिता-पाठः

९. मि॒त्रो दे॒वेष्वा॒युषु॒ जना॑य वृ॒क्तब॑र्हिषे।
इषं॑ इ॒ष्टव्र॑ता अकः॥

पद-पाठः

मि॒त्रः। दे॒वेषु॑। आ॒युषु॑। जना॑य। वृ॒क्तऽब॑र्हिषे।
इषः॑। इ॒ष्टऽव्र॑तः। अ॒कु॒रित्य॑कः ॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—मित्रः = भगवानादित्यः, देवेषु = द्योतमानादिगुणयुक्तेषु, आयुषु=मनुष्येषु मध्ये, वृक्तबर्हिषे=बर्हिर्लवनादिपूर्वं हविषो दात्रे, जनाय, इष्टव्रताः=कल्यणव्रतसाधिकाः, इषः=तादृशान्यन्नानि, अकः=करोति (ददाति)।

व्याकरणम्—वृक्तबर्हिषे 'ओव्रश्चू' छेदने, कर्मणि निष्ठा, 'यस्य विभाषा' इति इट्प्रतिषेधः, अकः='कृ' धातोः लुङि, च्लेः लुक्, सिपो हल्ङ्यादिलोपः।

मित्रः=भगवान् सूर्य, देवेषु=दीप्ति आदि गुण युक्त हुआ, आयुषु= मनुष्यों में, वृक्तबर्हिषे=कुशा को काटना, वन से, खेतों से लाना, आदि कार्य के द्वारा यज्ञ में सूर्य के लिए हवि अर्पण करने वाले, जनाय= मनुष्य के लिए, इष्टव्रताः = कल्याणकारी कर्मों को सिद्ध करने वाले, इषः = अन्नों को अकः = उत्पन्न करता है, अर्थात् प्रदान करता है।

विशेषः—मैक्डानल के मत में 'वृक्तबर्हिषे' का अर्थ कुशा को वेदि के ऊपर विस्तीर्ण करने वाला है (whose secrificial grass is spread) ऐसा यजमान यहाँ मन्त्र में वर्णित किया गया है, यह लिखा है।

मं० ४ सूक्त ५१

उषस् (उषाः) सूक्त

संहिता-पाठः

१. इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्
ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्
गातुं कृणवन्नुषसो जनाय॥

पद-पाठः

इदम् । ऊं इति । त्यत् । पुरुऽतमम् । पुरस्तात् ।
ज्योतिः । तमसः । वयुनऽवत् । अस्थात् ।
नूनम् । दिवः । दुहितरः । विऽभातीः ।
गातुम् । कृणवन् । उषसः । जनाय ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—इदमु = पुरतो दृश्यमानम्, त्यत्= तद्, पुरुतमम्=अत्यन्तप्रभूतम्, ज्योतिः=तेजः, वयुनावत्= प्रकृष्टकान्तिमत् अथवा प्रज्ञापकम्, पुरस्तात् = पूर्वस्यां दिशि, तमसः=अन्धकारात् अस्थात् =उदतिष्ठत्, (एवं सति), नूनम् = सत्यम्, दिवः= आदित्यस्य, दुहितरः = दुहितृस्थानीयाः, विभातीः=विभानं कुर्वती, उषसो, जनाय= यजमानानाम्, गातुम्=गमनादिव्यापारसामर्थ्यम्, कृणवन् = अकुर्वन् ।

व्याकरणम्—दुहिता=दोग्धि पितराविति दुहिता पितरौ भ्राता आजीवनं याचत एव दुहितेति यथार्थं नाम ।

इस सूक्त का वामदेव ऋषि है। उषा देवता है। त्रिष्टुप् छन्द है।

इदम्=यह, उ=प्रसिद्ध, सामने दिखाई देने वाली (जो ज्योति है), त्यत्=वह (हमारे द्वारा स्तुति करने योग्य है), पुरुतमम् = अत्यधिक तेज है, वयुनावत् = प्रकृष्ट कान्ति वाली है, अथवा वयुनावत् =प्रज्ञा मति से युक्त है, अर्थात् सब की प्रज्ञापक है, तथा पुरस्तात्=पूर्व दिशा में, तमसः=अंधेरे से, अस्थात् = निकली है । अत एव नूनम्= अवश्य ही, दिवः=द्युलोक की या सूर्य की, दुहितरः=कन्या के तुल्य,

विभातीः=प्रकाश करने वाली, उषसः=उषाएं, जनाय=यजमानों के लिए, गातुम्=गमन या गमनादि व्यापार के सामर्थ्य को, कृणवन्=कर चुकी हैं।

विशेष:—मैक्डानल 'पुरुतमम्, पुरस्तात्' इन दो शब्दों का अर्थ=पूर्व दिशा में बार-बार आने वाली (उषा) (most frequent light in the east) मानता है। वयुनावत्=स्पष्टता से युक्त (with clearness) अर्थ करता है।

संहिता-पाठः

२. अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्
मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यूं व्रजस्य तमसो द्वारो-
च्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥

पद-पाठः

अस्थुः । ऊं इति । चित्राः । उषसः । पुरस्तात् ।
मिताःऽइव । स्वरवः । अध्वरेषु ।
वि । ऊं इति । व्रजस्य । तमसः । द्वारा ।
उच्छन्तीः । अव्रन् । शुचयः । पावकाः ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—चित्राः=चायनीयः (श्लाघनीयः), उषसः, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, अस्थुः=तिष्ठन्ति, (तत्र दृष्टान्तः), अध्वरेषु, मिताः=खाताः, स्वरवः=यूपाः, इव, (स्वरुशब्दः यूपच्छेदपतितप्रथमशकलवाची), ताः उषसः, व्रजस्य=वारकस्य, तमसो, द्वारा=द्वाराणि, वि उच्छन्तीः=उत्सारयन्त्यः, शुचयः=दीप्ताः, पावकाः=शोधिकाः, अव्रन्=व्यावृण्वन्।

व्याकरणम्—अव्रन्=छान्दसो विकरणलोपः लङि रूपम् ।

चित्राः=पूजनीय, उषसः=उषाएँ, उ=प्रसिद्ध रीति से, पुरस्तात्=पूर्व दिशा में, अस्थुः=स्थित हैं, व्यापक हैं, उसी प्रकार व्यापक हैं जिस प्रकार, अध्वरेषु=यज्ञों में, मिताः गाड़े गये, स्वरवः=यूप (वेदि के सामने प्रकाशित होते हैं), वे उषाएँ व्रजस्य=आवरण करने वाले, तमसः=अन्धेरे के, द्वारा=मार्गों को, उ—स्पष्ट रूप में वि-उच्छन्तीः=हटाती हुई, शुचयः=चमकदार, पावकाः=पवित्र करने वाली, अव्रन्=मार्गों को (खोल देती हैं) ।

मैक्डानल के मत में 'चित्रा' पद का अर्थ=ज्ञानवान् (brilliant) है, तथा 'व्रजस्य' पद का अर्थ=गोष्ठ (Pen—बाड़ा जहाँ पर गौवें बाँधी जाती हैं) है ।

संहिता-पाठः

३. उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्
राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्व-
बुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥

पद-पाठः

उच्छन्तीः । अद्य । चितयन्त । भोजान् ।
राधःऽदेयाय । उषसः । मघोनीः ।
अचित्रे । अन्तरिति । पणयः । ससन्तु ।
अबुध्यमानाः । तमसः । विऽमध्ये ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—अद्य=अस्मिन् दिने, उच्छन्तीः=तमः विवासन्त्यः, मघोनी=धनवत्यः, उषसः, भोजान्=भोजयितॄन्

यजमानान्, राधोदेयाय=सोमादिधनदानाय, चितयन्त= प्रज्ञापयन्ति, अचित्रे=अचायनीये, तमसो विमध्ये=अत्यन्तगाढान्धकारे, (तत्र) पणयः=वणिज इवादातारः, अबुध्यमानाः, ससन्तु=स्वपन्तु ।

अद्य=आज, उच्छन्तीः=अन्धेरे को भगाने वाली, मघोनी=धनों वाली, उषसः=उषाएँ, भोजान्=अपने भोजन कराने वाले अर्थात् उपासक यजमानों को, राधोदेयाय=सोम आदि अन्न या धन देने के लिए, चितयन्त=ज्ञान कराती हैं, अचित्रे=अपूजनीय, तमसः=अन्धेरे के, विमध्ये=विशेष मध्य में अर्थात् अत्यन्त गहन अन्धकार में, पणयः= दान न देने वाले बनियों की तरह, अन्तः=उस अन्धेरे के बीच में, अबुध्यमानाः=ज्ञान न रखने वाले कञ्जूस यजमानों को, ससन्तु= सुला दें ।

मैक्डानल ने 'भोजान्' पद का अर्थ=उदारता से हवि देने वाले (liberals) किया है । एवं 'चितयन्त' का प्रेरित करें, (stimulate) अर्थ किया है, अर्थात् उषाएँ यज्ञादि करने के लिए यजमानों को उकसावें यह अर्थ किया है । 'पणयः'=शब्द का कृपण मनुष्य (niggards) अर्थ किया है ।

संहिता-पाठः

४. कुवित्स देवीः सनयो नवो वा
यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे
सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥

पद-पाठः

कुवित् । सः । देवीः । सनयः । नवः । वा ।
यामः । बभूयात् । उषसः । वः । अद्य ।
येन । नवऽग्वे । अङ्गिरे । दशऽग्वे ।
सप्तऽआस्ये । रेवतीः । रेवत् । ऊष ॥४॥

संस्कृतव्याख्या:—हे देवीः=द्योतमानाः, उषसः, वः= युष्मान्, सनयः=पुराणः, नवो वा, यामः=गमनसाधनः, सः= रथः, अद्य=अस्मिन् यागदिने, कुवित्=बहुवारम्, बभूयात्= भवेत् (गच्छेत्), येन=रथेन, हे रेवतीः=धनवत्यः, (यूयम्), नवग्वे दशग्वे सप्तास्ये=सप्तछन्दोयुक्तमुखे, अङ्गिरे=अङ्गिरोगणे, (नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः) रेवत्=धनवत् (यथा भवति) (तथा), ऊष=विभातं कृतवत्यः ।

व्याकरणम्—स्पष्टम् ।

हे देवीः=चमकदार उषाओ, वः=तुम्हें, सनयः=प्राचीन, वा=अथवा, नवः=नवीन, यामः=गमन का साधन रथ, अद्य=आज यज्ञ के दिन; कुवित्=अनेक बार, बभूयात्=हो अर्थात् चले। येन=जिस रथ के द्वारा, हे रेवतीः=हे धन वाली उषाओ, (तुम) नवग्वे=नौ घोड़ों से जाने वाले, दशग्वे=दश घोड़ों से चलने वाले, सप्तआस्ये—सात लगामों से युक्त मुख वाले, अङ्गिरे=अङ्गिरा नाम के मनुष्य गण में, या नवग्व, दशग्व और सप्तआस्य नामक अङ्गिराओं में, रेवत्=जिस प्रकार से धन की प्राप्ति हो उस प्रकार से, ऊष=अन्धकार को नष्ट करो ।

मैक्डानल ने 'ऊष' इस क्रियापद को 'रेवत्' पद के साथ जोड़ कर उषाओ तुमने धन को अंगिराओं के लिए प्रकाशित किया है

(ye have shone wealth navagva & daśagva) नवग्व, दशग्व (and seven mouthed) सप्तास्य अङ्गिराओं का यह विशेषण है।

संहिता-पाठः

५. यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः
परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं
द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥

पद-पाठः

यूयम्। हि। देवीः ऋतयुक्ऽभिः अश्वैः।
परिऽप्रयाथ। भुवनानि। सद्यः।
प्रऽबोधयन्तीः। उषसः। ससन्तम्।
द्विऽपात्। चतुःऽपात्। चरथाय। जीवम् ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः— हे, देवीः=द्योतमानाः उषसः यूयम्, हि=खलु, ऋतयुग्भिः=यज्ञगामिभिः, अश्वैः, भुवनानि, सद्यः, परिप्रयाथ=परितः प्रकृष्टं गच्छथ, (किं कुर्वंत्यः) ससन्तम्=स्वपन्तम्, द्विपाच्चतुष्पात् मनुष्यगवादिलक्षणम्, जीवम्, चरथाय=चरणाय, प्रबोधयन्तीः=प्रबोधयन्त्यः सत्यः, (परिप्रयाथ)।

व्याकरणम्—चरथाय='चर' धातोरौणादिकः अथच् प्रत्ययः।

हे देवीः=चमकदार उषाओ, यूयम्=तुम, हि=निश्चय करके, ऋतयुग्भिः=यज्ञ को जाने वाले, अश्वैः=घोड़ों से, भुवनानि=संसार को सद्यः=अतिशीघ्र, परिप्रयाथ=प्राप्त हो जाती हो, तथा ससन्तम्=सोते हुए, द्विपात्—दो पैर वाले, मनुष्यों को, चतुष्पात्=चार पैर वाले

पशुओं को और जीवम्=जीवों को, चरथाय=गमन आदि व्यापार करने के लिए, प्रबोधयन्तीः=जगाती हुई जाती हो। 'परिप्रयाथ' इस क्रिया में इस वाक्य का अन्वय है।

मैक्डानल ने 'ऋतयुग्भिः' का अर्थ=यथा समय जूए में (प्रासंग में) जोड़े गये (With your steeds yobed in due time) किया है।

संहिता-पाठः

६. क्व स्विदासां कतमा पुराणी
यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम्।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति
न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः॥

पद-पाठः

क्व। स्वित्। आसाम्। कतमा। पुराणी।
यया। विऽधाना। विऽदधुः। ऋभूणाम्।
शुभम्। यत्। शुभ्राः। उषसः। चरन्ति।
न। वि। ज्ञायन्ते। सऽदृशीः। अजुर्याः॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—आसाम्=उषसां मध्ये, क्वस्वित्=अभूदद्य, कतमा, पुराणी=पुरातनी, यया, ऋभूणाम् (सम्बन्धीनि), विधाना=चमसादिनिर्माणानि, विदधुः=अकुर्वन्, यत्=याश्च, उषसः, शुभ्राः=दीप्ताः, शुभं चरन्ति=शोभां दीप्तिं कुर्वन्ति, ताः, अजुर्याः=अशीर्णाः (नूतनाः), न=इव, विज्ञायन्ते, (यतः), सदृशीः=सर्वदा चैकरूपाः।

व्याकरणम्—अजुर्याः=नञुपपदः जॄधातोः बाहुलकात्, उत्, श्यत्वम्, दीर्घाभावश्छान्दसः।

आसाम्=इन उषाओं के मध्य में, कतमा=कौन सी, क्वस्वित्=कहाँ पर ऐसी उषा थी, जो पुराणी=पुरातन हो, तथा यया=जिस से ऋभूणाम्=ऋभुओं के (ऋभु नामक उषा के उपासक थे), विधाना=चमस आदि साधन, विदधुः=स्वयं बनावें, यत्=जो, उषसः=उषाएँ, शुभ्राः=चमकती हुई, शुभम्=शोभा को, दीप्ति को, चरन्ति=उत्पन्न करती हैं, वे अजुर्याः=नष्ट न होने वाली, (उषाएँ) नित्य नवीन रूप में, न विज्ञायन्ते=नहीं प्रतीत होती हैं, क्योंकि वे सदृशीः=एक सी हैं, सब दिनों में एक सी ही दिखाई पड़ती हैं अर्थात् एक सी उषाओं में यह नवीन है और यह प्राचीन इस भेद की प्रतीति करना कठिन होता है।

मैक्डानल ने 'शुभम्' का अर्थ=चमकदार मार्ग (shining course) किया है, तथा चरन्ति=चलती हैं अर्थात् प्रकाशित मार्ग पर गमन करती हैं (proceed on their shining course) ऐसा अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

७. ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुर्
अभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः
स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप॥

पद-पाठः

ताः। घ। ताः। भद्राः। उषसः। पुरा। आसुः।
अभिष्टिऽद्युम्नाः। ऋतजातऽसत्याः।
यासु। ईजानः। शशमानः। उक्थैः।
स्तुवन्। शंसन्। द्रविणम्। सद्यः। आप॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—ताः, घ इति प्रसिद्धौ, ताः=उपकारिण्यः ताः भद्राः=कल्याण्य उषसः, पुरा=पूर्वम्, आसुः=अभवन्, अभिष्टिद्युम्नाः=अभिगमनमात्रेण द्युम्नं धनं यासां ताः। ऋतजातसत्याः=यज्ञार्थं जाताः सफलाश्च। यासु=उषासु, ईजानः=यागं कुर्वाणः, उक्थैः=शस्त्रैः, शशमानः=शंसमानः, स्तुवन्=सामभिः स्तोत्रं निष्पादयन्, शंसन्=शस्त्राणि कुर्वन्, द्रविणं=धनम्, सद्यः, आप=प्राप्नोति, ता भद्रा इति संबन्धः।

व्याकरणम्—विशदम्।

ताः=वे उषाएँ, घ—यह प्रसिद्ध है कि उपकार करने वाली हैं, ताः=और वे उषाएँ, भद्राः=कल्याण करने वाली हैं, अथवा स्तुत्य हैं, तथा वे पुरा=प्राचीन काल में, आसुः=थीं। जो अभिष्टिद्युम्नाः=अपने पहुँचने मात्र से, अभिगमन करने वाले को, द्युम्न=धन को देने वाली, तथा ऋतजातसत्याः=यज्ञ के लिए उत्पन्न हुई और सत्य अर्थात् निश्चित रूप से फल देने वाली थीं। यासु=जिन उषाओं में, ईजानः=यज्ञ करने वाला, उक्थै=शस्त्र नामक मन्त्रों या ऋचाओं से, शशमानः=प्रशंसा करने वाला, स्तुवन्=सामगान के स्तोत्र नामक मंत्रों को बोलने वाला, और शंसन=शस्त्र नामक मंत्रों को बोलता हुआ (यजमान), द्रविणम्=धन को, सद्यः=शीघ्र, आप=प्राप्त कर लेता है (ऐसी वे ऋचाएँ कल्याणकारिणी हैं)।

मैक्डानल ने 'अभिष्टिद्युम्ना' का अर्थ=सहायता करने में अग्रसर (splendid in help) और ऋतजातसत्याः=समय को कभी न चूकने वालीं (उषाएँ) (punctually true), एवं 'शशमानः' का अर्थ परिश्रमी, (strenuous) किया है।

संहिता-पाठः

८. ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्
समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना
गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥

पद-पाठः

ताः । आ । चरन्ति । समना । पुरस्तात् ।
समानतः । समना । पप्रथानाः ।
ऋतस्य । देवीः । सदसः । बुधानाः ।
गवाम् । न । सर्गाः । उषसः जरन्ते ॥८॥

संस्कृतव्याख्याः—ताः=उषसः, आ=सर्वतः, चरन्ति, समना=सर्वतः समानाः, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, समानतः=समानादेशात्, अन्तरिक्षात्, समना=सर्वतः, पप्रथानाः=प्रथमानाः, ऋतस्य=यज्ञस्य, सदसः=सदः ऋत्विग्घविरादिकमित्यर्थः, बुधानाः=बोधयन्त्यः एवं भूताः, उषसः, जरन्ते=स्तूयन्ते, गवाम्=उदकानाम्, सर्गा=सृष्टयः, न इव ।

व्याकरणम्—सुगमम् ।

ताः=वे उषाएँ, आ=सब तरफ से, चरन्ति=संचरण करती हैं, समना=एकत्रित की हुई, पुरस्तात्=पूर्व दिशा में, समानतः=एक अन्तरिक्षरूपी स्थान से, समना=चारों ओर से, पप्रथानाः=विस्तृत होती हुई ऋतस्य=यज्ञ की, सदसः=वेदि में स्थापित हवि आदि को, बुधाना=ज्ञापति कराती हुई, गवाम्=जलों की या किरणों की, न=समान (तरह), जरन्ते=स्तुति करती हैं, जिस प्रकार जल और किरणों

आवरक होने से स्तुत्य होती हैं वैसे ही उषाएँ भी प्रकाशक होने से स्तुति के योग्य बनती हैं।

मैक्डानल के मत में 'समना का अर्थ एक रूप से (equally) है। 'बुधानाः' का अर्थ जगाती हुई (waking) है, ऋतस्य=नियम (seat of order) है। "गवाम्" का गोसमुदाय (herds of kind) है। अर्थात् गौओं के खुले झुण्ड की तरह उषाएँ भी क्रिया-शील प्रतीत होती हैं।

संहिता-पाठः

९. ता इन्न्वे३व समना समानीर्
अमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः
शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥

पद-पाठः

ताः । इत् । नु एव । समना । समानीः ।
अमीतऽवर्णाः उषसः । चरन्ति ।
गूहन्तीः । अभ्वम् । असितम् । रुशत्ऽभिः ।
शुक्राः । तनूभिः । शुचयः । रुचानाः ॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—ता एव उषसः, इत् (पूरणार्थकम्), नु=अद्य, समनाः=समाना एकधेत्यर्थः, समानीः=एकरूपाः, अमीतवर्णाः=अहिंसितवर्णाः अथवा अपरिमितवर्णाः, उषसः, चरन्ति, किं कुर्वत्यः तदाह—अभ्वम्=अतिमहत्, असितम्=कृष्णम्, (रूपम्) गूहन्ती=गोपयन्त्यः, रुशद्भिः=रोचमानैः, तनूभिः=शरीरैः, शुक्राः=दीप्ताः, शुचयः=शुद्धाः, रुचानाः=रोचमानाः, (सन्त्यः) ।

व्याकरणम्—न वक्तव्यमपेक्षते ।

ताः=वे, एव=ही, इत्, नु=आज, समना=एक सी, अर्थात् एक बार, समानीः=एक से रूप वाली, अमीतवर्णाः=जिनका रूप नष्ट नहीं हुआ है, अर्थात् चमकदार अथवा अनन्त रूप वालीं, उषसः=उषाएँ चरन्ति=सब तरफ घूमती हैं। वे अभ्वम्=महान्, असितम्=काले रूप को (रात्रि के), गूहन्तीः=छिपाती हुईं या नष्ट करती हुईं, रुशद्भिः=चमकदार, तनूभिः=अपने शरीरों से, शुक्राः=दीप्त होती हुईं, शुचयः=पवित्र, रुचानाः=प्रकाशवान् बनी हुईं आकाश में विचरण करती हैं।

मैक्डानल ने 'असितम' पद का अर्थ काला दैत्य (black monster) किया है।

संहिता-पाठः

१०. रयिं दिवो दुहितरो विभातीः
प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥

पद-पाठः

रयिम् । दिवः । दुहितरः । विऽभातीः ।
प्रजाऽवन्तम् । यच्छत । अस्मासु । देवीः ।
स्योनात् । आ । वः । प्रतिऽबुध्यमानाः ।
सुऽवीर्यस्य । पतयः । स्याम ॥१०॥

संस्कृतव्याख्याः—हे दिवो दुहितरः=आदित्यस्य दुहितृस्थानीयाः, विभातीः=विशेषेण भानं कुर्वत्यः, अस्मासु, प्रजावन्तम्

=पुत्राद्युपेतम्, रयिम्=धनम्, यच्छत=दत्त। हे देवीः=देव्यः, स्योनात्=सुखात्, वः=युष्मान्, प्रतिबुध्यमानाः=प्रतिबोधयन्तो वयम्, सुवीर्यस्य=पुत्रादि-सहितस्य धनस्य, पतयः=पालकाः, स्याम=भवेम।

व्याकरणम्—स्पष्टम्।

दिवः=प्रकाशमान् सूर्य की, हे दुहितरः=कन्या के समान, विभातीः =प्रकाशित होने वाली उषाओ अस्मासु=हमारे लिए, रयिम्=पुत्रादि युक्त धन को यच्छत=प्रदान करो, (हे) देवीः=हे प्रकाशमान उषाओ स्योनात्=सुख की प्राप्ति के कारण से, वः=तुम्हें (उषाओं को) प्रतिबुध्यमानाः=प्रतिबोधन कराते हुए हम लोग, सुवीरस्य=पुत्रादि रूप उत्तम धन के, पतयः=पालक, स्याम=बनें (यहाँ) 'वः' से पूर्व जो आकार है वह केवल छन्दः पूर्ति के लिए है।

मैक्डानल ने 'स्योनात्' का अर्थ सुखदायक गद्देदार पलंग से, प्रतिबुध्यमानाः=जागते हुए हम लोग (awaking from our soft couch) किया है।

संहिता-पाठः

११. तद्वो दिवो दुहितरो विभातीर्
उप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः।
वयं स्याम यशसो जनेषु
तद्द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी॥

पद-पाठः

तत्। वः। दिवः। दुहितरः। विऽभातीः।
उप। ब्रुवे। उषसः। यज्ञऽकेतुः।

व॒यम् । स्या॒म॒ । य॒शसः॑ । जनै॑षु ।
तत् । द्यौः । च॒ । ध॒त्ताम् । पृ॒थि॒वी । च॒ । दे॒वी ॥११॥

संस्कृतव्याख्या :—हे दिवो दुहितरः ! उषसः ! विभातीः, वः=युष्मान्, तत्=वक्ष्यमाणं फलम्, यज्ञकेतुः=यज्ञ एव केतुः प्रज्ञापको यस्य सोऽहम्, उपब्रुवे=उपेत्य ब्रवीमि। वयम्=स्तुवन्तः, जनेषु=अस्मत्समानेषु मध्ये, यशसः=कीर्तेः अन्नस्य वा, स्वामिनः, स्याम्, तत्=यशः, द्यौः पृथिवी च, देवी, धत्ताम्, =धारयताम्।

व्याकरणम्—स्पष्टम् ।

दिवः=सूर्य की, (हे) दुहितरः=पुत्रीरूप, उषसः=उषाओ ! विभातीः=विशेष या विविध प्रकार से चमकती हुई वः=तुम्हें, तत्=उस (इस मन्त्र के तीसरे चरण में कहे गये फल को), यज्ञकेतुः= यज्ञ से ज्ञान प्राप्त करने वाला मैं, उपब्रुवे=अधिकतया माँगता हूँ, कि वयम्=हम लोग, जनेषु=अपने समान मनुष्यों में, यशसः=कीर्ति या अन्न के (स्वामी) स्याम् = वनें, तत् = उस यश या अन्न को, द्यौः=द्युलोक, च=और, पृथिवी देवी = भूमि रूप देवी, धत्ताम् = हमें प्राप्त करावें ।

मैक्डानल ने 'यज्ञकेतु' का अर्थ प्रज्ञान कराने वाले नहीं किन्तु झंडा अर्थात् (whose banner is the sacrifice) अर्थ किया है, तथा 'यशसः' का अर्थ केवल कीर्ति ही लिया है।

मं० ६ सूक्त ५४

पूषन्-सूक्त

संहिता-पाठः

१. सं पूषन्विदुषा नय यो अञ्जसानुशासति ।
य एवेदमिति ब्रवत् ॥

पद-पाठः

सम् । पूषन् । विदुषा । नय । यः अञ्जसा । अनुऽशासति ।
यः । एव । इदम् । इति । ब्रवत् ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—हे, पूषन्=पोषकदेव ! विदुषा=जानता (तेन जनेन) सं नय=(अस्मान्) संगमय, यः=विद्वान्, अञ्जसा=ऋजुमार्गेण, अनुशासति=नष्टद्रव्यप्राप्त्युपायमुपदिशति, यश्च, एव=एवम्, इदम्=धनम् (नष्टं), इति ब्रवत्=ब्रवीति, नष्टं धनं दर्शयतीत्यर्थः ।

परिचय:—इस सूक्त का भरद्वाज ऋषि है, पूषा देवता है और इस में गायत्री छन्द है ।

हे पूषन्=पोषक सूर्यदेव, विदुषा=ज्ञानवान् उस आदमी के साथ, हमें संनय=मिला दे, यः=जो विद्वान्, अंजसा=सरल मार्ग से, अनुशासित=खोये हुए पदार्थों की प्राप्ति का उपाय बतलाए और यः=जो, एव=ही इस प्रकार से, इदम्=यह खोया हुआ तुम्हारा धन जो नष्ट हो गया है अमुक स्थान पर है, इति=इस बात को, ब्रवत्=बतलाए, अर्थात् हमारे नष्ट हुए धन को प्राप्त करावे, उस विद्वान् से हमें मिला दीजिए ।

संहिता-पाठः

२. समु पूषणा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥

पद-पाठः

सम् । ॐ । इति । पूषणा । गमेमहि । यः गृहान् । अभिऽशासति ।
इमे । एव । इति । च ब्रवत् ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—पूषणा=तद्द्वारेण (अनुगृहीता वयम्), संगमेमहि=संगच्छेमहि, यः=जनः, गृहान्=येषु गृहेषु, (अस्मदीया नष्टाः पशवस्तिष्ठन्ति तान्), अभिशासति=आभिमुख्येन बोधयति, यश्च, इमे=एते (त्वदीया नष्टाः पशवः), एव=एवम् (तिष्टन्ति), इति च, ब्रवत्=ब्रूयात् ।

पूष्णा=सूर्यदेव के द्वारा, अनुगृहीत हम लोग, उ=निश्चय से, संगमेमहि=उस विद्वान् मनुष्य से जा मिलें, यः=जो मनुष्य, गृहान्=जिन घरों में हमारे चुराये हुए पशु आदि धन विद्यमान हैं उन घरों को, अभिशासित=बतलावे, और इमे=ये तुम्हारे नष्ट हुए पशु आदि हैं, एवं=इस प्रकार, च=और, इति=भी, ब्रवत्=बतलाए ।

मैक्डानल के मत में यह वाक्य घरों में चुरा कर रक्खे हुए पशुओं को लक्ष्य करके नहीं बोला गया, किन्तु केवल भक्त के निवासभूत घरों को लक्ष्य करके कहा गया है ।

संहिता-पाठः

३. पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥

पद-पाठः

पूष्णः चक्रम् । न । रिष्यति । न । कोशः । अव । पद्यते ।
नो इति । अस्य । व्यथते । पविः ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—पूष्णः=पोषकस्य देवस्य, चक्रम्=आयुधम्, न रिष्यति=न विनश्यति, (अस्य) कोशः च न, अवपद्यते=हीयते, (अस्य) पविः=धारा च, नो व्यथते=नैव कुण्ठीभवति, तेन चौरान् हत्वा अस्मदीयं धनं प्रकाशयेति भावः ।

पूष्णः=पोषक सूर्यदेव का, चक्रम्=आयुध, न रिष्यति=कभी नष्ट नहीं होता, और इस चक्र का कोशः=मध्य भाग, न अवपद्यते=नहीं नष्ट होता, अस्य=इस चक्र की, पविः=धारा भी, नो व्यथते=कुण्ठित नहीं होती। अर्थात् अपने चक्र से चोरों को मार कर हमारे धन का ज्ञान कराइए।

मैक्डानल के मत में 'कोशः' चुरा रखने की जगह (well) है। 'पविः' हाल (felly) है।

संहिता-पाठः

४. यो अस्मै हविषाविधन् न तं पूषापि मृष्यते ।
प्रथमो विन्दते वसु ॥

पद-पाठः

यः । अस्मै । हविषा । अविधत् । न । तम् । पूषा । अपि ।
मृष्यते । प्रथमः । विन्दते । वसु ॥४॥

संस्कृतव्याख्या:—यः=यजमानः, अस्मै=पूष्णे, हविषा=चरुपुरोडाशादिना, अविधत्=परिचरति, तम्, पूषापि न मृष्यते=ईषदपि न हिनस्ति, (स च), प्रथमः=मुख्यः सन्, वसु=धनम्, विन्दते=लभते ।

यः=जो यजमान, अस्मै=इस पूषा के लिए, हविषा=पुरोडाश आदि से, अविधत्=सेवा करता है, मिलता है, तम्=उस यजमान को, पूषा=सूर्यदेव, अपि=किंचिन्मात्र भी, न मृष्यते=हानि नहीं पहुँचाता, और वह यजमान प्रथमः=उपासकों में मुख्य बना हुआ, वसु=धन को, विन्दते=प्राप्त करता है।

मैक्डानल ने, 'न अपिमृष्यते' इस क्रिया का अर्थ=नहीं भूलता है (forgets not) किया है।

संहिता-पाठः

५. पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः।
पूषा वाजं सनोतु नः॥

पद-पाठः

पूषा। गाः। अनु। एतु। नः पूषा। रक्षतु। अर्वतः।
पूषा। वाजम्। सनोतु। न॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—पूषा=पोषको देवः, नः=अस्मदीयाः, गाः, अन्वेतु=रक्षणार्थमनुगच्छतु, स च, पूषा, अर्वतः=अश्वान्, रक्षतु (तथा) वाजम्=अन्नम्, नः=अस्मभ्यम्, पूषा, सनोतु=प्रयच्छतु।

पूषा=पुष्टि करने वाला सूर्य, नः हमारी, गाः=गौ आदि पशुओं की (रक्षा करने के लिए), अन्वेतु=अनुगति करे, पीछे चल कर रक्षा करे, और वह पूषा अर्वतः=हमारे घोड़ों की, रक्षतु=(चोरों से) रक्षा करे, तथा वाजम्=अन्न को या बल को, नः=हमारे लिये, सनोतु=प्रदान करे।

मैक्डानल ने 'वाजम्' का अर्थ चुराया हुआ धन (booty) किया है।

संहिता-पाठः

६. पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः ।
अस्माकं स्तुवतामुत ॥

पद-पाठः

**पूषन् । अनु । प्र । गाः । इहि । यजमानस्य । सुन्वतः ।
अस्माकम् । स्तुवताम् । उत ॥६॥**

संस्कृतव्याख्याः—हे पूषन् ! सुन्वतः=सोमाभिषवं कुर्वतः, यजमानस्य, गाः=पशून् , अनु प्र इहि=रक्षणार्थमनुगच्छ, उत= अपि च, स्तुवताम्=त्वद्विषयं स्तोत्रं कुर्वताम्, अस्माकम् , (गाश्चानुगच्छेत्यर्थः) ।

हे=पूषन् ! सूर्य देव ! सुन्वतः=सोम रस के द्वारा तुम्हारी आराधना करने वाले सोम का रस निकालने वाले, यजमानस्य=यजमान की, गाः= पशुओं की, अनुप्रेहि=रक्षा के लिए पीछे चलो, उत=और स्तुवताम्= स्तुति करने वाले; अस्माकम्=हम लोगों की, गा=अर्थात् गौओं की रक्षा करो ।

संहिता-पाठः

७. माकिर्नेशन्माकीं रिषन् माकीं सं शारि केवटे ।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥

पद-पाठः

**माकिः । नेशत् । माकीम् । रिषत् । माकीम् । सम् । शारि । केवटे ।
अथ । अरिष्टाभिः । आ । गहि ॥७॥**

संस्कृतव्याख्या:—(हे पूषन् ! अस्मदीयं गोधनम्) माकिर्नेशत्=मा नश्यतु, माकीं रिषत्=मा व्याघ्रादिभिर्हिंस्यताम् । माकीम्=मा च, केवटे=कूपे, संशारि=संशीर्णं भूत्, अथ=एवं सति, अरिष्टाभिः=अहिंसिताभिः, गोभिः सह, आ गहि=(सायंकाले) आगच्छ ।

हे पूषन् ! हमारा गौ रूपी धन माकिः=कभी नहीं, नेशत् =नष्ट होवे, माकीम्=और न कभी, रिषत्=व्याघ्र आदि से मारा जावे, माकीम्=और न कभी, केवटे=कुएँ आदि गड्ढे में, संशारि=नष्ट होवे, अथ=और, इस प्रकार अरिष्टाभिः=हिंसा से रहित, न मरने वाली बड़ी उम्र वाली, आगहि=गौओं के साथ सायंकाल के समय हमारे घर पधारिये ।

मैक्डानल ने 'अरिष्टाभिः' का अर्थ व्रण आदि घावों की पीड़ा से शून्य (uninjured) किया है ।

संहिता-पाठः

८. शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् ।
ईशानं राय ईमहे ॥

पद-पाठः

शृण्वन्तम् । पूषणम् । वयम् । इर्यम् । अनष्टऽवेदसम् ।
ईशानम् । रायः । ईमहे ॥८॥

संस्कृतव्याख्या:—(अस्मत् स्तोत्राणि), शृण्वन्तम्, इर्यम् = दारिद्र्यस्य प्रेरकम्, अनष्टवेदसम् = अविनष्टधनम्, ईशानम् = सर्वस्येश्वरम्, (एवंविधं) पूषणं (देवं) वयम्, रायः=धनानि, ईमहे=याचामहे ।

शृण्वन्तम्=हमारे स्तोत्रों को ध्यान से सुनने वाले, और इर्यम्=दरिद्रता को दूर करने वाले, अनष्टवेदसम्=जिस का धन कभी नष्ट नहीं हुआ ऐसे, ईशानम्=सब के ईश्वर, पूषणम्=सूर्य देव से, वयम्=हम लोग, रायः=धनों को, ईमहे=मांगते हैं।

मैक्डानल ने 'इर्यम्' का अर्थ सावधान (watchful) किया है, तथा 'राय ईशानम्' का धन वितरण करने वाला (who disposes of riches) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

९. पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन।
स्तोतारस्त इह स्मसि॥

पद-पाठः

पूषन्। तव। व्रते। वयम्। न। रिष्येम। कदा। चन। स्तोतारः ते। इह। स्मसि॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—हे पूषन्=पोषक! तव=त्वदीये, व्रते=कर्मणि (वर्तमानाः) वयम्, कदाचन=कदाचिदपि, न रिष्येम=न हिंसिता भवेम। (तथा वयम्) इह=अस्मिन् कर्मणि, ते=तव, स्तोतारः=स्तुतिकर्तारः, स्मसि=स्मः (भवामः)।

व्याकरणम्—स्मसि='अस्' धातुः, 'इदन्तोमसिः' इत्यनेन बहुवचने मस्यादेशः।

पूषन्=हे पोषक सूर्यदेव! तव=तेरे, व्रते=प्रसन्नता करने वाले कर्मों में वर्तमान, वयम्=हम लोग, कदाचन=कभी भी, न रिष्येम=कष्ट न प्राप्त करें, तथा इह=इस स्तुतिरूपी कर्म में, ते=तुम्हारे, स्तोतारः=निरन्तर स्तुति करने वाले, स्मसि=बने रहें।

मैक्डानल के मत में 'व्रत' का अर्थ=सेवा (service) है।

संहिता-पाठः

१०. परि॑ पू॒षा प॒रस्ता॒द्धस्तं॑ दधातु॒ दक्षि॑णम्।
पुन॑र्नो न॒ष्टमाज॑तु ॥

पद-पाठः

परि॑। पू॒षा। प॒रस्ता॑त्। हस्त॑म्। द॒धा॒तु॒। दक्षि॑णम्।
पुन॑रिति॑। नः॒। न॒ष्टम्। आ। अ॒ज॒तु॒ ॥१०॥

संस्कृतव्याख्याः—पूषा=पोषकः, परस्तात्=परस्मिन् देशे (चोरव्याघ्रादिभिरुषिते) (गोधनस्य निवारणाय), दक्षिणं, हस्तं, परिदधातु=परिधानम् (निवारकम्) करोतु, नः=अस्मदीयम्, नष्टं च (गोधनम्), पुनः, आजतु=आगच्छतु (त्वया गमयतु)।

पूषा=पुष्टि करने वाला सूर्य देव, परस्तात्=चोर व्याघ्रादि से युक्त दूर देश में विचरण करने वाले हमारे गोधन की रक्षा के लिए, दक्षिणम्=अपना दाहिना, हस्तम्=हाथ, परिदधातु=हमारे ऊपर धारण करे, और नः=हमारा, नष्टम्=खोया हुआ गो अश्व आदि धन, पुनः=फिर, आजतु=प्राप्त करावे, घर पहुंचा दे।

मैक्डानल ने 'परस्ताद्' का अर्थ दूर से (from a far) किया है।

—

आपः सूक्त

संहिता-पाठः

१. समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्
पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

पद-पाठः

समुद्रऽज्येष्ठाः । सलिलस्य । मध्यात् ।
पुनानाः । यन्ति । अनिऽविशमानाः ।
इन्द्रः । याः । वज्री । वृषभः । रराद ।
ताः । आपः । देवीः । इह । माम् । अवन्तु ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—समुद्रज्येष्ठाः=समुद्रः ज्येष्ठो यासां ताः, सलिलस्य=अन्तरिक्षस्य, मध्यात्=माध्यमिकात्, यन्ति=गच्छन्ति, कीदृश्य इत्याह—पुनानाः=विश्वं शोधयन्त्यः, अनिविशमानाः= सर्वदा गच्छन्त्यः, वज्री=वज्रभृत् । वृषभः=कामानां वर्षिता, इन्द्रः, याः=निरुद्धा अपः, रराद=लिखति, देवी=देव्यः ताः, आपः, इह=अस्मिन् प्रदेशे (स्थितम्), माम्, अवन्तु=रक्षन्तु, अभिगच्छन्तु वा ।

व्याकरणम्—अव्याकरणीयमेतत् ।

परिचयः—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, अप् (जल) देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है ।

समुद्रज्येष्ठाः=समुद्र है प्रशस्यतर जिन में ऐसे जल, सलिलस्य=आकाश के, मध्यात्=मध्य स्थान से, यन्ति=गमन करते हैं, और वे पुनानाः=संसार को पवित्र करते हुए, अनिविशमानाः=सदा बहते हुए रहते हैं। वज्री=वज्र का धारण करने वाला, वृषभः=इच्छाओं की पूर्ति करने वाला, इन्द्रः=इन्द्रः, याः=जिन रोके हुए जलों को, रराद=काट कर या तोड़ कर बहाता है, देवीः=दिव्य, ताः आपः—वे जल, इह=इस पृथ्वी लोक में रहने वाले, माम्=मेरी, अवन्तु=रक्षा करें।

मैक्डानल ने 'सलिलस्य' का अर्थ समुद्र (sea) किया है तथा 'अवन्तु' का अर्थ सहायता करें (help me) किया है।

संहिता-पाठः

२. या आपो॑ दि॒व्या उ॒त वा॒ स्रव॑न्ति
ख॒नित्रि॑मा उ॒त वा॒ याः स्व॑यं॒जाः।
स॒मु॒द्रार्था॒ याः शुच॑यः पाव॒कास्
ता आपो॑ दे॒वीरि॒ह माम॑वन्तु ॥

पद-पाठः

याः। आपः॑। दि॒व्याः। उ॒त। वा॒। स्रव॑न्ति।
ख॒नित्रि॑माः। उ॒त। वा॒। याः स्व॒यम्ऽजाः।
स॒मु॒द्रऽअ॑र्थाः। याः। शुच॑यः। पा॒व॒काः।
ताः। आपः॑। दे॒वीः। इ॒ह। माम्। अ॒व॒न्तु॒ ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—या आपो, दिव्याः=अन्तरिक्षभवाः (सन्ति), उत वा=अपि च। (नद्यादिगताः), स्रवन्ति=गच्छन्ति, याश्च, खनित्रिमाः=खननेन निर्वृताः उत वा=अपि च, याः

स्वयंजाः=स्वयं प्रादुर्भवन्त्यः समुद्रार्थाः=समुद्रः गन्तव्यो यासास्, शुचयः=दीप्तियुक्ताः, पावकाः=शोधयित्र्यश्च भवन्ति, ता आपो मामवन्तु इति पूर्ववत्।

व्याकरणम् —स्पष्टम् व्याकरणे।

याः=जो, आपः=जल, दिव्याः=अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, उत वा=अथवा, जो स्रवन्ति=नदी आदि में स्रोत रूप में बहते हैं, और जो खनित्रिमाः=खोदने से उत्पन्न हुए, कूपादिगत जल हैं, वा=अथवा, उत=और, याः=जो जल, स्वयंजाः=स्वयमेव पर्वत आदि के झरने आदि से स्वतन्त्र रूप में बहते हैं। तथा समुद्रार्थाः=समुद्र में जा कर मिल जाते हैं, इस प्रकार के शुचयः=दीप्तिवाले, पावकाः=पवित्र करने वाले, ताः=वे, देवीः=दिव्य, आपः=जल, माम्=मेरी, इह=इस लोक में, अवन्तु=रक्षा करें।

मैक्डानल ने 'शुचयः' का अर्थ स्वच्छ (clear) किया है।

संहिता-पाठः

३. यासां राजा वरुणो याति मध्ये
सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्
ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥

पद-पाठः

यासाम्। राजा। वरुणः। याति। मध्ये।
सत्यानृते इति। अवऽपश्यन्। जनानाम्।
मधुऽश्चुतः। शुचयः। याः। पावकाः।
ताः। आपः। देवीः। इह। माम्। अवन्तु॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—वरुणः, यासाम् =अपाम् , राजा=स्वामी, मध्ये=मध्यमलोके, याति=गच्छति, किं कुर्वन्नित्याह—जनानां= प्रजानाम् , सत्यानृते=सत्यमसत्यं च, अवपश्यन्=जानन्, (तथा) याः=आपः, मधुश्चुतः=रसं क्षरन्त्यः, शुचयः, पावकाः ता आप इति पूर्ववत् ।

वरुणः=वरुण देवता, यासाम् =जिन जलों का, राजा=स्वामी है, तथा मध्ये=मध्य में, अन्तरिक्षलोक में, जनानाम्=मनुष्यों के, सत्यानृते=सत्य और झूठ को, अवपश्यम् =देखता हुआ, जानता हुआ, याति=गमन करता है । याः=जो जल, मधुश्चुतः=रस को टपकाने वाले, शुचयः=दीप्तियुक्त हैं, वे जल मेरी रक्षा करें, यह पूर्ववत् अर्थ है ।

मैक्डानल ने 'मधुश्चुतः' का अर्थ=मिठास को टपकाने वाले (distil sweetness) किया है, तथा 'देवीः'=देवतारूप (goddesses) किया है ।

संहिता-पाठः

४. यासु राजा वरुणो यासु सोमो
विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥

पद-पाठः

यासु । राजा । वरुणः । यासु । सोमः ।
विश्वे । देवाः । यासु । ऊर्जम् । मदन्ति ।
वैश्वानरः । यासु । अग्निः । प्रऽविष्टः ।
ताः । आपः । देवीः । इह । माम् । अवन्तु ॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—(अपाम्) राजा, वरुणः, यासु=अप्सु (वर्तते), सोमः, यासु (वर्तते), यासु (स्थिताः), विश्वे=सर्वे देवाः, ऊर्जम्, अन्नम्, मदन्ति, वैश्वानरः, अग्निः, यासु प्रविष्टः, ता आपः इति पूर्ववत् ।

व्याकरणम्—सुबोधं व्याकरणम् ।

राजा=जलों का राजा वरुण, यासु=जिन जलों में निवास करता है, यासु=जिन जलों में, सोमः=सोम निवास करता है, यासु=जिन जलों से उत्पन्न विश्वेदेवाः=सारे देवगण, ऊर्जम्=अन्न को, खाकर मदन्ति= प्रसन्न होते हैं। वैश्वानरः=सब का नेता, अग्निः=अग्नि देवता, यासु= जिन जलों में, प्रविष्टः=निवास करता है, ताः आपः=वे जल इत्यादि वाक्य पूर्ववत् है।

मैक्डानल ने 'ऊर्जम् मदन्ति' का अर्थ=देवगण जिन जलों का आनन्दपूर्वक पान करते हुए शक्ति प्राप्त करते हैं All gods drink exhilarating strength), किया है।

मं० ७ सूक्त ७१

अश्विनौ सूक्त

संहिता-पाठः

१. अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते
रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम
दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥

पद-पाठः

अप॑ । स्वसुः॑ । उ॒षसः॑ । नक् । जि॒ही॒ते॒ ।
रि॒णक्ति॑ । कृ॒ष्णीः॑ । अ॒रु॒षाय॑ । पन्था॑म् ।
अश्व॑ऽमघा । गोम॑घा । वा॒म् । हु॒वे॒म॒ ।
दिवा॑ । नक्त॑म् शरु॑म् । अ॒स्मत् । यु॒यो॒त॒म् ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—स्वसुः=स्वसृस्थानीयायाः उषसः, (सकाशात्), नक्=नक्तम् । अपजिहीते=अपगच्छति, कृष्णीः=कृष्णवर्णा (रात्रिः), अरुषाय=आरोचमानाय (अह्ने सूर्याय वा), पन्थां=पन्थानम्, रिणक्ति=रेचयति, हे, अश्वामघा=अश्वधनौ, गोमघा=गोधनौ, वाम्=युवाम्, हुवेम=स्तुमः, दिवानक्तम्=सर्वदा, शरुम्=हिंसकम्, अस्मत्=अस्मत्तः, युयोतम्=पृथक्कुरुतम् ।

व्याकरणम्—शरुम्='शृ' हिंसायाम् 'उ' प्रत्यये शरुरिति सिध्यति ।

परिचय:—इस सूक्त का अश्विनी कुमारों का युगल देवता है, त्रिष्टुप् छन्द, वसिष्ठ ऋषि है ।

स्वसुः=अपनी बहन के समान, उषसः=उषा से, नक्=(नक्तम्) रात्रि, अपजिहीते=नष्ट होती है, अर्थात् उषा को स्थान देने के बाद रात्रि स्वयं हट जाती है । कृष्णीः=काले वर्ण की रात्रि, अरुषाय=चमकते हुए सूर्य के लिए या दिन के लिए, पन्थाम्=मार्ग को, रिणक्ति=खाली कर देती है । इस लिये अश्वामघा=हे अश्व धन वाले, गोमघा=गो धन वाले, अर्थात् अश्वों और गौओं का दान देने वाले अश्विनी कुमारो, वाम्=तुम दोनों की, हम लोग हुवेम=स्तुति करते हैं, या तुम्हारा आह्वान करते हैं । आप दिवानक्तम्=दिन और रात, शरुम्=हानि पहुँचाने वाले पदार्थों को, अस्मत्=हम से, युयोतम्=अलग करते रहिए ।

मैक्डानल ने 'शरुम्' का अर्थ बाण (arrow), किया है।

संहिता-पाठः

२. उपायातं दाशुषे मर्त्याय
रथेन वाममश्विना वहन्ता।
युयुतमस्मदनिराममीवां
दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः॥

पद-पाठः

उपऽआयातम्। दाशुषे। मर्त्याय।
रथेन। वामम्। अश्विना। वहन्ता।
युयुतम्। अस्मत्। अनिराम्। अमीवाम्।
दिवा। नक्तम्। माध्वी। इति। त्रासीथाम्। नः॥२॥

संस्कृतव्याख्या:—हे अश्विनौ युवाम्, उपायातम्=उपागच्छतम् (अस्मदाह्वानं प्रति), किमर्थमित्याह—दाशुषे=हविषां दात्रे यजमानाय, रथेन, वामम्=वहनीयं धनम्, वहन्ता=वहन्तौ, अस्मत्=अस्मत्तः, अनिराम्=दारिद्रयम्, अमीवां=रोगं च, युयुतम्=पृथक्कुरुतम्, हे, माध्वी=मधुमन्तौ युवाम्; न=अस्मान्, दिवानक्तम्=सर्वदा, त्रासीथाम्=रक्षतम्॥

व्याकरणम्—न व्याकरणीयमत्र।

अश्विना= हे अश्विनी कुमारो! तुम दोनों उपायातम्=हमारा आह्वान स्वीकार कर यहाँ आइए। तथा दाशुषे=हवि का दान देने वाले, मर्त्याय=यजमान के लिये, रथेन=अपने रथ के द्वारा, वामम्=सेवनीय या चाहे गये धन को, वहन्ता=लेते हुए, आइए, और अनिराम्=इरा=अन्न उस से भिन्न अर्थात् दारिद्रय को, अस्मत्=हम से, युयुतम्=पृथक् करिए, माध्वी=हे मधु वाले अश्विनी कुमारो! नः=

हमारे, अमीवाम्=रोगों को, दिवानक्तम्=रात दिन अर्थात् प्रत्येक काल में (सर्वदा), त्रासीथाम्=दूर कीजिए, रक्षा कीजिए।

मैक्डानल ने 'अनिराम्' का अर्थ आलस्य (languor) किया है। 'माध्वी' का अर्थ मधु-प्रेमी (lovers of honey) है।

संहिता-पाठः

३. आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ
सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैर्
आश्विना वसुमन्तं वहेथाम्॥

पद-पाठः

आ। वाम्। रथम्। अवमस्याम्। विऽउष्टौ।
सुम्नऽयवः। वृषणः। वर्तयन्तु।
स्यूमऽगभस्तिम्। ऋतयुक्ऽभिः। अश्वैः।
आ। अश्विना। वसुऽमन्तम्। वहेथाम्॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—अवमस्याम्=आसन्नायाम्, व्युष्टौ=व्युच्छन उषसि, वाम्=युवयोः, रथम्, सुम्नायवः=सुखेन योजयन्तोऽश्वाः, वृषणः=वर्षका, युवाम्, आवर्तयन्तु, स्यूमगभस्ति=सुखरश्मिम्, वसुमन्तम्=प्रदेयधनयुक्तम्, (रथम्), हे अश्विना=अश्विनौ, ऋत-युग्भिः=उदकयुक्तैः, अश्वैः, आवहेथाम्।

व्याकरणम्—स्यूम='स्वि' तन्तुसन्ताने 'मन्' प्रत्ययः।

अवमस्याम्=आगामी या निकट, व्युष्टौ=प्रातःकाल के समय में, वाम् =तुम दोनों के, रथम्=रथ में, सुम्नायवः=सुख देने वाले (सुख से जोड़ने

वाले) घोड़ों और वृषणः=वृष्टि करने वाले घोड़ों को, तुम दोनों आवर्तयन्तु=चलाओ, घुमाओ। तथा स्यूमगभस्तिम्=सुखकारक लगाम वाले, या रश्मियों से बांधे हुये, वसुमन्तम्=दानयोग्य धनयुक्त रथ को, हे अश्विनीकुमारो! ऋतयुग्भिः=जलयुक्त, अश्वैः=घोड़ों से, आवहेथाम्=चला कर लाइये।

मैक्डानल ने 'स्यूमगभस्तिम्' का अर्थ चमड़े के पट्टों से बंधा हुआ (drawn with thongs) किया है। और 'ऋतयुग्भिः' का अर्थ समय पर जोड़े गये घोड़ों से, (horses yoked in due time) किया है।

संहिता-पाठः

४. यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा
त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा।
आ न एना नासत्योप यातम्
अभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति॥

पद-पाठः

यः। वाम्। रथः। नृपती। इति। नृपती। अस्ति।
वोळ्हा। त्रिऽवन्धुरः। वसुऽमान्। उस्रऽयामा।
आ। नः। एना। नासत्या। उप यातम्।
अभि। यत्। वाम्। विश्वऽप्स्न्यः। जिगाति॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—हे नृपती=नृणां पालकौ, वाम्=युवयोः, यः रथः, वोळ्हा=युवयोर्वाहकः, अस्ति=सर्वदा संनिहितो वर्तते, (असौ), त्रिवन्धुरः=सारथ्यधिष्ठानत्रययुक्तः, वसुमान्=धनवान्,

उस्रयामा=उस्रं दिवसं, तत्प्रतिगन्ता, एना=एतेन (रथेन), हे, नासत्या=अश्विनौ ! नः=अस्मान् उप आ यातम्, यत्, रथः, वाम्, विश्वप्स्न्यः=व्याप्तरूपः। अभिजिगाति=अभिगच्छति।

व्याकरणम्—विश्वं प्साति (भक्षयति) इति 'विश्वप्स्न्यः' ततः नयति इत्यर्थे विश्वप्स्निः स्वार्थे अच् सकाराकारलोपः छान्दसः।

नृपती=मनुष्यों के पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! वाम्=तुम दोनों का, रथः=रथ, वोळहा=तुम्हारा वहन करने वाला, अस्ति=है, जो कि रथ, त्रिवन्धुरः=सारथि समेत तीन व्यक्तियों के बैठने योग्य स्थान से युक्त है, तथा वसुमान्=धनवान्, उस्रयामा=दिन के प्रति जाने वाला है, अर्थात् दिन भर चलने वाला है, एना=इस रथ से, नासत्या=हे अश्विनीकुमारो ! तुम, नः=हम लोगों के समीप, उपायाताम्=आइए। यत्=जो रथ, विश्वप्स्न्यः=संसार में व्याप्त होता हुआ, अभिजिगाति=अभिगमन करता है। अथवा जिस रथ की विश्वप्स्न्यः=वसिष्ठ ऋषि, जिगाति=स्तुति करता है, उस रथ से आप पधारिए।

मैक्डानल के मत में 'उस्रयामा' का अर्थ प्रातःकाल चलने वाला (faring at day break) तथा 'विश्वप्स्न्यः' का अर्थ खाने के पदार्थों से भरा हुआ (laden with all food) है।

संहिता-पाठः

५. युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं
नि पेदवं ऊहथुराशुमश्वम्।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं
नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः॥

पद-पाठः

युवम् । च्यवानम् । जरसः । अमुमुक्तम् ।
निः । पेदवे । ऊहथुः । आशुम् । अश्वम् ।
निः । अंहसः । तमसः । स्पर्तम् । अत्रिम् ।
नि । जाहुषम् । शिथिरे । धातम् । अन्तरिति ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—(हे अश्विनौ) ! युवम्=युवाम्, च्यवानम्, जरसः=जीर्णाद्रूपात्, अमुमुक्तम्=अमुञ्चतम्, (तथा), पेदवे=एतन्नामकाय राज्ञे, आशुम्=शीघ्रगामिनम्, अश्वम्, निः ऊहथुः=न्यवहतम् (युद्धे), तथा अत्रिम्=अत्रिऋषिम्, अंहसः=अग्नेः सकाशात्, तमसः=गुहान्तः स्थितात्, च, निःस्पर्तम्=न्यपारयतम्, (तथा), जाहुषम्, शिथिरे=शिथिले (भ्रष्टे स्वराष्ट्रे) अन्तः=मध्ये, (पुनः), निधातम्=न्यधातम् ।

व्याकरणम्—व्याकरणं व्यर्थम् ।

हे अश्विनीकुमारो ! युवम्=तुम दोनों ने, च्यवानम्=च्यवन नाम के ऋषि को, जरसः=जीर्ण अवस्था से, वृद्धता से, अमुमुक्तम्=छुड़ा दिया था, तथा पेदवे=पेदु नाम के राजा के लिए, आशु=तेज चलने वाले, अश्वम्=घोड़े को, नि ऊहथुः=युद्ध में पहुँचा दिया था, तथा अत्रिम्=अत्रि नाम के महर्षि को, अंहसः=ऋबीस नामक पाप विशेष से, तमसः=गुहा में विद्यमान अन्धकार से, निःस्पर्तम्=पार कर दिया था, तथा जाहुषम्=जाहुष नाम के राजा को, शिथिरे=अपने राष्ट्र के शिथिल, भ्रष्ट हो जाने पर, पुनः=उसके राज्य के, अन्तः=अन्दर, निधातम्=बैठा दिया था । इस प्रकार तुम बहुत बड़ी सामर्थ्य व महिमा वाले हो ।

संहिता-पाठः

६. इयं मनीषा इयमश्विना गीर्
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

पद-पाठः

इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः ।
इमाम् । सुऽवृक्तिम् । वृषणा । जुषेथाम् ।
इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अग्मन् ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—हे अश्विना=अश्विनौ, इयम् मनीषा=मे कामना (इयमस्ति), इयं गीः=इयं मे स्तुतिरस्ति, (यत्), वृषणा=कामानां वर्षितारौ युवाम्, इमाम्, सुवृक्तिम्=स्तुतिम्, जुषेथाम्=स्वीकुरुतम्। इमा ब्रह्माणि=व्यापकस्तुतिवाक्यानि, यूवयूनि = नित्ययुवकाभ्याम्, (युवाभ्याम्), अग्मन्=प्राप्ता भवेयुः, (तथा), यूयम्, स्वस्तिभिः=आशीर्वादैः, नः=अस्मान्, सदा=सर्वदा, पात=रक्षतम्।

व्याकरणम्—सुवृक्तिम्=सु + 'वृज्' + क्तिन्।

अश्विना=हे अश्विनीकुमारो ! इयम्=यह, मनीषा=मेरी कामना है, इयम्=यह, गीः=मेरी स्तुति रूप में प्रार्थना है कि, वृषणा=शक्तिशाली, या इच्छाओं की पूर्ति करने वाले, आप दोनों इमाम्=इस, सुवृक्तिम्=मेरी स्तुति को जुषेथाम्=स्वीकार कीजिए, इमा=ये, ब्रह्माणि=व्यापक स्तुति वाक्य, युवयूनि=सर्वदा युवावस्था वाले या

शक्ति वाले, तुम्हें, अग्मन्=प्राप्त हों, तथा यूयम्=आप, स्वस्तिभिः=अपने आशीर्वादों से, नः=हमें, सदा=सर्वदा, पात=रक्षा करते रहिए।

विशेष:—'युवयूनि' का अर्थ तुम दोनों के द्वारा चाही गई (स्तुतियाँ) भी हैं।

—:०:—

मं० ७ सू० ८६

वरुणः सूक्त

संहिता-पाठः

१. धीरा त्वस्य महिना जनूंषि
वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं
द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥

पद-पाठः

धीरा । तु । अस्य । महिना । जनूंषि ।
वि । यः । तस्तम्भ । रोदसी इति । चित् । उर्वी । इति ।
प्र । नाकम् । ऋष्वम् । नुनुदे । बृहन्तम् ।
द्विता । नक्षत्रम् । पप्रथत् । भूम ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—अस्य=वरुणस्य, यजूंषि=जन्मानि, महिना=महिम्ना, तु=क्षिप्रं, धीरा=धीराणि, धैर्यवन्ति, (भवन्ति)। यः=वरुणः, उर्वी,=विस्तीण, रोदसी चित्=द्यावापृथिव्यावपि, वि तस्तम्भ=विविधं स्तब्धे स्वकीये स्थाने स्थिते अकरोत्, यश्च, बृहन्तम्=महान्तम्, नाकम=स्वर्गम,

आदित्यम्=नक्षत्रं च, ऋष्वम्=दर्शनीयम्, द्विता=द्वैधम्, प्र नुनुदे=प्रेरयति स्म। भूम=भूमिम्, च, यः, पप्रथत्=विस्तारितवान्।

व्याकरणम्—ऋष्वम्='ऋषी' गतौ 'व' प्रत्ययः। चक्षुर्विषयतां गतं ऋष्वमित्युच्यते।

परिचय:—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, त्रिष्टुप् छन्द है, और वरुण देवता है।

अस्य=इस वरुण के, महिना=माहात्म्य से, तु=जल्दी से ही, जनूंषि=जन्म अर्थात् जन्म लेने वाले प्राणी, धीराः=धैर्य वाले बन जाते हैं, यह जो वरुण, उर्वी=विस्तीर्ण, रोदसी-द्युलोक और पृथिवीलोक को चित्=भी, वितस्तम्भ=विविध प्रकार से धारण किये हुए है, तथा जो बृहन्तम्=महान्, नाकम्=आदित्य या स्वर्गलोक को, नक्षत्रम्=नक्षत्रलोक को, ऋष्वम्=दर्शनीय रूप से, द्विता=दो प्रकार से, प्रनुनुदे=प्रेरणा करता है, च=और, भूम=भूमि को, पप्रथत्=विस्तृत बनाता है (उस वरुण से ही उत्पन्न होने वाली सब वस्तुएँ आज-कल पाली जा रही हैं)।

मैक्डानल ने 'धीरा' का बुद्धिमान् (intelligent) 'महिमा' का शक्ति (might) ऋष्वम्' का अर्थ ऊँचा (high) और 'बृहन्तम्' का अर्थ विस्तीर्ण (lofty) किया है।

संहिता-पाठः

२. उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्
कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत
कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम्॥

पद-पाठः

उत । स्वया । तन्वा । सम् । वदे । तत् ।
कदा । नु । अन्तः । वरुणे । भुवानि ।
किम् । मे । हव्यम् । अहृणानः । जुषेत ।
कदा । मृळीकम् । सुऽमनाः । अभि । ख्यम् ॥२॥

संस्कृतव्याख्या :—'उत' =इति विचिकित्सायाम्, किम्, स्वया=स्वकीयया, तन्वा=शरीरेण। संवदे=सह वदनं करोमि, (आहोस्वित्), तत्=तेन वरुणेन सह संवदे इति । कदा नु, वरुणे=देवे, अन्तः भुवानि=अन्तर्भूतो भवानि, (चित्ते संलग्नो भवानीत्यर्थः), मे=मदीयम् , हव्यम्=स्तोत्रं हविर्वा, अहृणानः =अक्रुध्यन् वरुणः, किम्=केन हेतुना, जुषेत=सेवेत, सुमनाः= शोभनमनस्कः, (अहम्), कदा=कस्मिन् काले मृळीकम्=सुखयितारम्, अभि ख्यम्=अभिपश्येम् ।

व्याकरणम्—अहृणानः='हृणीङ्'+शानच्,यणं बाधित्वा ईकारलोपः, नञ्समासः ।

वरुण को जल्दी देखने की इच्छा वाला ऋषि इस मन्त्र से वितर्क करता है। उत=क्या, स्वया=अपने, तन्वा=शरीर के साथ, संवदे= बातचीत करूं, अथवा तत्=उस वरुण के साथ बातचीत करूं । कदा= कब, नु=निश्चय से, वरुणे=वरुणदेव के, अन्तः=हृदय में, भुवानि= स्थान प्राप्त करूं; तथा मे=मेरा, हव्यम्=स्तोत्र या हवि को, अहृणानः= क्रुद्ध न होता हुआ वरुण, किम्=क्या, जुषेत=सेवन कर लेगा, और सुमनाः=प्रसन्न मन होता हुआ मैं, कदा=कब, मृळीकम् =सुख देने वाले, वरुणम्=वरुण को, अभिख्यम्=देखूंगा ।

मैकूडानल ने 'मृळीकम्' का अर्थ दया (mercy) किया है ।

संहिता-पाठः

३. पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षू-
पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुर्
अयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥

पद-पाठः

पृच्छे । तत् । एनः । वरुण । दिदृक्षु ।
उपो इति । एमि । चिकितुषः । विऽपृच्छम् ।
समानम् । इत् । मे । कवयः । आहुः ।
अयम् । ह । तुभ्यम् । वरुणः । हृणीते ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—हे वरुण ! तदेनः=पापम्, पृच्छे=त्वां पृच्छामि, दिदृक्षुः=द्रष्टुमिच्छन्नहम्, विपृच्छम्=विविधं प्रष्टुम्, (येनाहं तव पाशेन बद्धस्तत्पापं कथयेति), चिकितुषः=विदुषो जनान्, उपो एमि=उपागाम्, (ते), कवयश्चित्=क्रान्तदर्शिनो जनाश्च, मे=मह्यम्, समानमित्=समानमेव, आहुः=अकथयन्, (किमाहुस्तदाह), (हे स्तोतः), तुभ्यमयं ह=त्वत्कृतेऽयमेव, वरुणः, हृणीते=क्रुध्यति, अतः क्रोधं परित्यज्य मोचय ।

हे वरुण ! तत्=उस, एनः=अपराध को या पाप को, पृच्छे=तुझ से पूछता हूँ, दिदृक्षुः = जिस पाप को देखने या जानने की इच्छा वाला भी मैं, तुम्हारे पाशों से जिस पाप के कारण बँधा हुआ हूँ, विपृच्छम्=मैं उस पाप को जानने के लिए अनेक प्रकार से पूछता हूँ, जिस से उसे छोड़ सकूँ, तथा चिकितुषः=जानकार विद्वानों के, उप=समीप, उ=

निश्चय से, एमि=जाता हूँ। कवयः=क्रान्तदर्शी वे लोग, चित्=भी, समानम् इत्=एक रूप का ही, आहुः=उत्तर देते हैं कि हे स्तोता! तुभ्यम्=तुझ से, अयम्=यह वरुण, ह=निश्चय रूप में, हृणीते=क्रुद्ध है (इसलिए हे वरुण! मेरे प्रति क्रोध को छोड़ कर मुझे पाशों से मुक्त कीजिए)।

मैक्डानल ने 'कवयः' का अर्थ=ऋषि (sages) किया है।

संहिता-पाठः

४. किमाग॑ आस वरुण॒ ज्येष्ठं॒
यत्स्तो॒तारं॒ जिघां॑ससि॒ सखा॑यम्।
प्र तन्मे॑ वोचो दूळभ स्वधा॒वो
ऽव॑ त्वाने॒ना नम॑सा तु॒र इ॑याम्॥

पद-पाठः

किम्। आगः॑। आ॒स॒। व॒रु॒ण॒। ज्येष्ठ॑म्।
यत्। स्तो॒तार॑म्। जिघां॑ससि। सखा॑यम्।
प्र। तत्। मे॒। वो॒चः॒। दुः॒ऽद॒भ॒। स्व॒धा॒ऽवः॒।
अव॑। त्वा॒। अ॒ने॒नाः। नम॑सा। तु॒रः। इ॒याम्॥४॥

संस्कृतव्याख्या :—हे वरुण! ज्येष्ठम्=अधिकम्, किमाग आस=कोऽपराधो मया कृतः, यत्=येन(आगसा), सखायम्=मित्रभूतम्, स्तोतारम्, जिघांससि=हन्तुमिच्छसि, हे दूळभ=अन्यैर्बाधितुमशक्य, स्वधावः=तेजस्विन्, तत्=आगः, मे=मह्यम्, प्र वोचः=प्रब्रूहि, (येन प्रायश्चित्तं कृत्वा), अनेनाः=अपापः सन्नहम्, तुरः=त्वरमाणः, नमसा=नमस्कारेण हविषा वा, (त्वाम्), अव इयाम्=उपगच्छेयम्।

व्याकरणम्—व्याकरणं स्पष्टम् ।

हे वरुण ! ज्येष्ठम् =बड़ा, किम्=कौन सा, आगः=वह पाप, आस=मैंने किया था, यतः=जिस से, सखायम्=हितकारी मित्र के समान, स्तोतारम्=मुझ स्तुति करने वाले को, जिघांससि=तुम मारना चाहते हो। हे दूळभ ! =शत्रुओं से अधृष्य, तथा स्वधाव=तेजस्वी हे वरुण ! तत्=उस पाप को, मे=मुझ से, प्रवोचः कहिए, जिस से उस पाप का प्रायश्चित्त करके, अनेनाः=पापरहित हुआ मैं, तुरः= शीघ्रता के साथ, नमसा=नमस्कार या हवि से, त्वा=तुझे, अवेयाम्= जान सकूँ, या प्राप्त कर सकूँ, या प्रसन्न कर सकूँ।

मैक्डानल ने 'दूळभ' शब्द का अर्थ जिसे मुश्किल से धोखा दिया जा सके (hard to deceive) और 'स्वधावन्' का अर्थ स्वाधीन (self depended) किया है।

संहिता-पाठः

५. अव॑ द्रुग्धानि॑ पित्र्या॑ सृजा नो
ऽव॒ या व॒यं च॑कृमा त॒नूभि॑ः ।
अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं
सृजा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम् ॥

पद-पाठः

अव॑ । द्रुग्धानि॑ । पित्र्या॑ । सृज । न॒ः ।
अव॑ । या । व॒यम् । च॒कृम । त॒नूभि॑ः ।
अव॑ । रा॒ज॒न् । प॒शु॒ऽतृप॑म् । न । ता॒युम् ।
सृज । व॒त्सम् । न । दाम्न॑ः । वसि॑ष्ठम् ॥५॥

संस्कृतव्याख्या:—हे वरुण, पित्र्या=पितृतः प्राप्तानि, नः=अस्मदीयानि, द्रुग्धानि=द्रोहान् (बन्धनहेतुभूतान्), अवसृज=विमुञ्च, वयं च या=यानि द्रोहजातानि, तनूभिः=शरीरैः, चकृम=कृतवन्तः स्म, (तानि), अवसृज, हे राजन्=राजमान वरुण! पशुतृपम् न तायुम्=स्तैन्यप्रायश्चित्तं कृत्वा पश्चात् घासादिभिः पशूनां तर्पयितारं स्तेनमिव, दाम्नः=रज्जोः, वत्सं न=वत्समिव, वसिष्ठम्=मां बन्धकात् पापात्, अवसृज=विमुञ्च।

व्याकरणम्—वसिष्ठम्=अतिशयेन वशी वशिष्ठस्तम्। वशिन्-शब्दादिष्ठन्।

हे वरुण! पित्र्या=पिता आदि पूर्वजों से किये गये, नः=हमारे, द्रुग्धानि=द्रोह के कारण पापों को, अवसृज=माफ कर दो, छोड दो। वयम् च=और हम लोग, या=जो पाप, तनूभिः=अपने शरीरों से, चकृम=कर चुके हैं (उन्हें भी क्षमा कर दें), हे राजन्=प्रकाशमान वरुण, तायुम्=प्रथम पशुओं को चुराने वाले, और बाद में पशुतृपम्=पशुओं को घास आदि प्रदान करके तृप्त करने वाले, चोर की तरह दाम्नः=रस्सी से, वत्सम्=बछड़े की तरह, वसिष्ठम्=वश में विद्यमान या धन वाले, मुझ को (पाप से छुड़ा, यह वाक्य शेष है)।

संहिता-पाठः

६. न स स्वो दक्षो॑ वरुण ध्रुतिः सा
सुरा॑ मन्युर्वि॒भीद॑को अचि॑त्तिः ।
अस्ति॒ ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे
स्वप्न॑श्च॒नेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥

पद-पाठः

न । सः । स्वः । दक्षः । वरुणः । ध्रुतिः । सा ।
सुरा । मन्युः । विऽभीदकः । अचित्तिः ।
अस्ति । ज्यायान् । कनीयसः । उपऽअरे ।
स्वप्नः । चन । इत् । अनृतस्य । प्रऽयोता ॥६॥

संस्कृत-व्याख्याः—हे वरुण, स स्वो दक्षः=पुरुषस्य स्वभूतं तद्-बलं पापप्रवृत्तौ कारणम्, न=न भवति, किं तर्हि तदाहः—ध्रुतिः= स्थिरा दैवगतिः (उत्पत्तिसमये निर्मिता), सा च=सा ध्रुतिः। सुरा=प्रभावकारिणी, मन्युः=क्रोधः (गुर्वादिविषयः), विभीदकः= द्यूतसाधनोऽक्षः। अचित्तिः=अज्ञानम्, (आपत्तिकारणम्)। (अपि च), कनीयसः=अल्पस्य (पुरुषस्य), उपारे=उपागते समीपे, ज्यायान् =अधिकः (ईश्वरः) अस्ति, (स एव पापे प्रवर्तयति), (एवं सति), स्वप्नश्चन=स्वप्नोऽपि अनृतस्य=पापस्य, प्रयोता= प्रकर्षेण मिश्रयिता भवति, इत् इति पादपूरणः। अतो दैवागतो मेऽपराधः क्षन्तव्यः।

व्याकरणम्—अव्याकरणीयमेतत्।

हे वरुण ! सः=वह, स्वः=अपना, दक्षः=बल है (जो पाप प्रवृत्ति में), न=कारण नहीं होता, किन्तु ध्रुतिः=उत्पत्ति के समय उत्पन्न हुई दैवगति अर्थात् नियति ही कारण है। सा=वही ध्रुति, सुरा=प्रमाद कराने वाली है, मन्युः=क्रोध रूप है, (अतः पूज्यों के विषय में) अनर्थ का कारण है। विभीदकः=जुए में प्रवृत्ति कराने वाली भी वही ध्रुति है, अचित्तिः=अविवेक का कारण भी वही है (इस प्रकार वही पुरुष को पाप की ओर ले जाती है), तथा कनीयसः=हीन साधन वाले पुरुष के, उपारे=पाप की प्रवृत्ति के निकट आने पर, ज्यायान्=उस पुरुष से

बड़ा ईश्वर, अस्ति=उसका रक्षक है, (जो कर्मानुसार मनुष्य को फल देता है), इस प्रकार स्वप्नः चन=स्वप्न भी अर्थात् संकल्प भी, अनृतस्य= पाप का, प्रयोता=मिलने वाला या देने वाला होता है, अर्थात् मानसिक पाप भी मनुष्य के सुख-दुःखमय भोगों का कारण होता है। (हे वरुण! इन मानसिक व शारीरिक पापों को तू क्षमा कर)।

मैकूडानल ने 'अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे' का अर्थ छोटे के किये पाप का भागी (जिम्मेदार) बड़ा है, (the elder is in the offence of the younger) किया है। इसी प्रकार—'स्वप्नः चन इत् अनृतस्य प्रयोता' इस वाक्य का अर्थ नींद आने पर भी पाप पीछा नहीं छोड़ता (not even sleep is the warder off of wrong) किया है।

संहिता-पाठः

७. अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्य-
हं देवाय भूर्णयेऽनागाः।
अचेतयदचितो देवो अर्यो
गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥

पद-पाठः

अरम्। दासः। न। मीळ्हुषे। कराणि।
अहम्। देवाय। भूर्णये। अनागाः।
अचेतयत्। अचितः। देवः। अर्यः।
गृत्सम्। राये। कविऽतरः। जुनाति ॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—मीळ्हुषे = सेक्त्रे कामानां वर्षित्रे वा, भूर्णये=जगतो भर्त्रे, देवाय=दानादिगुणयुक्ताय वरुणाय, अनागाः=

अपापः सन्, अहम्. अरम्=अलम् कराणि=परिचरणं करवाणि। दासो न=भृत्य इव, (यथा दासः स्वस्वामिने परिचरति सम्यक्), अर्यः=स्वामी, स देवः. अचितः=अजानतोऽस्मान्, अचेतयत्=प्रज्ञापयतु, गृत्सम्=स्तोतारम् च, कवितरः=प्रज्ञातरो देवः, राये=धनाय, जुनाति=प्रेरयतु।

व्याकरणम्—भूर्णये='भृ' धातोः 'क्विन्'। ऋकारछान्दसत्वादुरादेशः, रपरत्वं दीर्घत्वम्, रदाभ्यामिति निष्ठानत्वम्, णत्वम्।

मीळहुषे=सींचने वाले, अर्थात् इच्छापूर्ति करने वाले, भूर्णये=संसार का भरण करने वाले, देवाय=दान आदि गुण वाले वरुण के लिए, अनागाः=उसकी कृपा से निष्पाप बना हुआ मैं, अरम्=(अलम्) पर्याप्त रूप से, दासः=नौकर, न=की तरह, कराणि=सेवा करूँ, उसी प्रकार, अर्यः=स्वामी, देवः=वह वरुण देव, अचितः=अज्ञान वाले हम लोगों को, अचेतयत्=ज्ञान देवे, और गृत्सम्=स्तुति करने वाले के मार्ग में, कवितरः=अधिक (विशेष) ज्ञान वाला वह वरुण देव, राये=धनप्राप्ति के लिए, जुनाति=आने वाले विघ्नों को दूर करे, अर्थात् धन की प्राप्ति करावे।

मैक्डानल ने 'भूर्णये' का अर्थ क्रुद्ध वरुण देव (angry god) किया, तथा 'गृत्सम्' का अर्थ अनुभवी व्यक्ति (experienced man) किया है।

संहिता-पाठः

८. अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो
हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

पद-पाठः

अहम् । सु । तुभ्यम् । वरुण । स्वधाऽवः ।
हृदि । स्तोमः । उपश्रितः । चित् । अस्तु ।
शम् । नः । क्षेमे । शम् । ऊँ इति । योगे नः । अस्तु ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥८॥

संस्कृतव्याख्या—हे स्वधावः=अन्नवन्, वरुण,तुभ्यम्=त्वदर्थं क्रियमाणः, अयम्=एतत्सूक्तात्मकम्, स्तोमः=स्तोत्रम्, हृदि=त्वदीये हृदये, सु=सुष्ठु उपश्रितः=उपगतः, अस्तु, चित् इति पूरकः, नः=अस्मदीये क्षेमे=रक्षणे, शम्=उपद्रवाणां शमनम्, अस्तु= योगे च नः=अस्मदीये प्रापणे, शमु=शमनम्, नः=अस्मान्, स्वस्तिभिः=अविनाशैः, पात=रक्षत ।

व्याकरणम्—स्पष्टम् ।

स्वधावः=हे अन्न वाले वरुण, तुभ्यम् अयम्=तेरे लिए किया गया यह, स्तोमः=पूरे सूक्त से स्तोत्र (स्तुति), हृदि=तेरे हृदय में, सु=अच्छी प्रकार, उपश्रितः=स्थिर या प्राप्त, अस्तु=हो, चित्=यह पद निरर्थक है, केवल पादपूर्ति के लिये आया है । तथा नः=हमारे, क्षेमे=प्राप्त पदार्थों की रक्षा करने में, शम्=उपद्रवों की शान्ति हो, योगे=अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति में, नः=हमारी, शमु=विघ्नों की शान्ति ही हो, यूयम्=हे वरुण आदि देवगणो ! आप नः=हमारी, सदा=सर्वदा, स्वस्तिभिः=कल्याण प्रदान के द्वारा, पात=रक्षा कीजिये ।

मैक्डानल ने 'स्वधावः' पद का अर्थ स्वतन्त्र (self dependent) किया है ।

—:०:—

मं० ७ सू० १०३

मण्डूक-सूक्त

संहिता-पाठः

१. संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥

पद-पाठः

संवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रतऽचारिणः ।
वाचम् । पर्जन्यऽजिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषु ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—व्रतचारिणः=संवत्सरसंत्रात्मकं कर्माचरन्तः, ब्राह्मणाः=ब्राह्मणा इव, संवत्सरम्=आवर्षर्तोरेकं संवत्सरम्, शशयानाः=वर्षणार्थम् तपश्चरन्तः, (इव), (बिल एव सन्तः), मण्डूकाः, पर्जन्यजिन्विताम्=पर्जन्यप्रियकरीम्, वाचम्, प्र अवादिषुः=प्रवदन्ति ।

व्याकरणम्—जिन्विताम् 'जिन्वि' स्तुतौ 'क्त' प्रत्ययः द्वितीया ।

परिचय :—इस सूक्त का वसिष्ठ ऋषि है, मण्डूक देवता है, त्रिष्टुप् छन्द है । वसिष्ठ ऋषि वर्षा की इच्छा से निम्नलिखित मन्त्रों से पर्जन्य देव की स्तुति करने लगे । जिस स्तुति का मण्डूकों ने निम्नलिखित प्रकार से अनुमोदन किया ।

व्रतचारिणः=व्रत को धारण करने वाले, ब्राह्मणाः=ब्राह्मणों की तरह, संवत्सरम्=एक वर्ष तक, शशयानाः=बिलों में या पृथिवी के अन्दर शयन करने वाले, मण्डूकाः=मेंढक, पर्जन्यजिन्विताम्=पर्जन्य को प्रसन्न करने वाली, वाचम्=वाणी को, अवादिषुः=बोलने लगे ।

मैक्डानल ने 'पर्जन्यजिन्विताम्' का अर्थ, मेघों द्वारा उत्पन्न की गई (roused parjanya), किया है।

संहिता-पाठः

२. दिव्या आपो अभि यदेनमायन्
दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां
मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥

पद-पाठः

दिव्याः । आपः । अभि । यत् । एनम् । आयन् ।
दृतिम् । न । शुष्कम् । सरसी । इति । शयानम् ।
गवाम् । अह । न । मायुः । वत्सिनीनाम् ।
मण्डूकानाम् । वग्नुः । अत्र । सम् । एति ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—दिव्याः=दिविभवाः, आपः, दृतिं न=दृतिमिव, शुष्कम्=नीरसम्, सरसी=सरस्याम्, शयानम्=निवसन्तम्, एनम्=मण्डूकगणम्, यत्=यदा, आयन्=अभिगच्छन्ति, (तदा), अत्र=अस्मिन् वर्षणे पर्जन्ये वा सति, वत्सिनीनाम्=वत्सयुक्तानाम्, गवाम् न मायुः=गवां शब्द इव, मण्डूकानाम्, वग्नुः=शब्दः, समेति=संगच्छते, अह इति पूरकः।

व्याकरणम्—वग्नुः=वच् 'परिभाषणे' औणादिकः 'नु' प्रत्ययः।

दिव्यः=आकाश में उत्पन्न होने वाले, आप=जल, दृतिं न=मशक की तरह, शुष्कम्=जलरहित, सरसी शयानम्=बड़े तालाब में रहने वाले, एनम्=इस मण्डूकगण से, यत्=जब, आयन्=प्राप्त होते हैं, तब अत्र=इस वर्षा के होने पर, वत्सिनीनाम्=बछड़े वाली, गवाम्=

गौओं के, मायुः=शब्द की, न=तरह, मण्डूकानाम्=मेंढकों का, वग्नुः=शब्द, समेति=एक साथ निकल पड़ता है (जैसे बछड़ों से मिलने पर गौएँ रंभाती हैं, वैसे ही वर्षा पड़ने पर मेंढक भी शोर मचाते हैं।

संहिता-पाठः

३. यदींमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्
तृष्यावतः । प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो
अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥

पद-पाठः

यत् । ईम् । एनान् । उशतः । अभि । अवर्षीत् ।
तृष्याऽवतः । प्रावृषि । आऽगतायाम् ।
अख्खलीकृत्य । पितरम् । न । पुत्रः ।
अन्यः । अन्यम् । उप । वदन्तम् । एति ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—उशतः=कामयमानान्, तृष्यावतः=तृष्णावतः, एनान्=मण्डूकान्, प्रावृषि=वर्षर्तौ, आगतायाम्=आगते सति, यत्=यदा, अभ्यवर्षीत्=पर्जन्यो जलैरभिसिञ्चति, ईम् इति पूरणः, (तदानीम्) अख्खलीकृत्य=अख्खल इति शब्दानुकरणं तद्वत् शब्दं कृत्वा, पुत्रः, पितरं न=पितरमिव, अन्यः=मण्डूकान्तरः, वदन्तम्=शब्दयन्तम्, अन्यम्=मण्डूकम्, उप एति=प्राप्नोति ।

व्याकरणम्—व्याकरणे न किञ्चिद् वक्तव्यम् ।

उशतः=कामना करने वाले, तृष्यावतः=प्यासे, एनान्=इन मेंढकों को, प्रावृषि=वर्षा ऋतु के आने पर, यत्=जब, अभिअवर्षीत्=मेघ पानी

से सींचता है, ईम्=निरर्थक पदपूर्ति के लिए है। तब अख्खलीकृत्य=अख्ख, अख्ख इस प्रकार के शब्द को करने वाला, पुत्रः=पुत्र, पितरम्=पिता के समीप, न=जिस प्रकार (चिल्लाता हुआ पहुँचता है) वैसे ही, अन्यः=एक, मेंढक, अन्यम्=दूसरे, वदन्तम्=टर्राने वाले मेंढक के पास, उपैति=पहुँचता है।

संहिता-पाठः

४. अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोर्
अपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम्।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्
पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम्॥

पद-पाठः

अन्यः। अन्यम्। अनु। गृभ्णाति। एनोः।
अपाम्। प्रऽसर्गे। यत्। अमन्दिषाताम्।
मण्डूकः। यत्। अभिऽवृष्टः। कनिस्कन्।
पृश्निः। सम्ऽपृङ्क्ते। हरितेन। वाचम्॥४॥

संस्कृतव्याख्या :—एनोः = एनयोर्मण्डूकयोः अन्यः= मण्डूकः, अन्यम्=मण्डूकमनु, गृभ्णाति=गृह्णाति, अपाम्= उदकानाम्. प्रसर्गे=प्रसर्जने (वर्षणे) सति। यत्=यदा, अमन्दि षाताम्=हृष्टावभूताम्, यत्=यदा, च, अभिवृष्टः=पर्जन्ये नाभिषिक्तः, कनिष्कन्=भृशं उत्प्लवं कुर्वन्, पृश्निः=पृश्नि-वर्णः, मण्डूकः, हरितेन=हरितवर्णेनान्येन मण्डूकेन, वाचम्, संपृक्ते=योजयति।

एनोः=इन दोनों मेंढकों में, अन्यः=एक, अन्यम्=दूसरे मेंढक को, अनु=पीछे, दौड़ कर, गृभ्णाति=पकड़ लेता है, अपाम्=जलों के,

प्रसर्गे=बरसने पर, यत् =जब, अमन्दिषाताम् =दोनों मेंढक खुश होते हैं, यत =और जब, अभिवृष्टः=(पानी से) वर्षा के जल से स्नान किया हुआ, कनिष्क्रन् =कूदता हुआ, पृश्निः=चितकबरा मेंढक, हरितेन=हरे रंग के मेंढक से, वाचम् संपृङ्क्ते=ध्वनि मिलाता है, अर्थात् जब दोनों एक साथ टर्राते हैं (तब एक दूसरा एक दूसरे पर अनुग्रह-सा करता है, अर्थात्—परस्पर एक दूसरे का साथ देते हुए जोर से चिल्लाते हैं)।

संहिता-पाठः

५. यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं
शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व
यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥

पद-पाठः

यत्। एषाम्। अन्यः। अन्यस्य। वाचम्।
शाक्तस्यऽइव। वदति। शिक्षमाणः।
सर्वम्। तत्। एषाम्। समृधाऽइव। पर्व।
यत्। सुऽवाचः। वदथन। अधि अप्ऽसु ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—हे मण्डूकाः! यत्=यदा, एषाम्=युष्माकं मध्ये, अन्यः=मण्डूकः, अन्यस्य=मण्डूकस्य वाचम्, वदति=अनुकरोति, शिक्षमाणः=शिक्ष्यमाणः (शिष्यः), शाक्तस्य=शक्तिमतः, शिक्षकस्य वाचं यथा अनुवदति, यत् =यदा च, सुवाचः=शोभनवाचः (यूयम्), अप्सु=वृष्टेषु जलेषु, अधि=उपरि, (प्लवन्तः), वदथन=शब्दं कुरुत, तत् =तदा, एषाम्=युष्माकम्, सर्वम्, पर्व=परुष्मच्छरीरम्, समृधेव=समृद्धमेव, (भवतीत्यर्थः)।

हे मण्डूको ! यत् =जब, एषाम्=तुम में, अन्यः=एक मेंढक, अन्यस्य=दूसरे मेंढक की, वाचं वदति=वाणी का, अनुकरण करता है, तब शाक्तस्य=शक्तिवाले गुरु की वाणी का शिक्षमाणः=शिष्य की तरह अनुकरण होता है, यत् =और, जब, सुवाचः=अच्छी वाणी वाले तुम सब, अप्सु=वर्षा होने पर, अधि=पानी के ऊपर तैरते हुए, वदथन=बोलते हो, तत्=तब, एषाम् =तुम्हारा, सर्वम् =सारा, पर्व=जोड़ों वाला शरीर, समृधेव=समृद्ध बढ़ सा जाता है, अर्थात्—ग्रीष्म ऋतु में मिट्टी के रूप को प्राप्त हुए मेंढक वर्षा पड़ने पर एक मेंढक की आवाज सुन कर पूर्ण अंग वाले बने हुये जमीन में से निकल पड़ते हैं।

संहिता-पाठः

६: गोमायुरेको अजमायुरेकः
पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः
पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः।

पद-पाठः

गोऽमायुः। एकः। अजऽमायुः। एकः।
पृश्निः। एकः। हरितः। एकः। एषाम्।
समानम्। नाम। बिभ्रतः। विरूपाः।
पुरुऽत्रा। वाचम्। पिपिशुः। वदन्तः॥६॥

संस्कृतव्याख्या:—एषाम्=मण्डूकानां मध्ये, एकः, गोमायुः=गवामिव शब्दकारकः, एकः=अन्यः, अजमायुः=अजस्य शब्द इव शब्द-कारकः, एकः, पृश्निः=पृश्निवर्णः, एकः=अपरः, हरितः=हरित-वर्णः, (एवं), विरूपाः=नानारूपा अपि, समानम्=एकं 'मण्डूका'

इति, नाम=संज्ञाम्, बिभ्रतः=धारयन्तः, पुरुत्रा=बहुषु देशेषु, वाचम्, वदन्तः, पिपिशुः=प्रादुर्भवन्ति ।

व्याकरणम्—पुरुत्रा='पुरु' शब्दात् 'देवमनुष्य०' इत्यादिना 'त्रा' पिपिशुः='पिश्' अवयवे लिटि रूपम् ।

एषाम्=इन मेंढकों में से, एकः=एक मेंढक, गोमायुः=गौ के जैसे शब्द वाला है, एकः=एक दूसरा, अजमायुः=बकरे की तरह शब्द करने वाला है, एकः=एक मेंढक, पृश्निः=चितकबरा होता है, एकः=दूसरा, हरितः=हरे रंग वाला होता है। इस प्रकार विरूपाः=भिन्न रंगों वाले भी मेंढक, समानम्=एक जैसे, नाम=मण्डूक नाम को, बिभ्रतः=धारण करने वाले, पुरुत्रा=बहुत से मेंढकों के रूप में, वाचं वदन्तः=शब्द करने वाले, होते हुए, पिपिशुः=अनेक रूप वाले बन जाते हैं, प्रादुर्भूत हो जाते हैं ।

संहिता-पाठः

७. ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे
सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ
यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥

पद-पाठः

ब्राह्मणासः । अतिऽरात्रे । न सोमे ।
सरः न । पूर्णम् । अभितः वदन्तः ।
संवत्सरस्य । तत् । अहरिति । परि ।
स्थ । यत् । मण्डूकाः । प्रावृषीणम् । बभूव ॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—अतिरात्रे=अतिरात्राख्ये, सोमे न=सोमयाग इव, ब्राह्मणासः=ब्राह्मणाः, (स्तुत्यादीनि पर्यायेण

शंसन्ति), हे मण्डूकाः ! न=संप्रति साम्प्रतम्, (नशब्दः संप्रत्यर्थे), पूर्णं सरः अभितः=पूर्णसरोवरं सर्वतः, वदन्तः=रात्रौ शब्दं कुर्वाणाः यूयम्, तदहः=तद्दिनम्, परिष्ठ=परितः भवथ। यत्=अहः, प्रावृषीणम्=प्रावृषि भवम्, बभूव, तस्मिन्नहनि सर्वतो वर्तमाना भवथ।

अतिरात्रे=अतिरात्र नाम के यज्ञ विशेष में और सोमे=सोम याग में, न=जैसे, ब्राह्मणासः=ऋत्विज् लोग (यज्ञ कर्ता) (मन्त्रों का जोर-जोर से उच्चारण करते हैं) न=उसी प्रकार इस समय, पूर्णम्=जल से भरे हुए, सरः=तालाब के, अभितः=चारों तरफ (बोलने वाले मेंढक प्रतीत होते हैं), वत्सरस्य=वर्ष के, तदहः=उस दिन, मण्डूकाः=मेंढक, परि ष्ठ=चारों तरफ से इकट्ठे हो कर बैठ जाते हैं। यत्=जिस दिन, प्रावृषीणम्=वर्षा का जल, बभूव=बरसता है।

मैक्डानल ने 'परि ष्ठ' का अर्थ खुशी मनाते हैं (celebrate) किया है।

संहिता-पाठः

८. ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत
ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना
आविर्भवन्ति गुह्या न के चित्॥

पद-पाठः

ब्राह्मणासः। सोमिनः। वाचम्। अक्रत।
ब्रह्म। कृण्वन्तः। परिवत्सरीणम्।
अध्वर्यवः। घर्मिणः। सिस्विदानाः।
आविः। भवन्ति। गुह्याः। न। के। चित्॥८॥

संस्कृतव्याख्या :—सोमिनः=सोमयुक्ताः, परिवत्सरीणम्=सांवत्सरिकं गवामयनिकम्, ब्रह्म=स्तुतशस्त्रात्मकम्, कृण्वन्तः=कुर्वन्तः; ब्रह्मणासः=ब्राह्मणा इव, वाचम्=शब्दम्,अक्रत=अक्रुषत, घर्मिणः=प्रवर्ग्येण चरन्तः, अध्वर्यवः ऋत्विज इव, सिष्विदानाः=स्विद्यद्गात्राः, गुह्याः=घर्मकालेऽभिगूढाः, केचित्=केचन मण्डूकाः, न=सम्प्रति वृष्टौ सत्याम्, आविर्भवन्ति=जायन्ते।

सोमिनः=सोमवाले, परिवत्सरीणम्=वार्षिक, ब्रह्म=स्तोत्रशस्त्रात्मक यज्ञ को, कृण्वन्तः=करने वाले, ब्राह्मणासः=ब्राह्मण लोग वाचम् अक्रत=शब्द बोलते हैं, ये मेंढक भी, घर्मिणः=घर्म नाम के अध्याय से यज्ञ करने वाले, अध्वर्यवः=ऋत्विक् गण की तरह, सिस्विदानाः=अत्यधिक पसीने वाले बने हुए, गुह्याः=ग्रीष्म ऋतु में तहखाने में बैठने वाले बन जाते हैं (फिर यज्ञ के समय बाहर निकल आते हैं) उसी प्रकार केचित्=कुछ मेंढक, न=इस समय (वर्षा होने पर) आविः-भवन्ति=प्रकट हो जाते हैं। यहाँ 'न' का अर्थ 'इव' है—तथा प्रकट से होते हैं, यह अर्थ है।

संहिता-पाठः

९. देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य
ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्॥

पद-पाठः

देवऽहितिम् । जुगुपुः । द्वादशस्य ।
ऋतुम् । नरः । न । प्र । मिनन्ति । एते ।

संवत्सरे । प्रावृषि । आऽगतायाम् ।
तप्ताः । घर्माः । अश्नुवते । विऽसर्गम् ॥९॥

संस्कृतव्याख्याः—नरः=नेतारः, एते=मण्डूकाः, देवहितिम्=देवैः कृतं विधानम्, जुगुपुः=गोपायन्ति, (काले काले रक्षन्ति), (अत एव) द्वादशस्य=द्वादशमासात्मकसंवत्सरस्य ऋतुम्=वसन्तादिकम्, न प्र मिनन्ति=न हिंसन्ति, संवत्सरे=वर्षे पूर्णे, प्रावृषि=वर्षर्तौ, आगतायाम्=आगते सति, घर्माः=पूर्वं घर्मकाले वर्तमानाः, तप्ताः=तापेन पीडिताः, (सम्प्रति) विसर्गम्=बिलान्मोचनम्, अश्नुवते=प्राप्नुवन्ति ।

नरः=नेता बने हुए, एते=यह मण्डूक, देवहितिम्=देवताओं के द्वारा किये गये नियमों का, अर्थात् जिस ऋतु का जो धर्म है, उस की उसी प्रकार नियम-पालन द्वारा, जुगुपुः=समय-समय पर रक्षा करते हैं, इसी लिए द्वादशस्य=बारह महीनों वाले संवत्सर के, ऋतुम्=बसंतादि ऋतुओं को, न प्रमिनन्ति=नहीं नष्ट करते, अर्थात् पर्जन्य की स्तुति का अनुमोदन करते हुए वृष्टि का कारण बन जाते हैं । संवत्सरे=वर्ष की पूर्ति पर, प्रावृषि=वर्षा ऋतु के, आगतायाम्=आने पर, घर्माः=पहिले ग्रीष्म ऋतु में रहने वाले, तप्ताः=गर्मी के सन्ताप से पीडित मण्डूक, अब विसर्गम्=बिलों से छुटकारा, अश्नुवते=प्राप्त करते हैं ।

मैकूडानल ने 'नरः' का मनुष्य (men) तथा 'घर्माः, का दूध का प्रदान करना (milk offering) अर्थ किया है । पर इस अर्थ की यहाँ संगति बिलकुल नहीं बैठती ।

संहिता-पाठः

१०. गोमायुरदादजमायुरदात्
पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।

गवां मण्डूका ददतः शतानि
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥

पद-पाठः

गोऽमायुः । अदात् । अजऽमायुः । अदात् ।
पृश्निः । अदात् । हरितः नः । वसूनि ।
गवाम् । मण्डूकाः । ददतः । शतानि ।
सहस्रऽसावे । प्र तिरन्ते । आयुः ॥१०॥

संस्कृतव्याख्याः—गोमायुः पूर्ववत्, वसूनि=धनानि, नः= अस्मभ्यम्, अदात्=ददातु, अजमायुः च, अदात्, हरितः= हरितवर्णश्च (अदात्), पृश्निः च, अदात्, (तथा) सहस्रसावे =सहस्रसंख्याका ओषधयः सूयन्त इति वर्षर्तुः सहस्रसावः, (तस्मिन् सति), मण्डूकाः, गवां शतानि=अपरिमिताः गाः ददतः=अस्मभ्यम् प्रयच्छन्तः, आयुः–जीवनम्। प्र तिरन्ते= प्रवर्धयन्तु ।

गोमायुः=गौ के समान शब्द करने वाला मेंढक, वसूनि=धनों को, नः=हमारे लिए, अदात्=देवे, अजमायुः=बकरे के समान शब्द करने वाला मेंढक भी, अदात् =धन देवे। हरितः=हरे रंग का मेंढक भी, अदात्=धन देवे, पृश्निः=चितकबरा मेंढक भी, अदात्=धन देवे तथा सहस्रसावे=हज़ारों की संख्या में जब औषधियाँ उत्पन्न होती हैं उस वर्षा ऋतु का नाम 'सहस्रसाव' है उस के आने पर, मण्डूकाः= मेंढक, गवाम्=गौओं को, शतानि सैंकड़ों की संख्या को ददतः= हम को देते हुए, आयुः=हमारे जीवन को, प्र तिरन्ते=बढ़ावें ।

मैकूडानल ने 'सहस्रसावे' शब्द का अर्थ=हजारों बार निचोड़े जाने वाले सोम रस के समय में (in a thousand fold some poressing), किया है ।

मं० १० सू० ३४

अक्ष-सूक्त (Gambler)

संहिता-पाठः

१. प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति
प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो
विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥

पद-पाठः

प्रावेपाः । मा । बृहतः । मादयन्ति ।
प्रवातेऽजाः । इरिणे । वर्वृतानाः ।
सोमस्यऽइव मौजऽवतस्य । भक्षः ।
विऽभीदकः । जागृविः । मह्यम् । अच्छान् ॥१॥

संस्कृतव्याख्याः—बृहतः=महतः, प्रवातेजाः,=प्रवणे देशे जाताः, इरिणे=आस्फारे, वर्वृतानाः=प्रवर्तमानाः, प्रावेपाः=कम्पनशीलाः (अक्षाः), मा मादयन्ति=मां हर्षयन्ति, (किं च) जागृविः=जागरणस्य कर्ता, विभीदकः=विभीतकविकारोऽक्षः, मह्यम्=माम्, अच्छान्=अत्यर्थं मादयति, (तत्र दृष्टान्तः) सोमस्येव=यथा सोमस्य, मौजवतस्य=मुजवति पर्वते जातस्य, भक्षः=पानम् (मादयति) ।

व्याकरणम्—जागृविः=‘जागृ’ धातोः ‘विन्’ ।

परिचय:—इस सूक्त का कवषऐलूष ऋषि है, त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं । मुजवान् का पुत्र मौजवत या अक्ष देवता है । इस मन्त्र में जूए के नशे का वर्णन किया है ।

बृहतः=बड़े विभीतक, (बहेड़े) के फलरूप में उपयुक्त जूए के पासे प्रवातेजाः=पहाड़ों के ढालू स्थानों पर या अधिक हवा वाले स्थानों पर पैदा होने वाले तथा इरिणे=फैलाए हुए जूआ खेलने के तख्ते पर, वर्वृतानाः=फैंके जाते हुए या खड़खड़ाते हुए या विद्यमान होते हुए, प्रावेपाः=जब हिलते हैं या बिखरते हैं, तब मा=मुझ को, मादयन्ति=मस्त कर देते हैं, और जागृविः=जय और पराजय में हर्ष और शोक के द्वारा जूए-बाजों को रात-दिन जगाने वाला, विभीदकः=जूए का पासा, मौजवतस्य=मुजवान् नाम के पर्वत पर उत्पन्न हुए, सोमस्य=सोम लता के रस के भक्षः इव=पान की तरह, मह्यम्=मुझे, अच्छान्= व्याप्त कर लेता है, अर्थात् आनन्दित बनाता है (जूए की खड़खड़ाहट को सुन कर मुझे उचित अनुचित कुछ नहीं सूझता)।

मैक्डानल ने 'अच्छान्' का अर्थ प्रसन्न करता है (has pleased me) किया है।

संहिता-पाठः

२. न मा मिमेथ न जिहीळ एषा
शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोर्
अनुव्रतामप जायामरोधम् ॥

पद-पाठः

न । मा । मिमेथ । न । जिहीळे । एषा ।
शिवा । सखिऽभ्यः । उत । मह्यम् । आसीत् ।
अक्षस्य । अहम् । एकऽपरस्य । हेतोः ।
अनुऽव्रताम् । अप । जायाम् । अरोधम् ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—एषा=मम जाया, मा=माम्, न मिमेथ=न चुक्रोध, न जिहीळे=न च लज्जितवती, सखिभ्यः=अस्मन्मित्रेभ्यः, शिवा=सुखकरी, आसीत्=अभूत्, उत=अपि च, मह्यम्, (शिवासीत्), इत्थम्, अनुव्रताम्=अनुकूलाम्, जायाम्, एकपरस्य=एकः परः प्रधानं यस्य, अक्षस्य, हेतोः=कारणात्, अहम्, अप अरोधम्=परित्यक्तवानस्मि ।

एषा=इस मेरी स्त्री ने, मा=मुझ को, न मिमेथ=कभी दुःख नहीं दिया या मुझ पर कभी क्रोध नहीं किया, न जिहीळे=न कभी अनादर किया या लजा देने वाला कोई काम किया, सखिभ्यः=मेरे मित्रों के लिए (अर्थात् जुआरियों के लिए), शिवा=सुख देने वाली, आसीत्=रही । उत=और (मेरे लिये भी सुखदायक रही), इस प्रकार अनुव्रताम्=पतिव्रता, अनुगामिनी, अनुकूल, इस जायाम्=अपनी स्त्री को एकपरस्य=मुख्य एक पासे के लिए, अहम्=मैंने, अप अरोधम्=छोड़ दिया है, अर्थात् मुझ जुआरी ने अपनी प्रिय पत्नी को भी जूए में हरा दिया है ।

संहिता-पाठः

३. द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि
न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य
नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥

पाद-पाठः

द्वेष्टि । श्वश्रूः । अप । जाया । रुणद्धि ।
न । नाथितः । विन्दते । मर्डितारम् ।
अश्वस्यऽइव । जरतः । वस्न्यस्य ।
न । अहम् । विन्दामि । कितवस्य । भोगम् ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—श्वश्रूः=जायाया माता, द्वेष्टि=निन्दति (कितवम्), जाया=भार्या, अपरुणद्धि=निरुणद्धि, नाथितः= याचमानः (कितवः), मर्डितारम्=धनदानेन सुखयितारम्, न विन्दते=न लभते, (इति चिन्तयित्वा कितवः कथयतिः—) अहम्, जरतः=वृद्धस्य, वस्न्यस्य=मूल्यार्हस्य, अश्वस्य इव, कितवस्य, भोगम्, न विन्दामि=न लभे।

जुआरी का कोई मित्र नहीं होता

श्वश्रूः=जुआरी की सास, अपनी कन्या के दुःखी रहने के कारण द्वेष्टि=अपने दामाद से द्वेष करती है, जाया=पत्नी भी, अपरुणद्धि= विरक्त हो जाती है। नाथितः=पैसा माँगने पर या दुःखी हुआ जुआरी मर्डितारम्=किसी को भी अपने लिए धन देकर सुखी करने वाला, न विन्दते=नहीं पाता, इस प्रकार बुद्धि से विचार करने पर, अहम्= मैं, वस्न्यस्य=बहुत मूल्य याले, कीमती, जरतः=वृद्ध, अश्वस्य=घोड़े की, इव=तरह, कितवस्य=जुआरी होने का, भोगम्=सुख, न विन्दामि= नहीं पाता हूँ। जैसे कीमती घोड़ा बूढ़ा हो जाने पर बेकदरी का पात्र हो जाता है वैसे ही मैं (जुआरी) भी सुखी नहीं हूँ, सब मेरा अनादर करते हैं।

मैक्डानल ने 'अपरुणद्धि' का अर्थ भगा देती है drives away) किया है, तथा 'वस्न्यस्य' बेचने के लिये ले जाया गया (is for sale) अर्थ किया है। जैसे बुड्ढे घोड़े को थोड़ी कीमत में बेच देते हैं और उसकी कदर नही होती वैसे ही जुआरी की भी कदर नहीं होती।

संहिता-पाठः

४. अ॒न्ये जा॒यां परि॑ मृशन्त्यस्य॒
य॒स्यागृ॑ध॒द्वेद॑ने वा॒ज्य॑क्षः।

पि॒ता मा॒ता भ्रात॑र एनमाहु॒र्
न जा॑नीमो॒ नय॑ता ब॒द्धमे॒तम् ॥

पद-पाठः

अ॒न्ये । जा॒याम् । परि॑ । मृ॒शन्ति॒ । अ॒स्य॒ ।
यस्य॑ । अगृ॑धत् । वेद॑ने । वा॒जी । अ॒क्षः ।
पि॒ता । मा॒ता । भ्रात॑रः । ए॒न॒म् । आ॒हुः॒ ।
न । जा॒नी॒म॒ः । नय॑त । ब॒द्धम् । ए॒तम् ॥४॥

संस्कृतव्याख्या:—यस्य=कितवस्य, वेदने=धने,वाजी=बलवान्, अक्षः=देवः, अगृधत्=अभिकांक्षां करोति, अस्य=तत्कितवस्य, जायाम्=भार्याम्, अन्ये=प्रतिकितवाः=परिमृशन्ति=वस्त्रकेशाद्याकर्षणेन संस्पृशन्ति, किं च, पिता, माता, भ्रातरः,एतं=कितवम्, आहु=वदन्ति, न जानीमः=न वयमेनं जानीमः, बद्धम्=रज्वा संयतम्, एतम्=एनम्, नयत=एनं यथेष्टं प्रदेशं प्रापय ।

जूए का दुष्परिणाम

यस्य=जिस पुरुष के, वेदने=धन पर, वाजी=बलवान्, अक्षः=जूए का पासा, अगृधत्=ललचाता है, अर्थात् जो अपनी सम्पत्ति को जूए में लगाता है, अस्य=उस पुरुष की, जायाम्=पत्नी को, अन्ये=दूसरे जुआरी, परिमृशन्ति=स्त्री के जूए में हार जाने पर उसके वस्त्र केशादि को खींचते हैं और बेइज्जती करते हैं। तथा जब उस जुआरी को राजकर्मचारी पकड़ते हैं तब, पिता=जुआरी का पिता, माता=माता, भ्रातरः=भाई,बन्धु, एनम्=इस जुआरी के बारे में, आहुः=कह देते हैं कि, न जानीमः=हम इसे नहीं जानते, एनम्=इस, बद्धम्=बेड़ी से बंधे हुए को, नयत=जल्दी कोतवाली ले जाओ ।

[1] वेडानल ने 'वाजी' का अर्थ जयशील (victorious) किया है।

संहिता-पाठः

५. यदादीध्ये न दविषाण्येभिः
परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ
एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥

पद-पाठः

यत्। आऽदीध्ये। न। दविषाणि। एभिः।
परायत्ऽभ्यः। अव। हीये। सखिऽभ्यः।
निऽउप्ताः। च। बभ्रवः। वाचम्। अक्रत।
एमि। इत्। एषाम्। निःऽकृतम्। जारिणीऽइव ॥५॥

संस्कृतव्याख्या:—यत्=यदा, (अहम्) आदीध्ये=ध्यायामि, (तदा) एभि=अक्षैः, न दविषाणि=न दूषये, न परितपामि, अथवा=न देविषामीत्यर्थः, परायद्भ्यः=स्वयमेव परागच्छद्भ्यः सखिभ्यः, अव हीये=अवहितो भवामि, किं च, बभ्रवः=बभ्रुवर्णाः, न्युप्ताः=कितवैराक्षिप्ताः (अक्षाः); वाचम्=शब्दम्, अक्रत=कुर्वन्ति, (तदा) एषाम्=अक्षाणाम्, निष्कृतम्=स्थानम्, जारिणीव=स्वैरिणीव, एमीत्=गच्छाम्येव, अक्षव्यसनेनाभिभूतः भवामि।

जुआरी की विवशता

यत्=जब, आदीध्ये=मैं विचार करता हूँ, कि एभिः=इन जूए के पासों से, न दविषाणि=न खेलूँ, और ऐसा निश्चय कर के परायद्भ्यः=जूआ खेलने के स्थान (नाल) की तरफ जाते हुए, सखिभ्यः=जुआरी

मित्रों से, अव हीये=छिप जाता हूँ या निश्चय कर लेता हूँ कि मैं जूआ नहीं खेलूंगा। परन्तु जब बभ्रवः=भूरे रंग वाले पासे, न्युप्ताः= फैंके जाते हैं, च=और, वे वाचम्=आवाज को, अक्रत=करते हैं। तब जारिणी इव=व्यभिचारिणी स्त्री की तरह, मैं भी ऐषाम्= इन पासों के, निष्कृतम्=सजे हुए खेलने के स्थान को, एमि-इत्= पहुँच ही जाता हूँ, रुक नहीं सकता।

मैक्डानल ने 'इत्' का अर्थ सीधा-एकदम (straight) किया है।

संहिता-पाठः

६. सभामेति कितवः पृच्छमानो
जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं
प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥

पद-पाठः

सभाम्। एति। कितवः। पृच्छमानः।
जेष्यामि। इति। तन्वा। शूशुजानः।
अक्षासः। अस्य। वि। तिरन्ति। कामम्।
प्रतिऽदीव्ने। दधतः। कृतानि ॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—तन्वा=शरीरेण, शूशुजानः=दीप्यमानः, कितवः, जेष्यामि इति=विजयं करिष्यामि (इति गर्वयुक्तः), पृच्छमानः=अन्वेषयन्, सभाम्, एति, (तत्र) प्रतिदीव्ने=प्रति-देवित्रे, कितवाय, कृतानि=देवनोपयुक्तकर्माणि, आदधतः= जायार्थम् मर्यादया दधतः अस्य=कितवस्य, कामम्=इच्छाम्, अक्षासः=अक्षाः, वि तरन्ति=वर्धयन्ति।

तन्वा=शरीर से, शूशुजानः=चमकता हुआ, छैला बना हुआ, कितवः=जुआरी, जेष्यामि=सब को जीत लूंगा, आज मेरे साथ कौन जूआ खेलेगा इति=इस प्रकार, पृच्छमानः=पूछता हुआ, सभाम्=जूए खेलने के स्थान पर, एति=पहुँचता है, उस समय प्रतिदीव्ने=दूसरे जुआरी के साथ, कृतानि आदधतः=दाँव लगाते-लगाते, अस्य=इस जुआरी की, कामम्=इच्छा को, अक्षासः=पासे, वितिरन्ति=और भी बढ़ाते हैं, इस प्रकार मनुष्य जूए के व्यसन में फँस जाता है।

मैक्डानल ने 'तन्वा शूशुजानः'=शरीर से काँपता हुआ (trembling with his body) अर्थ किया है, 'कामम् वितिरन्ति'=पासे दाँव पर खेलने वाले की इच्छानुसार पड़ते हैं (the dice run counter to his desire) अर्थ किया है और 'कृतानि' का अर्थ जिताने वाले पासे का पड़ना (lucky throws किया है।

संहिता-पाठः

७. अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो
निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो
मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥

पद-पाठः

अक्षासः । इत् । अङ्कुशिनः । निऽतोदिनः ।
निऽकृत्वानः । तपनाः तापयिष्णवः ।
कुमारऽदेष्णाः । जयतः । पुनःऽहनः ।
मध्वा । सम्ऽपृक्ताः । कितवस्य । बर्हणा ॥७॥

संस्कृतव्याख्या=अक्षास इत्=अक्षाः एव, अङ्कुशिनः= अंकुशवन्तः, नितोदिनः=नितोदितवन्तः, निकृत्वानः=पराजये निकर्तनशीलाः, तपनाः=संतापकाः, तापयिष्णवः=कुटुम्बस्य संतापनशीलाश्च, (भवन्ति), जयतः, कितवस्य, कुमारदेष्णाः= धनदानेन कुमाराणां दातारः (अपि च) मध्वा=मधुना, संपृक्ताः, बर्हणा=सर्वस्वहरणेन, (कितवस्य) पुनर्हणः= पुनर्हन्तारो भवन्ति।

अक्षासः=जूए के पासे, इति=निश्चय रूप से ही, अङ्कुशिनः= हाथी के ऊपर अंकुश की तरह जुआरी के ऊपर शासन करते हैं, तथा नितोदिनः=जिस तरह घोड़े या बैल आदि को चाबुक (पड़ने पर) चलाती है वैसे ही जुआरी को पासे चलाते हैं। ये पासे निकृत्वानः= जुआरी को जड़मूल से बरबाद करने वाले हैं, तपनाः=सन्ताप देने वाले हैं, तापयिष्णवः=जुआरी के कुटुम्ब को भी दुःख देने वाले हैं, जयतः कितवस्य=जीतने वाले जुआरी के भी (तपनाः) कष्ट देने वाले हैं। क्योंकि ये पासे जिस को कुमारदेष्णाः=धनादि देते हुए पुत्र होने की खुशी जैसा सुख देते हैं, और मध्वा संपृक्ता=मधु से संयुक्त अमृत के तुल्य प्रतीत होते हैं, उस जुआरी का भी ये पासे बर्हणा=सर्वस्व हरण कर के भी, पुनः हनः=फिर कभी नाश कर देने वाले होंगे।

मैक्डानल ने 'अंकुशिनः' का शाब्दिक अर्थ (literel meaning) लेते हुए अंकुश वाला (hooked) आदि अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

८. त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां
देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते
राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति॥

पद-पाठः

त्रिऽपञ्चाशः । क्रीळति । व्रातः । एषाम् ।
देवःऽइव । सविता । सत्यऽधर्मा
उग्रस्य । चित् । मन्यवे । न । नमन्ते ।
राजा । चित् । एभ्यः । नमः इत् । कृणोति ॥८॥

संस्कृतव्याख्याः—एषाम्=अक्षाणाम्, त्रिपञ्चाशः, व्रातः= सघः, क्रीळति=आस्फारे विहरति, सत्यधर्मा, सविता=सर्वस्य जगतः प्रेरकः सूर्यः, देव इव, (तद्वत्), (किं च) उग्रस्य चित्= क्रूरस्यापि, मन्यवे=क्रोधाय, (एते अक्षाः) न नमन्ते=न प्रह्वी-भवन्ति, (न वशे वर्तन्त इत्यर्थः), राजा चित्=ईश्वरोऽपि, एभ्यः, नम इत्=नमस्कारमेव, कृणोति=करोति ।

सत्यधर्मा=नियम पर चलने वाले, सविता देवः=सूर्य देव के समान, एषाम्=इन पासों का, त्रिपंचाशः=५३ संख्या वालों का, व्रातः=समुदाय, क्रीडति=जूए के तख्ते पर खेला जाता है। ये पासे उग्रस्य चित् मन्यवे=भयंकर से भयंकर पुरुष के क्रोध के आगे, न नमन्ते=नहीं झुकते, अर्थात् क्रोधी को भी अपने वश में कर लेते हैं। राजा चित्=राजा भी, एभ्यः=इन पासों के लिए, नमः इत्=नमस्कार ही, कृणोति=करता है। अर्थात् राजा भी इनके फंदे में पड़ जाता है, अतः राजा को भी इन्हें दूर से ही नमस्कार करना चाहिए।

संहिता-पाठः

९. नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्य्
अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः
शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥

पद-पाठः

नीचाः । वर्तन्ते । उपरि । स्फुरन्ति ।
अहस्तासः । हस्तऽवन्तम् । सहन्ते ।
दिव्याः । अङ्गाराः । इरिणे । निऽउप्ताः ।
शीताः । सन्तः । हृदयम् । निः । दहन्ति ॥८॥

संस्कृतव्याख्या:—नीचाः=नीचीनस्थले, वर्तन्ते, (तथापि) उपरि=पराजयाद् भीतानां हृदयस्योपरि, स्फुरन्ति, अहस्तासः=हस्तरहिताः, हस्तवन्तम्, सहन्ते=पराजयकरणेनाभिभवन्ति, दिव्याः=दिवि भवाः, अङ्गाराः=अङ्गारसदृशाः अक्षाः, इरिणे=इन्धनरहिते आस्फारे, न्युप्ताः, शीताः=शीतस्पर्शाः, सन्तः, हृदयं, निर्दहन्ति=पराजयजनितसन्तापेन भस्मीकुर्वन्ति ।

ये जूए के पासे नीचा वर्तन्ते=नीचे तख्ते पर डाले जाते हैं, परन्तु उपरि स्फुरन्ति=जुआरिओं के ऊपर प्रभाव रखते हैं, अहस्तासः=इन पासों के हाथ नहीं होते, परन्तु हस्तवन्तम्=हाथ वाले जुआरी को, सहन्ते=दबा लेते हैं, इरिणे=जूए के तख्ते पर, नि-उप्ताः=फैंके गये ये पासे, दिव्याः=अनोखे, अङ्गाराः=अंगारे हैं, जो शीताः=ठण्डे, सन्तः=होते हुए, भी हृदयम्=हृदय को, निर्दहन्ति=जलाते हैं ।

संहिता-पाठः

१०. जाया तप्यते कितवस्य हीना
माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो
ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥

पद-पाठः

जाया । तप्यते । कितवस्य । हीना ।
माता । पुत्रस्य । चरतः । क्व । स्वित् ।
ऋणऽवा । बिभ्यत् । धनम् । इच्छमानः ।
अन्येषाम् । अस्तम् । उप । नक्तम् । एति ॥१०॥

संस्कृतव्याख्या :—क्व स्वित् = क्वापि, चरतः = निर्वेदाद् गच्छतः कितवस्य, जाया, हीना=परित्यक्ता सती, तप्यते= वियोगतप्ता भवति, माता (जनन्यपि), पुत्रस्य (क्वापि चरतः) (पुत्रशोकसंतप्ता भवतीत्यर्थः), ऋणावा=ऋणवान् कितवः, बिभ्यद्धनम्=स्तेनजनितम् धनम्, इच्छमानः=कामयमानः, अन्येषाम्=ब्राह्मणादीनाम्, अस्तम्=गृहम्, नक्तम्, उप एति=चौर्यार्थमुपगच्छति ।

जब जुआरी सब कुछ हार कर घर छोड़ कर भाग जाता है तब कितवस्य=जुआरी की, हीना=बिछुड़ी हुई, जाया=स्त्री, तप्यते=भोजनादि न मिलने से दुःखी होती है। क्व स्वित्=इधर उधर कहीं भी लापता, चरतः=भटकते हुए, पुत्रस्य=जुआरी बेटे की, माता=माता भी तड़पती है, ऋणवा=कर्जदार होकर जुआरी, बिभ्यत् = कर्जे वाले से डरता हुआ, भागा फिरता है। तथा धनम्, इच्छमानः=धन को चाहता हुआ, अन्येषां=दूसरों के, अस्तम्=घरों पर, नक्तम्=रात में, उपैति=चोरी के लिए सेंध, या नकब लगाने के लिए पहुँचता है।

संहिता-पाठः

११. स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापा-
न्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।

पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्
सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥

पद-पाठः

स्त्रियम् । दृष्ट्वाय कितवम् । ततापु ।
अन्येषाम् । जायाम् । सुऽकृतम् । च । योनिम् ।
पूर्वाह्णे । अश्वान् युयुजे । हि । बभ्रून् ।
सः । अग्नेः । अन्ते । वृषलः । पपाद ॥११॥

संस्कृतव्याख्या :—कितवम् = कितवः अन्येषाम्, जायाम् =धर्मपत्नीभूताम् स्त्रियम् = नारीम्, सुकृतम् = सुष्ठु कृतम् (कर्म), योनिम्=गृहम् च, दृष्ट्वाय=ज्ञात्वा, ततापः=तप्यते, पूर्वाह्णे=प्रातः, बभ्रून्=बभ्रुवर्णान् अश्वान्=व्यापकानक्षान् , युयुजे =युनक्ति, (पुनः) वृषलः=वृषलकर्मा, सः=कितवः, अग्नेः, अन्ते = समीपे, पपाद=शीतार्तः सन् शेते ।

कितवम्=यह जुआरी, अन्येषाम्=औरों की, जायाम् स्त्रियम्= धर्मपत्नी को, सुकृतम् योनिम्= सुन्दर महलों को, दृष्ट्वाय=देख कर, ततापः=दुःखी होता है, या स्त्री आदि का देखना जुआरी को दुःख देता है कि हाय ! मैंने सब कुछ खो दिया, पर फिर भी हि=क्योंकि, वह पूर्वाह्णे=प्रातःकाल, फिर बभ्रून्=भूरे रंग वाले, अश्वान् = पासों को, युयुजे=दाँव पर फैंकता है, अतः निर्धन बना हुआ, वृषलः=नीच, सः=वह जुआरी, वस्त्र न होने के कारण जाड़े की रात्रि में, काँपता हुआ, अग्नेः=अग्नि के, अन्ते=समीप में, पपाद=पड़ा रहता है और इस प्रकार रात्रि को व्यतीत करता है ।

मैक्डानल ने शब्दार्थ (literal meaning) लेते हुए 'अश्वान्' का अर्थ घोड़े (horses) किया है और 'वृषलः' का अर्थ मंगता (beggar) किया है।

संहिता-पाठः

१२. यो वः सेनानीर्महतो गणस्य
राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि
दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि॥

पद-पाठः

यः। वः। सेनाऽनीः। महतः। गणस्य।
राजा। व्रातस्य। प्रथमः। बभूव।
तस्मै। कृणोमि। न। धना। रुणध्मि।
दश। अहम्। प्राचीः। तत्। ऋतम्। वदामि॥१२॥

संस्कृतव्याख्याः—हे अक्षाः, वः=युष्माकम्, महतः, गणस्य=संघस्य, यः=अक्षः, सेनानीः=नेता, बभूव=भवति, व्रातस्य च, राजा=ईश्वरः, प्रथमः=मुख्यो बभूव, तस्मै=अक्षाय, कृणोमि=अहमञ्जलिं करोमि, (अतः परम्) धनाः=धनानि, न रुणध्मि=न संपादयामि (अक्षार्थम्), अहम्, दश=दशसंख्याकाः (अङ्गुलीः), प्राचीः=प्राङ्मुखीः करोमि, तत्=एतत् (अहम्), ऋतम्=, सत्यम्, वदामि।

हे मेरे दुष्कर्मो ! वः=तुम्हारे, महतः=बड़े भारी, गणस्य=५२ संख्या वाले समुदाय का, यः=जो पासा, सेनानीः=नायक है, अर्थात्

मुख्य पासा है, तथा व्रातस्य=तुम्हारे (पासों) के समूह में, प्रथमः=मुख्य या राजा, बभूव=है, तस्मै=उस पासे के लिए, अहम्=मैं, दश=दशों अंगुलियाँ, प्राचीः=पूर्व की ओर, करोमि=करता हूँ, अर्थात् दोनों हाथों से प्रणाम करता हूँ जिससे ये पासे मुझ से दूर ही रहें। इन पासों द्वारा, धना=धनों को, न रुणध्मि=नहीं चाहता हूँ, तत्=यह, ऋतम् वदामि=मैं सत्य ही कहता हूँ।

मैक्डानल ने 'राजा' शब्द को उपमा के लिए माना है और राजा की तरह (is king) अर्थ किया है। 'रुणध्मि' का अर्थ रोकना (with hold) किया है।

संहिता-पाठः

१३. अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित् कृषस्व
वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥

पद-पाठः

अक्षैः। मा। दीव्यः। कृषिम्। इत्। कृषस्व।
वित्ते। रमस्व। बहु। मन्यमानः।
तत्र। गावः। कितव। तत्र। जाया। तत्।
मे। वि। चष्टे। सविता। अयम्। अर्यः ॥१३॥

संस्कृतव्याख्या:—हे कितव! बहु, मन्यमानः=मद्वचने विश्वासं कुर्वन् त्वम्, अक्षैर्मा दीव्यः=द्यूतं मा कुरु, कृषिमित्=कृषिमेव, कृषष्व=कुरु, वित्ते=कृष्या संपादिते धने, रमस्व=रतिं कुरु, तत्र=कृषौ, गावः, (भवन्ति), तत्र जाया (भवति),

तत्=तत एव, सविता=सर्वस्य प्रेरकः, अयम्, दृष्टिगोचरः, अर्यः—ईश्वरः विचष्टे=विविधमाख्यातवान् ।

अक्षैः=पासों से, मा दीव्यः=मत खेलो, कृषिम् इत् कृषस्व=खेती ही करो, वित्ते=खेती के द्वारा प्राप्त हुए धन में, रमस्व=सुखी रहो, बहुमन्यमानः=उसी धन को बहुत मानते रहो, हे कितव=हे जुआरी, तत्र=उसी धन में, गावः=गौएँ, तत्र=उसी में, जाया=पत्नी है, अर्थात् गोदुग्धादि भोज्यपदार्थ और दाम्पत्यसुख सब कुछ खेती से प्राप्त हुए धन में ही मिलेगा, सविता=संसार को उत्पन्न करने वाला, अर्यः=स्वामी, ईश्वर या न्यायकारी, अयम्=यह भगवान्, तत्=इस आदेश को, मे=मेरे लिए, विचष्टे=दे रहा है ।

संहिता-पाठः

१४. मि॒त्रं कृ॑णुध्वं॒ खलु॑ मृ॒ळता॑ नो॒
मा नो॑ घो॒रेण॑ चरता॒भि धृ॒ष्णु ।
नि वो॒ नु म॒न्युर्वि॑शता॒मरा॑तिर्
अ॒न्यो ब॑भ्रू॒णां प्रसि॑तौ॒ न्व॑स्तु ॥

पद-पाठः

मि॒त्रम् । कृ॒णु॒ध्व॒म् । खलु॑ । मृ॒ळत॑ । नः॒ ।
मा । नः॒ घो॒रेण॑ । च॒र॒त॒ । अ॒भि । धृ॒ष्णु ।
नि । वः॒ । नु । म॒न्युः । वि॒श॒ता॒म् । अरा॑तिः ।
अ॒न्यः । ब॒भ्रू॒णाम् । प्रऽसि॑तौ । नु । अ॒स्तु ॥१४॥

संस्कृतव्याख्याः—हे अक्षाः, यूयम्, मित्रम् कृणुध्वम्=अस्मासु मैत्रीम् कुरुत, खलु, न=अस्मान्, मृळत=सुखयत च, नः,=अस्मान्, धृष्णु=धृष्णुना, घोरेण=असह्येन, मा अभि

चरत=मा गच्छत, वः=युष्माकम्, मन्युः=क्रोधः, अरातिः= अस्माकं=शत्रुः, निविशताम्=अस्मच्छत्रुषु तिष्ठतु, अन्यः= कश्चित् शत्रुः, बभ्रूणाम् (युष्माकम्), प्रसितौ=प्रबन्धने, नु= क्षिप्रम्, अस्तु=भवतु ।

हे पासो ! तुम मित्रम् कृणुध्वम्=मेरे साथ मैत्री करो, मुझ से द्वेष मत करो, मैं बहुत बरबाद हो लिया, खलु=निश्चय करके, नः= मुझे, मृळत=सुखी करो, धृष्णु=दबाने वाले, घोरेण=भयंकर (असह्य) अपने स्वभाव से, नः=मेरे ऊपर, मा अभिचरत=मत प्रभाव जमाओ, मेरा पीछा छोड़ दो । हे पासो ! वः=तुम्हारा, मन्यु=क्रोध, अरातिः= हमारा नाशक है, जो कि नु=शीघ्र ही, निविशताम्=हमारे शत्रुओं पर पड़े, बभ्रूणाम्=भूरे रंग वाले तुम पासों के, प्रसितौ=जाल में या बन्धन में, अन्यः=कोई हमारा शत्रु ही, नु=शीघ्र, अस्तु=फँसे ।

मैक्डानल ने 'मृळत' का अर्थ दयालु बनो (be gracious) किया है । 'अभिचरत' का=जबरदस्ती अपनी ओर जादू के समान आकृष्ट मत करो (do not forcibly bewitch) 'निविशताम्' का=शान्त हो जाओ (come to the rest) किया है ।

—:०:—

मं० १० सू० १२९

सृष्ट्युत्पत्ति-सूक्त

संहिता-पाठः

१. नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्न्-
अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

पद-पाठः

न । असत् । आसीत् । नो इति । सत् । आसीत् । तदानीम् । न आसीत् । रजः । नो इति । विऽओम । परः । यत् । किम् । आ । अवरीवरिति । कुह । कस्य । शर्मन् । अम्भः । किम् । आसीत् । गहनम् । गभीरम् ॥ १ ॥

संस्कृतव्याख्या:—तदानीम्=प्रलयदशायाम्, असत्=निरुपाख्यम्, न आसीत्, (तथा) नो सत्=नैव सदात्मवत् सत्त्वेन निर्वाच्यम्, आसीत्, नासीद्रजः=पातालादयः पृथिव्यन्ता नासन्नित्यर्थः, व्योम=अन्तरिक्षम्, नो=नैवासीत्, परः=व्योम्नः परस्तात्, यत्=यत्किञ्चिदस्ति (तदपि नासीत्), किम्, आवरीवः=आवरणीयं तत्त्वम्, (नासीदित्यर्थे प्रश्नः) कुह=कुत्र, कस्य, शर्मन्=शर्मणि (कस्य जीवस्य शर्मणि तदावरकमावृणुयात्) गहनम्=दुष्प्रवेशम्, गभीरम्=अत्यगाधम्, अम्भः, किमासीत्, तदा न किञ्चिदासीदिति ।

व्याकरणम्—आवरीवः=आवृणोतीति आवरणो वा आवरिः औणादिक ई आवृ+ई मतुबर्थे 'अ' प्रत्ययः 'अन्येषामपि दृश्यते' इति दीर्घः ।

परिचयः—इस सूक्त का परमेष्ठी नाम का प्रजापति ऋषि है। सृष्टि, स्थिति, प्रलय आदि का कर्ता परमात्मा देवता है। त्रिष्टुप् छन्द है।

'तपसः तत् महिना अजायत एकम्' इत्यादि मन्त्रों से सृष्टि का निरूपण ऋग्वेद के अगले मन्त्रों में आगे करेंगे। अब सृष्टि से पहली प्रलयावस्था का वर्णन करते हैं।

उस प्रलय दशा में इस जगत् का मूल कारण—असत्=शशविषाण

के समान निरुपाख्य (अभावात्मक), न=नहीं, आसीत्=था, क्योंकि ऐसे कारण से भावरूप जगत् उत्पन्न नहीं हो सकता, तथा नो=नहीं, सत्=सत्ता वाला जिसे भावरूप से (निर्वाच्य) कहा जा सके ऐसा, आसीत्=था, अर्थात् सत् असत् से विलक्षण अनिर्वाच्य ही जगत् का कारण था। "नो सत्" इस पद से यदि आत्मा की पारमार्थिक सत्ता का निषेध किया जाता है तो आत्मा निरुपाख्य हो जायगा। यदि कहो कि यहाँ आत्मा का निषेध नहीं किया गया क्योंकि "आनीत् अवातम्" इत्यादि मन्त्रभाग से आत्मा की सत्ता आगे बतलाई जायगी, अतः "नो सत्" इस वाक्य से परिशेष न्याय के द्वारा माया या प्रकृति की सत्ता का निषेध किया गया है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि इस अवस्था में "तदानीम्" यह विशेषण निरर्थक हो जायगा। एवं माया की पारमार्थिक सत्ता के निषेध का यह प्रकरण भी नहीं, क्योंकि माया की पारमार्थिक सत्ता व्यवहार दशा में भी नहीं, मानी जाती। इसलिए व्यावहारिक सत्ता वाले पृथिवी आदि पाँच महाभूतों की जब प्रलय के समय कारणरूप में सत्ता थी तब "नो सत्" यह निषेध उचित नहीं। इस शंका का उत्तर देने के लिए कहते हैं कि—रजः=लोक भी, न आसीत्=उस समय नहीं थे। यहाँ पर 'रजः' शब्द को जातिपरक मान कर 'रजः' इस एक वचन का प्रयोग किया गया है, अर्थात् पाताल आदि सातों लोक भी उस समय न थे। तथा व्योम=आकाश लोक भी, नो=नहीं था, और यत्=जो, परः=आकाश के आगे रहने वाले द्युलोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त सात लोक हैं वे भी नहीं थे, इस प्रकार चौदह भुवनों वाला ब्रह्मांड भी अपने रूप में नहीं था। आवरीवः=आवरण करने वाला, आकाशादि रूप पदार्थ भी आवरणीय के न होने से, किम्=चर्चा का विषय नहीं बन सकता। वह आवरण करने वाला तत्त्व, कुह=जिस जगह पर रहे वह आधारभूत प्रदेश भी नहीं था, कस्य=किसी भी

भोक्ता जीव के, शर्मन्=सुख-दुःखानुभव रूपी भोग के होने पर ही वह आवरण करने वाला पदार्थ आवरण करने वाला कहा जा सकता है अथवा नहीं। जीवों के उपभोग के लिए सृष्टि बनती है। वे जीव तब विलीन थे इस लिए वे भी आवरण की सत्ता के कारण नहीं बन सकते थे, अर्थात् भोग्य-प्रपंच और भोक्तृ-प्रपंच दोनों ही नहीं थे सब के निषेध करने से जल का भी निषेध संभव है किन्तु 'आपो ह वा इदं अग्रे सलिलमासीत्' तै० संहिता ७-१-५-१ इस श्रुति के आधार पर कोई उस समय जल की सत्ता न मान बैठे इस लिए उसका पृथक् निषेध करते हुए कहते हैं कि, गहनम्=दुष्प्रवेश, गभीरम्=अत्यन्त अगाध, अम्भः=जल, किम्=क्या, आसीत्=था, अर्थात् वह भी नहीं था। उक्त तैत्तिरीयसंहिता का वचन अवान्तर प्रलय का निर्देश करता है, महाप्रलय नहीं।

मैक्डानल ने 'रजः' का अर्थ वायु (not the air) किया है। 'किम् आवरीवः' किसे अपने में रखता (what did it contain) किया है। 'कस्य शर्मन्' का अर्थ किस की रक्षा (in whose protection) किया है।

संहिता-पाठः

२. न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥

पद-पाठः

न। मृत्युः। आसीत्। अमृतम्। न। तर्हि।
न। रात्र्याः। अह्नः। आसीत्। प्रऽकेतः।

आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् ।
तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥२॥

संस्कृतव्याख्याः—(तदानीम्) न मृत्युरासीत्, तर्हि=प्रतिहारसमये, अमृतम्, न=अमरणमपि नासीत्, रात्र्याः, अह्नः च, प्रकेतः=प्रज्ञानम्, न आसीत, स्वधया=मायया, (युक्तम् ब्रह्म) (एकब्रह्म आसीदिति तात्पर्यम्) तस्मात्=मायायुक्तात् ब्रह्मणः, अन्यत् किं चन, न आस=न बभूव, परः=परस्तात् (सृष्टेरूर्द्ध्वं वर्तमानमिदं जगत्—तदपि न बभूवेत्यर्थः) तत्=ब्रह्मतत्त्वम्, आनीत्=प्राणितवत्, अवातम्, एकम्, आसीदिति ।

व्याकरणम्—प्रकेतः=प्र+कित+घञ् ।

इस प्रकार सर्वसंहार होने पर क्या संहार करने वाला मृत्यु ही उस समय था इस का उत्तर देते हैं कि—मृत्युः=मृत्यु (यम), न=नहीं, आसीत्=था, मारने वाले के न होने पर सब अमर हो जावेंगे इसलिए कहते हैं कि अमृतम्=अमरण, अर्थात् प्राणियों की स्थिति भी, तर्हि= उस प्रलय के समय, न=नहीं थी । रात्र्याः=रात्रि का अह्नः=दिन का, प्रकेतः=ज्ञान, न=नहीं, आसीत्=था, क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा ही नहीं थे । ("तदानीम्" यह कालवाची व्यवहार तो उपचार से किया गया है) । तत्=वह ब्रह्मतत्त्व ही, आनीत्=प्राण, (सत्ता) वाला था, और वह अवातम्=अपनी क्रिया से शून्य था, तथा स्वधया=माया के साथ (स्वस्मिन् ब्रह्मणि धीमते इति स्वधा=माया), एकम्=अविभाग रूप में था, तस्मात्=उक्त मायासहित ब्रह्म से, अन्यत्=भिन्न, किं चन=कुछ भी पदार्थ, ह=निश्चय रूप से, न आस=नहीं था, परः=सृष्टि से पूर्व यह जगत् भी, न=नहीं था ।

संहिता-पाठः

३. तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑
ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॑त्
तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑य॒तैक॑म् ॥

पद-पाठः

तम॑ः । आ॒सी॒त् । तम॑सा । गू॒ळ्हम् । अग्रे॑ ।
अ॒प्र॒ऽके॒तम् । स॒लि॒लम् । सर्व॑म् । आ॒ः । इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येन॑ । आ॒भु । अपि॑ऽहितम् । यत् । आसी॑त् ।
तप॑सः । तत् । म॒हि॒ना । अ॒जा॒य॒त । एक॑म् ॥३॥

संस्कृतव्याख्याः—अग्रे=सृष्टेः प्राक्, (जगत्) तमसा=अन्धकारेण, गूळ्हम्=आवृतम्, तमः=भावरूपाज्ञानं मूलकारणम्, आसीत्, तच्च, अप्रकेतम् =अप्रज्ञायमानम्, सलिलम्=चलम्, इदम्=दृश्यमानम्, सर्वम्=जगत् सर्वम्, आः=आसीत्, आभु=समन्ताद् भूतम्, तुच्छ्येन=तुच्छकल्पनेन भावरूपाज्ञानेनेत्यर्थः, अपिहितम्=आच्छादितम्, आसीत्, एकम्=एकीभूतम्, तमसः=स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपस्य, महिना=माहात्म्येन, अजायत=उत्पन्नम् ।

व्याकरणम्—सलिलम्='षल' गतौ इलच् ।

इस प्रकार यदि जगत् नहीं था तो फिर किस प्रकार उत्पन्न हुआ। इसलिए कहते हैं कि—अग्रे=सृष्टि से पहले प्रलयदशा में, सारा जगत् माया नाम के तमसा=अज्ञान से, गूढम्=आच्छादित, आसीत्=था, और यह जगत् भी तमः=अपने मूल कारण में ही, आसीत्=था,

तथा कर्म और कर्ता रूप दोनों तब अप्रकेतम्=अज्ञायमान थे, नाम और रूप से रहित थे, क्योंकि इदम्=यह अब दिखाई पड़ने वाला, सर्वम्=सारा संसार, सलिलम्=कारण के साथ अविभाग रूप में ही, आः=आस=था। या सलिलम् यह दृष्टान्त है, जैसे दूध और पानी मिले होते हैं वैसे कार्य और कारण मिले हुए थे। यत्=जो जगत्, आभु=व्यापक, तुच्छयेन=अभावरूप अज्ञान से, अपिहितम्=आच्छादित, आसीत्=था, तत्=वह, एकम्=कारण के साथ मिला हुआ यह जगत्, तपसः=ईश्वर के संकल्परूपी तप से, महिना=विस्तार के साथ, अजायत=उत्पन्न हुआ।

मैक्डानल ने 'आः इदम्' का अर्थ भावरूप में आने वाला (Coming into being) किया है। तथा 'तपसः' का अर्थ (heat) 'महिना' का शक्ति (power) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

४. कामस्तदग्रे समवर्तताधि
मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्
हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥

पद-पाठः

कामः। तत्। अग्रे। सम्। अवर्तत। अधि।
मनसः। रेतः। प्रथमम्। यत्। आसीत्।
सतः। बन्धुम्। असति। निः। अविन्दन्।
हृदि। प्रतिऽइष्य। कवयः। मनीषा॥४॥

संस्कृतव्याख्याः—अग्रे=प्राक्, कामः=इच्छा (सिसृक्षा), समवर्तत=समजायत, मनसः=अन्तःकरणसम्बन्धि, रेतः=

बीजभूतम्, प्रथमम्, यत् = यतः, आसीत्=अभवत्, सतः= सत्त्वेनानुभूयमानस्य जगतः, बन्धुम्=बन्धुहेतुकं कर्म, कवयः= क्रान्तदर्शिनो योगिनः, हृदि=हृदये, मनीषा=बुद्ध्या प्रतीष्य= विचार्य, असति=सद्विलक्षणे कारणे, निरविन्दन्= निष्कृष्यालभन्त।

व्याकरणम्—प्रतीष्य=प्रति+'इष्' इच्छायाम्, 'अन्येषामपि' इत्यनेन दीर्घः।

ईश्वर ने जो संकल्प किया वह किस कारण से किया इस शंका का उत्तर देते हैं कि:—तत्=इसलिए, अग्रे=विकाररूप सृष्टि से उत्पन्न होने से पूर्व, परमेश्वर के मन में कामः=संसार बनाने की इच्छा, समवर्तत=उत्पन्न हुई, जो संकल्प मनसः अधि=वासना रूप से अवशिष्ट माया में विलीन सब प्राणियों के अन्तःकरण में रहता था, अर्थात् उस संकल्प का आधार प्राणियों का मन था ब्रह्म नहीं, रेतः= भावी प्रपंच का कारण, प्रथमम् =पहले कल्प में किया गया प्राणियों का पुण्य अपुण्य रूपी कर्म, यत्=जिस कारण से सृष्टि काल में, आसीत्=भूष्णु ? बढ़ने वाला या फलोन्मुख बना, जिस के कारण परमेश्वर के मन में सिसृक्षा उत्पन्न हुई सतः—भावरूप से प्रतीयमान जगत् के बन्धुम्=बन्धन के कारण उस कर्मस्वरूप को, कवयः=तीन कालों को जानने वाले योगी, हृदि=हृदय में स्थित, मनीषा=बुद्धि से, प्रतीष्य=विचार कर के, असति=भाव से विलक्षण अव्याकृत कारण में, निः=अविन्दन्=विवेकपूर्वक जानने में समर्थ हुए।

मैक्डानल ने 'रेतः' का अर्थ कारण (seed) किया है। इस मन्त्र का अर्थ शब्दार्थ के रूप में मुग्धानल ने यहाँ ठीक किया है।

संहिता-पाठः

५. तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषाम्
अधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्
स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥

पद-पाठः

तिरश्चीनः । विऽततः । रश्मिः । एषाम् ।
अधः । स्वित् आसी३त् । उपरि । स्वित् । आसी३त् ।
रेतःऽधाः । आसन् । महिमानः । आसन् ।
स्वधा । अवस्तात् । प्रऽयतिः । परस्तात् ॥५॥

संस्कृतव्याख्याः—एषाम्=अविद्याकामकर्मणाम्, रश्मिः=व्यापकतारूपकार्यवर्ग, विततः=विस्तृतः, आसीत्, 'स्वित्' वितर्के, (तत किम्) तिरश्चीनः=तिरश्चाम्, किं वा, अधः=अधस्तात्, आसीत्, (अथवा) उपरि, (आसीत्), (तदेव विभजते—) (केचिद् भावाः) रेतोधाः=बीजभूतस्य कर्मणो विधातारः भोक्तारश्च आसन्, (अन्ये) महिमानः=विपदादयो योग्याः आसन्, (तत्र भोक्तृभोग्ययोर्मध्ये), स्वधा=अन्नम्, अवस्तात = अवरः निकृष्ट आसीत्, प्रयतिः=भोक्ता, परस्तात्=उत्कृष्ट आसीत्, भोग्यप्रपञ्चभोक्तृप्रपञ्चस्य शेषभूतं कृतवानित्यर्थः।

एषाम्=इन ('नासदासीत्' इस मन्त्र से कही गई अविद्या "कामस्तदग्रे" इस मन्त्र से कहा गया संकल्प. "मनसो रेतः" चौथे मन्त्र के इस भाग से कहा गया सृष्टि का कारण, इन) तीनों कारणों का, रश्मिः=सूर्य की किरण के समान, निमेषमात्र में व्याप्त होने वाला

सूर्यवर्ग, विततः=विस्तृत, आसीत् =था, वह कार्यवर्ग सब से पहले तिरश्चीनः=क्या टेढ़े रूप में अवस्थित था अर्थात् क्या वह मध्य में वर्तमान था ? स्वित् =क्या, अधः=नीचे वर्तमान था, स्वित् =क्या उपरि=ऊपर, आसीत् =विद्यमान था ? अर्थात् उत्पन्न हुआ कार्य जो एक क्षण में विद्यमान होता है वह सब जगह एकदम उत्पन्न हुआ इसलिए यह नहीं जाना जा सकता कि पहले बीच में उत्पन्न हुआ, नीचे उत्पन्न हुआ या ऊपर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उत्पन्न हुए जगत् में कुछ पदार्थ, रेतोधाः=बीजरूपी कर्म के बनाने वाले, जीवरूप में आसन्=थे, कुछ पदार्थ महिमानः=आकाशादि महान् रूप में, आसन् =थे, इस भोक्ता और भोग्य रूप सृष्टि में, स्वधा=भोग्य पदार्थ, अवस्तात् =निकृष्ट माना जाता है। प्रयतिः=प्रयत्न करने वाला, या प्रकर्ष रूप में नियम करने वाला भोक्ता, परस्तात् =उत्कृष्ट माना जाता है।

मैक्डानल ने 'रश्मिः' का रस्सी (cord) अर्थ किया है 'तिरश्चीनः' का आरपार (across) अर्थ किया है। 'महिमानः' का शक्तियाँ (powers) अर्थ किया है। 'स्वधा' का अदृश्य शक्ति (energy), 'प्रयतिः' का मानसिक शक्ति (impulse) अर्थ किया है।

संहिता-पाठः

६. को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना-
था को वेद यत आबभूव ॥

पद-पाठः

कः । अद्धा । वेद । कः । इह । प्र । वोचत् ।
कुतः । आऽजाता । कुतः । इयम् । विऽसृष्टिः ।
अर्वाक् । देवाः । अस्य । विऽसर्जनेन ।
अथ । कः । वेद । यतः । आऽबभूव ॥६॥

संस्कृतव्याख्याः—कः=पुरुषः, अद्धा=पारमार्थ्येन, वेद=जानाति, कः वा इह=अस्मिन् लोके, प्र वोचत्=प्रब्रूयात्, इयम्=दृश्यमाना विसृष्टिः=विविधा सृष्टिः, कुतः=कस्मादुपादानात्, कुतः=कस्मान्निमित्तकारणाच्च, आजाता=समन्तात् प्रादुर्भूता, (इति को वेद), देवाः च, अस्य=जगतः, विसर्जनेन विविधसृष्ट्या, अर्वाक्=अर्वाचीनाः, कृताः पश्चात्सृष्टाः इत्यर्थः, अथ=एवं सति, को वेद, यतः=कारणात्, (जगत्), आबभूव=अजायत ।

इस प्रकार भोक्ता और भोग्य रूप से दो प्रकार की सृष्टि बतला दी गई । अब यह सृष्टि-विज्ञान कितना दुर्ज्ञेय और दुरूह है यह बतलाते हैं :—

कः=कौन मनुष्य, अद्धा=निश्चित रूप से, वेद=जानता है, कः=और कौन, इह=इस लोक में, प्रवोचत्=सृष्टि का विवरण बता सकता है, इयम्=यह दिखाई पड़ने वाली, विसृष्टिः=विविध प्रकार की सृष्टि, कुतः=किस नियति कारण से, हम सब लोग, सृष्टि आजाता=अच्छे प्रकार से उत्पन्न हुई, और कुतः=किस उपादान कारण से (आजाता=उत्पन्न हुई) ये दोनों बातें, कः=कौन, वेद=जानता है जो विस्तार से बता सके । कोई कहे कि देवगण इस तत्त्व को जानते होंगे तो इसका उत्तर देते हैं कि देवाः=देवगण, अस्य=इस संसार के, विसर्जनेन=विविध रूप से बनने के बाद, अर्वाक्=अनन्तर, भूत अर्थात्

भौतिक सृष्टि के बाद में उत्पन्न हुए हैं। अतः अपने से पूर्व काल की सृष्टि को वे नहीं जान सकते, उन से भिन्न कः=कौन मनुष्यादि, वेद= इस जगत् के कारण को जानता है, यतः=जिस कारण से आबभूव= यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है।

संहिता-पाठः

७. इयं विसृष्टिर्यत आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥

पद-पाठः

इयम् । विऽसृष्टिः । यतः । आऽबभूव ।
यदि । वा । दधे । यदि । वा । न ।
यः । अस्य । अधिऽअक्षः । परमे । विऽओमन् ।
सः । अङ्ग । वेद । यदि वा । न । वेद ॥७॥

संस्कृतव्याख्याः—यतः=उपादानभूतात् परमात्मनः, इयम्, विसृष्टिः, आबभूव=समन्ताज्जाता, 'सोऽपि किल' यदि वा, दधे=धारयति, यदि वा न, (एवं कोऽन्यो धर्तुं शक्नुयात्), अस्य=जगतः, यः, अध्यक्षः=ईश्वरः, परमे=उत्कृष्टे, सत्यरूपे, व्योमन्=आकाशवत् निर्मले स्वप्रकाशे, (प्रतिष्ठितः), सो अङ्ग=स ईश्वरः 'अङ्ग इति प्रसिद्धौ', अपि, वेद=जानाति, यदि वा, न वेद=न जानाति, सर्वज्ञ ईश्वर एव तां जानीयादित्यर्थः।

इस प्रकार जैसे इस जगत् का निर्माण दुर्विज्ञेय है उसी प्रकार निर्मित जगत् का यथावत् पालन भी कठिन है—

यतः=जिस उपादान कारण से, इयम् विसृष्टिः=यह पहाड़, नदी समुद्रादि रूप विचित्र सृष्टि, आबभूव=उत्पन्न हुई है, वह कारण भी यदि वा=अथवा, दधे=सृष्टि को धारण किये हुए है, यदि वा=अथवा नहीं धारण किये हुये है, अर्थात् जिसने सृष्टि को बनाया यदि धारण कर सकता है तो वही धारण कर सकता है, अन्य नहीं। यः=जो, अस्य= इस जगत् का, अधि-अध्यक्षः=ईश्वर है, वह परमे=उत्कृष्ट, व्योमन्=आकाश के समान अपने प्रकाश में, या अपने आनन्द स्वरूप में, प्रतिष्ठित रहता है इस प्रकार का स्वः=वह सुखस्वरूप परमेश्वर, अंग=हे श्रोताओ! यदि वा=क्या, वेद=जानता है, अथवा न वेद=नहीं जानता है। एक-मात्र वह सर्वज्ञ ईश्वर ही इस सृष्टि को जान सकता है, अन्य नहीं।

मैक्डानल ने 'दधे' का अर्थ सृष्टि की नींव रखी (founded it) किया है।

RADHA S

175/1, MOUNT RO